

श्री भगवत्-पुष्पदन्त-भूतबलि-प्रणीतः

षट्खंडागमः

श्रीवीरसेनाचार्य-विरचित-धवला-टीका-समन्वितः ।

तस्य द्वितीय-खंडः

धुद्रकबन्धः

हिन्दीभाषानुवाद-मुलनात्मकटिप्पण-प्रस्तावनानेकपरिशिष्टैः सम्पादितः

सम्पादकः

नागपुरस्थ-गारिस-कालेज-संस्कृताध्यापकः एम्. ए., एल्. एल्. बी., डी. लिट्. इत्युपाधिधारी

हीरालालो जैनः

सहसम्पादकः

पं. बालचन्द्रः सिद्धान्तशास्त्री

संशोधने सहायकौ

व्या. वा., सा. सू., पं. देवकीनन्दनः
सिद्धान्तशास्त्री

★ डा. नेमिनाथ-तनय-आदिनाथः
उपाध्याय एम्. ए., डी. लिट्.

प्रकाशकः

श्रीमन्त शेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र

जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालयः

अमरावती (बरार)

वि. सं. २००२]

कै०-निर्वाण-संवत् २७७१

[ई. स. १९४५

मूल्यं रूप्यक-दशकम्

प्रकाशक—

श्रीमन्त शेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र,
जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालय
अमरावती (बरार)



मुद्रक—

टी. एम्. पाटील
मैनेजर
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, अमरावती.

THE
ṢAṬKHAṆḌĀGAMA

OF
PUṢPADANTA AND BHŪTABALI

WITH
THE COMMENTARY DHAVALĀ OF VĪRASENA

VOL. VII

KṢUDRAKA-BANDHA

Edited

with introduction, translation, indexes and notes

BY

Dr. HIRALAL JAIN. M. A., LL. B., D. Litt.,
C. P. Educational Service, Morris College, Nagpur.

ASSISTED BY

Pandit Balchandra Siddhānta Shāstrī.

with the cooperation of

Pandit DEVAKINANDAN ★ Dr. A. N. UPADHYE
Siddhānta Shāstrī . M. A. D. LITT.

Published by

Shrimant Seth Shitabrai Laxmichandra,
Jaina Sāhitya Uddhāraka Fund Kāryālaya.
AMRAOTI (Berar).

1945.

Price rupees ten only.

Published by—
Shrimant Seth Shitabrai Laxmichandra,
Jana Sāhitya Uddhāraka Fund Kāryālaya,
AMRĀŌTI (Berar).



Printed by—
T. M. Patil, *Manager,*
Saraswati Printing Press,
AMRĀŌTI (Berar).

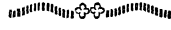
विषय-सूची

	पृष्ठ		पृष्ठ
प्राक्कथन १ प्रस्तावना Introduction	१ i-ii	२ मूल, अनुवाद और टिप्पण क्षुद्रकबन्ध	
१ क्या षट्खंडागम जीवद्वानकी सत्प्ररूपणाके सूत्र ९३ में 'संयत' पद अपेक्षित नहीं है? १	बन्धक-सत्त्व-प्ररूपणा	१
२ मूडविद्रीकी ताडपत्रीय प्रति-योमें जीवद्वानकी सत्प्ररूपणाके सूत्र ९३ में 'संजद' पाठ है। ३	१ एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व	२५
३ विषय-परिचय ४	२ " " " काल	११४
४ क्षुद्रकबन्धकी विषय-सूची ९	३ " " " अन्तर	१८७
५ शुद्धिपत्र १७	४ नाना जीवोंकी " भंगविचय....	२३७
		५ द्रव्यप्रमाणानुगम	२४४
		६ क्षेत्रानुगम	२९९
		७ स्पर्शानुगम	३६६
		८ नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगम	४६२
		९ " " " अन्तरानुगम	४७८
		१० भागाभागानुगम	४९३
		११ अल्पबहुत्वानुगम	५२०
		महादण्डक	५७५

३ परिशिष्ट

	पृष्ठ
१ क्षुद्रकबन्ध-सूत्रपाठ १
२ अवतरण गाथा-सूची ५०
३ न्यायोक्तियां ५१
४ ग्रंथोल्लेख ५२
५ पारिभाषिक शब्दसूची ५३

प्राक् कथन



इससे पूर्व प्रकाशित पुस्तकमें षट्खंडागमका प्रथम खण्ड जीवस्थान (जीवद्वान) समाप्त हो चुका है । उसे प्रकाशित हुए लगभग डेढ़ वर्ष हुआ है । अब प्रस्तुत पुस्तकमें षट्खंडागमका दूसरा खण्ड क्षुद्रकन्ध (खुदाबंध) पूर्व पद्धति अनुसार अनुवादादि सहित प्रकाशित किया जाता है । इस खण्डके ग्यारह मुख्य तथा प्रास्ताविक व चूल्का इस प्रकार कुछ तेरह अधिकारोंमें क्रमशः ४३, ९१, २१६, १५१, २३, १७१, १२४, २७४, ५५, ६८, ८८, २०६ और ७९ योग १५८९ सूत्र पाये जाते हैं । इन अनुयोगोंका विषय प्रायः वही है जो जीवस्थान खण्डमें भी आ चुका है । विशेषता यह है कि यहां मार्गणास्थानोंके भीतर गुणस्थानोंकी अपेक्षा रखकर प्ररूपण किया गया है जैसा कि विषय परिचयसे प्रकट होगा । यही कारण है कि इस खण्डमें उतने तुलनात्मक टिप्पण देने व विशेषार्थ लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई ।

इसी समयमें हमारी स्वीकृत संशोधन प्रणालीकी कठोर परीक्षाका अवसर आ उपस्थित हुआ । पाठकोंको ज्ञात है कि हमने अत्यन्त सावधानीसे उपलब्ध प्रतियोंके पाठकी रक्षा की है । उपलब्ध पाठमें या तो भाषाकी दृष्टिसे केवल वे ही संशोधन किये गये हैं जिनके नियम हम प्रथम पुस्तककी प्रस्तावनामें प्रकट कर चुके हैं । या यदि कहीं कुछ पाठ जोड़ना आवश्यक प्रतीत हुआ तो वह पाठ कोष्ठकमें रखा गया है या उसकी संभावना पाद टिप्पणमें बतलाई गई है । जीवस्थानकी सप्ररूपणाके सूत्र ९३ में इसी प्रकारका एक प्रसंग उपस्थित हुआ था जहां अर्थ, शैली, टीका, सिद्धान्तपरम्परा आदि समस्त उपलब्ध प्रमाणोंपर विचार कर फुटनोटमें ' संजद ' पद छूट जानेकी संभावना प्रकट की गई थी और अनुवाद उस पदको ग्रहण करके ही बँठाया गया था । इस पर पाठकोंको जो शंका उत्पन्न हुई उसका समाधान भी पुस्तक ३ की प्रस्तावनामें कर दिया गया था । किन्तु अभी अभी उस प्रश्नपर फिर बड़ा विवाद उपस्थित हो उठा । बहुतसे पंडितोंने यह आक्षेप किया कि उक्त सूत्रमें ' संयत ' पद ग्रहण करनेसे दिगम्बर मान्यताको आघात पहुंचता है और उसकी संभावना सम्प्रदायको क्षति पहुंचनेकी दृष्टिसे ही सम्पादकने प्रकट की है । इन आक्षेपोंसे बचनेके लिये उस समयके मेरे एक सहकारी सम्पादक पं. हीरालालजीने तो प्रकट ही कर दिया कि वह पाठ-संशोधन उनकी सम्मतिसे नहीं हुआ । दूसरे सहयोगी पं. फूलचन्द्रजी शास्त्री उस सम्बन्धमें अभी तक मौन ही रहे । इस परिस्थितिमें मैंने पं. लोकनाथजी शास्त्रीसे पुनः प्रेरणा की कि वे मूडविद्वीकी तीनों ताड़पत्र प्रतियोंमें उक्त

सूत्रका पाठ देखनेकी कृपा करें। इसके फलस्वरूप दो ताड़पत्रीय प्रतियोंमें सूत्र पाठ 'संयत' पदसे युक्त पाया गया और तीसरी प्रतिमें वह ताड़पत्र ही उपलभ्य नहीं है। इस स्पष्टीकरणके लिये हम पं. लोकनाथजी शास्त्रीके बहुत उपकृत हैं। इस तुलनात्मक अन्वेषणसे हमारी पाठ संशोधन प्रणालीकी प्रामाणिकता सिद्ध हो गई।

हमें यह प्रकट करते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि इस खंडके प्रकाशित होनेसे कुछ ही मास पूर्व इस फंडके ट्रस्टी तथा इस प्रकाशन योजनामें बड़े भारी सहायक अमरावती निवासी श्रीमान् सिंघई पन्नालालजी का स्वर्गवास हो गया। उन्होंने इस संस्थाका जो उपकार किया है उसका उल्लेख उनके चित्र सहित प्रथम पुस्तकमें ही किया जा चुका है। सिंघईजीको इस प्रकाशनका बड़ा उत्साह था और इस सिद्धान्तको पूर्णतः प्रकाशित देखने की उन्हें प्रबल अभिलाषा थी। विधिके विधानसे वह सफल नहीं हो सकी। हम उनकी विधवा पत्नी तथा सुपुत्र व अन्य कुटुम्बियोंसे समवेदना प्रकट करते हुए उनकी आत्माको स्वर्गमें शान्ति मिलनेके प्रार्थी हैं।

गत जुलाई १९४४ में मेरा तत्वादला अमरावतीसे नागपुरका हो गया। तथापि प्रकाशन ऑफिस व मुद्रणकी व्यवस्था अमरावतीमें ही रखना उचित प्रतीत हुआ। इस स्थान विच्छेदकी कठिनाई तथा अनेक आपत्तियां उपस्थित होनेपर भी जो यह कार्य प्रगतिशील बना हुआ है इसमें हमारे पाठकोंकी सद्भावना, श्रीमन्त सेठजी व अन्य अधिकारियोंकी सुदृष्टि व पूर्व समस्त सहायकोंके उपकारके अतिरिक्त पं. बालचन्द्रजी शास्त्रीका समुचित सहयोग व सरस्वती प्रेसके मैनेजर श्रीयुत टी. एम. पाटिलका उत्साह सराहनीय है। मैं सबका विशेष आभारी हूँ। इसी सहयोगके बलपर आगे भी संशोधन प्रकाशन कार्य विधिवत् चलते रहनेकी आशा की जा सकती है।

मारिस कॉलेज नागपुर
२-७-४५

}

हीरालाल

प्रस्तावना

INTRODUCTION.



The first part of Śaṭkhaṇḍāgama called Jivatṭhāṇa was completed with volume VI published an year and a half ago. The present volume contains the second Khaṇḍa called Khuddā-bandha (SK. Kṣudraka-bandha), which means Bondage in brief. It consists of eleven chapters, besides the two additional ones, one being introductory and the other in the form of an appendix. The subject-matter is for the most part identical with what had already been propounded in the previous Khaṇḍa. But one important point of distinction between the two treatments is that here the Guṇasthāna division of souls has been ignored in dealing with the Mārḡaṇā-sthānas, while in the former treatment it was strictly adhered to. The categories adopted in this part are also slightly different in scope as well as arrangement from those of the previous Khaṇḍa. In place of the eight divisions of Jivatṭhāṇa, namely, Existence (Sat), Numbers (Saṃkhyā), Volume (Ksetra), Space traversed (Sparśana), Time (Kāla), Interruption (Antara), Quality (Bhāva), and Comparative numerical strength (Alpa-bahutva), the headings adopted here are Ownership (of karma) from the point of view of a single soul (Svāmitva), Time from the point of view of a single soul (Kāla), Interruption from the point of view of a single soul (Antara), Being or non-being of the different conditions of existence from the point of view of the souls in the aggregate (Bhaṅga-vicaya), Numbers (Dravya-pramāṇa), Volume (Kṣetrānugama), Space traversed (Sparśana), Time from the point of view of the souls in the aggregate, Interruption from the point of view of the souls in the aggregate, Ratio (Bhāgābhāgānugama), and Comparative numerical strength (Alpa-bahutva). Besides these eleven categories which constitute the main chapters of this Khaṇḍa, the introductory chapter deals with the souls that contract karmas and those that do not (Bandhaka-sattva-prarūpaṇā), and the supplementary chapter at the end supplies information seriatim about the comparative numerical strength of the different classes of souls in an ascending order (Mahādaṇḍaka of Alpa-bahutva). The information being for the most part the same as found in the first Khaṇḍa, it was not necessary to add many comparative foot-notes and explanatory notes, because a reference to the corresponding section of Jivatṭhāṇa would easily supply the wanted information. But where any novel or intricate point occurs, the necessary explanations and notes have been added.

One point, which is very important for its bearing on our principles of text-constitution, needs mention here. In the text of the 93rd Sūtra of Satprarūpaṇā of Jīvaṭṭhāṇa (Volume I, page 332), we had felt that the word ' Sanjada ' which was necessary there, had probably been omitted by a scribal mistake. Therefore this fact was noted in a foot-note and the word was adopted in the translation because otherwise the discussion there would be unintelligible. But this was objected to by some critics and the justification for it was supplied by us in the introduction to volume III (page 28). Recently, however, there was again a storm of criticism on the point because it was suspected that the addition of the word ' Sanjada ' in the Sūtra goes contrary to the Digambara faith and supports the Śvetāmbara view of the possibility of women-salvation (Strī-mukti). The previous collation of the palm-leaf manuscripts, the results of which were tabulated in the Appendix to volume III, had also not brought out the word ' Sanjada ' in the Sūtra. But because I was certain that the text was incomplete and inconsistent without that word, I arranged for a closer scrutiny of the Moodbidri mss. as a result of which the two palm-leaf mss., which have preserved the text of the Sūtra, yielded the required reading, while in the third manuscript the leaf itself containing the text of the Sūtra is missing. This discovery together with the results of the previous collation as noted in the introduction to volume III (page 51) has proved beyond doubt the validity of our system of text-constitution. I am very thankful to Pandit Lcknath Shastri of Moodbidri for the great pains he took in scrutinizing the palm leaf manuscripts and bringing to light the true and correct reading of that Sūtra.

क्या षट्खंडागम जीवद्वारा सत्प्ररूपणाके सूत्र ९३ में 'संयत' पद अपेक्षित नहीं है ?

षट्खंडागम जीवद्वारा सत्प्ररूपणाके सूत्र ९३ का जो पाठ उपलब्ध प्रतियोंमें पाया गया था उसमें संयत पद नहीं था। किन्तु उसका सम्पादन करते समय सम्पादकोंको यह प्रतीत हुआ कि वहां 'संयत' पद होना अवश्य चाहिये और इसीलिये उन्होंने फुटनोटमें सूचित किया है कि "अत्र 'संजद' इति पाठशेषः प्रतिभाति।" तथा हिन्दी अनुवादमें संयत पद ग्रहण भी किया है। इस पर कुछ पाठकोंने शंका भी उत्पन्न की थी, जिसका समाधान पुस्तक ३ की प्रस्तावनाके पृष्ठ २८ पर किया गया है। इस समाधानमें ध्यान देने योग्य बातें ये हैं कि एक तो उक्त सूत्रकी धवला टीकामें जो शंका-समाधान किया गया है वह मनुष्यनीके चौदहों गुणस्थान ग्रहण करके ही किया गया है। दूसरे, सत्प्ररूपणाके आलापाधिकारमें भी धवलाकारने सामान्य मनुष्यनी व पर्याप्त मनुष्यनीके अलग अलग चौदहों गुणस्थान प्ररूपित किये हैं। तीसरे द्रव्यप्रमाणादि प्ररूपणाओंमें भी सर्वत्र मनुष्यनीके चौदहों गुणस्थान कहे गये हैं। और चौथे गोमटसार जीवकाण्डमें भी मनुष्यनीके चौदहों गुणस्थानोंकी ही परम्परा पाई जाती है, पांच गुणस्थानोंकी नहीं। इन प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि यदि उक्त सूत्रमें संयत पद ग्रहण न किया जाय तो शास्त्रमें एक बड़ी भारी विषमता उत्पन्न होती है। अतएव षट्खंडागमके सम्पादनमें जो वहां संयत पदकी सूचना करके भाषान्तर किया गया वह सर्वथा उचित और आवश्यक था।

किन्तु मनुष्यनीके कहीं भी केवल पांच गुणस्थानोंका उल्लेख न पाकर कुछ लोग इसी सूत्रको खियोंके केवल पांच गुणस्थानोंकी योग्यताका मूलाधार बनाना चाहते हैं। परन्तु इसके लिये उन्हें उपर्युक्त चार बातोंका उचित समाधान करना आवश्यक है जो वे अभी तक नहीं कर सके। एक हेतु यह दिया जाता है कि प्रस्तुत सूत्रमें मनुष्यनीका अर्थ द्रव्य स्वीकार करना चाहिये और द्रव्यप्रमाणादिमें जहां मनुष्यनीके चौदहों गुणस्थान बतलाये गये हैं वहां भाव स्वी अर्थ लेना चाहिये। किन्तु ऐसा करनेपर शास्त्रमें यह विषमता उत्पन्न होगी कि उक्त प्रकरणमें जिन जीवोंके गुणस्थान बतलाये, उनका द्रव्यप्रमाण नहीं बतलाया गया, और जिनका द्रव्यप्रमाण बतलाया है उनके सब गुणस्थानोंका सत्त्व ही प्रतिपादित नहीं किया, तथा धवलाकारने वह शंका-समाधान अप्रकृत रूपसे किया, एवं आलापाधिकार भी निराधार रूपसे लिखा। पर धवलाकारने स्वयं अन्यत्र यह स्पष्ट कर दिया है कि जिन जीवोंके जो गुणस्थान प्रतिपादित किये गये हैं, उन्हीं जीवोंके उसी प्रकार द्रव्यप्रमाणादि बतलाये गये हैं। उदाहरणार्थ, सत्प्ररूपणाके ही सूत्र २६ में जो तिर्यचोंके पांच गुणस्थान कहे गये हैं वहां धवलाकार शंका

उठाते हैं कि तिर्यंच तो पांच प्रकारके होते हैं — सामान्य, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, तिर्यंचनी और अपर्याप्त । इनमेंसे किनके पांच गुणस्थान होते हैं यह सूत्रसे ज्ञात नहीं हो सका ? इसका वे समाधान इस प्रकार करते हैं—

न तावदपर्याप्तपंचेन्द्रियतिर्यक्षु पंच गुणा सन्ति, लब्धपर्याप्तेषु मिथ्यादृष्टिव्यतिरिक्तशेषगुणा-
सम्भवात् । तद्भूतोऽवगम्यते इति चेत् ' पंचेन्द्रियतिर्यक्षुपञ्जतमिच्छादृष्टी दन्वपनागेग केवडिया ?
' असंखेज्जा ' इति तत्रैकस्यैव मिथ्यादृष्टिगुणस्य संख्यायाः प्रतिपादकार्थान् । शेषेषु पंचापि गुणस्थानानि
सन्ति, अन्यथा तत्र पंचानां गुणस्थानानां संख्यादिप्रतिपादकद्रव्याद्यार्थस्याप्रामाण्यप्रभंगात् । (पुस्तक १,
पृ. २०८-२०९)

इस शंका-समाधानसे ये बातें सुस्पष्ट हो जाती हैं कि सत्प्ररूपणा और द्रव्यप्रमाणादि प्ररूपणाओंका इस प्रकार अनुपगम है कि जिन जीवसमासोंका जिन गुणस्थानोंमें द्रव्यप्रमाण बतलाया गया है उनमें उन गुणस्थानोंका सत्त्व भी स्वीकार किया जाना अनिवार्य है, और यदि वह सत्त्व स्वीकार नहीं किया तो वह द्रव्यप्रमाण प्ररूपण ही अनार्थ हो जावेगा । यही बात द्रव्यप्रमाणके प्रारम्भमें भी कही गई है कि—

संपहि चोद्दसण्हं जीवसमासाणमत्थित्तमवगदाणं सिस्साणं तेसिं चैव परिमाणपडिबोहणहं
भूदबलियाइरियो सुत्तमाह । ” (पुस्तक ३ पृ. १)

अर्थात् जिन चौदह जीवसमासोंका अस्तित्व शिष्योंने जान लिया है उन्हींका परिमाण बतलानेके लिये भूतबलि आचार्य आगे सूत्र कहते हैं । तात्पर्य यह कि मनुष्यनीके सत्त्वमें केवल पांच और द्रव्यप्रमाणोंके प्ररूपणमें चौदह गुणस्थानोंके प्रतिपादनकी बात बन नहीं सकती । और यदि उनका द्रव्यप्रमाण चौदहों गुणस्थानोंमें कदा जाना ठीक है, तो यह अनिवार्य है कि उनके सत्त्वमें भी चौदहों गुणस्थान स्वीकार किये जाय ।

एक बात यह भी कही जाती है कि जीवद्वाराणकी सत्प्ररूपणा पुष्पदन्ताचार्य कृत है और शेष प्ररूपणार्थे भूतबलि आचार्य की । अतएव संभव है कि पुष्पदन्ताचार्यको मनुष्यनीके पांच ही गुणस्थान इष्ट हों । किन्तु यह बात भी संभव नहीं है, क्योंकि यदि उक्त सूत्रमें पांच गुणस्थान ही स्वीकार किये जाय तो उसका उसी सत्प्ररूपणाके सूत्र १६४-१६५ से विरोध पड़ेगा जहां स्पष्टतः सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी, इन तीनोंके असंयत संयतासंयत व संयत, इन सभी गुणस्थानोंमें क्षायिक, वेदक और उपशम सम्यक्त्व स्वीकार किया गया है । यथा—

मणुसा असंजदसम्माइद्धि-संजदासंजद-संजदद्वाने अत्थि खइयसम्माइद्धी वेदयसम्माइद्धी उवसम-
सम्माइद्धी ॥ एवं मणुसपज्जत्त-मणुसणीसु ॥ १६४-१६५ ।

इन सूत्रोंके सद्भावमें स्वयं पुष्पदन्तकृत सत्प्ररूपणामें ही मनुष्यनीके संयत गुणस्थान व तीनों सम्पत्त्वोंका सद्भाव स्वीकार किया गया है ।

इन सब प्रमाणों व युक्तियोंसे स्पष्ट है कि सत्प्ररूपणके सूत्र ९३ में संयत पदका ग्रहण करना अनिवार्य है । यदि उसका ग्रहण नहीं किया जाय तो शास्त्रमें बड़ी विषमता और विरोध उत्पन्न हो जाता है । इस परिस्थितिमें यदि उसी सूत्रके आधारपर स्त्रियोंके केवल पांच ही गुणस्थानोंकी मान्यता स्थिर की जाती है तो कहना पड़ेगा कि यह मान्यता एक स्खलित और त्रुटित पाठके आधारसे होनेके कारण भ्रान्त और अशुद्ध है ।

मूडविद्रीकी ताड़पत्रीय प्रतियोंमें जीवद्विगाणी सत्प्ररूपणके सूत्र ९३ में 'संजद' पाठ है ।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि किस प्रकार उपलब्ध प्रतियोंमें उक्त सूत्रके अन्तर्गत 'संजद' पाठ न होने पर भी सम्पादकोंने उसे ग्रहण करना आवश्यक समझा और उसपर उत्तरोत्तर विचार करनेपर भी उसके विना अर्थकी संगति बैठाना असम्भव अनुभव किया । किन्तु कुछ विद्वान् इस कल्पनापर वेहद रुष्ट हो रहे हैं और लेखों, शास्त्रार्थों व चर्चाओंमें नाना प्रकारके आक्षेप कर रहे हैं । प्रथम भागके एक सहयोगी सम्पादक पं. हीरालालजी शास्त्रीने तो प्रकट भी कर दिया है कि उस पाठके रखनेमें उनकी कोई जिम्मेदारी नहीं है । दूसरे सहयोगी पं. फूलचन्द्रजी शास्त्रीने उसके सम्बन्धमें कुछ भी न कहकर मौन धारण कर लिया है । इस कारण समालोचकोंने प्रधान सम्पादकको ही अपने क्रोधका एक मात्र लक्ष्य बना रखा है । इस परिस्थितिको देखकर प्रधान सम्पादकने मूडविद्रीकी ताड़पत्रीय प्रतियोंसे उस सूत्रके पुनः सावधानीसे मिलान करानेका प्रयत्न किया । पुस्तक ३ के 'प्राक् कथन' व 'चित्र-परिचय' के पढ़नेसे पाठकोंको सुविदित हो ही चुका है कि मूडविद्रीमें धवलसिद्धान्तकी एक ही नहीं तीन ताड़पत्रीय प्रतियां हैं, यद्यपि इनमेंकी दोमें ताड़पत्र पूरे पूरे न होनेसे वे त्रुटित हैं । इन तीनों प्रतियोंका सावधानीसे अवलोकन करके श्रीयुत् पं. लोकनाथजी शास्त्री अपने ता. २४-५-४५ के पत्र द्वारा सूचित करते हैं कि—

“ जीवद्विगाण भाग १ पृष्ठ नं. ३३२ में सूत्र ताड़पत्रीय मूलप्रतियोंमें इस प्रकार है—

‘ तत्रैव शेषगुणस्थानविषयारेकापोहनार्थमाह— सम्मामिच्छाश्चि-असंजदसम्माश्चि-संजदासंजद-संजदद्विगाणे णिथमा पज्जसियाओ । ’

टीका वही है जो मुद्रित पुस्तकमें है। धवलाकी दो ताड़पत्रीय प्रतियोंमें सूत्र इसी प्रकार 'संजद' पदसे युक्त है। तीसरी प्रतिमें ताड़पत्र ही नहीं है। पहले संशोधन-मुकाविला करके भेजते समय भी लिखकर भेजा था। परन्तु रहा कैसा, सो माझूम नहीं पड़ता, सो जानियेगा।”

ताड़पत्रीय प्रतियोंके इस मिलानपरसे पाठक समझ सकेंगे कि षट्खंडागमका पाठ संशोधन कितनी सावधानी और चिन्तनके साथ किया गया है। तीसरे भागकी प्रस्तावनामें हम लिख ही चुके थे कि उस भागमें हमने जिन १९ पाठोंकी कल्पना की थी उनमेंसे १२ पाठ जैसेके तैसे ताड़पत्रीय प्रतियोंमें पाये गये और शेष पाठ उनमें न पाये जाने पर भी शैली और अर्थकी दृष्टिसे उनका वहां ग्रहण किया जाना अनिवार्य है। अब उक्त सूत्रमें भी 'संजद' पाठ मिल जानेसे मर्मज्ञ पाठकोंको सन्तोष होगा और समालोचक विचार कर देखेंगे कि उनके आक्षेपादि कहां तक न्यायसंगत थे। जिनके पास प्रतियां हों उन्हें उक्त सूत्रमें संजद पाठ सम्मिलित करके अपनी प्रति शुद्ध कर लेना चाहिये।

विषय परिचय

पूर्व प्रकाशित छह पुस्तकोंमें षट्खंडागमका प्रथम खंड 'जीवद्वान' प्रकट हो चुका है। प्रस्तुत पुस्तकमें दूसरा खंड 'खुदाबंध' पूरा समाविष्ट है। इस खंडका विषय उसके नामसे ही सूचित हो जाता है कि इसमें क्षुद्र अर्थात् संक्षिप्तरूपसे बंध अर्थात् कर्मबन्धका प्रतिपादन किया गया है। पाठकोंको इस बृहत्काय ग्रंथमें बन्धका विवरण देखकर स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि इसे क्षुद्र व संक्षिप्त विवरण क्यों कहा? किन्तु संक्षिप्त और विस्तृत आपेक्षिक संज्ञाएं हैं। भूतबलि आचार्यने प्रस्तुत खंडमें बन्धक अनुयोगका व्याख्यान केवल १५८९ सूत्रोंमें किया है जब कि उन्होंने बंधविधानका विस्तारसे व्याख्यान छठवें खंड महाबन्धमें तीस हजार ग्रंथरचना रूपसे किया। इन्हीं दोनों खंडोंकी परस्पर विस्तार व संक्षेपकी अपेक्षासे छठा खंड 'महाबन्ध' कहलाया और प्रस्तुत खंड खुदाबंध या क्षुद्रकबन्ध।

खुदाबन्धकी उत्पत्ति प्रथम पुस्तककी प्रस्तावनाके पृ. ७२ पर दिखाई जा चुकी है और उसके विषय व अधिकारोंका निर्देश उसी प्रस्तावनाके पृष्ठ ६५ पर कर दिया गया है। उसके अनुसार बारहवें श्रुताङ्ग दृष्टिवादके चतुर्थ भेद पूर्वगतका जो दूसरा पूर्व आप्रायणीय या इसकी पूर्वान्त आदि चौदह वस्तुओंमेंसे पंचम वस्तु 'चयनलाब्धि' के कृति आदि चौबीस

पाहुडोंमेंसे छठे पाहुड बन्धन के बन्ध, बन्धनीय, बन्धक और बन्धविधान नामक चार अधिकारोंमेंसे ' बन्धक ' अधिकारसे इस खंडकी उत्पत्ति हुई है ।

कर्मबन्धके कर्ता हैं जीव जिनकी प्ररूपणा जीवट्टाण खण्डमें सत् संख्या आदि आठ अनुयोग द्वारोंके भीतर मिथ्यात्वादि चौदह गुणस्थानों द्वारा व गति आदि चौदह मार्गणाओंमें की जा चुकी है । प्रस्तुत खण्डमें उन्हीं जीवोंकी प्ररूपणा स्वामित्वादि ग्यारह अनुयोगों द्वारा गुणस्थान विशेषणको छोड़कर मार्गणास्थानोंमें की गई है । यही इन दोनों खण्डोंमें विषय प्रतिपादनकी विशेषता है । इस खण्डके ग्यारह अनुयोग द्वारोंका नामनिर्देश स्वामित्वानुगमके दूसरे सूत्रमें किया गया है जिनके नाम हैं — (१) एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व (२) एक जीवकी अपेक्षा काल (३) एक जीवकी अपेक्षा अन्तर (४) नाना जीवोंकी अपेक्षा भंग-विचय (५) द्रव्यप्रमाणानुगम (६) क्षेत्रानुगम (७) स्पर्शनानुगम (८) नाना जीवोंकी अपेक्षा काल (९) नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर (१०) भागःभागानुगम और (११) अल्प-बहुत्वानुगम । इनसे पूर्व प्रास्ताविक रूपसे बंधकोंके सत्त्वकी भी प्ररूपणा की गई है और अन्तमें ग्यारहों अनुयोगद्वारोंकी चूल्का रूपसे ' महादंडक ' दिया गया है । इस प्रकार यद्यपि खुदाबन्धके प्रधान ग्यारह ही अधिकार माने गये हैं, किन्तु यथार्थतः उसके भीतर तेरह अधिकारोंमें सूत्र रचना पाई जाती है जिनके विषयका परिचय इस प्रकार है —

बन्धक-सत्त्वप्ररूपणा

इस प्रस्तावना रूप प्ररूपणामें केवल ४३ सूत्र हैं जिनमें चौदह मार्गणाओंके भीतर कौन जीव कर्म बन्ध करते हैं और कौन नहीं करते यह बतलाया गया है । सब मार्गणाओंका मथितार्थ यह निकलता है कि जहां तक योग अर्थात् मन वचन कायकी क्रिया विद्यमान है वहां तक सब जीव बन्धक है, केवल अयोगी मनुष्य और सिद्ध अबन्धक हैं ।

१ एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व

इस अधिकारमें ९१ सूत्र हैं जिनमें बतलाया गया है कि मार्गणाओं सम्बन्धी गुण व पर्याय जीवके कौनसे भावोंसे प्रकट होते हैं । इनमें सिद्धगति व तत्सम्बन्धी अकायत्व आदि गुण, केवलज्ञान, केवलदर्शन व अलेश्यत्व तो क्षायिक लब्धिसे उत्पन्न होते हैं । एकेन्द्रिय आदि पांचों जातियां, मन वचन काययोग, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ज्ञान, परिहारशुद्धि संयम, चक्षु, अचक्षु व अवधि दर्शन, सम्यग्मिथ्यात्व और संज्ञित्व ये क्षयोपशम लब्धिजन्य हैं । अपगतवेद, अकषाय, सूक्ष्मसाम्पराय व यथाख्यात संयम, ये औपशमिक तथा क्षायिक लब्धिसे प्रकट होते हैं । सामायिक व छेदोपस्थापन संयम और सम्यग्दर्शन औपशमिक, क्षायिक व

क्षायोपशमिक लब्धिसे प्राप्त होते हैं। तथा भव्यत्व, अभव्यत्व एवं सासादनसम्यक्त्व, ये पारिणामिक भाव हैं। शेष गति आदि समस्त मार्गणान्तर्गत जीवपर्याय अपने अपने कर्मोके व विरोधक कर्मोके उदयसे उत्पन्न होते हैं। सूत्र ११ की टीकामें ध्वलाकारने एक शंकाके आधारसे जो नागकर्मकी प्रकृतियोंके उदयस्थानोंका वर्णन किया है वह उपयोगी है।

२ एक जीवकी अपेक्षा काल

इस अनुयोगद्वारमें २१६ सूत्र हैं जिनमें प्रत्येक गति आदि मार्गणमें जीवकी जघन्य और उत्कृष्ट कालस्थितिका निरूपण किया गया है। जीवस्थानमें जो कालकी प्ररूपणा की गई है वह गुणस्थानोंकी अपेक्षा है, किन्तु यहां गुणस्थानका विचार छोड़कर मार्गणाकी ही अपेक्षा काल बतलाया गया है यही इन दोनोंमें विशेषता है।

३ एक जीवकी अपेक्षा अन्तर

इस अनुयोगद्वारके १५१ सूत्रोंमें यह प्रतिपादन किया गया है कि एक जीवका गति आदि मार्गणाओंके प्रत्येक अवान्तर भेदसे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अर्थात् विहरकाल कितने समयका होता है।

४ नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय

इस अनुयोगद्वारमें केवल २३ सूत्र हैं। भंग अर्थात् प्रमेद और विचय अर्थात् विचारणा। अतएव प्रस्तुत अधिकारमें यह निरूपण किया गया है कि भिन्न भिन्न मार्गणाओंमें जीव नियमसे रहते हैं या कभी रहते हैं और कभी नहीं भी रहते। जैसे नरक, तीर्थच, मनुष्य और देव इन चारों गतियोंमें जीव सदैव नियमसे रहते ही हैं, किन्तु मनुष्य अपर्याप्त कभी होते भी हैं और कभी नहीं भी होते। उसी प्रकार इन्द्रिय, काय, योग आदि मार्गणाओंमें भी जीव सदैव रहते ही हैं, केवल वैकृतिक मिश्र, आहार व अहारमिश्र काययोगोंमें, सूक्ष्मसाम्पराय संयममें तथा उपशम, सासादन व सम्यग्मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्वमें, कभी जीव रहते हैं और कभी नहीं भी रहते। इस प्रकार उक्त आठ मार्गणाएं सान्तर हैं और शेष समस्त मार्गणाएं निरन्तर हैं (देखो गो. जी. गाथा १४२)।

५ द्रव्यप्रमाणानुगम

इस अनुयोगद्वारके १७१ सूत्रोंमें भिन्न भिन्न मार्गणाओंके भीतर जीवोंका संख्यात, असंख्यात व अनन्त रूपसे अवसर्पिणी उत्सर्पिणी आदि कालप्रमाणोंसे अपहार्य व अनपहार्य रूपसे एवं योजन, श्रेणी, प्रतर व लोकके यथायोग्य भागांश व गुणित क्रम रूपसे प्रमाण बतलाया

गया है। पूर्व निर्देशानुसार जीवस्थानके द्रव्यगण व इस अधिकारके प्ररूपणमें विशेषता केवल इतनी ही है कि यहां गुणस्थानकी अपेक्षा नहीं रखी गई।

६ क्षेत्रानुगम

इस अनुयोगद्वारमें १२४ सूत्रोंमें चौदह मार्गानुसार सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्थलोक व मनुष्यलोक, इन पांचों लोकोंके आश्रयसे स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, सात समुद्रघात और उपपादकी अपेक्षा वर्तमान निवासकी प्ररूपणा की गई है। पूर्वके समान यहां भी गुणस्थानोंकी अपेक्षा नहीं रखी गई।

७ स्पर्शनानुगम

इस अनुयोगद्वारमें २७४ सूत्रोंमें गुणस्थानक्रमको छोड़कर केवल चौदह मार्गानुसार अनुसार सामान्यादि पांच लोकोंकी अपेक्षा स्वस्थान, समुद्रघात व उपपाद पदोंसे वर्तमान व अतीत कालसम्बन्धी निवासकी प्ररूपणा की गई है।

८ नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगम

इस अनुयोगद्वारमें ५५ सूत्रोंमें चौदह मार्गानुसार नाना जीवोंकी अपेक्षा अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त, सादि-अनन्त व सादि-सान्त कालभेदोंको लक्ष्य कर जीवोंकी कालप्ररूपणा की गई है।

९ नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगम

इस अनुयोगद्वारमें ६८ सूत्रोंमें चौदह मार्गानुसार नाना जीवोंकी अपेक्षा बन्धकोंके जघन्य व उत्कृष्ट अन्तरकालकी प्ररूपणा की गई है।

१० भागाभागानुगम

इस अनुयोगद्वारमें ८८ सूत्रोंमें चौदह मार्गानुसार सर्व जीवोंकी अपेक्षा बन्धकोंके भागाभागकी प्ररूपणा की गई है। यहां भागसे अभिप्राय अनन्तवें भाग, असंख्यातवें भाग और संख्यातवें भागसे; तथा अभागसे अभिप्राय अनन्त बहुभाग, असंख्यात बहुभाग व संख्यात बहुभागसे है। उदाहरण स्वरूप 'नारकी जीव सब जीवोंकी अपेक्षा कितने भागप्रमाण हैं?' इस प्रश्नके उत्तरमें उन्हें सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण बतलाया गया है।

११ अल्पबहुत्वानुगम

इस अनुयोगद्वारमें २०५ सूत्रोंमें चौदह मार्गगाओंके आश्रयसे जीवसमासोंका तुलनात्मक प्रमाणप्ररूपण किया गया है। इस प्रकरणमें एक यह बात ध्यान देने योग्य है कि सूत्रकारने वनस्पतिकाय जीवोंसे निगोद जीवोंका प्रमाण विशेष अधिक बतलाया है जिसका अभिप्राय धवलाकारने यह प्रकट किया है कि जो एकेन्द्रिय जीव निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित हैं उनका वनस्पतिकाय जीवोंके भीतर ग्रहण नहीं किया गया। यहां संकाकारके यह पूछनेपर कि उक्त जीवोंकी वनस्पति संज्ञा क्यों नहीं मानी गई, धवलाकारने उत्तर दिया है कि “यह प्रश्न गौतमसे करो, हमने तो यहां उनका अभिप्राय कह दिया।” (पृ. ५४१)।

इन ग्यारह अधिकारोंके पश्चात् एक अधिकार चूलिकारूप महादंडकका है जिसके ७९ सूत्रोंमें मार्गणा विभागको छोड़कर गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य पर्याप्तसे लेकर निगोद जीवों तकके जीवसमासोंका अल्पबहुत्व प्रतिपादन किया गया है और उसीके साथ क्षुद्रकवन्ध खण्ड समाप्त होता है।

विषय-सूची

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	बन्धक-सत्त्वप्ररूपणा		२	ग्यारह अनुयोगद्वारोंका क्रम	२६
१	धवलाकारका मंगलाचरण	१	३	गतिमार्गणानुसार नैगमादिक नयोंकी अपेक्षा नारकप्ररूपणा	२८
२	बन्धकोंका निर्देश	"	४	तिर्यच, मनुष्य व देवगतिमें स्वामित्वप्ररूपण	३१
३	गतिमार्गणानुसार बन्धक और अबन्धकोंकी प्ररूपणा	७	५	नारकियोंके पांच उदय-स्थानोंका निरूपण	३२
४	बन्धकारणोंका निर्देश	९	६	तिर्यचोमें नौ उदयस्थानोंका निरूपण	३५
५	इन्द्रियमार्गणानुसार बन्धक-अबन्धकोंका प्ररूपण	१५	७	उदयस्थानभंगोंकी संख्या-दिकके जाननेका उपाय	४४
६	कायमार्गणानुसार बन्धक प्ररूपणा	१६	८	मनुष्योंमें ग्यारह उदय-स्थानोंका निरूपण	५२
७	योगमार्गणानुसार बन्धक प्ररूपणा	१७	९	देवोंमें पांच उदयस्थानोंका निरूपण	५८
८	वेदमार्गणानुसार बन्धक प्ररूपणा	१८	१०	इन्द्रियमार्गणानुसार स्वामित्वप्ररूपण	६१
९	कषायमार्गणानुसार बन्धक प्ररूपणा	१९	११	इन्द्रिय शब्दका निरुक्त्यर्थ	"
१०	ज्ञान व संयम मार्गणानुसार बन्धक प्ररूपणा	२०	१२	एकेन्द्रिय भावमें क्षायोपशमिकत्व प्रकट करते हुए घाति-अघाति कर्मोंका प्ररूपण	"
११	दर्शन व लेश्या मार्गणानुसार बन्धक प्ररूपणा	२१	१३	द्वीन्द्रियादि भावोंमें क्षायोपशमिकता	६४
१२	भव्य व सम्यक्त्व मार्गणानुसार बन्धक प्ररूपणा	२२	१४	एकेन्द्रियादि भावोंमें औदयिके भावकी आशंका व उसका समाधान	६७
१३	संज्ञिमार्गणानुसार बन्धक प्ररूपणा	२३	१५	अनिन्द्रियत्वमें क्षायिक भाव बतलाते हुए इन्द्रियविनाशमें ज्ञानादिके विनाशकी आशंका व उसका समाधान	६८
१४	आहारमार्गणानुसार बन्धक प्ररूपणा	२४			
	स्वामित्वानुगम				
१	बन्धकोंकी प्ररूपणामें ग्यारह अनुयोगद्वारोंका निर्देश	२५			

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१६	कायमार्गणानुसार स्वामित्व प्ररूपणा	७०	८	पृथिवीकायिकादिक जीवोंकी कालप्ररूपणा	१४३
१७	योगमार्गणानुसार स्वामित्व प्ररूपणामें तीनों योगोंके लक्षण व उनमें क्षायोपशामिक भावका निरूपण	७४	९	सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंसे सूक्ष्म निगोदजीवोंकी पृथक् प्ररूपणा	१४७
१८	वेदमार्गणानुसार स्वामित्व प्ररूपणा	७८	१०	त्रसकायिकोंकी कालप्ररूपणा	१४९
१९	स्त्रीवेद क्या स्त्रीवेद द्रव्य कर्म जनित परिणाम है या नाम-कर्मोदयजनित शरीरविशेष ? इस शंकाका समाधान	७९	११	मनोयोगी व वचनयोगी जीवोंकी कालप्ररूपणा	१५१
२०	कषायमार्गणानुसार स्वामित्व	८२	१२	काययोगी जीवोंकी काल प्ररूपणा	१५२
२१	ज्ञानमार्गणानुसार स्वामित्व	८४	१३	स्त्रीवेदी जीवोंकी कालप्ररूपणा	१५६
२२	संयममार्गणानुसार स्वामित्व	९१	१४	पुरुषवेदी ,, ,,	१५७
२३	दर्शनमार्गणानुसार स्वामित्व प्ररूपणामें दर्शनाभावकी आशंका और उसका समाधान	९६	१५	नपुंसकवेदी ,, ,,	१५८
२४	लेख्यामार्गणानुसार स्वामित्व	१०४	१६	अपगतवेदी ,, ,,	१५९
२५	भव्यमार्गणानुसार स्वामित्व	१०६	१७	क्रोधादि कषाय युक्त जीवोंकी कालप्ररूपणा	१६०
२६	सम्यक्त्वमार्गणानुसार स्वामित्व प्ररूपणा	१०७	१८	मति-श्रुत अज्ञानी जीवोंकी कालप्ररूपणा	१६१
२७	संक्षिप्तमार्गणानुसार स्वामित्व	१११	१९	विभंगज्ञानियोंका काल	१६३
२८	आहारमार्गणानुसार स्वामित्व	११२	२०	मति-श्रुतज्ञानियोंका काल	१६४
एक जीवकी अपेक्षा कालानुगम			२१	मनःपर्ययज्ञानी और केवल-ज्ञानी जीवोंकी कालप्ररूपणा	१६५
१	गतिमार्गणानुसार नारकि-योंकी कालप्ररूपणा	११४	२२	परिहारशुद्धिसंयत व संयता-संयत जीवोंकी कालप्ररूपणा	१६६
२	तिर्थचोंकी कालप्ररूपणा	१२१	२३	सामायिक-छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्प-रायिकशुद्धिसंयतोंका काल	१६८
३	मनुष्योंकी कालप्ररूपणा	१२५	२४	यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंकी कालप्ररूपणा	१६९
४	देवोंकी कालप्ररूपणा	१२७	२५	असंयतोंकी कालप्ररूपणा	१७१
५	इन्द्रियमार्गणानुसार एकेन्द्रिय जीवोंकी कालप्ररूपणा	१३५	२६	चक्षुदर्शनी जीवोंका काल	१७२
६	विकलेन्द्रियोंकी कालप्ररूपणा	१४१	२७	अचक्षुदर्शनी व अवधि-दर्शनियोंकी कालप्ररूपणा	१७३
७	पंचेन्द्रियोंकी कालप्ररूपणा	१४२	२८	केवलदर्शनी जीवोंका काल	१७४

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
२९	कृष्णादिक तीन लेइयावालोंकी कालप्ररूपणा	१७४	१०	स्त्री-पुरुषवेदियोंका अन्तर	२१३
३०	पीतादिक तीन लेइयावालोंकी कालप्ररूपणा	१७५	११	नपुंसकवेदियोंका "	२१४
३१	भव्यसिद्धिक जीवोंकी काल-प्ररूपणा	१७६	१२	अपगतवेदियोंका "	२१५
३२	अभव्यसिद्धिक जीवोंकी कालप्ररूपणा	१७७	१३	क्रोधादि कषाय युक्त जीवोंका अन्तर	२१६
३३	सम्यग्दृष्टि जीवोंकी काल-प्ररूपणा	१७८	१४	अकषायी जीवोंका अन्तर	२१७
३४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी कालप्ररूपणा	१८१	१५	मतिशुद्ध अज्ञानी जीवोंका अन्तर	२१७
३५	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी कालप्ररूपणा	१८२	१६	विभंगज्ञानी जीवोंका अन्तर	२१८
३६	मिथ्यादृष्टि जीवोंकी काल-प्ररूपणा	१८३	१७	मतिज्ञानी आदि चार सम्य-गज्ञानियोंका अन्तर	२१९
३७	संज्ञी जीवोंकी कालप्ररूपणा	"	१८	केवलज्ञानियोंका अन्तर	२२१
३८	असंज्ञी जीवोंकी कालप्ररूपणा	१८४	१९	संयत जीवोंका "	"
३९	आहारक , "	"	२०	असंयत " "	२२५
४०	अनाहारक , "	१८५	२१	चक्षुदर्शनी " "	२२६
एक जीवकी अपेक्षा अन्तरानुगम			२२	अचक्षुदर्शनी व अवधि-दर्शनियोंका अन्तर	२२७
१	गतिमार्गणानुसार नारकियोंका अन्तर	१८७	२३	केवलदर्शनियोंका अन्तर	२२८
२	तिर्यंच व मनुष्योंका अन्तर	१८८	२४	कृष्णादिक तीन लेइया युक्त जीवोंका अन्तर	"
३	देवोंका अन्तर	१९०	२५	पीतादिक तीन लेइया युक्त जीवोंका अन्तरप्ररूपणा	२२९
४	एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर	१९८	२६	भव्य व अभव्य जीवोंका अन्तर	२३०
५	द्वीन्द्रियादिक जीवोंका अन्तर	२०१	२७	सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-दृष्टि जीवोंका अन्तर	२३१
६	पृथिवीकायिकादिक जीवोंका अन्तर	२०२	२८	सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी अन्तरप्ररूपणा	२३२
७	त्रसकायिक जीवोंका अन्तर	२०४	२९	मिथ्यादृष्टियोंकी अन्तरप्ररूपणा	२३४
८	पांच मनोयोगी व पांच वचनयोगी जीवोंका अन्तर	२०५	३०	संज्ञी जीवोंकी अन्तरप्ररूपणा	"
९	काययोगियोंकी अन्तरप्ररूपणा	२०६	३१	असंज्ञी " "	२३५
			३२	आहारक-अनाहारक जीवोंकी अन्तरप्ररूपणा	२३६
			नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम		
			१	गतिमार्गणामें अस्ति-नास्ति भंगोंका निरूपण	२३७

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
२	इन्द्रिय व कायमार्गणामें अस्ति-नास्ति भंगोंका निरूपण	२३९	१४	द्वीन्द्रियादिक जीवोंका प्रमाण	२६९
३	योग, वेद व कषाय मार्गणामें अस्ति-नास्ति भंगोंका निरूपण	२४०	१५	पृथिवीकायिकादिक स्थावर जीवोंका प्रमाण	२७०
४	ज्ञान व संयम मार्गणामें अस्ति-नास्ति भंगोंका निरूपण	२४१	१६	त्रसकायिक जीवोंका प्रमाण	२७६
५	दर्शन, लेख्या व भव्य मार्गणामें अस्ति-नास्ति भंगोंका निरूपण	२४२	१७	मनोयोगी व वचनयोगी जीवोंका प्रमाण	"
६	सम्यक्त्व, संज्ञी व आहार मार्गणामें अस्ति-नास्ति भंगोंका निरूपण	२४३	१८	काययोगी जीवोंका प्रमाण	२७८
द्रव्यप्रमाणानुगम			१९	स्त्री-पुरुषवेदी	२८१
१	गतिमार्गणानुसार द्रव्य, काल व क्षेत्रकी अपेक्षा नारकी जीवोंका प्रमाण	२४४	२०	नपुंसकवेदी	२८२
२	द्रव्य, काल व क्षेत्रकी अपेक्षा तिर्यच जीवोंका प्रमाण	२५०	२१	अपगतवेदी	२८३
३	मनुष्य व मनुष्य अपर्याप्तोंका प्रमाण	२५४	२२	क्रोधादिकषायी	२८४
४	मनुष्य पर्याप्त और मनुष्य-नियोंका प्रमाण	२५७	२३	अकषायी	२८५
५	सामान्य देवोंका प्रमाण	२५९	२४	मति-श्रुत अज्ञानी	"
६	भवनवासी देवोंका प्रमाण	२६१	२५	विभंगज्ञानी	२८६
७	वानव्यन्तर " "	२६२	२६	मति, श्रुत व अवधिज्ञानी जीवोंका प्रमाण	"
८	ज्योतिषी " "	२६३	२७	मनःपर्यय व केवलज्ञानी जीवोंका प्रमाण	२८७
९	सौधर्म-ईशानकल्पवासी देवोंका प्रमाण	२६४	२८	संयत जीवोंका प्रमाण	२८८
१०	सनत्कुमारादि शतार-सहस्रार कल्पवासी देवोंका प्रमाण	२६५	२९	असंयत " "	२८९
११	आनतादि अपराजित विमानवासी देवोंका प्रमाण	२६६	३०	चक्षुदर्शनी जीवोंका प्रमाण	२९०
१२	सर्धार्थसिद्धि विमानवासी देवोंका प्रमाण	२६७	३१	अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी जीवोंका प्रमाण	२९१
१३	एकेन्द्रिय जीवोंका प्रमाण	"	३२	केवलदर्शनी जीवोंका प्रमाण	२९२
			३३	कृष्णादिक चार लेख्यावाले जीवोंका प्रमाण	"
			३४	पद्म व शुक्ल लेख्यावाले जीवोंका प्रमाण	२९३
			३५	भव्यसिद्धिक जीवोंका प्रमाण	२९४
			३६	अभव्यसिद्धिक " "	२९५
			३७	सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-दृष्टि जीवोंका प्रमाण	२९६
			३८	मिथ्यादृष्टि जीवोंका प्रमाण	२९७

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
३९	संज्ञी और असंज्ञी जीवोंका प्रमाण	२९७	१५	पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंकी क्षेत्र-प्ररूपणा	३२८
४०	आहारक व अनाहारक जीवोंका प्रमाण	२९८	१६	पृथिवीकायिकादिक व सूक्ष्म पृथिवीकायिकादिक जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३२९
क्षेत्रानुगम					
१	स्वस्थान समुद्घात व उप-पादके भेद और उनके लक्षण	२९९	१७	बादर पृथिवीकायिकादिक आठ वर्गोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३३०
२	नारकियोंकी क्षेत्रप्ररूपणा और उनके मारणान्तिक क्षेत्रके निकालनेका विधान	३०१	१८	आठ पृथिवियोंका जगप्रतर-प्रमाण	३३१
३	उपपादक्षेत्रके निकालनेका विधान	३०३	१९	पर्याप्त बादर पृथिवीकायिकादिकोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३३४
४	पांच प्रकारके तिर्यचोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३०५	२०	बादर वायुकायिक व उनके अपर्याप्तोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३३५
५	मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३०८	२१	बादर वायुकायिक पर्याप्तोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३३६
६	मनुष्य अपर्याप्तोंका क्षेत्र	३११	२२	वनस्पतिकायिक व निगोद जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३३७
७	मारणान्तिक क्षेत्रके निकालनेका विधान	३१२	२३	बादर वनस्पतिकायिक व बादर निगोद जीवोंकी क्षेत्र-प्ररूपणा	३३८
८	सामान्य देवोंका क्षेत्रप्रमाण	३१३	२४	त्रसकायिक जीवोंका क्षेत्र	३३९
९	भवनवासी आदि सर्वार्थ-सिद्धि पर्यंत देवोंका क्षेत्र	३१६	२५	पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३४०
१०	भवनवासी आदि देवोंका शरीरोत्सेध	३१९	२६	काययोगी और औदारिक-मिश्रकाययोगियोंका क्षेत्र	३४१
११	सामान्य एकेन्द्रिय व सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त अपर्याप्तोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३२०	२७	औदारिककाययोगियोंका क्षेत्र	३४२
१२	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त व अपर्याप्तोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३२२	२८	वैक्रियिककाययोगियोंका क्षेत्र	३४३
१३	द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३२४	२९	वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३४४
१४	पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३२६	३०	आहारकाययोगियोंका क्षेत्र	३४५
			३१	आहारमिश्रकाययोगियोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३४६

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
३२	कार्मणकाययोगियोंका क्षेत्र	३४६	५०	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३६३
३३	स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३४७	५१	मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र	३६४
३४	नपुंसकवेदी और अपगत-वेदियोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३४८	५२	संज्ञी जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३६५
३५	क्रोधादि चारों कषाय युक्त जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३५०	५३	असंज्ञी " "	३६५
३६	मति-श्रुत अज्ञानी जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	"	५४	आहारक " "	"
३७	विभंगज्ञानी और मनःपर्यय-ज्ञानी जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३५१	५५	अनाहारक " "	३६६
३८	मति-श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३५२	स्पर्शनानुगम		
३९	केवलज्ञानी जीवोंका क्षेत्र	"	१	सामान्य नारकियोंकी स्पर्शन प्ररूपणा	३६७
४०	संयत जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३५४	२	ज्ञालर समान तिर्यग्लोककी मान्यताका खण्डन	३७१
४१	असंयत " "	३५५	३	द्वितीयादि पृथिवियोंके नार-कियोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	३७३
४२	चक्षुदर्शनी जीवोंका क्षेत्र	"	४	सामान्य तिर्यचोंकी स्पर्शन प्ररूपणा	३७४
४३	अचक्षुदर्शनी जीवोंकी क्षेत्र प्ररूपणा	३५६	५	शेष चार प्रकारके तिर्यचोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	३७६
४४	अवधिदर्शनी व केवलदर्शनी जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३५७	६	मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यानियोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	३७९
४५	कृष्णादिक पांच लेख्यावाले जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	"	७	मनुष्य अपर्याप्तोंकी स्पर्शन प्ररूपणा	३८२
४६	शुक्ललेख्यावाले जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३५९	८	सामान्य देवोंका स्पर्शन	"
४७	भव्य व अभव्य जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३६०	९	भवनत्रिक देवोंकी स्पर्शन-प्ररूपणा	३८५
४८	सम्यग्दृष्टि और क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंका क्षेत्र	३६१	१०	सौधर्म और ईशान कल्पवासी देवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	३८८
४९	वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशम-सम्यग्दृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि जीवोंकी क्षेत्रप्ररूपणा	३६२	११	सनत्कुमारादि सहस्रार कल्प-वासी देवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	३८९
			१२	आनतादि चार कल्पवासी देवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	३९०
			१३	कल्पातीत देवोंका स्पर्शन	३९२

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१४	एकेन्द्रिय जीवोंका स्पर्शन	३९२	३१	मति-श्रुत अज्ञानी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	४२५
१५	विकलेन्द्रिय जीवोंका स्पर्शन	३९४	३२	विभंगज्ञानी जीवोंकी स्पर्शन-प्ररूपणा	४२६
१६	पंचेन्द्रिय जीवोंका स्पर्शन	३९६	३३	मति, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	४२८
१७	पृथिवीकायिकादिक जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	४००	३४	मनःपर्ययज्ञानी जीवोंकी स्पर्शन-प्ररूपणा	४३०
१८	तेजस्कायिक जीव कहां पाये जाते हैं, इसपर मतभेद	४०१	३५	केवलज्ञानी जीवोंकी स्पर्शन-प्ररूपणा	४३१
१९	त्रसकायिक जीवोंकी स्पर्शन-प्ररूपणा	४११	३६	संयत, यथाख्यातविहारशुद्धि-संयत, सामायिक-छेदोपस्था-पनाशुद्धिसंयत और सूक्ष्म-साम्परायिकसंयत जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	"
२०	पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंकी स्पर्शन-प्ररूपणा	"	३७	संयतासंयत जीवोंका स्पर्शन	४३२
२१	काययोगी और औदारिक-मिश्रकाययोगी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	४१३	३८	असंयत जीवोंका स्पर्शन	४३४
२२	औदारिककाययोगी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	४१४	३९	चक्षुदर्शनी जीवोंका स्पर्शन	"
२३	वैक्रियिककाययोगी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	४१५	४०	अचक्षुदर्शनी " "	४३७
२४	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	४१७	४१	अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	४३८
२५	आहारकाययोगी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	४१८	४२	कृष्णादिक चार लेह्यावाले जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	"
२६	आहारमिश्रकाययोगी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	४१९	४३	पट्टमलेह्यावाले जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	४४१
२७	कार्मणकाययोगी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	"	४४	शुक्ललेह्यावाले जीवोंका स्पर्शन	४४२
२८	स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	४२०	४५	भव्य और अभव्य " "	४४४
२९	नपुंसकवेदी और अपगतवेदी जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	४२३	४६	सम्यग्दृष्टि " "	४४५
३०	क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	४२५	४७	क्षायिकसम्यग्दृष्टि " "	४४९
			४८	वेदकसम्यग्दृष्टि " "	४५१
			४९	उपशमसम्यग्दृष्टि " "	४५३
			५०	सासादनसम्यग्दृष्टि " "	४५५

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
५१	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका स्पर्शन	४५७	३	देवोंकी अन्तरप्ररूपणा	४८१
५२	मिथ्यादृष्टि	४५८	४	इन्द्रिय मार्गणामें अन्तरप्ररूपणा	४८२
५३	संज्ञी	" "	५	काय	४८३
५४	असंज्ञी	४६१	६	योग	४८४
५५	आहारक व अनाहारक जीवोंकी स्पर्शनप्ररूपणा	" "	७	वेद	४८६
नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगम			८	कषाय और ज्ञान मार्गणामें अन्तरप्ररूपणा	४८७
१	नारकी जीवोंकी कालप्ररूपणा	४६२	९	संयम मार्गणामें अन्तरप्ररूपणा	४८८
२	तिर्यंच और मनुष्योंकी काल-प्ररूपणा	४६३	१०	दर्शन	४८९
३	देवोंकी कालप्ररूपणा	४६४	११	लेख्या और भव्य मार्गणामें अन्तरप्ररूपणा	४९०
४	एकेन्द्रियादि पांच प्रकारके जीवोंकी कालप्ररूपणा	४६६	१२	सम्यक्त्व मार्गणामें अन्तरप्ररूपणा	४९१
५	त्रसकाय और स्थावरकाय जीवोंकी कालप्ररूपणा	४६७	१३	संज्ञी	४९३
६	योगमार्गणामें कालप्ररूपणा	४६८	१४	आहार	४९४
७	वेदमार्गणामें	४७१	भागाभागानुगम		
८	कषाय और ज्ञान मार्गणामें कालप्ररूपणा	४७२	१	नरकगतिमें भागाभागप्ररूपणा	४९५
९	संयम मार्गणामें कालप्ररूपणा	४७३	२	तिर्यंच गतिमें	४९६
१०	दर्शन व लेख्या मार्गणामें कालप्ररूपणा	४७४	३	मनुष्य	४९७
११	भव्य और सम्यक्त्व मार्गणामें कालप्ररूपणा	४७५	४	देव	४९८
१२	संज्ञी और आहार मार्गणामें कालप्ररूपणा	४७६	५	एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय जीवोंमें भागाभागप्ररूपणा	४९९
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगम			६	सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें	५००
१	गतिमार्गणामें नारकी जीवोंकी अन्तरप्ररूपणा	४७८	७	द्वीन्द्रियादिक	५०१
२	तिर्यंच व मनुष्योंकी अन्तर-प्ररूपणा	४८०	८	काय मार्गणामें	५०२
			९	सूक्ष्म वनस्पतिक्रायिकोंसे सूक्ष्म निगोद जीवोंकी पृथक्प्ररूपणा	५०४
			१०	योग मार्गणामें भागाभागप्ररूपणा	५०७
			११	वेद	५०९
			१२	कषाय	५१०
			१३	ज्ञान	४११
			१४	संयम	५१२

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१५	दर्शन मार्गणामें भागाभागरूपणा	५१३	११	वेदमार्गणामें अन्य प्रकारसे अल्पबहुत्व	५५५
१६	लेख्या ,, ,,	५१४	१२	कषाय मार्गणामें अल्पबहुत्व	५५८
१७	भव्य ,, ,,	५१५	१३	ज्ञान ,, ,,	५५९
१८	सम्पक्त्व ,, ,,	५१६	१४	संयम ,, ,,	५६१
१९	संज्ञी ,, ,,	५१७	१५	,, ,, अन्य प्रकारसे अल्पबहुत्वरूपणा	५६२
२०	आहार ,, ,,	५१८	१६	चरित्रलब्धि स्थानोंमें अल्प-बहुत्वरूपणा	५६३
अल्पबहुत्वानुगम			१७	दर्शन मार्गणामें अल्पबहुत्व	५६८
१	गति मार्गणामें अल्पबहुत्वरूपणा	५२०	१८	लेख्या ,, ,,	५६९
२	इन्द्रिय ,, ,,	५२४	१९	भव्य ,, ,,	५७१
३	इन्द्रियमार्गणामें प्रकारान्तरसे अल्पबहुत्वरूपणा	५२६	२०	सम्पक्त्व ,, ,,	”
४	कायमार्गणामें अल्पबहुत्वरूपणा	५३०	२१	,, ,, अन्य प्रकारसे अल्पबहुत्व	५७२
५	,, ,, अन्य प्रकारसे ,,	५३२	२२	संज्ञी मार्गणामें अल्पबहुत्व	५७३
६	,, ,, एक और अन्य प्रकारसे अल्पबहुत्वरूपणा	५३३	२३	आहार ,, ,,	५७४
७	बनस्पतिकायिकोंसे निगोद जीवोंकी पृथक्त्वरूपणा	५३९	२४	महादण्डक और उसके कहनेका प्रयोजन	५७५
८	काय मार्गणामें चतुर्थ प्रकारसे अल्पबहुत्वरूपणा	५४२	२५	मार्गणा निरपेक्ष अल्पबहुत्व-रूपणा	५७६
९	योग मार्गणामें अल्पबहुत्वरूपणा	५५०			
१०	वेद ,, ,,	५५४			

शुद्धिपत्र

(पुस्तक ७)

पृष्ठ	शुद्धि	अशुद्ध	शुद्ध
९	३-४	भावि	चावि
”	१३	क्योंकि बन्धके	क्योंकि बन्ध और बन्धके
४६	३	रूपं	रूपं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४८	२१	नं. ११	नं. १२
७३	२	भवति	भवदि
८२	२	ओसहाणं	ओसहीणं
१२९	१५	उद्वर्तनाघातसे	अपवर्तनाघातसे
१७६	५	भावसिद्धिया	भवसिद्धिया
२१४	७)ण)	(ण)
३२५	९	अण्णगो	अण्णेगो
३२६	८	सत्थाणेण केवडिखेत्ते	सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते
"	२३	स्वस्थानसे कितने	स्वस्थान और उपपादसे कितने
३३४	७	असंखेज्जगणे	असंखेज्जगुणे
३३६	५	केवडिखेत्ते, सव्वलोगे ?	केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे
३४७	६	समुद्घादगदा	समुग्घादगदा
४००	७	पुढविकाइय वाउकाइय सुहुमतेउकाइय सुहुम- वाउकाइय	पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय- वाउकाइय-सुहुमपुढविकाइय-सुहुम- आउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुम- वाउकाइया
"	२०	पृथिवीकायिक, वायुकायिक सूक्ष्म तेजस्कायिक	पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक
४३९	९	अट्टचोइसभागा	अट्ट-णवचोइसभागा
"	२३	आठ बटे चौदह भाग	आठ व नौ बटे चौदह भाग
५०३	१५	विरलित	अपहृत
५४०	२९	आधेयसे, आधारका	आधेयसे आधारका
५७३	७	x x x	मिच्छाइट्टी अणंतगुणा ॥ २०० ॥ सुगमं ।
"	२०	x x x	सिद्धोसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणे हैं ॥२००॥ यह सूत्र सुगम है ।

पृ. ५७३-५७४ पर सूत्र संख्या २००, २०१, २०२, २०३, २०४ और २०५ के स्थानपर क्रमशः २०१, २०२, २०३, २०४, २०५ और २०६ होना चाहिये ।

सुभाषचंद्र



सिरि-भगवंत-पुष्पदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाहरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स विदियखंडो

खुद्दाबंधो

बंधग-संतपरूवणा

जयउ धरसेणणाहो जेण महाकम्मपयडिपाहुडसेलो ।
बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ पुष्पयंतस्स ॥

जे ते बंधगा णाम तेसिमिमो णिहेसो ॥ १ ॥

‘जे ते बंधगा णाम’ इदि वयणं बंधगाणं पुव्वपसिद्धत्तं सूचेदि । पुव्वं कम्मिह पसिद्धे बंधगे सूचेदि ? महाकम्मपयडिपाहुडम्मि । तं जहा— महाकम्मपयडिपाहुडस्स कदि-वेदणादिगोसु’ चदुवीसअणियोगहारेसु छट्ठस्स बंधणेत्ति अणियोगहारस्स बंधो बंधगो

जिन्होंने महाकर्मप्रकृतिप्राभृतरूपी शैलका अपने बुद्धिरूपी शिरसे उद्धार किया और पुष्पदन्ताचार्यको समर्पित किया ऐसे धरसेनाचार्य जयवन्त होवें ।

जो वे बंधक जीव हैं उनका यहां निर्देश किया जाता है ॥ १ ॥

शंका—‘जो वे बंधक हैं’ ऐसा यह वचन बंधकोंकी पूर्वमें प्रसिद्धिको सूचित करता है । अतएव पूर्वतः किस ग्रंथमें प्रसिद्ध बंधकोंकी यह सूचना है ?

समाधान—यह सूचना महाकर्मप्रकृतिप्राभृतमें प्रसिद्ध बंधकोंकी है । वह इस प्रकार है— महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके कृति, वेदना आदि चौबीस अनुयोगद्वारोंमें छठवें

१ प्रतिषु ‘कदि-वेदणादिगो’ इति पाठः ।

बंधणिज्जं बंधविहाणमिदि चत्तारि अधियारा । तेसु बंधगेत्ति विदिओ अधियारो, सो एदेण वयणेण सूचिदो । जे ते महाकम्मपयडिपाहुडम्मि बंधगा णिदिट्ठा तेसिमिमो णिहेसो त्ति बुत्तं होदि ।

बंधया णाम जीवा चैव । कुदो' ? अजीवस्स मिच्छत्तादिपच्चएहि चत्तस्स बंधगत्ताणुववत्तीदो । ते च जीवा जीवट्ठाणे चोद्दसगुणट्ठाणविसिट्ठा चोद्दसमग्गणट्ठाणेसु संतादिअट्ठहि अणियोगद्दारेहि मग्गिदा । संपहि तेसिं जीवाणं संतादिणा अवगदाणं पुणरवि परूवणे कीरमाणे पुणरुत्तदोसो दुक्कदि त्ति ? दुक्कदि पुणरुत्तदोसो जदि तेसिं जीवाणं तेहि चैव गुणट्ठाणेहि विसेसियाणं चोद्दससु मग्गणट्ठाणेसु तेहिं' चैव अट्ठहि अणियोगद्दारेहि मग्गणा कीरदे । णवरि एत्थ चोद्दसगुणट्ठाणविसेसणमवणिय चोद्दससु मग्गणट्ठाणेसु एक्कारसेहि अणियोगद्दारेहि पुव्वुत्तजीवाणं परूवणा कीरदे । तेण पुणरुत्तदोसो ण दुक्कदि त्ति ।

जीवट्ठाणम्मि कदपरूवणादो चैव एत्थ परूविज्जमाणो अत्थो जेण णव्वदि, तेण

अनुयोगद्वार बन्धनके बंध, बंधक, बंधनीय और बंधविधान, ये चार अधिकार हैं । उनमें जो बन्धक नामका दूसरा अधिकार है वही यहां सूत्रोक्त वचन द्वारा सूचित किया गया है । कहनेका तात्पर्य यह कि जो वे महाकर्मप्रकृतिप्राभृतमें बन्धक कहकर निर्दिष्ट किये गये हैं उन्हींका यहां निर्देश है ।

बन्धक जीव ही होते हैं, क्योंकि, मिथ्यात्व आदिक बन्धके कारणोंसे रहित अजीवके बन्धकभावकी उपपत्ति नहीं बनती ।

शंका—उन ही बन्धक जीवोंका जीवस्थान खण्डमें चौदह गुणस्थानोंकी विशेषता सहित चौदह मार्गस्थानोंमें सत्, संख्या आदि आठ अनुयोगोंके द्वारा अन्वेषण किया गया है । अब सत् आदि प्ररूपणाओं द्वारा जाने हुए उन्हीं जीवोंका फिर प्ररूपण किये जानेसे तो पुनरुक्ति दोष उत्पन्न होता है ?

समाधान—पुनरुक्ति दोष प्राप्त होता यदि उन जीवोंका उन्हीं गुणस्थानोंकी विशेषता सहित चौदह मार्गणाओंमें उन्हीं आठ अनुयोगों द्वारा अन्वेषण किया जाता । किन्तु यहां तो चौदह गुणस्थानोंकी विशेषताको छोड़कर चौदह मार्गणास्थानोंमें ग्यारह अनुयोगद्वारोंसे पूर्वोक्त जीवोंकी प्ररूपणा की जा रही है । अतः यहां पुनरुक्ति दोष नहीं प्राप्त होता ।

शंका—जीवस्थान खण्डमें जो प्ररूपणा की गई है उसीसे यहां प्ररूपित किये

एदीए परूवणाए ण किंचि फलं पेच्छामो ? ण, मग्गणट्ठाणेसु चौदसगुणट्ठाणाणं संतादि-
परूवणादो मग्गणट्ठाणविसेसिदजीवपरूवणाए एगत्ताणुवलंभादो । जदि तत्तो एयत्तमत्थि
तो अवगम्मदे, ण च एयत्तं पेच्छामो । एदेण कमेण द्विददव्वादिअणियोगद्वाराणि घेत्तूण
जीवट्ठाणं कयमिदि जाणावणट्ठं वा बंधयाणं परूवणा आगदा । तम्हा बंधयाणं परूवणं
णायपत्तमिदि ।

णामबंधया ठवणबंधया दव्वबंधया भावबंधया चेदि चउव्विहा बंधया । तत्थ
णामबंधया णाम 'बंधया' इदि सद्दो जीवाजीवादिअट्ठभंगेसु पयट्ठंतो । एसो णामणिकखेवो
दव्वट्ठियणयमवलंबिय द्विदो । कुदो ? णामस्स सामणो पउत्तिदंसणादो, दिट्ठाणंतरसमए
णट्ठदव्वेसु संकेयगहणाणुववत्तीदो । कट्ठ-पोत्त-लेप्पकम्मादिसु सव्भावासव्भावभेएण जे
ठविदा बंधया त्ति ते ठवणबंधया णाम । एसो णिकखेवो दव्वट्ठियणयमवलंबिय द्विदो ।
कुदो ? 'सो एसो' त्ति एयत्तज्झवसाएण विणा डुवणाए अणुववत्तीदो । जे ते दव्वबंधया

जानेवाले अर्थका ज्ञान हो जाता है, अतः इस प्ररूपणाका हमें तो किंचित् भी फल
दिखाई नहीं देता ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि मार्गणास्थानोंमें चौदह गुणस्थानोंकी सत्,
संख्या आदिरूप प्ररूपणासे मार्गणाविशेषित जीवप्ररूपणाका एकत्व नहीं पाया जाता ।
यदि उससे एकत्व होता तो वैसा हमें ज्ञान हो जाता । किन्तु हमें उनका एकत्व दिखाई
नहीं देता ?

अथवा, इस क्रमसे स्थित द्रव्यादि अनुयोगद्वारोंको लेकर जीवस्थान खण्डकी
रचना की गई है, यह जतलानेके लिये बन्धकोंकी प्ररूपणा प्रस्तुत है । अतएव बन्धकोंकी
प्ररूपणा न्यायप्राप्त है ।

बन्धक चार प्रकारके हैं— नामबन्धक, स्थापनाबन्धक, द्रव्यबन्धक और भाव-
बन्धक । उनमें नामबन्धक तो 'बन्धक' यह शब्द ही है जो जीव, अजीव आदि आठ
भंगोंमें प्रवृत्त होता है । (इन आठ भंगोंके लिये देखो जीवस्थान भाग १, पृ. १९) ।
यह नामनिक्षेप द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करके स्थित है, क्योंकि, नामकी सामान्यमें
प्रवृत्ति देखी जाती है, चूंकि दिखाई देनेके अनन्तर समयमें ही नष्ट हुए पदार्थोंमें संकेत
ग्रहण करना नहीं बनता ।

काष्ठकर्म, पोतकर्म, लेप्यकर्म आदिमें सद्भाव व असद्भावके भेदसे जिनकी
'ये बन्धक हैं' ऐसी स्थापना की गई हो वे स्थापनाबन्धक हैं । यह निक्षेप भी द्रव्यार्थिक
नयके अवलम्बनसे स्थित है, क्योंकि, 'वह यही है' ऐसे एकत्वका निक्षेप किये बिना
स्थापनानिक्षेप बन नहीं सकता ।

णाम ते दुविहा आगम-णोआगमभेएण । बंधयपाहुडजाणया अणुवजुत्ता आगमदव्वबंधया णाम । कधमागमेण विप्पमुक्कस्स जीवदव्वस्स आगमववएसो ? ण एस दोसो, आगमाभावे^१ वि आगमसंसकारसहियस्स पुव्वं लद्धागमववएसस्स जीवदव्वस्स आगमववएसुवलंभा । एदेणेव भट्टसंसकारजीवदव्वस्स वि गहणं कायव्वं, तत्थ वि आगमववएसुवलंभा । णोआगमादो दव्वबंधया तिविहा, जाणुअसरीर-भविय-तव्वदिरित्तबंधयभेदेण । जाणुगसरीर-भवियदव्वबंधया सुगमा । तव्वदिरित्तदव्वबंधया दुविहा—कम्मबंधया णोकम्मबंधया चेदि । तत्थ जे णोकम्मबंधया ते तिविहा—सच्चित्तणोकम्मदव्वबंधया अचित्तणोकम्मदव्वबंधया मिस्सणोकम्मदव्वबंधया चेदि । तत्थ सच्चित्तणोकम्मदव्वबंधया जहा हत्थीणं बंधया, अस्साणं बंधया इच्चेवमादि । अचित्तणोकम्मदव्वबंधया जहा कट्टाणं बंधया, सुप्पाणं बंधया कडयाणं^२ बंधया, इच्चेवमादि । मिस्सणोकम्मदव्वबंधया जहा साहरणाणं^३ हत्थीणं बंधया इच्चेवमादि ।

जो द्रव्यबन्धक हैं वे आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारके हैं । बन्धक-प्राभृतके जानकार किन्तु (चिक्खित समय पर) उसमें उपयोग न रखनेवाले आगम-द्रव्यबन्धक हैं ।

शंका—जो आगमके उपयोगसे रहित है उस जीव द्रव्यको ' आगम ' कैसे कहा जा सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, आगमके अभाव होने पर भी आगमके संस्कार सहित एवं पूर्वकालमें आगम संज्ञाको प्राप्त जीव द्रव्यको आगम कहना पाया जाता है । इसी प्रकार जिस जीवका आगम-संस्कार भ्रष्ट हो गया है उसका भी ग्रहण कर लेना चाहिये, क्योंकि, उसके भी आगम संज्ञा पाई जाती हैं ।

ज्ञायकशरीर, भव्य और तदव्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यबन्धक तीन प्रकारके हैं । तदव्यतिरिक्त द्रव्यबन्धक दो प्रकारके हैं — कर्मबन्धक और नोकर्मबन्धक । उनमें जो नोकर्मबन्धक हैं वे तीन प्रकारके हैं— सच्चित्तनोकर्मद्रव्यबन्धक, अचित्तनोकर्मद्रव्यबन्धक और मिश्रनोकर्मद्रव्यबन्धक । उनमें सच्चित्तनोकर्मद्रव्यबन्धक, जैसे— हाथी बांधनेवाले, घोड़े बांधनेवाले इत्यादि । अचित्तनोकर्मद्रव्यबन्धक, जैसे— लकड़ी बांधनेवाले, सूपा बांधनेवाले, कट (चटाई) बांधनेवाले, इत्यादि । मिश्रनोकर्मद्रव्यबन्धक, जैसे— आभरणों सहित हाथियोंके बांधनेवाले, इत्यादि ।

१ प्रतिषु ' आगमभावे ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' किडयाणं ' मप्रतौ ' किदयाणं ' इति पाठः ।

३ अ-कप्रत्योः ' साहारणाणं ' इति पाठः ।

जे कम्मबंधया ते दुविहा- इरियावहबंधया सांपराइयबंधया चेदि । तत्थ जे इरियावहबंधया ते दुविहा- छदुमत्था केवलिणो चेदि । जे छदुमत्था ते दुविहा- उवसंत-कसाया खीणकसाया चेदि । जे सांपराइयबंधया ते दुविहा- सुहुमसांपराइया बादरसांपराइया चेदि । जे सुहुमसांपराइया बंधया ते दुविहा- असंपराइयादिया बादरसांपराइयादिया चेदि । जे बादरसांपराइया ते तिविहा- असंपराइयादिया सुहुमसांपराइयादिया अणादि-बादरसांपराइया चेदि । तत्थ जे अणादिबादरसांपराइया ते तिविहा- उवसामया खवया अक्खवयाणुवसामया चेदि । तत्थ जे उवसामया ते दुविहा- अपुव्वकरणउवसामया अणियट्टिकरणउवसामया चेदि । जे खवया ते दुविहा- अपुव्वकरणखवया अणियट्टिकरणखवया चेदि । तत्थ जे अक्खवयअणुवसामगा ते दुविहा- अणादिअपज्जवसिदबंधा च अणादिसपज्जवसिदबंधा चेदि । तत्थ जे भावबंधया ते दुविहा- आगम-णोआगम-भावबंधयभेदेण । तत्थ जे बंधपाहुडजाणया उवजुत्ता आगमभावबंधया णाम । णोआगमभावबंधया जहा कोह-माण-मावा-लोह-पेम्माई अप्पणाई करेता ।

एदेसु बंधगेसु कम्मबंधएहि एत्थ अधियारो । एदेसिं बंधयाणं णिदेसे कीरमाणे चोइसमग्गणट्टाणाणि आधारभूदाणि हेति । काणि ताणि मग्गणट्टाणाणि ति वुत्ते

जो कर्मके बन्धक हैं वे दो प्रकारके हैं— ईर्यापथबन्धक और साम्परायिक-बन्धक । उनमें जो ईर्यापथबन्धक हैं वे दो प्रकारके हैं— छन्नस्थ और केवली । जो छन्नस्थ हैं वे दो प्रकारके हैं— उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय । जो साम्परायिकबन्धक हैं वे दो प्रकारके हैं— सूक्ष्मसाम्परायिक और बादरसाम्परायिक ।

जो सूक्ष्मसाम्परायिक बन्धक हैं वे दो प्रकारके हैं— असाम्परायादिक और बादरसाम्परायादिक । जो बादरसाम्परायिक हैं वे तीन प्रकारके हैं— असाम्परायादिक, सूक्ष्मसाम्परायादिक और अनादिबादरसाम्परायिक । उनमें जो अनादिबादरसाम्परायिक हैं वे तीन प्रकारके हैं— उपशामक, क्षपक और अक्षपुकानुपशामक । उनमें जो उपशामक हैं वे दो प्रकारके हैं— अपूर्वकरण उपशामक और अनिवृत्तिकरण उपशामक । जो क्षपक हैं वे दो प्रकारके हैं— अपूर्वकरण क्षपक और अनिवृत्तिकरण क्षपक । उनमें जो अक्षपुकानुपशामक हैं वे दो प्रकारके हैं— अनादि-अपर्यवसित बन्धक और अनादि-सपर्यवसित बन्धक ।

उनमें जो भावबन्धक हैं वे आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारके हैं । उनमें बन्धप्राभृतके जानकार और उसमें उपयोग रखनेवाले आगमभावबन्धक हैं । नोआगम-भावबन्धक, जैसे क्रोध, मान, माया, लोभ व प्रेमको आत्मसात् करनेवाले ।

इन सब बन्धकोंमें कर्मबन्धकोंका ही यहाँ अधिकार है । इन्हीं बन्धकोंका निर्देश करनेपर चौदह मार्गणास्थान आधारभूत हैं । वे मार्गणास्थान कौनसे हैं ? ऐसा पूछे

उत्तरसुत्तं भणदि—

गइ इंदिए काए जोगे वेदे कसाए णाणे संजमे दंसणे लेस्साए
भविए सम्मत्त सण्णि आहारए चेदि ॥ २ ॥

गम्यत इति गतिः । एदीए गिरुत्तीए गाम-णयर-खेड-कन्वडादीणं पि गदित्तं पसज्जदे ? ण, रूढिवलेण गदिणामकम्मणिप्पाइयपज्जायम्मि गदिसहपवुत्तीदे । गदि-कम्मोदयाभावा सिद्धिगदी अगदी । अथवा, भवाद् भवसंक्रांतिर्गतिः, असंक्रांतिः सिद्धिगतिः । स्वविषयनिरतानीन्द्रियाणि, स्वार्थनिरतानीन्द्रियाणीत्यर्थः । अथवा, इन्द्र आत्मा, इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियम् । आत्मप्रवृत्त्युपचितपुद्गलपिंडः कायः, पृथ्वीकायादि-नामकर्मजनितपरिणामो वा कार्य-कारणोपचारेण कायः, चीयन्ते अस्मिन् जीवा इति व्युत्पत्तेर्वा कायः । आत्मप्रवृत्तेस्संकोचविकोचो योगः, मनोवाक्कायावष्टंभवलेन जीव-

जाने पर आचार्य अगला सूत्र कहते हैं—

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहारक, ये चौदह मार्गणास्थान हैं ॥ २ ॥

जहांको गमन किया जाय वह गति है ।

शंका—गतिकी इस प्रकार निरुक्ति करनेसे तो ग्राम, नगर, खेड़ा, कर्वट आदि स्थानोंको भी गति माननेका प्रसंग आता है ?

समाधान—नहीं आता, क्योंकि, रूढ़िके बलसे गतिनामकर्म द्वारा जो पर्याय निष्पन्न की गई है उसीमें गति शब्दका प्रयोग किया जाता है । गतिनामकर्मके उदयके अभावके कारण सिद्धिगति अगति कहलाती है । अथवा, एक भवसे दूसरे भवमें संक्रान्तिका नाम गति है, और सिद्धिगति असंक्रान्तिरूप है ।

जो अपने अपने विषयमें रत हों वे इन्द्रियां हैं, अर्थात् अपने अपने विषयरूप पदार्थोंमें रमण करनेवाली इन्द्रियां कहलाती हैं । अथवा इन्द्र आत्माको कहते हैं, और इन्द्रके लिंगका नाम इन्द्रिय है । आत्माकी प्रवृत्ति द्वारा उपचित किये गये पुद्गलपिंडको काय कहते हैं । अथवा, पृथ्वीकाय आदि नामकर्मोंके द्वारा उत्पन्न परिणामको कार्यमें कारणके उपचारसे काय कहा है । अथवा, ' जिसमें जीवोंका संचय किया जाय ' ऐसी व्युत्पत्तिसे काय बना है । आत्माकी प्रवृत्तिसे उत्पन्न संकोच-विकोचका नाम योग है, अर्थात् मन, वचन और कायके अवलम्बनसे जीवप्रदेशोंमें परिस्पन्दन होनेको योग कहते

१ प्रतिषु ' आगदि ' इति पाठः ।

२ आप्रतौ ' सिद्धगतिः ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' आत्मप्रवृत्तिसंकोच- ' इति पाठः ।

प्रदेशपरिस्पन्दो योग इति यावत् । आत्मप्रवृत्तेर्मैथुनसंमोहोत्पादो वेदः । सुख-दुःखबहु-सस्यं कर्मक्षेत्रं कृषन्तीति कषायाः । भूतार्थप्रकाशकं ज्ञानं तत्त्वार्थोपलंभकं वा । व्रत-समिति-कषाय-दंडेन्द्रियाणां रक्षण-पालन-निग्रह-त्याग-जयाः संयमः, सम्यक् यमो वा संयमः । प्रकाशवृत्तिर्दर्शनम् । आत्मप्रवृत्तिसंश्लेषणकरी लेश्या, अथवा लिम्पतीति लेश्या । निर्वाणपुरस्कृतो भव्यः, तद्विपरीतोऽभव्यः । तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्, अथवा तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वम्, अथवा प्रशम-संवेगानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं सम्यक्त्वम् । शिक्षाक्रियोपदेशालापग्राही संज्ञी, तद्विपरीतः असंज्ञी । शरीरप्रायोग्य-पुद्गलपिंडग्रहणमाहारः, तद्विपरीतमनाहारः । एदेसु जीवा मग्गिज्जंति चि एदेसि मग्गणाओ इदि सण्णा ।

गदियाणुवादेण गिरयगदीए णेरइया बंधा ॥ ३ ॥

हैं । आत्माकी प्रवृत्तिसे मैथुनरूप सम्मोहकी उत्पत्तिका नाम वेद है । सुख-दुखरूपी खूब फसल उत्पन्न करनेवाले कर्मरूपी क्षेत्रका जो कर्षण करते हैं वे कषाय हैं । जो यथार्थ वस्तुका प्रकाशक है, अथवा जो तत्त्वार्थको प्राप्त करानेवाला है, वह ज्ञान है । व्रतरक्षण, समितिपालन, कषायनिग्रह, दंडत्याग और इन्द्रियजयका नाम संयम है, अथवा सम्यक् रूपसे आत्मनियंत्रणको संयम कहते हैं । प्रकाशरूपवृत्तिका नाम दर्शन है । आत्मा और प्रवृत्ति (कर्म) का संश्लेषण अर्थात् संयोग करनेवाली लेश्या कहलाती है । अथवा, जो (कर्मोंसे आत्माका) लेप करती है वह लेश्या है । जिस जीवने निर्वाणको पुरस्कृत किया है अर्थात् अपने सन्मुख रखा है वह भव्य है, और उससे विपरीत अर्थात् निर्वाणको पुरस्कृत नहीं करनेवाला जीव अभव्य है । तत्त्वार्थके श्रद्धानका नाम सम्यग्दर्शन है । अथवा, तत्त्वोंमें रुचि होना ही सम्यक्त्व है । अथवा प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्यकी अभिव्यक्ति ही जिसका लक्षण है वही सम्यक्त्व है । शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलापको ग्रहण कर सकनेवाला जीव संज्ञी है; उससे विपरीत अर्थात् शिक्षा, क्रियादिको ग्रहण नहीं कर सकनेवाला जीव असंज्ञी है । शरीर बनानेके योग्य पुद्गलपिंडको ग्रहण करना ही आहार है; उससे विपरीत अर्थात् शरीर बनाने योग्य पुद्गलपिंडको ग्रहण नहीं करना अनाहार है ।

इन्हीं पूर्वोक्त चौदह स्थानोंमें जीवोंकी मार्गणा अर्थात् खोजकी जाती है, इसी-लिये इनका नाम मार्गणा है ।

गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीव बन्धक हैं ॥ ३ ॥

बंधया त्ति वुत्तं होदि । कुदो ? दोण्हं पि पदाणमेक्ककारये णिप्पत्तीदो ।

तिरिक्खा बंधा ॥ ४ ॥

कुदो ? मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगाणं बंधकारणाणं तत्थुवलंभादो । एत्थ तिरिक्खगदीए इदि किण्ण वुत्तं ? ण एस दोसो, अत्थावत्तीए तदुवलंभादो ।

देवा बंधा ॥ ५ ॥

सुगममेदं ।

मणुसा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ ६ ॥

मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगाणं बंधकारणाणं सव्वेसिमजोगिग्घि अभावा अजोगिणो अबंधया । सेसा सव्वे मणुस्सा बंधया, मिच्छत्तादिबंधकारणसंजुत्तत्तादो ।

सिद्धा अबंधा ॥ ७ ॥

यहां सूत्रोक्त 'बन्ध' शब्दसे बन्धकका ही अभिप्राय है, क्योंकि, बन्ध और बन्धक इन दोनों पदोंकी एक ही कारकमें निष्पत्ति है । अर्थात् ये दोनों ही शब्द 'बन्ध' धातुसे कर्त्ता कारकके अर्थमें क्रमशः 'अच्' व 'ण्वुल्' प्रत्यय लगकर बने हैं ।

तिर्यंच बन्धक हैं ॥ ४ ॥

क्योंकि, उनमें बन्धके करणभूत मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग पाये जाते हैं ।

शंका—यहां सूत्रमें 'तिरिक्खगदीए' अर्थात् 'तिर्यंच गतिमें' ऐसा पद क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, तिर्यंच गतिकका अर्थ वहां अर्थापत्ति न्यायसे आ ही जाता है ।

देव बन्धक हैं ॥ ५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्य बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ ६ ॥

कर्मबन्धके कारणभूत मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग, इन सबका अयोगि-केवली गुणस्थानमें अभाव होनेसे अयोगी जिन अबन्धक हैं । शेष सब मनुष्य बन्धक हैं, क्योंकि, मिथ्यात्वादि बन्धके कारणोंसे संयुक्त पाये जाते हैं ।

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ ७ ॥

कुदो ? बंधकारणवदिरिक्तमोक्खकारणेहि संजुत्तादो । काणि पुण बंधकारणाणि,
बंध-बंधकारणावगमेण विणा मोक्खकारणावगमाभावा । वुत्तं च—

जे बंधयरा भावा मोक्खयरा भावि जे दु अज्जप्पे ।

जे भावि बंधमोक्खे अकारया ते वि विण्णेया ॥ १ ॥

तदो बंधकारणाणि वत्तच्चाणि ? मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगा बंधकारणाणि ।
सम्मदंसण-संजमाकसायाजोगा मोक्खकारणाणि । वुत्तं च—

मिच्छत्ताविरदी वि य कसायजोगा य आसवा होंति ।

दंसण-विरमण-णिग्गह-णिरोहया संवरा^१ होंति ॥ २ ॥

जदि चत्तारि चैव मिच्छत्तादीणि बंधकारणाणि होंति तो—

ओदइया बंधयरा उवसम-खय-मिस्सया य मोक्खयरा ।

भावो दु पारिणामिओ करणोभयवज्जियो होदि ॥ ३ ॥

क्योंकि, सिद्ध बन्धकारणोंसे व्यतिरिक्त मोक्षके कारणोंसे संयुक्त पाये जाते हैं ।

शंका—वे बन्धके कारण कौनसे हैं, क्योंकि बन्धके कारण जाने बिना मोक्षके
कारणोंका ज्ञान नहीं हो सकता । कहा भी है—

जो बन्धके उत्पन्न करनेवाले भाव हैं और जो मोक्षको उत्पन्न करनेवाले आध्या-
त्मिक भाव हैं, तथा जो बन्ध और मोक्ष दोनोंको नहीं उत्पन्न करनेवाले भाव हैं, वे सब
भाव जानने योग्य हैं ॥ १ ॥

अतएव बन्धके कारण बतलाना चाहिये ?

समाधान—मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग, ये चार बन्धके कारण हैं ।
और सम्यग्दर्शन, संयम, अकषाय और अयोग, ये चार मोक्षके कारण हैं । कहा भी है—

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग, ये कर्मोंके आश्रव अर्थात् आगमनद्वार
हैं । तथा सम्यग्दर्शन, विषयविरक्ति, कषायनिग्रह और मन-वचन-कायका निरोध,
ये संवर अर्थात् कर्मोंके निरोधक हैं ॥ २ ॥

शंका—यदि ये ही मिथ्यात्वादि चार बन्धके कारण हैं तो—

औद्यिक भाव बंध करनेवाले हैं, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव
मोक्षके कारण हैं, तथा पारिणामिक भाव बन्ध और मोक्ष दोनोंके कारणसे रहित
हैं ॥ ३ ॥

१ सामणपच्चया खलु चउरो भणंति बंधकत्तारो । मिच्छतं अविरमणं कसाय-जोगा य बोद्धव्वा ॥
समयसार ११६. २ प्रतिष्ठु ' संवरो ' इति पाठः ।

एदीए सुत्तगाहाए सह विरोहो होदि त्ति बुत्ते ण होदि, ओदइया बंधयरा त्ति बुत्ते ण सव्वेसिमोदइयाणं भावाणं गहणं, गदि-जादिआदीणं पि ओदइयाभावाणं बंध-कारणत्तप्पसंगा । देवगदीउदएण-वि काओ वि पयडीयो वज्झमाणियाओ दीसंति, तासिं देवगदिउदओ किण्ण कारणं होदि त्ति बुत्ते ण होदि, देवगदिउदयाभावेण तासिं णियमेण बंधाभावाणुवलंभादो । ‘ जस्स अण्णय-वदिरेगेहिं णियमेण जस्सण्णय-वदिरेगा उवलंभंति तं तस्स कज्जमियरं च कारणं ’ इदि णायादो मिच्छत्तादीणि चेव बंधकारणाणि ।

तत्थ मिच्छत्त-णत्तुंसयवेद-णिरयाउ-णिरयगइ-एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिय-जादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवडुसरीरसंघडण-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणाणं सोलसण्हं पयडीणं बंधस्स मिच्छत्तुदओ कारणं, तदुदयण्णय-वदिरेगेहिं सोलसपयडीबंधस्स अण्णय-वदिरेगाणमुवलंभादो । णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धी-

इस सूत्रगाथाके साथ विरोध उत्पन्न होता है ।

समाधान—विरोध नहीं उत्पन्न होता है, क्योंकि ‘औदयिक भाव बन्धके कारण हैं’ ऐसा कहनेपर सभी औदयिक भावोंका ग्रहण नहीं समझना चाहिये, क्योंकि वैसा माननेपर गति, जाति आदि नामकर्मसम्बन्धी औदयिक भावोंके भी बन्धके कारण होनेका प्रसंग आ जायगा ।

शंका—देवगतिके उदयके साथ भी तो कितनी ही प्रकृतियोंका बन्ध होना देखा जाता है, फिर उनका कारण देवगतिका उदय क्यों नहीं होता ?

समाधान—उनका कारण देवगतिका उदय नहीं होता, क्योंकि देवगतिके उदयके अभावमें नियमसे उनके बन्धका अभाव नहीं पाया जाता । “ जिसके अन्वय और व्यतिरेकके साथ नियमसे जिसके अन्वय और व्यतिरेक पाये जावें वह उसका कार्य और दूसरा कारण होता है ” (अर्थात् जब एकके सद्भावमें दूसरेका सद्भाव और उसके अभावमें दूसरेका भी अभाव पाया जावे तभी उनमें कार्य-कारणभाव संभव हो सकता है, अन्यथा नहीं ।) इस न्यायसे मिथ्यात्व आदिक ही बन्धके कारण हैं ।

इन कारणोंमें मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जाति, हुंडसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिका शरीरसंहनन, नरकगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, इन सोलह प्रकृतियोंके बन्धका मिथ्यात्वोदय कारण है, क्योंकि मिथ्यात्वोदयके अन्वय और व्यतिरेकके साथ इन-सोलह प्रकृतियोंके बन्धका अन्वय और व्यतिरेक पाया जाता है ।

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और

अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभा-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगदी-णग्गोह-सादि-
खु उज्ज-वामणसरीरसंठाण-वज्जणारायण-णारायण-अद्दणारायण-खीलियसरीरसंघडण-तिरि-
क्खगदीपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगदि-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं
बंधस्स अणंताणुबंधिचउक्कस्स उदयो कारणं । कुदो ? तदुदयअण्णय-वदिरेगेहिमेदासिं
पयडीणं बंधस्स अण्णय-वदिरेगाणं उवलंभादो । अपच्चक्खाणावरणीयकोध-माण-माया-
लोभ-मणुस्साउ-मणुस्सगदी-ओरालियसरीर-अंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-मणुस्सगदीपाओ-
ग्गाणुपुव्वीणं बंधस्स अपच्चक्खाणावरणचदुक्कस्स उदओ कारणं, तेण विणा एदासिं
बंधाणुवलंभा । पच्चक्खाणावरणीयकोध-माण-माया-लोभाणं बंधस्स एदासिं चैव उदओ
कारणं, सोदएण विणा एदासिं बंधाणुवलंभा । असादावेदणीय-अरदि-सोग-अधिर-असुह-
अजसकित्तीणं बंधस्स पमादो कारणं, पमादेण विणा एदासिं बंधाणुवलंभा । को पमादो
णाम ? चदुसंजलण-णवणोकसायाणं तिव्वोदओ । चदुहं बंधकारणाणं मज्झे कत्थ

लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, न्यग्रोध, स्वाति, कुञ्जक और वामन शरीर-
संस्थान, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच और कीलित शरीरसंहनन, तिर्यंचगति-
प्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, धनादेय और नीच
गोत्र, इन पच्चीस प्रकृतियोंके बन्धका अनन्तानुबन्धीचतुष्कका उदय कारण है, क्योंकि
उसीके उदयके अन्वय और व्यतिरेकके साथ इन प्रकृतियोंका भी अन्वय और अतिरेक
पाया जाता है ।

अप्रत्याख्यानानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ, मनुष्यायु, मनुष्यगति,
औदारिक शरीर, औदारिक शरीरांगोपांग, वज्रकृपमसंहनन और मनुष्यगतिप्रायो-
ग्यानुपूर्वी, इन दश प्रकृतियोंके बन्धका अप्रत्याख्यानानावरणचतुष्कका उदय कारण है,
क्योंकि उसके बिना इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं पाया जाता ।

प्रत्याख्यानानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चार प्रकृतियोंके बन्धका
कारण इन्हींका उदय है, क्योंकि अपने उदयके बिना इनका बन्ध नहीं पाया जाता ।

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति, इन छह प्रकृ-
तियोंके बन्धका कारण प्रमाद है, क्योंकि प्रमादके बिना इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं
पाया जाता ।

शंका—प्रमाद किसे कहते हैं ?

समाधान—चार संज्वलन कषाय और नव नोकषाय, इन तेरहके तीव्र उदयका
नाम प्रमाद है ।

शंका—पूर्वोक्त चार बन्धके कारणोंमें प्रमादका कहां अन्तर्भाव होता है ?

१ कप्रती 'बंधाणुवलंभादो' इति पाठः ।

पमादस्संतम्भावो ? कसायसु, कसायवदिरित्तपमादाणुवलंभादो । देवाउवबंधस्स वि कसाओ चैव कारणं, पमादेहेदुकसायस्स उदयाभावेण अप्पमत्तो होदूण मंदकसाउदएण परिणदस्स देवाउअबंधविणासुवलंभा । णिद्दा-पयलाणं पि बंधस्स कसाउदओ चैव कारणं, अपुव्वकरणद्वाए पढमसत्तमभाए' संजलणाणं तप्पाओग्गतिव्वोदए एदासिं बंधुवलंभादो । देवगइ-यंचिंदियजादि-वेउव्विय-आहार-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससरीरसंठाण-वेउव्विय-आहारसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुअ-उवघाद-पर-घाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण-तित्थयरारणं पि बंधस्स कसाउदओ चैव कारणं, अपुव्वकरणद्वाए छसत्तभाग-चरिमसमए मंदयरकसाउदएण सह बंधुवलंभादो । हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं बंधस्स अधापवत्तापुव्वकरणणिवंधणकसाउदओ कारणं, तत्थेव एदासिं बंधुवलंभादो । चटु-संजलण-पुरिसवेदाणं बंधस्स बादरकसाओ कारणं, सुहुमकसाए एदासिं वंधाणुवलंभा ।

समाधान— कषायोंमें प्रमादका अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, कषायोंसे पृथक् प्रमाद पाया नहीं जाता ।

देवायुके बन्धका भी कषाय ही कारण है, क्योंकि, प्रमादके हेतुभूत कषायके उदयके अभावसे अप्रमत्त होकर मन्द कषायके उदयरूपसे परिणत हुए जीवके देवायुके बन्धका विनाश पाया जाता है । निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंके भी बन्धका कारण कषायोदय ही है, क्योंकि, अपूर्वकरणकालके प्रथम सप्तम भागमें संज्वलन कषायोंके उस कालके योग्य तीव्रोदय होने पर इन प्रकृतियोंका बन्ध पाया जाता है । देव-गति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कर्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, आहारकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्या-नुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थकर, इन तीस प्रकृतियोंके भी बन्धका कषायोदय ही कारण है, क्योंकि, अपूर्वकरणकालके सात भागोंमेंसे प्रथम छह भागोंके अन्तिम समयमें मन्दतर कषायोदयके साथ इनका बन्ध पाया जाता है । हास्य, रति, भय, और जुगुप्सा, इन चारके बन्धका अधःप्रवृत्त और अपूर्वकरण-सम्बन्धी कषायोदय कारण है, क्योंकि उन्हीं दोनों परिणामोंके कालसम्बन्धी कषायोदयमें ही इन प्रकृतियोंका बन्ध पाया जाता है ।

चार संज्वलन कषाय और पुरुषवेद इन पांच प्रकृतियोंके बन्धका बादर कषाय कारण है, क्योंकि, सूक्ष्मकषाय गुणस्थानमें इनका बन्ध नहीं पाया जाता । पांच ज्ञाना-

पंचणाणावरणीय-चदुदंसणावरणीय-जसगित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं सामण्णो कसा-
उदओ कारणं, कसायाभावे एदासिं बंधाणुवलंभा । सादावेदणीयबंधस्स जोगो चैव
कारणं, मिच्छत्तासंजम-कसायाणमभावे वि जोगेणेक्केण चैवेदस्स बंधुवलंभादो, तदभावे
तदणुवलंभादो । ण च एदाहितो वदिरित्ताओ अण्णाओ बंधपयडीओ अत्थि जेण
तासिमण्णं पच्चयंतरं होज्ज ।

असंजमो वि पच्चओ पदिदो, सो काणं पयडीणं बंधस्स कारणमिदि ? ण,
संजमघादिकम्मोदयस्सेव असंजमवददेसादो । असंजमो जदि कसाएसु चैव पदिदि' तो
पुध तदुवदेसो किमट्ठं कीरदे ? ण एस दोसो, व्यवहारणयं पडुच्च तदुवदेसादो । एसा
पज्जवट्ठियणयमस्सिऊण पच्चयपरूवणा कदा । दच्चट्ठियणए पुण अवलंबिज्जमाणे बंध-
कारणमेगं चैव, चदुपच्चयसमूहादो बंधकज्जुप्पत्तीए । तम्हा एदे बंधपच्चया । एदेसिं

वरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय, इन सोलह
प्रकृतियोंका सामान्य कषायोदय कारण है, क्योंकि, कषायोंके अभावमें इन प्रकृतियोंका
बन्ध नहीं पाया जाता । सातावेदनीयके बन्धका योग ही कारण है, क्योंकि, मिथ्यात्व,
असंयम, और कषाय, इनका अभाव होनेपर भी एकमात्र योगके साथ ही इस प्रकृतिका
बन्ध पाया जाता है, और योगके अभावमें इस प्रकृतिका बन्ध नहीं पाया जाता ।

इनके अतिरिक्त और अन्य कोई बन्ध योग्य प्रकृतियां नहीं है जिससे कि उनका
कोई अन्य कारण हो ।

शंका— असंयम भी बन्धका कारण कहा गया है, सो वह किन प्रकृतियोंके
बन्धका कारण होता है ?

समाधान— यह शंका ठीक नहीं, क्योंकि, संयमके घातक कषायरूप चारित्र-
मोहनीय कर्मके उदयका ही नाम असंयम है ।

शंका— यदि असंयम कषायोंमें ही अन्तर्भूत होता है, तो फिर उसका पृथक् उप-
देश किसालिये किया जाता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि व्यवहारनयकी अपेक्षासे उसका पृथक्
उपदेश किया गया है । बन्धकारणोंकी यह प्ररूपणा पर्यायार्थिकनयका आश्रय करके की
गयी है । पर द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करनेपर तो बन्धका कारण केवल एक ही है,
क्योंकि, कारणचतुष्कके समूहसे ही बंधरूप कार्य उत्पन्न होता है ।

इस कारण ये ही बंधके कारण हैं । इनके प्रतिपक्षी सम्यक्त्वोत्पत्ति, देशसंयम,

पडिवकखा सम्मत्तुप्पत्ती-देससंजम-संजम-अणंताणुबंधिविसंजोयण-दंसणमोहकखवण-चरित्तमोहुवसामणुवसंतकसाय-चरित्तमोहकखवण-खीणकसाय-सजोगिकेवलीपरिणामा मो-कखपचचया, एदेहितो समयं पडि असंखेज्जगुणसेडीए कम्मणिज्जरुवलंभादो । जे पुण पारिणामियभावा जीव-भव्वाभव्वादओ, ण ते बंध-मोकखाणं कारणं, तेहितो तदणुवलंभा ।

एदस्स कम्मस्स खएण सिद्धाणमेसो गुणो समुप्पणो त्ति जाणावणट्टमेदाओ गाहाओ एत्थ परूविज्जंति—

दव्व-गुण-पज्जए जे जस्सुदएण य ण जाणदे जीवो ।

तस्स कखएण सो च्चिय जाणदि सव्वं तयं जुगवं ॥ ४ ॥

दव्व-गुण-पज्जए जे जस्सुदएण य ण पस्सदे जीवो ।

तस्स कखएण सो च्चिय पस्सदि सव्वं तयं जुगवं ॥ ५ ॥

जस्सोदएण जीवो सुहं व दुक्खं व दुविहमणुहवइ ।

तस्सोदयकखएण दु जायदि अप्पत्थणंतसुहो ॥ ६ ॥

मिच्छत्त-कसायासंजमेहि जस्सोदएण परिणमइ ।

जीवो तस्सेव खया त्तिविवरीदे गुणे लहइ ॥ ७ ॥

संयम, अनन्तानुबन्धिविसंयोजन, दर्शनमोहक्षपण, चारित्रमोहोपशमन, उपशान्तकषाय, चारित्रमोहक्षपण, क्षीणकषाय और सयोगिकेवली, ये परिणाम मोक्षके कारणभूत हैं, क्योंकि, इन्हींके द्वारा प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणीरूपसे कर्मोंकी निर्जरा पायी जाती है। किन्तु जीव, भव्य, अभव्य आदि जो पारिणामिक भाव हैं, वे बन्ध और मोक्ष दोनोंमेंसे किसीके भी कारण नहीं हैं, क्योंकि उनके द्वारा बन्ध या मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती।

‘ इस कर्मके क्षयसे सिद्धोंके यह गुण उत्पन्न हुआ है ’ इस बात का ज्ञान करानेके लिये ये गाथायें यहां प्ररूपित की जाती हैं —

जिस ज्ञानावरणीय कर्मके उदयसे जीव जिन द्रव्य, गुण और पर्याय, इन तीनोंको नहीं जानता, उसी ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयसे वही जीव उन सभी तीनोंको एक साथ जानने लगता है ॥ ४ ॥

जिस दर्शनावरणीय कर्मके उदयसे जीव जिन द्रव्य, गुण और पर्याय, इन तीनोंको नहीं देखता है, उसी दर्शनावरणीय कर्मके क्षयसे वही जीव उन सभी तीनोंको एक साथ देखने लगता है ॥ ५ ॥

जिस वेदनीय कर्मके उदयसे जीव सुख और दुःख इस दो प्रकारकी अवस्थाका अनुभव करता है, उसी कर्मके क्षयसे आत्मस्थ अनंतसुख उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

जिस मोहनीय कर्मके उदयसे जीव मिथ्यात्व, कषाय और असंयम रूपसे परिणमन करता है, उसी मोहनीयके क्षयसे इनके विपरीत गुणोंको प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

जस्सोदएण जीवो अणुसमयं मरदि जीवदि वराओ ।
तस्सोदयक्खएण तु भन्नमरणविज्जियो होइ ॥ ८ ॥

अंगोवंग-सरीरिदि-

जस्सोदएण सिद्धो तण्णान्तराए असरीरो ॥ ९ ॥

उच्चुच्च उच्च तह उच्चणीच्च णीच्चुच्च णीच्च णीच्चं च ।

जस्सोदएण भावो णीच्चुच्चविवज्जिदो तस्स ॥ १० ॥

विरियोवभोग-भोगे दाणे लाभे जदुदयदो विग्घं ।

पंचविहलद्धिजुत्तो तक्कम्मखया हवे सिद्धो ॥ ११ ॥

जयमंगलभूदानं विमलाणं णाण-दंसणमयाणं ।

तेलोककसेहराणं णमो सिया सव्वसिद्धाणं ॥ १२ ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिया बंधा वीइंदिया बंधा तीइंदिया बंधा चतुरिंदिया बंधा ॥ ८ ॥

कुदो ? एदेसु मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगाणमण्णयं मोत्तूण वदिरेगाभावा ।

जिस आयु कर्मके उदयसे बेचारा जीव प्रतिसमय मरता और जीता है, उसी कर्मके उदयक्षयसे वह जीव जन्म और मरणसे रहित हो जाता है ॥ ८ ॥

जिस नाम कर्मके उदयसे अंगोपांग, शरीर, इन्द्रिय, मन और उच्छ्वासके योग्य निष्पत्ति होती है, उसी नाम कर्मके क्षयसे सिद्ध अशरीरी होते हैं ॥ ९ ॥

जिस गोत्र कर्मके उदयसे जीव उच्चोच्च, उच्च, उच्चनीच, नीचोच्च, नीच या नीचनीच भावको प्राप्त होता है, उसी गोत्र कर्मके क्षयसे वह जीव नीच और ऊंच भावोंसे मुक्त होता है ॥ १० ॥

जिस अन्तराय कर्मके उदयसे जीवके वीर्य, उपभोग, भोग, दान और लाभमें विघ्न उत्पन्न होता है, उसी कर्मके क्षयसे सिद्ध पंचविध लब्धिसे संयुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

जो जगमें मंगलभूत हैं, विमल हैं, ज्ञान-दर्शनमय हैं, और त्रैलोक्यके शेखर रूप हैं ऐसे समस्त सिद्धोंको मेरा नमस्कार हो ॥ १२ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय जीव बन्धक हैं, द्वीन्द्रिय बन्धक हैं, त्रीन्द्रिय बन्धक हैं और चतुरिन्द्रिय बन्धक हैं ॥ ८ ॥

क्योंकि, उक्त जीवोंमें (कर्मबन्धके कारणभूत) मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग, इनके अन्वयको छोड़कर व्यतिरेकका अभाव है, अर्थात् उन जीवोंमें बन्धके कारणोंका सद्भाव ही पाया जाता है, असद्भाव नहीं ।

पंचिंदिया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ ९ ॥

कुदो ? मिच्छाइट्टिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलित्ति बंधा चेव, तत्थ बंधकारण-मिच्छत्तादीणमुवलंभादो । अजोगिकेवली अबंधा^१ चेव, मिच्छत्तादिबंधकारणाणं सव्वेसि-मभावा । तेण पंचिंदिया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि त्ति भणिदं । सजोगि-अजोगिकेवलीणं केवलणाण-दंसणेहि दिट्ठासेसपमेयाणं करणवावारवरिहियाणं कधं पंचि-दियत्तं ? ण एस दोसो, पंचिंदियणामकम्मोदयं^२ पडुच्च तेसिं तव्ववएसादो ।

अणिंदिया अबंधा ॥ १० ॥

कुदो ? सिट्ठेसु णिरंजणेसु सयलबंधाभावादो, णिरामएसु बंधकारणाभावा ।

कायाणुवादेण पुढवीकाइया बंधा आउकाइया बंधा तेउकाइया बंधा वाउकाइया बंधा वणप्फदिकाइया बंधा ॥ ११ ॥

पंचेन्द्रिय जीव बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ ९ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली तकके जीव तो बन्धक ही हैं, क्योंकि, उनमें बन्धके कारणभूत मिथ्यात्वादि पाये जाते हैं । किन्तु अयोगिकेवली अबन्धक ही हैं, क्योंकि, उनमें मिथ्यात्व आदि सभी बन्धके कारणोंका अभाव है । इसीलिये 'पंचेन्द्रिय जीव बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं' ऐसा कहा गया है ।

शंका—जिन्होंने केवलज्ञान और केवलदर्शनसे समस्त प्रमेय अर्थात् ज्ञेय पदा-र्थोंको देख लिया है और जो करण अर्थात् इन्द्रियोंके व्यापारसे रहित हैं, ऐसे सयोगी और अयोगी केवलियोंको पंचेन्द्रिय कैसे कह सकते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, उनमें पंचेन्द्रिय नामकर्मका उदय विद्यमान है, अतः उसकी अपेक्षासे उन्हें पंचेन्द्रिय कहा गया है ।

अनिन्द्रिय जीव अबन्धक हैं ॥ १० ॥

क्योंकि, निरंजन सिद्धोंमें समस्त बन्धका अभाव है, चूंकि निरामय अर्थात् निर्विकार जीवोंमें बन्धका कोई कारण नहीं रहता ।

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक जीव बन्धक हैं, अप्कायिक बन्धक हैं, तेज-स्कायिक बन्धक हैं, वायुकायिक बन्धक हैं और वनस्पतिकायिक बन्धक हैं ॥ ११ ॥

१ प्रतिषु 'बंधा' इति पाठः ।

२ कप्रतौ '—णामकम्मं' इति पाठः ।

सुगममेदं ।

तसकाइया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ १२ ॥

कुदो ? मिच्छाइडिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलिंत्ति तसकाइएसु बंधकारणुवलंभा,
अजोगिकेवलिंम्हि तदणुवलंभादो ।

अकाइया अबंधा ॥ १३ ॥

सुगममेदं ।

जोगाणुवादेण मणजोगि-वचिजोगि-कायजोगिणो बंधा ॥ १४ ॥

एदं पि सुगमं ।

अजोगी अबंधा ॥ १५ ॥

जोगो णाम किं ? मण-वयण-कायपोगलालंबणेण जीवपदेसाणं परिष्फंदो । जदि
एवं तो णत्थि अजोगिणो, सरीरयस्स जीवदब्बस्स अकिरियत्तविरोहादो' । ण एस दोसो,

यह सूत्र सुगम है ।

त्रसकायिक जीव बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ १२ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली तकके त्रसकायिक जीवोंमें
बन्धके कारणभूत मिथ्यात्वादि पाये जाते हैं, किन्तु अयोगिकेवलीमें वे बन्धके कारण
नहीं पाये जाते ।

अकायिक जीव अबन्धक हैं ॥ १३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

योगमार्गणानुसार मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी बन्धक हैं ॥ १४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अयोगी जीव अबन्धक हैं ॥ १५ ॥

शंका—योग किसे कहते हैं ?

समाधान—मन, वचन और काय सम्बन्धी पुद्गलोंके आलम्बनसे जो जीवप्रदेशोंका
परिस्पन्दन होता है वही योग है ।

शंका—यदि ऐसा है तो शरीरी जीव अयोगी हो ही नहीं सकते, क्योंकि शरीर-
गत जीव द्रव्यको अक्रिय माननेमें विरोध आता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि आठों कर्मोंके क्षीण हो जानेपर जो

अड्कम्मसे सु खीणसे जा उड्कगमणुवलंबिया किरिया सा जीवस्स साहाविया, कम्मो-
दण विणा पउत्तत्तादो । सड्दिददेसमछंडिय छड्दिता वा जीवदव्वस्स सावयवेहि
परिपफंदो अजोगो^१ गाम, तस्स कम्मक्खयत्तादो । तेण सक्किरिया वि सिद्धा^२ अजोगिणो,
जीवपदेसाणमह्हिदजलपदेसाणं व उव्वत्तण-परियत्तणकिरियाभावादो । तदो ते अबंधा
त्ति^३ भणिदा ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा बंधा, पुरिसवेदा बंधा, णवुंसयवेदा
बंधा ॥ १६ ॥

सुगममेदं ।

अवगदवेदा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ १७ ॥

सकसायजोगेसु अकसायजोगेसु च अवगयवेदत्तुवलंभा ।

उर्ध्वगमनोपलम्बी क्रिया होती है वह जीवका स्वाभाविक गुण है, क्योंकि वह
कर्मोदयके विना प्रवृत्त होती है । स्वास्थ्यत प्रदेशको न छोड़ते हुए अथवा छोड़कर जो
जीवद्रव्यका अपने अवयवों द्वारा परिस्पन्द होता है वह अयोग है, क्योंकि वह कर्मक्षयसे
उत्पन्न होता है । अतः सक्रिय होते हुए भी शरीरी जीव अयोगी सिद्ध होते हैं, क्योंकि
उनके जीवप्रदेशोंके तत्सायमान जलप्रदेशोंके सदृश उद्वर्तन और परिवर्तन रूप क्रियाका
अभाव है । इसीलिये अयोगियोंको अबन्धक कहा है ।

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी जीव बन्धक हैं, पुरुषवेदी बन्धक हैं और नपुंसकवेदी
बन्धक हैं ॥ १६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपगतवेदी बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ १७ ॥

क्योंकि, कषाय व योग सहित तथा कषाय व योग रहित जीवोंमें अपगत-
वेदत्व पाया जाता है ।

विशेषार्थ—नौमेंके अवेदभागसे लेकर तेरहवें तकके गुणस्थान यद्यपि अपगत
वेदियोंके हैं, तो भी उनमें कषाय व योगका सद्भाव होनेसे कर्मबन्ध होता ही है,
और इस प्रकार इन गुणस्थानोंके जीव अपगतवेदी होनेपर भी बन्धक हैं । चौदहवें
गुणस्थानमें बंधका अन्तिम कारण योग भी नहीं रहता और इस कारण इस गुण-
स्थानके अपगतवेदी जीव अबन्धक हैं ।

१ प्रतिष्ठ ' परिपफंदो जोगो ' इति पाठः ।

२ कप्रतौ ' वि सिद्धा ' इति पाठः ।

३ प्रतिष्ठ ' तदो ति अबंधो ति ' इति पाठः ।

सिद्धा अबंधा ॥ १८ ॥

अवगदवेदत्तं सिद्धेसु वि अत्थि जेण कारणेण तेण अवगदवेदपरूवणाए चेव सिद्धा वि परूविदा त्ति सिद्धाणं पुधपरूवणा णिप्फला किण्ण होदि त्ति बुत्ते, ण होदि, अवगदवेदत्तेण बंधगाबंधगा दो वि रासीओ पडिग्गहिदाओ जेण संदेहो सिद्धेसु वि बंधगाबंधगविसओ समुप्पज्जदि । तण्णिराकरणं सिद्धा अबंधा त्ति पुधपरूवणा कदा । सेसं सुगमं ।

कसायाणुवादेण क्रोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई बंधा ॥ १९ ॥

सुगममेदं ।

अकसाई बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ २० ॥

कुदो ? सजोगाजोगेसु अकसायत्तस्सुवलंभा ।

सिद्धा अबंधा ॥ २१ ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ १८ ॥

शंका—अपगतवेदत्व सिद्धोंमें भी तो है अत एव उपर्युक्त सूत्रमें अपगतवेदोंकी प्ररूपणासे सिद्धोंका भी प्ररूपण हो गया । इसलिये सिद्धोंकी पृथक् प्ररूपणा निष्फल है ?

समाधान — सिद्धोंकी पृथक् प्ररूपणा निष्फल नहीं है, क्योंकि, अपगतवेदत्वकी अपेक्षा बंधक और अबन्धक ये दोनों राशियां ग्रहण की गयीं हैं जिससे सन्देह होने लगता है कि क्या सिद्धोंमें भी बन्धक और अबन्धक ऐसे दो भेद हैं । इसी सन्देहको दूर करनेके लिये 'सिद्ध अबन्धक हैं' ऐसी पृथक् प्ररूपणा की गयी है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी बन्धक हैं ॥ १९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकषायी बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ २० ॥

क्योंकि, ग्यारहवें गुणस्थानसे लेकर तेरहवें गुणस्थान तकके सयोगी जीवोंके बन्धक होनेपर भी अकषायत्व पाया जाता है, और चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगी जीवोंके अबन्धक होते हुए भी अकषायत्व पाया जाता है ।

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ २१ ॥

एदस्स सुत्तारंभस्स कारणं पुब्बं व परूवेदव्वं ।

गाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणि-
बोहियणाणी सुदणाणी ओंधिणाणी मणपज्जवणाणी बंधा ॥ २२ ॥

सुगममेदं ।

केवलणाणी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ २३ ॥

सिद्धा अबंधा ॥ २४ ॥

एत्थ अबंधा च्चेवत्ति एवकारो किण्ण कदो ? (ण,) सुत्तारंभादो च्च
तदुवलद्वीदो । स्येसं सुगमं ।

संजमाणुवादेण असंजदा बंधा, संजदासंजदा बंधा ॥ २५ ॥

संजदा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ २६ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

.....

इस सूत्रके पृथक् रचे जानेका कारण पूर्वमें कहे अनुसार प्ररूपित करना चाहिये ।

ज्ञानमार्गणानुसार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी,
सुतज्ञानी, अवाधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी बन्धक हैं ॥ २२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

केवलज्ञानी बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ २३ ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ २४ ॥

शंका—यहां ' अबन्धक ही हैं ' ऐसा अन्य विकल्पका निषेधात्मक 'एव' पदका प्रयोग क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं किया, क्योंकि, सूत्रकी पृथक् रचनामात्रसे ही वही अर्थ जान लिया जाता है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

संयममार्गणानुसार असंयत बंधक हैं और संयतासंयत बंधक हैं ॥ २५ ॥

संयत बंधक भी हैं, अबंधक भी हैं ॥ २६ ॥

ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अबंधा ॥ २७ ॥

विसएसु दुविहासंजमसरुवेण पवुत्तीए अभावा असंजदा ण होंति सिद्धा । संजदा वि ण होंति, पवुत्तिपुरस्सरं तण्णिरोहाभावा । तदो णोभयसंजोगो वि । सेसं सुगमं ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओधिदंसणी बंधा' ॥ २८ ॥

के लदंसणी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ २९ ॥

सिद्धा अबंधा ॥ ३० ॥

सव्वमेदं सुगमं ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिय तेउ-
लेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया बंधा ॥ ३१ ॥

सुगममेदं ।

न संयत न असंयत न संयतासंयत, ऐसे सिद्ध जीव अबंधक हैं ॥ २७ ॥

विषयोंमें दो प्रकारके असंयम अर्थात् इन्द्रियासंयम और प्राणिवध रूपसे प्रवृत्ति न होनेके कारण सिद्ध असंयत नहीं हैं । और सिद्ध संयत भी नहीं हैं, क्योंकि, प्रवृत्तिपूर्वक उनमें विषयनिरोधका अभाव है । तदनुसार संयम और असंयम इन दोनोंके संयोगसे उत्पन्न संयमासंयमका भी सिद्धोंके अभाव है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी अचक्षुदर्शनी और अवाधिदर्शनी बन्धक हैं ॥ २८ ॥

केवलदर्शनी बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ २९ ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ ३० ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं ।

लेश्यामार्गणानुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, तेजो-
लेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्कलेश्यावाले बन्धक हैं ॥ ३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अलेस्सिया अबंधा ॥ ३२ ॥

सिद्धा अबंधा त्ति एत्थ पुधणिद्देसो किण्ण कदो ? ण, अलेस्सिएसु बंधाबंधो-
भयभंगाभावेण संदेहाणुप्पत्तीदो । सेसं सुगमं ।

भवियाणुवादेण अभवसिद्धिया बंधा, भवसिद्धिया बंधा वि
अत्थि अबंधा वि अत्थि ॥ ३३ ॥

णेव भवसिद्धिया णेव अभवसिद्धिया अबंधा ॥ ३४ ॥

सव्वमेदं सुगमं ।

रम्मत्ताणुवादेण मिच्छादिट्ठी बंधा, ससणसम्मादिट्ठी बंधा,
सम्मामिच्छादिट्ठी बंधा ॥ ३५ ॥

कुदो ? सयलासवसंजुत्तत्तादो ।

सम्मादिट्ठी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ ३६ ॥

लेश्यारहित जीव अबन्धक हैं ॥ ३२ ॥

शंका—‘ सिद्ध अबन्धक हैं ’ ऐसा पृथक् निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं किया, क्योंकि लेश्यारहित जीवोंमें बन्धक और अबन्धक
ऐसे दो विकल्प न होनेसे कोई सन्देह उत्पन्न नहीं होता। अर्थात् ‘ अलेश्य अबं-
धक हैं ’ इतना कहनेमात्रसे ही स्पष्ट हो जाता है कि लेश्यारहित अयोगी जिन भी
अबन्धक हैं और सिद्ध भी अबन्धक हैं ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

भव्यमार्गणानुसार अभव्यसिद्धिक जीव बन्धक हैं, भव्यसिद्धिक जीव बन्धक
भी हैं और अबन्धक भी हैं ॥ ३३ ॥

न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक ऐसे सिद्ध जीव अबन्धक हैं ॥ ३४ ॥

यह सब सूत्रार्थ सुगम है ।

सम्यक्त्वमार्गणानुसार मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं, सासादनसम्यग्दृष्टि बन्धक
हैं और सम्यग्मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं ॥ ३५ ॥

क्योंकि, उक्त जीव समस्त कर्मास्त्रवोंसे संयुक्त होते हैं ।

सम्यग्दृष्टि बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ ३६ ॥

कुदो ? सासवाणासवेसु सम्महंसणुवलंभा ।

सिद्धा अबंधा ॥ ३७ ॥

सुगममेदं ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी बंधा, असण्णी बंधा ॥ ३८ ॥

णेव सण्णी णेव असण्णी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि
॥ ३९ ॥

विणट्टुणोइंदियखओवसमादो केवलणाणी णो सण्णिणो; तत्थ इंदियोवट्टंभवलेणाणु-
प्पण्णबोधुवलंभादो णो असण्णिणो । तदो ते बंधा वि अबंधा वि, बंधाबंधकारणजोगा-
जोगाणमुवलंभा ।

सिद्धा अबंधा ॥ ४० ॥

सुगममेदं ।

क्योंकि, चौथेसे तेरहवें गुणस्थान तकके आस्रव सहित और चौदहवें गुणस्थान-
वर्ती आस्रव रहित, ऐसे दोनों प्रकारके जीवोंमें सम्यग्दर्शन पाया जाता है ।

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ ३७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञीमार्गणानुसार संज्ञी बन्धक हैं, असंज्ञी बन्धक हैं ॥ ३८ ॥

न संज्ञी न असंज्ञी ऐसे केवलज्ञानी जिन बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ ३९ ॥

जिनका नोइन्द्रिय क्षयोपशम नष्ट हो गया है ऐसे केवलज्ञानी संज्ञी नहीं हैं । और
चूंकि उनमें इन्द्रियालम्बनके बलसे अनुत्पन्न अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञान पाया जाता है इसलिये
केवलज्ञानी असंज्ञी भी नहीं हैं । अतः न संज्ञी न असंज्ञी बन्धक भी हैं और अबन्धक भी
हैं, क्योंकि उनमें सयोगि अवस्थामें बन्धका कारण योग पाया जाता है और अयोगि
अवस्थामें अबन्धका कारण अयोग पाया जाता है ।

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ ४० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहाराणुवादेण आहारा बंधा ॥ ४१ ॥

अणाहारा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ ४२ ॥

सिद्धा अबंधा ॥ ४३ ॥

सुगममेदं ।

एसो बंधगसंताहियारो पुव्वमेव किमडुं परुविदो ? 'सति धर्मेणि धर्माश्चिन्त्यन्त'
इति न्यायात् बंधयाणमत्थित्ते सिद्धे संते पच्छा तेसिं विसैसपरुवणा जुज्जदे । तम्हा
सुगममेदं पुव्वमेव कादव्वमिदि । एवमत्थित्तेण सिद्धाणं बंधयाणमेक्कारसअणियोगद्दारेहि
विसैसपरुवणदुमुत्तरगंधो अवइण्णो ।

एवं बंधगसंतपरुवणा समत्ता ।

आहारमार्गणानुसार आहारक जीव बन्धक हैं ॥ ४१ ॥

अनाहारक जीव बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ ४२ ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ ४३ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

शंका—यह बन्धकसत्त्वाधिकार पूर्वमें ही क्यों प्ररूपित किया गया है ?

समाधान—'धर्मोंके सद्भावमें ही धर्मोंका चिन्तन किया जाता है' इस
न्यायके अनुसार बंधकोंका अस्तित्व सिद्ध हो जाने पर पश्चात् उनकी विशेष प्ररू-
पणा करना योग्य है । इसलिये बन्धकोंकी सत्प्ररूपणा पहले ही करना चाहिये ।
इस प्रकार अस्तित्वसे सिद्ध हुए बन्धकोंके ग्यारह अनुयोगों द्वारा विशेष प्ररूपणार्थ
आगेकी बन्धरत्नका हुई है ।

इस प्रकार बन्धकसत्प्ररूपणा समाप्त हुई ।

सामित्ताणुगमो

एदेसिं बंधयाणं परूवणट्टदाए तत्थ इमाणि एक्कारस अणि-
योगद्वाराणि णादव्वाणि भवंति ॥ १ ॥

अणद्वेसुं बंधएसु कधमेदेसिं बंधयाणमिदि पच्चक्खणिहेसो उववज्जदे ? ण,
एस दोसो, बंधगविसयबुद्धीए पच्चक्खत्तमवेक्खिय पच्चक्खणिहेसुववत्तीदो । संताणि-
योगदारं पुच्चमपरूविय तेण सह बारसअणियोगद्वारेहि बंधगाणं किण्ण परूवणा कीरदे ?
ण, बंधगत्तेण असिद्धाणं तस्सिद्धिपरूवणाए बंधगपरूवणत्ताणुववत्तीदो । तेसिमेक्कारस-
अणियोगद्वाराणं णामणिहेसट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

एगजीवेण सामित्तं, एगजीवेण कालो, एगजीवेण अंतरं,
णाणाजीवेहि भंगविचओ, दव्वपरूवणाणुगमो, खेत्ताणुगमो, फोसणाणु-
गमो, णाणाजीवेहि कालो, णाणाजीवेहि अंतरं, भागाभागाणुगमो,
अप्पाबहुगाणुगमो चेदि ॥ २ ॥

इन बन्धकोंके प्ररूपणार्थ ये ग्यारह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं ॥ १ ॥

शंका—बन्धकोंके उपास्थित न होनेपर भी 'इन बन्धकोंका' इस प्रकार
प्रत्यक्ष निर्देश कैसे उपयुक्त ठहरता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, बन्धकविषयक बुद्धिसे प्रत्यक्षत्वकी
अपेक्षा करके प्रत्यक्ष निर्देशकी उपपत्ति बन जाती है।

शंका—सत् अनुयोगद्वारको पहले ही प्ररूपित न करके उसके साथ बारह
अनुयोगद्वारोंसे बन्धकोंकी प्ररूपणा क्यों नहीं की जाती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बन्धकभावसे असिद्ध जीवोंको बन्धक सिद्ध करने-
वाली प्ररूपणाके लिये बन्धकप्ररूपणा नाम देना अनुपयुक्त ठहरता है।

उन ग्यारह अनुयोगद्वारोंके नामनिर्देशके लिये आचार्य अगला सूत्र कहते हैं—

एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा
अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, द्रव्यप्ररूपणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानु-
गम, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर, भागाभागाणुगम और
अल्पबहुत्व ॥ २ ॥

१ मप्रतौ 'अणत्थेसु', कप्रतौ 'अणद्वेसु' इति पाठः।

अंतिल्लो चसदो समुच्चयत्थो । इदिसदो एदेसिं बंधगाणं परूवणाए एत्तियाणि चैव अणियोगहाराणि होंति ण वड्ढिमाणि त्ति अवहारणट्ठं कदो । एगजीवेण सामित्तं पुव्वमेव किमट्ठं वुच्चदे ? ण, उवरिल्लसव्वर्याणिओगहाराणं कारणत्तेण सामित्ताणि-योगहारस्स अवट्ठाणादो । कुदो ? चोदसमग्गणट्ठाणं ओदइयादिपंचसु भावेसु को भावो कस्स मग्गणट्ठाणस्स सामिओ णिमित्तं होदि ण होदि त्ति सामित्ताणिओगहारं परूवेदि, पुणो तेण भावेण उवलक्खियमग्गणाए बंधएसु सेसाणिओगहारपवुत्तीदो । सेसाणि-ओगहारेसु कालो चैव किमट्ठं पुव्वं परूविज्जदि ? ण, कालपरूवणाए विणा अंतर-परूवणाणुववत्तीदो । पुणो अंतरमेव वत्तव्वं, एगजीवसंबंधिणो अणस्स अणियोग-हारस्साभावा । णाणाजीवसंबंधिएसु सेसाणिओगहारेसु पढमं णाणाजीवेहि भंगविचओ किमट्ठं वुच्चदे ? ण, एदस्स मग्गणट्ठाणपवाहस्स विसैसो अणादिअपज्जवसिदो, एदस्स

सूत्रके अन्तमें आया हुआ 'च' शब्द समुच्चयार्थक है; और 'इन बन्धकोंकी प्ररूपणामें इतनेमात्र ही अनुयोगद्वार हैं, इनसे अधिक नहीं' ऐसा निश्चय करानेके लिये 'इति' शब्दका प्रयोग किया गया है ।

शंका—एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वका कथन सबसे पूर्वमें ही क्यों किया जाता है ?

समाधान—क्योंकि, यह स्वामित्वसम्बन्धी अनुयोगद्वार आगेके समस्त अनुयोगद्वारोंके कारण रूपसे अवस्थित है । इसका कारण यह है कि चौदह मार्गणा-स्थान औदयिकादि पांच भावोंमेंसे किस भाव रूप हैं, किस मार्गणास्थानका स्वामी निमित्त होता है या नहीं होता, यह सब स्वामित्वानुयोगद्वार प्ररूपित करता है, और फिर उसी भावसे उपलक्षित मार्गणासहित बन्धकोंमें शेष अनुयोगद्वारोंकी प्रवृत्ति होती है ।

शंका—शेष अनुयोगद्वारोंमें काल ही पहले क्यों प्ररूपित किया जाता है ?

समाधान—क्योंकि, कालकी प्ररूपणाके विना अन्तरप्ररूपणाकी उपपत्ति नहीं बैठती ।

कालप्ररूपणाके पश्चात् अन्तर ही कहा जाना चाहिये, क्योंकि, एक जीवसे सम्बन्ध रखनेवाला अन्य कोई अनुयोगद्वार है ही नहीं ।

शंका—नाना जीव सम्बन्धी शेष अनुयोगद्वारोंमें पहले नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय ही क्यों कहा जाता है ?

समाधान—क्योंकि, इस मार्गणास्थानके प्रवाहका विशेष (भेद) अनादि-अनन्त

सादिसपज्जवसिदो त्ति सामण्णेण अवगदे सेसाणिओगहारणं पदणसंभवादो । दव्व-
पमाणे अणवगदे^१ खेत्तादिअणियोगहारणमधिगमोवाओ णत्थि त्ति दव्वाणिओगहारस्स
पुव्वणिवेसो कदो । वट्टमाणपासपरूवणाए विणा अदीद-वट्टमाणफासपरूवयफोसणाणि-
ओगहाराधिगमोवाओ णत्थि त्ति खेत्ताणिओगहारस्स पुव्वं णिवेसो^२ कदो । मग्गणाण-
मच्छिदखेत्ते अवगदे तेसिं दव्वसंखाए च अवगदाए पच्छा तीदकालफासपरूवणा गाया-
गदेत्ति णिवेसिदा । मग्गणकाले अणवगदे तेसिमंतरादिपरूवणा ण घडदि त्ति पुव्वं
कालाणिओगहारं परूविदं । कालजोणि अंतरमिदि कट्टु अंतरं तदणंतरे परूविदं । पुरदो
बुच्चमाणअप्पाबहुअस्स साहणो इदि कट्टु भागाभागो परूविदो । एदेसिं पच्छा अप्पा-
बहुगाणुगमो परूविदो, सव्वाणिओगहारेसु पडिवद्धत्तादो ।

णाणाजीवेहि काल-भंगविचयाणं को विसेसो ? ण, णाणाजीवेहि भंगविचयस्स

है, इसका सादि-सान्त है, ऐसा सामान्यरूपसे जान लेनेपर ही शेष अनुयोगद्वारोंका अवतार संभव हो सकता है। द्रव्यप्रमाणके जाने बिना क्षेत्रादि अनुयोगद्वारोंके जान-
नेका उपाय नहीं, इसलिये द्रव्यानुयोगद्वारका उनसे पहले स्थापन किया गया है। फिर
उनमें भी वर्तमान स्पर्शन प्ररूपणाके बिना अतीत और वर्तमान स्पर्शनके प्ररूपक स्पर्श-
नानुयोगद्वारके जाननेका उपाय नहीं, इसलिये क्षेत्रानुयोगद्वारका पहले निवेश किया।
मार्गणाओंसम्बन्धी निवासक्षेत्रको जान लेने पर और उनके द्रव्यप्रमाणका भी ज्ञान
हो जाने पर पश्चात् अतीतकालसम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा न्यायागत है, इसलिये स्पर्शन-
प्ररूपणा रखी गई। मार्गणासम्बन्धी कालका जब तक ज्ञान न हो जाय तब तक
उनकी अन्तरप्ररूपणा नहीं बनती, अतः उससे पूर्व कालानुयोगद्वारका प्ररूपण
किया। कालसे ही उत्पन्न अन्तर है, ऐसा जानकर कालके अनन्तर अन्तरानुयोगद्वार
प्ररूपित किया। आगे कहे जानेवाले अल्पबहुत्वका साधन होनेसे पहले भागाभाग
प्ररूपित किया। और इन सबके पश्चात् अल्पबहुत्वानुगम प्ररूपित किया, क्योंकि वह
पूर्ववर्ती सभी अनुयोगद्वारोंसे सम्बद्ध है।

शंका—नाना जीवोंकी अपेक्षा काल और नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय
इन दोनोंमें क्या भेद है ?

समाधान—नहीं, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय नामक अनुयोगद्वार मार्गणा-

१ प्रतिपु ' दव्वपमाणे ण अवगदे ' इति पाठः ।

२ कप्रतौ ' णिवेसो ' इति पाठः ।

मग्गणाणं विच्छेदाविच्छेदत्थित्तरूवयस्स मग्गणकालंतरेहि सह एयत्तविरोहादो ।

एयजीवेण सामित्तं ॥ ३ ॥

जहा उद्देशो तथा णिद्देशो त्ति णायानुसरणद्धमेगजीवेण सामित्तं भणिससामो
इदि वुत्तं ।

गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरईओ णाम कधं भवदि ? ॥४॥

एदं पुच्छासुत्तं किण्णिबंधणं ? णयसमूहणिवंधणं । जदि एक्को चैव णयो
होज्जं तो संदेहो वि ण उप्पजेज्ज । किंतु णया बहुआ अत्थि । तेण संदेहो समुप्पज्जदे
कस्स णयस्स विसयमस्सिदूण द्विदणेर्ईओ एत्थ पडिग्गहिदो त्ति । णयाणमभिप्पाओ
एत्थ उच्चदे । तं जहा —

कं पि णरं दट्टणं य पावजणसमागमं करेमाणं ।

णेगमणएण भण्णइ णेरईओ एस पुरिसो त्ति ॥ १ ॥

.....
ओंके विच्छेद और अविच्छेदके अस्तित्वका प्ररूपक है, अतः उसका मार्गणाओंके
काल और अन्तर बतलाने वाले अनुयोगद्वारोंके साथ एकत्व माननेमें विरोध आता है ।

एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वकी प्ररूपणा की जाती है ॥ ३ ॥

‘जैसा उद्देश, तैसा निर्देश’ इस न्यायके अनुसरणार्थ एक जीवकी अपेक्षा
स्वामित्वका वर्णन करते हैं, ऐसा प्रस्तुत सूत्रमें कहा गया है ।

गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकी जीव किस प्रकार होता है ? ॥ ४ ॥

शंका—यह प्रश्नात्मक सूत्र किस आधारसे रचा गया है ?

समाधान—यह प्रश्नात्मक सूत्र नयसमूहके आधारसे रचा गया है । यदि
एक ही नय होता तो कोई सन्देह भी उत्पन्न न होता । किन्तु नय अनेक हैं इसलिये
सन्देह उत्पन्न होता है कि किस नयके विषयका आश्रय लेकर स्थित नारकी
जीवका यहां ग्रहण किया गया है । यहांपर नयोंका अभिप्राय बतलाते हैं । वह
इस प्रकार है—

किसी मनुष्यको पापी लोगोंका समागम करते हुए देखकर नैगम नयसे कहा
जाता है कि यह पुरुष नारकी है ॥ १ ॥

(जब वह मनुष्य प्राणिबध करनेका विचार कर सामग्रीका संग्रह करता है तब
वह संग्रह नयसे नारकी कहा जाता है ।)

१ववहारस्स दु वयणं जइया कौदंड-कंडगयहत्थो ।
 भमइ मए मग्गतो तइया सो होइ णेरइओ ॥ २ ॥
 उज्जुसुदस्स दु वयणं जइआ इर ठाइदूण ठाणम्मि ।
 आहणदि मए पावो तइया सो होइ णेरइओ ॥ ३ ॥
 सइणयस्स दु वयणं जइया पाणेहि मोइदो जंतू ।
 तइया सो णेरइयो हिंसाकम्मेण संजुत्तो ॥ ४ ॥
 वयणं तु समभिरूढं णारयकम्मस्स बंधगो जइया ।
 तइया सो णेरइओ णारयकम्मेण संजुत्तो ॥ ५ ॥
 णिरयगइं संपत्तो जइया अणुहवइ णारयं दुक्खं ।
 तइया सो णेरइओ एवंभूदो णओ भणदि ॥ ६ ॥

एदं सव्वणयविसयं णेरइयसमूहं बुद्धीए काऊण णेरइओ णाम कधं होदि ति पुच्छा कदा ।

अधवा णाम-द्ववण-द्वव-भावभेएण णेरइया चउत्विहा होंति । णामणेरइयो णाम णेरइयसहो । सो एसो ति बुद्धीए अप्पिदस्स अण्पिदेण^१ एयत्तं काऊण

व्यवहार नयका वचन इस प्रकार है— जब कोई मनुष्य हाथमें धनुष और बाण लिये मृगोंकी खोजमें भटकता फिरता है तब वह नारकी कहलाता है ॥ २ ॥

ऋजुसूत्र नयका वचन इस प्रकार है— जब आखेटस्थानपर बैठकर पापी मृगोंपर आघात करता है तब वह नारकी कहलाता है ॥ ३ ॥

शब्द नयका वचन इस प्रकार है— जब जन्तु प्राणोंसे विमुक्त कर दिया जाय तभी वह आघात करनेवाला हिंसाकर्मसे संयुक्त मनुष्य नारकी कहा जाय ॥ ४ ॥

समभिरूढ नयका वचन इस प्रकार है— जब मनुष्य नारक कर्मका बन्धक होकर नारक कर्मसे संयुक्त हो जाय तभी वह नारकी कहा जाय ॥ ५ ॥

जब वही मनुष्य नरक गतिको पहुंचकर नरकके दुःख अनुभव करने लगता है तभी वह नारकी है, ऐसा एवंभूत नय कहता है ॥ ६ ॥

इन समस्त नयोंके विषयभूत नारकीसमूहका विचार करके ही 'नारकी जीव किस प्रकार होता है' यह प्रश्न किया गया है।

अथवा, नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे नारकी चार प्रकारके होते हैं । नाम-नारकी 'नारकी' शब्दको ही कहते हैं । 'यह वही है' ऐसा बुद्धिसे विवक्षित नारकीका अविवक्षित वस्तुके साथ

१ अतः प्राक् संग्रहनयसम्बन्धिनी गाथा स्खलिता प्रतिभाति ।

२ प्रतिषु ' बुद्धीए अण्पिदस्स', मप्रतौ ' बुद्धीए अप्पिदस्स अप्पिदेण ' इति पाठः ।

संभावसंभावसरूवेण ठविदं ठवणणेइओ । गेरइयपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो आगम-
दव्वणेइओ । अणागमदव्वणेइओ तिविहो जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेएण ।
जाणुगसरीर-भवियं गदं । तव्वदिरित्तणोआगमदव्वणेइओ णाम दुविहो कम्म-णोकम्म-
भेएण । कम्मणेइओ णाम गिरयगदिसहगदकम्मदव्वसमूहो । पास-पंजर-जंतादीणिं
णोकम्मदव्वाणि गेरइयभावकारणाणि णोकम्मदव्वणेइओ णाम । गेरइयपाहुडजाणओ
उवजुत्तो आगमभावणेइओ णाम । गिरयगदिणामाए उदएण गिरयभावमुवगदो
णोआगमभावणेइओ णाम । एदं गेरइयसमूहं बुद्धीए काऊण गेरइओ णाम कथं होदि
त्ति पुच्छा कदा ।

अथवा गेरइओ णाम किमोदइएण भावेण, किमुवसमिएण, किं खइएण, किं
खओवसमिएण, किं पारिणामिएण भावेण होदि त्ति बुद्धीए काऊण गेरइओ णाम
कथं होदि त्ति वुत्तं ।

एदस्स संदेहस्स गिराकरणट्ठं उत्तरसुत्तं भणदि—

गिरयगदिणामाए उदएण ॥ ५ ॥

एकत्व करके सद्भाव और असद्भाव स्वरूपसे स्थापित स्थापना नारकी कहलाता है । नारकीसम्बन्धी प्राभृतका जाननेवाला किन्तु उसमें अनुपयुक्त जीव आगम द्रव्य नारकी है । ज्ञायक शरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे अनागम द्रव्य नारकी तीन प्रकारका है । ज्ञायकशरीर और भव्य तो गया । कर्म और नोकर्मके भेदसे तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य नारकी दो प्रकारका है । नरकगतिके साथ आये हुए कर्मद्रव्यसमूहको कर्मनारकी कहते हैं । पास, पंजर, यंत्र आदि नोकर्मद्रव्य जो नारक भावकी उत्पत्तिमें कारणभूत होते हैं, नोकर्म द्रव्य नारकी हैं । नारकियों सम्बन्धी प्राभृतका जानकार और उसमें उपयोग रखनेवाला जीव आगम भाव नारकी है । नरक-गति नामप्रकृतिके उदयसे नरकावस्थाको प्राप्त हुआ जीव नोआगम भाव नारकी है । इस नारकीसमूहका विचार करके ' नारकी जीव किस प्रकार होता है ' यह प्रश्न किया गया है ।

अथवा, ' क्या नारकी औदयिक भावसे होता है, क्या औपशमिक भावसे, क्या क्षायिक भावसे, क्या क्षायोपशमिक भावसे, क्या परिणामिक भावसे होता है ? ' पेसा बुद्धिसे विचार कर ' नारकी जीव किस प्रकार होता है ? ' यह पूछा गया है ।

इस सन्देहको दूर करनेके लिये आचार्य अगला सूत्र कहते हैं—

नरकगति नामप्रकृतिके उदयसे जीव नारकी होता है ॥ ५ ॥

एवंभूदणयविसएण' णोआगमभावणिकखेवेण गिरयगदिणामाए उदएण णेरइओ
गाम भवदि ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खो णाम कधं भंवदि ? ॥ ६ ॥

एत्थ वि णए णिकखेवे ओदइयादिपंचविहभावे च अस्सिदूण पुवं व संदेह-
स्सुप्पत्ती परूवेदव्वा ।

तिरिक्खगदिणामाए उदएण ॥ ७ ॥

तिरिक्खगदिणामकम्मोदएणुप्पणपज्जायपरिणदम्मि जीवे तिरिक्खाभिहाणवव-
हार-पच्चयाणमुवलंभादो ।

मणुसगदीए मणुसो णाम कधं भवदि ? ॥ ८ ॥

एत्थ वि पुवं व णय-णिकखेवादीहि संदेहुप्पत्ती परूवेदव्वा ।

मणुसगदिणामाए उदएण ॥ ९ ॥

कुदो ? मणुसगदिणामकम्मोदयजणिदपज्जायपरिणयजीवम्मि मणुस्साहिहाणवव-

एवंभूतनयके विषयसे, नोआगमभावनिक्षेपसे एवं नरकगति नामप्रकृतिके उदयसे
जीव नारकी होता है ।

तिर्यचगतिमें जीव तिर्यच किस प्रकार होता है ? ॥ ६ ॥

यहां भी नय, निक्षेप और औदयिकादि पांच प्रकारके भावोंके आश्रयसे
पूर्वोक्तानुसार संदेहकी उत्पत्तिका प्ररूपण करना चाहिये ।

तिर्यचगति नामप्रकृतिके उदयसे जीव तिर्यच होता है ॥ ७ ॥

क्योंकि, तिर्यचगति नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई पर्यायमें परिणत जीवके
तिर्यच संज्ञाका व्यवहार और ज्ञान पाया जाता है ।

मनुष्यगतिमें जीव मनुष्य कैसे होता है ? ॥ ८ ॥

यहां भी पूर्वानुसार नय-निक्षेपादिसे सन्देहकी उत्पत्तिका प्ररूपण करना
चाहिये ।

मनुष्यगति नामप्रकृतिके उदयसे जीव मनुष्य होता है ॥ ९ ॥

क्योंकि, मनुष्यगति नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई पर्यायमें परिणत जीवके

१ प्रतिष्ठु ' एवंभूदणयविसएण ओदइएण ' इति पाठः ।

२ आ-कम्मोः ' मणुस्साहियाण-' इति पाठः ।

हार-पच्चयाणमुवलंभा ।

देवगदीए देवो णाम कधं भवदि ? ॥ १० ॥

सुगममेदं ।

देवगदिणामाए उदएण ॥ ११ ॥

कुदो ? देवगदिणामकम्मोदयजणिदअणिमादिपञ्जयपरिणदजीवम्मि देवाहिहाण-ववहार-पच्चयाणमुवलंभा । णिरय-तिरिक्ख-मणुस-देवगदीओ जदि केवलाओ उदय-मागच्छंति तो णिरयगदिउदएण णेरइओ, तिरिक्खगदिउदएण तिरिक्खो, मणुस्सगदि-उदएण मणुस्सो, देवगदिउदएण देवो त्ति वोचुं जुत्तं । किं तु अण्णाओ वि पयडीओ तत्थ उदयमागच्छंति, ताहि विणा णिरय-तिरिक्ख मणुस्स-देवगदिणामाणमुदयाणुवलं-भादो । तं जहा—

१ णेरइयाणं पंच उदयट्ठाणाणि होंति एककवीस-पंचवीस-सत्तावीस-अट्ठावीस-एगूणतीसं ति । २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । तत्थ इगवीसपयडिउदयट्ठाणं बुच्चदे । तं जहा— णिरयगदि-पंचिदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-णिरयगदि-

मनुष्य संज्ञाका व्यवहार और ज्ञान पाया जाता है ।

देवगतिमें जीव देव कैसे होता है ? ॥ १० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

देवगति नामप्रकृतिके उदयसे जीव देव होता है ॥ ११ ॥

क्योंकि, देवगति नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई अणिमादिक पर्यायोंमें परिणत जीवके देव संज्ञाका व्यवहार और ज्ञान पाया जाता है ।

शंका—यदि नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव, ये गतियां केवल अपनी एक एक प्रकृतिरूपसे उदयमें आती हों तो नरकगतिके उदयसे नारकी, तिर्यंचगतिके उदयसे तिर्यंच, मनुष्यगतिके उदयसे मनुष्य और देवगतिके उदयसे देव होता है, ऐसा कहना उचित है । किन्तु अन्य भी तो प्रकृतियां वहां उदयमें आती हैं जिनके बिना नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति नामकर्मोंका उदय पाया ही नहीं जाता ? वह इस प्रकार है—

नारकी जीवोंके पांच उदयस्थान हैं—

इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतियों सम्बन्धी २१ । २५ २७ । २८ । २९ । इनमें इक्कीस प्रकृतियोंके उदयस्थानको कहते हैं । वह इस प्रकार है—

नरकगति^१, पंचेन्द्रियजाति^२, तैजस^३ और कर्मण शरीर^४, वर्ण^५, गन्ध^६, रस^७,

पाओग्गाणुपुव्वि-अगुरुअलहुअ-तस-बादर-पज्जत्त-थिराथिर-सुभासुभ-दुभग-अणादेज्ज-अजस-
गित्ति-णिमिणाणि त्ति एत्तिआओ पयडीओ धेत्तूण इगिवीसाए ठाणं होदि' । एत्थ भंगो
एक्को चेव |१| । एदमुदयद्वानं कस्स होदि ? विग्गहगदीए वट्टमाणस्स णेरइयस्स ।
तं केवचिरं कालं होदि ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वे समया' ।

तत्थ इमं पणुवीसाए द्वाणं । एदाओ चेव पयडीओ । णवरि आणुपुव्वीमवणे-
दूण वेउव्वियसरीर-हुंडसंठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-उवघाद-पत्तेयसरीराणि पुव्वुत्तपयडीसु
पक्खित्ते पणुवीसण्हं ठाणं होदि । तं कस्स ? सरीरंगहिदणेइयस्स । तं केवचिरं

स्पर्श', नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी', अगुरुलघुक', त्रस', बादर', पर्याप्त', स्थिर'^१
और अस्थिर'^२, शुभ'^३ और अशुभ'^४, दुर्भग'^५, अनादेय'^६, अयशकीर्ति'^७ और निर्माण'^८,
इन प्रकृतियोंको लेकर इक्कीस प्रकृतियों सम्बन्धी पहला स्थान होता है । यहां भंग
एक ही हुआ (१) ।

शंका—यह इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किसके होता है ?

समाधान—विग्रहगतिमें वर्तमान नारकी जीवके यह इक्कीस प्रकृतियोंवाला
उदयस्थान होता है ।

शंका—यह उदयस्थान कितने काल तक रहता है ?

समाधान—यह उदयस्थान कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक दो
समय तक रहता है ।

उन नारकियोंका पच्चीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान यह है— इन्हीं उपर्युक्त
इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे नरकगतिआनुपूर्वीको छोड़कर वैक्रियिकशरीर, हुंडसंस्थान,
वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्ग, उपघात और प्रत्येकशरीर, इन पांच प्रकृतियोंको मिला देनेसे
पच्चीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है ।

शंका—यह पच्चीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किसके होता है ?

समाधान—जिस नारकी जीवने शरीर ग्रहण कर लिया है उसके यह पच्चीस
प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है ।

शंका— यह उदयस्थान कितने काल तक रहता है ?

१ णामधुवोदयवारस गह-जाईणं च तसत्तिजुम्माणं । सुभगादेज्जजसाणं जुम्मेक्कं विग्गहे वाणू ॥
गो. क. ५८८.

२ विग्गहकम्मसरीरे सरीरमिस्से सरीरपज्जत्ते । आणा-वच्चिपज्जत्ते कमेण पंचोदये काला ॥ एक्कं व दो व
तिणिण व समया अंतोमुहुत्तयं तिसु वि । हेट्ठिमकाल्ढणाओ चरिमस्स य उदयकालो दु ॥ गो. क. ५८३-५८४.

कालं होदि ? सरीरंगहिदपढमसमयमादिं कादूण जाव सरीरपज्जत्तीए अणिल्लेविद-
चरिमसमओ त्ति, अंतोमुहुत्तमिदि वुत्तं होदि । भंगो वि पुव्विल्लभंगेण सह दोण्णि । २ ।।

परघादमप्पसत्थविहायगदिं च पुव्विल्लपणुवीसपयडीसु पक्खित्ते सत्तावीस-
पयडीणमुदयट्ठाणं होदि । तं कम्मिह होदि ? सरीरपज्जत्तीणिव्वत्तिपढमसमयमादिं कादूण
जाव आणापाणपज्जत्तिअणिल्लेविदचरिमसमओ त्ति एदम्मिह काले होदि । तं केवचिरं ?
जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । एत्थ भंगसमासो तिण्णि । ३ ।।

पुव्विल्लसत्तावीसपयडीसु उस्सासे पक्खित्ते अट्ठावीसपयडीणमुदयट्ठाणं होदि ।
तं कम्मिह होदि ? आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदपढमसमयमादिं कादूण जाव भासा-
पज्जत्तीए अणिल्लेविदचरिमसमओ त्ति एदम्मिह ट्ठाणे होदि । तं केवचिरं ? जहण्णुक्क-

समाधान—शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयको आदि लेकर शरीरपर्याप्ति
अपूर्ण रहनेके अन्तिम समय पर्यंत अर्थात् अन्तर्मुहूर्तकाल तक यह उदयस्थान रहता है ।

पूर्वोक्त एक भंगके साथ अब दो भंग हो गये (२) ।

पूर्वोक्त पञ्चीस प्रकृतियोंमें परघात तथा अप्रशस्तविहायोगति मिला देनेसे
सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है ।

शंका—यह सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किस कालमें होता है ?

समाधान—शरीरपर्याप्ति पूर्ण होजानेके प्रथम समयको आदि लेकर
आनप्राणपर्याप्ति अपूर्ण रहनेके अन्तिम समय पर्यन्त इतने काल तक यह सत्ताईस
प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है ।

शंका—वह काल कितने प्रमाण होता है ?

समाधान—जघन्यतः और उत्कर्षतः अन्तर्मुहूर्तमात्र ।

यहां तकके सब भंगोंका जोड़ हुआ तीन (३) ।

पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकृतियोंमें उच्छ्वासको मिला देनेसे अट्ठाईस प्रकृतियोंवाला
उदयस्थान हो जाता है ।

शंका—यह अट्ठाईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किस कालमें होता है ?

समाधान—आनप्राणपर्याप्तिके पूर्ण होजानेके प्रथम समयको आदि लेकर
भाषापर्याप्ति अपूर्ण रहनेके अन्तिम समय तकके कालमें होता है ?

शंका—वह काल कितने प्रमाण है ?

समाधान—जघन्य और उत्कर्षतः अन्तर्मुहूर्तमात्र ।

स्सेण अंतोमुहुत्तं । एत्थ भंगसमासो चत्तारि [४] ।

पुत्रिवल्लअट्ठावीसपयडीसु दुस्सरे पक्खित्ते एगूणत्तीसपयडीणमुदयद्वानं होदि । तं कम्मिह ? भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पढमसमयंमादिं कादूण जाव अप्पप्पणे आउअट्ठिदीए चरिमसमओ त्ति एदम्मिह अट्ठाणे होदि । तं केवचिरं ? जहण्णेण दसवस्ससहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तूणतेत्तीससागरोवमाणि । एत्थ भंगसमासो पंच [५] ।

तिरिक्खगदीए एकवीस-चदुवीस-पंचवीस-छव्वीस-सत्तावीस-अट्ठावीस-एगूण-त्तीस-तीस-एक्कत्तीस त्ति णव उदयद्वानाणि । २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । संपदि सामण्णेण एइंदियाणं एक्कवीस-चउवीस-पंचवीस-छव्वीस-सत्तावीस त्ति पंच उदयद्वानाणि । आदावुज्जोवाणमणुदएण एइंदियस्स सत्तावीसद्वानेण विणा चत्तारि उदयद्वानाणि । आदावुज्जोवाण उदएण सहिदएइंदियस्स पणुवीसद्वानेण विणा

यहां तकके सब भंगोंका जोड़ हुआ चार (४) ।

पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियोंमें दुस्वरको मिला देनेसे उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है ।

शंका—वह उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किस कालमें होता है ?

समाधान—भाषापर्याप्ति पूर्ण करलेनेवालेके प्रथम समयको लेकर अपनी अपनी आयुस्थितिके अन्तिम समय पर्यन्त, इतने कालमें वह उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है ।

शंका—वह कितने काल प्रमाण है ?

समाधान—जधन्यतः अन्तर्मुहूर्त कम दश हजार वर्ष और उत्कर्षतः अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपमप्रमाण होता है ।

यहां तक सब भंगोंका योग हुआ पांच (५) ।

तिर्यचगतियोंमें इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस उनतीस, तीस और इकतीस, ये नौ उदयस्थान होते हैं । २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । अब सामान्यतः एकेन्द्रिय जीवोंके इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छव्वीस और सत्ताईस, ये पांच उदयस्थान हैं । आताप और उद्योत इन दो प्रकृतियोंके उदयके विना एकेन्द्रिय जीवके सत्ताईस प्रकृतियोंवाले स्थानसे रहित शेष चार उदयस्थान होते हैं । आताप और उद्योतके उदय सहित एकेन्द्रिय जीवके पच्चीस प्रकृतियोंवाले स्थानसे रहित शेष चार उदयस्थान

चत्तारि उदयद्वाणाणि ह्येति ।

तत्थ आदावुज्जोवुदयविरहिदएइंदियस्स भण्णमाणे तिरिक्खगदी-एइंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगदिपाओग्माणुपुव्वी-अगुरुगलहुअ-थावर बादर-सुहुमाणमेक्कदरं पज्जत्तापज्जत्ताणमेक्कदरं थिराथिरं सुभासुभं दुब्भगं अणादेज्जं जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणमिदि एदासिं एकक्खीसपयडीण उदओ विग्गहगदीए वड्डमाणस्स एइंदियस्स होदि । केवचिरं ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णिण समया । एत्थ अक्खपरावत्तं काऊण भंगा उप्पाएदव्वा । तत्थ अजसकित्तिउदएण चत्तारि भंगा । जसकित्तिउदएण एक्को चेव । कुदो ? सुहुम-अपज्जत्तेहि सह जसकित्तीए उदयाभावा, जसगित्तीए सह सुहुम-अपज्जत्ताणं उदयाभावादो वा । तेणेत्थ भंगा पंचेव ह्येति' [५] ।

पुव्विल्लएक्कवीसपयडीसु आणुपुव्वीभवणेदूण ओरालियसरीर-हुंडसंठाण-उवघाद पत्तेय-साधारणसरीराणमेक्कदरं पक्खित्ते चदुवीसपयडीणं उदयद्वाणं होदि । तं कम्मिह होदि ?

होते हैं । उनमें आताप और उद्योतसे रहित एकेन्द्रिय जीवके उदयस्थान कहते हैं—

तिर्यंचगति', एकेन्द्रियजाति', तैजस' और कर्मण शरीर', वर्ण', गंध', रस' स्पर्श', तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी', अगुरुलघुक', स्थावर', बादर और सूक्ष्म इन दोमेंसे कोई एक', पर्याप्त और अपर्याप्तमेंसे एक', स्थिर' और अस्थिर', शुभ' और अशुभ', दुर्भग', अनादेय', यशकीर्ति और अयशकीर्तिमेंसे एक' और निर्माण', इन इक्कीस प्रकृतियोंका उदय विग्रहगतिमें वर्तमान एकेन्द्रिय जीवके होता है ।

शंका—यह इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान कितने काल तक रहता है ?

समाधान—जघन्यतः एक समय और उत्कर्षतः तीन समय यह उदयस्थान रहता है ।

यहां अक्षपरावर्तन करके भंग निकालना चाहिये । उनमें अयशकीर्तिके उदय-सहित (बादर-सूक्ष्म और पर्याप्त-अपर्याप्तके विकल्पसे) चार भंग होते हैं । यशकीर्तिके उदयसहित एक ही भंग होता है, क्योंकि, सूक्ष्म और अपर्याप्तके साथ यशकीर्तिके उदयका अभाव है, अथवा यों कहो कि यशकीर्तिके साथ सूक्ष्म और अपर्याप्त प्रकृतियोंका उदय नहीं होता । इस प्रकार यहां भंग पांच होते हैं (५) ।

पूर्वोक्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे आनुपूर्वीको छोड़कर औदारिकशरीर, हुंडसंस्थान, उपघात, तथा प्रत्येक और साधारण शरीरोंमेंसे कोई एक, इन चारको मिला देनेपर चौबीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है ।

शंका—यह चौबीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किस कालमें होता है ?

१ तत्थासत्था णारय-साहारण-सुहुमगे अपुण्णे य । सेसेग-विगलऽसण्णीजुदठाणे जसऽग्रे भंगा ॥ गो.क. ६००.

गह्रिदसरीरपढमसमयप्पहुडि जाव सरीरपज्जत्तीए अणिल्लेविदचरिमसमओ त्ति एदम्हि
द्वाने । केवचिरं ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । एत्थ अजसगित्तीए उदएण अट्ट भंगा ।
जसकित्तीए उदएण एक्को चेव । कुदो ? जसकित्तीए सह सुहुम-अपज्जत्त-साहारणाणं
उदयाभावा । तेण सव्वभंगसमासो णव ॥९॥

पुणो अपज्जत्तमवणिय सेसचउवीसपयडीसु परघादे पक्खित्ते पंचवीसपयडीण-
मुदयद्वानं होदि । एत्थ भंगा अजसकित्तीउदएण चत्तारि । कुदो ? अपज्जत्तउदयस्स
अभावादो । जसकित्तिउदएण एक्को चेव । तेण भंगसमासो पंच ॥५॥ तं कम्हि ?
सरीरपज्जत्तयदपढमसमयमादिं कादूण जाव आणापाणपज्जत्तीए अणिल्लेविदचरिम-
समओ त्ति एदम्हि द्वाने । तं केवचिरं ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

समाधान—शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयसे लेकर शरीरपर्याप्ति अपूर्ण
रहनेके अन्तिम समय तकके कालमें यह उदयस्थान होता है ।

शंका—इस उदयस्थानका काल कितने प्रमाण है ?

समाधान—जघन्य और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ।

यहां अयशकीर्तिके उदयसहित (बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त और प्रत्येक-
साधारणके विकल्पसे) आठ भंग होते हैं । यशकीर्तिके उदयसहित एक ही भंग है,
क्योंकि, यशकीर्तिके साथ सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, इन प्रकृतियोंका उदय नहीं
होता । इस प्रकार सब भंगोंका योग नौ हुआ (९) ।

पूर्वोक्त उदयस्थानकी प्रकृतियोंमेंसे अपर्याप्तको छोड़कर शेष चौबीस प्रकृतियोंमें
परघातको मिला देने पर पच्चीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहांपर
भंग अयशकीर्तिके उदयके साथ (बादर-सूक्ष्म, और प्रत्येक-साधारणके विकल्पसे) चार
होते हैं, क्योंकि, यहांपर अपर्याप्तका उदय नहीं होता । यशकीर्तिके उदयसहित
पूर्ववत् भंग एक ही होता है । इससे यहां भंगोंका योग हुआ पांच (५) ।

शंका—यह पच्चीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किस कालमें होता है ?

समाधान—शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके प्रथम समयको आदि लेकर आनप्राण-
पर्याप्ति अपूर्ण रहनेके अन्तिम समय तकके कालमें यह उदयस्थान होता है ।

शंका—यह उदयस्थान कितने काल तक रहता है ।

समाधान—जघन्य और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण इस उदयस्थानका काल है ।

तस्सेव आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पुव्विल्लपंचवीसपयडीसु उस्सासे पक्खित्ते छवीसपयडीणमुदयट्ठाणं होदि । तं कस्स ? आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स । केवचिरं ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तूणवावीसवस्स-सहस्साणि । एत्थ भंगा पुव्वं व पंचेव होंति । ५ ।।

आदावुज्जोवुदयसहिदएइंदियस्स वुच्चदे— एककवीस-चदुवीसपयडिउदयट्ठाणाणं पुव्वं व परूवणा कादव्वा । णवरि दोणहं पि उदयट्ठाणाणं जसकित्ति-अजस-कित्तिउदएण दोणिण दोणिण चेव भंगा होंति । कुदो ? आदावुज्जोवुदय-भावीणं सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीराणं उदयाभावा । पुणो एदे पुव्वुत्तएककवीस-चउवीसपयडिउदयट्ठाणाणं भंगेसु लद्धा त्ति अवणेदव्वा । पुणो सरीरपज्जत्तीए पज्जत्त-यदस्स परघादे आदावुज्जोवाणाभेक्कदरं च पुव्विल्लचदुवीसपयडीसु पक्खित्ते पणुवीस-

उसी आनप्राणपर्याप्तिसे पूर्ण हुए जीवके पूर्वोक्त पचीस प्रकृतियोंमें उच्छ्वास मिला देनेपर छवीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है ।

शंका— यह छवीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किसके होता है ?

समाधान—आनप्राणपर्याप्तिसे पूर्ण हुए एकेन्द्रिय जीवके यह छवीस प्रकृतियों-वाला उदयस्थान होता है ।

शंका—यह उदयस्थान कितने काल तक रहता है ?

समाधान—जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षनः अन्तर्मुहूर्तसे हीन वार्हस हजार वर्ष तक यह उदयस्थान रहता है ।

यहां भंग पूर्ववत् पांच ही होते हैं (५) ।

अब आताप और उद्योत नामकर्म प्रकृतियोंके साथ होनेवाले एकेन्द्रियके उदय-स्थानोंको कहते हैं— इनमें इक्कीस और चौवीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानोंकी पूर्ववत् प्ररूपणा करना चाहिये । विशेषता केवल इतनी है कि उक्त दोनों उदयस्थानोंके यशकीर्ति और अयशकीर्ति प्रकृतियोंके उदय सहित केवल दो दो ही भंग होते हैं, क्योंकि, जिन जीवोंके आताप और उद्योतका उदय होनेवाला है उनके सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण-शरीर, इन प्रकृतियोंका उदय नहीं होता । किन्तु ये दो दो भंग पूर्वोक्त इक्कीस व चौवीस प्रकृतिसम्बन्धी उदयस्थानोंमें पाये जाते हैं, अतः उन्हें निकाल देना चाहिये ।

पुनः शरीरपर्याप्तिसे पर्याप्त हुए जीवके परघात तथा आताप और उद्योत इन दोनोंमेंसे कोई एक, इस प्रकार दो प्रकृतियोंको पूर्वोक्त चौवीस प्रकृतियोंमें मिला देनेसे

पयडिद्वानमुल्लंघिय छव्वीसपयडिद्वानमुप्पज्जदि । एदं कस्स ? सरीरपज्जत्तीए पज्जत्त-
यदस्स । केवचिरं ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । एत्थ भंगा चत्तारि हवंति । एदे
चत्तारि भंगे पढमछव्वीसभंगेसु पक्खित्ते णव भंगा होंति । तस्सेव आणापाणपज्जत्तीए
पज्जत्तयदस्स छव्वीसपयडीसु उस्सासे पक्खित्ते सत्तावीसपयडीणं उदयद्वानं होदि ।
एत्थ भंगा चत्तारि चेव । सव्वेइंदियाणं सव्वभंगसमासो बत्तीस । ३२ ।

पच्चीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानका उल्लंघनकर छव्वीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान उत्पन्न
होता है ।

शंका—यह छव्वीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किसके होता है ?

समाधान—शरीरपर्याप्तिसे पूर्ण हुए एकेन्द्रिय जीवके होता है ।

शंका—इस छव्वीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानका समय कितना है ?

समाधान—जघन्य और उत्कर्षतः अन्तर्मुहूर्त ।

यहां (यशकीर्ति-अयशकीर्ति तथा आताप-उद्योतके विकल्पसे) भंग चार हैं । इन
चार भंगोंको पूर्वोक्त छव्वीस भंगोंवाले उदयस्थानसम्बन्धी पांच भंगोंमें मिला देनेसे
नौ भंग हो जाते हैं ।

आनप्राणपर्याप्तिसे पूर्ण हुए उसी एकेन्द्रिय जीवके उक्त छव्वीस प्रकृतियोंमें
उच्छ्वासको मिला देनेपर सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहां (यश-
कीर्ति-अयशकीर्ति और आताप-उद्योतके विकल्पसे) भंग चार हैं ।

समस्त एकेन्द्रियोंके सब उदयस्थानसम्बन्धी विकल्पोंका योग होता है
बत्तीस (३२) ।

आताप-उद्योत रहित २१ प्र. स्थान— ५

” ” २४ ” — ९

” ” २५ ” — ५

” ” २६ ” — ५

आताप-उद्योत सहित २१ ” — २

” ” २४ ” — २

” ” २६ ” — ४

” ” २७ ” — ४

३२

ये पूर्वोक्त भंगोंमें आ चुके हैं
इसलिये इन्हें नहीं जोड़ा ।

विशेषार्थ—गोम्मटसार कर्मकाण्डकी ५८८ आदि गाथाओंमें जो उदयस्थान
बतलाये गये हैं उनमें २१ और २४ प्रकृतिसम्बन्धी उदयस्थानोंमें आताप-उद्योत प्रकृतियोंके
उदयका कहीं उल्लेख या संकेत नहीं किया गया । विग्रहगतिमें व अपर्याप्त अवस्थामें इन

विगलिंदियाणं सामण्णेण एकवीस छवीस अट्टावीस-एऊणत्तीस-तीस-एक्कीस ति
छ उदयट्टाणाणि । २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । उज्जोबुदयविरहिदविगलिंदियस्स
पंच बुदयट्टाणाणि होंति, एकक्कीसुदयट्टाणाभावा । बुज्जोबुदयसंजुत्तविगलिंदियस्स वि
पंचेबुदयट्टाणाणि, परघादुज्जोव-अप्पसत्थविहायगदीणमक्कमप्पवेसेण अट्टावीसट्टाणा-
णुप्पत्तीदो ।

उज्जोबुदयविरहिदवेइंदियस्स ताव उच्चदे- तत्थ इमं इगिवीसाए ट्टाणं, तिरिक्ख-
गदि-वेइंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुच्चि-
अगुरुअलहुअ-तस-बादर पज्जत्तापज्जत्ताणमेक्कदरं थिराथिर-सुभासुभ-दुभग-अणादेज्ज
जस-अजसकिणीणमेक्कदरं णिमिणणामं च, एदासिमेक्कवीसपयडीणमेकं ठाणं । तं कस्स ?

प्रकृतियोंका उदय भी संभव नहीं प्रतीत होता । धवलाकारने स्वयं पृष्ठ ३८ पर इन दोनों
प्रकृतियोंके साथ अपर्याप्त प्रकृतिके उदयका अभाव बतलाया है । अतएव यहां पर ऐसा
अर्थ लेना चाहिये कि जिन एकेन्द्रिय जीवोंके आगे चलकर शरीरपर्याप्त पूर्ण हो जाने
पर आताप या उद्योत प्रकृतिका उदय होनेवाला है, उनके सूक्ष्म, अपर्याप्त और
साधारण प्रकृतियोंका उदय नहीं होगा अतएव तत्सम्बन्धी भंग भी उनके नहीं होंगे ।
केवल यशकीर्ति और अयशकीर्तिके विकल्पसे दो दो ही भंग होंगे ।

विकलेन्द्रिय जीवोंके सामान्यतः इक्कीस, छवीस, अट्टाईस, उनतीस, तीस और
इकतीस प्रकृतियोंके सम्बन्धसे छह उदयस्थान हैं । २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ उद्योतके
उदयसे रहित विकलेन्द्रिय जीवके पांच उदयस्थान होते हैं, क्योंकि, उसके इकतीस प्रकृ-
तियोंवाला उदयस्थान नहीं होता । उद्योतके उदय सहित विकलेन्द्रियके भी पांच ही
उदयस्थान होते हैं, क्योंकि, उसके परघात, उद्योत और अग्रशस्तविहायोगति, इन तीन
प्रकृतियोंका एक साथ प्रवेश होनेके कारण अट्टाईस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानकी उपपत्ति
नहीं बनती ।

अब पहले उद्योतोदयसे रहित द्वीन्द्रिय जीवके उदयस्थान कहते हैं । उनमें यह
इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान है— तिर्यचगति^१, द्वीन्द्रियजाति^२, तैजस^३ और कार्मण
शरीर^४, वर्ण^५, गंध^६, रस^७, स्पर्श^८, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी^९, अगुरुलघु^{१०}, त्रस^{११} बादर^{१२},
पर्याप्त और अपर्याप्तमेंसे कोई एक^{१३}, स्थिर^{१४}, अस्थिर^{१५}, शुभ^{१६}, अशुभ^{१७}, दुर्भग^{१८},
अनादेय^{१९}, यशकीर्ति और अयशकीर्तिमेंसे कोई एक^{२०} और निर्माण^{२१}, इन इक्कीस प्रकृति-
योंका एक उदयस्थान होता है ।

शंका—यह इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किस जीवके होता है ?

वेहंदियस्स विग्गहगदीए वट्टमाणस्स । तं केवचिरं ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बे समयया । जसगित्तिउदएण एक्को भंगो । कुदो ? अपज्जत्तोदएण सह जसकित्तीए उदयाभावा । अजसगित्तिउदएण बे भंगा । कुदो ? पज्जत्तापज्जत्ताणमुदएहि सह अजसगित्तिउदयस्स संभवुवलंभा । एत्थ सव्वभंगसमासो तिणिण । ३ ।

एदासु एककवीसपयडीसु आणुपुच्चिमवणेदूण गहिदसरीरपढमसमए ओरालिय-सरीर-हुंडसंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-असंपत्तसेवट्टसंघडण-उवघाद-पत्तेयसरीरेसु पक्खित्तेसु छव्वीसाए द्वाणं होदि । एत्थ भंगसमामो तिणिण । ३ । सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पुव्वुत्तपयडीसु अपज्जत्तमवणिय परघादअप्पसत्थविहायगदीसु पक्खित्तासु अट्टावीसाए द्वाणं होदि । एत्थ जसकित्तिउदएण एक्को भंगो, अजसकित्तिउदएण वि एक्को चेव । कुदो ? पडिवक्खपयडीणमभावादो । एत्थ सव्वभंगा दो चेव । २ ।

आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पुव्वुत्तपयडीसु उस्सासे पक्खित्ते एगुण-

समाधान—यह उदयस्थान उस जीवके होता है जो द्वीन्द्रिय है और विग्रह-गतिमें वर्तमान है ।

शंका—यह उदयस्थान कितने काल तक रहता है ?

समाधान—कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक दो समय ।

यशकीर्तिके उदयके साथ एक ही भंग होता है, क्योंकि, अपर्याप्तोदयके साथ यशकीर्तिका उदय नहीं होता । अयशकीर्तिके उदय सहित दो भंग होते हैं, क्योंकि, पर्याप्त और अपर्याप्तके उदयके साथ अयशकीर्तिका उदय होना संभव है । इस प्रकार यहां सब भंगोंका योग हुआ तीन (३) ।

इन इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे आनुपूर्वीको छोड़कर शरीरग्रहण करनेके प्रथम समयमें औदारिकशरीर, हुंडसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, उपघात और प्रत्येकशरीर, इन छह प्रकृतियोंको मिला देनेसे छव्वीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहां भंगोंका योग (पूर्वोक्तानुसार ही) होता है तीन (३) ।

शरीरपर्याप्त पूर्ण करलेनेवाले द्वीन्द्रिय जीवके पूर्वोक्त छव्वीस प्रकृतियोंमेंसे अपर्याप्तको निकालकर परघात और अग्रशस्तविहायोगति मिला देनेसे अट्टाईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहां यशकीर्तिके उदय सहित एक ही भंग है । और अयशकीर्तिके उदय सहित भी एक ही भंग है, क्योंकि, यहां भी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंका अभाव है । यहां सब भंग हैं केवल दो (२) ।

आनप्राणपर्याप्त पूर्ण करलेनेवाले द्वीन्द्रिय जीवके पूर्वोक्त अट्टाईस प्रकृतियोंमें

तीसाए द्वाणं भवदि । एत्थ वि भंगा दो चेव [२] । भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पुव्वुत्तपयडीसु दुस्सरे पक्खित्ते तीसाए द्वाणं होदि । एत्थ भंगा दो चेव [२] ।

संपदि उज्जोवुदयसंजुत्तवेइंदियस्स भण्णमाणे एककवीस-छव्वीसाओ जधा पुव्वं बुत्ताओ तथा वत्तव्वं । पुणो छव्वीसाए उवरि परघादुज्जोव-अप्पसत्थविहायगदीसु पक्खित्तासु एगुणतीसाए द्वाणं होदि । जसक्कित्तिउदएण एक्को भंगो, अजसक्कित्ति-उदएण एक्को । एत्थ भंगसमासो दोण्णि [२] । पुणो एदेसु दोसु पढमेगुणत्तीसभंगेसु पक्खित्तेसु चत्तारि भंगा होंति । आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स उस्सासे पक्खित्ते तीसाए द्वाणं होदि । एत्थ वि भंगा दो चेव । एदेसु पढमतीसभंगेसु पक्खित्तेसु चत्तारि भंगा होंति । भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स दुस्सरे पक्खित्ते एककतीसाए द्वाणं होदि । एत्थ भंगा दोण्णि । सव्वभंगसमासो अट्ठारस । तिण्हं विगालिंदियाणं भंग-

उच्छ्वास मिला देनेसे उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहां भी भंग दो ही हैं (२) ।

भाषापर्याप्तिको पूर्ण करलेनेवाले द्वीन्द्रिय जीवके पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियोंमें दुस्वर मिला देनेसे तीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहां भी भंग दो ही हैं (२) ।

अब उद्योतके उदय सहित द्वीन्द्रिय जीवके उदयस्थान कहे जाते हैं— इनके इक्कीस और छव्वीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थान तो जैसे ऊपर कह आये हैं उसी प्रकार कहना चाहिये । फिर छव्वीसके ऊपर परघात, उद्योत और अप्रशस्तविहायोगति, इन तीनको मिला देनेपर उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यशकीर्तिके उदय सहित एक भंग होता है और अयशकीर्तिके उदय सहित एक । इस प्रकार यहां भंगोंका योग हुआ दो (२) । फिर इन दो भंगोंमें पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थान सम्बन्धी दो भंगोंको मिला देनेसे भंग हो जाते हैं चार (४) ।

आनप्राणपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले द्वीन्द्रिय जीवके पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियोंमें उच्छ्वास और मिला देनेपर तीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहां भी भंग दो ही हैं (२) । इनमें प्रथम तीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थान सम्बन्धी दो भंग मिला देनेसे चार भंग हो जाते हैं (४) ।

भाषापर्याप्तिको पूर्ण करलेनेवाले द्वीन्द्रिय जीवके पूर्वोक्त तीस प्रकृतियोंमें दुस्वर मिला देनेसे इकतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहां भंग होते हैं दो (२) ।

सब विकल्पोंका योग हुआ अठारह (१८) ।

समासमिच्छामो चि अट्टारससु तिगुणिदेसु चउप्पणभंगा होंति |५४| एत्थ सामित्तादि-
वियप्पा णेरइयाणं व वत्तव्वा । णवरि बेइंदियादीणं तीस एककत्तीसाणं कालो जहण्णेण
अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण जहाकमेण बारस वस्साणि, एगुणवण्णरादिंदियाणि, छम्मासा
अंतोमुहुत्तणा ।

पंचिंदियतिरिक्खस्स सामण्णेण एककवीस-छव्वीस-अट्टावीस-गुणतीस-तीस-एक-
त्तीसेत्ति छउदयद्वानाणि । २१ | २६ | २८ | २९ | ३० | ३१ । वुज्जोवुदयविरहिद-
पंचिंदियतिरिक्खस्स पंच उदयद्वानाणि होंति । कुदो ? तत्थेक्कत्तीसाए उदयाभावा ।
वुज्जोवुदयसंजुत्तपंचिंदियतिरिक्खस्स वि पंचेवुदयद्वानाणि होंति । कुदो ? तत्थद्ववी-

उद्योत रहित उद्योत सहित

२१ प्रकृतियोंवाले स्थानभंग	३	३	} ये छह भंग पूर्वके ही समान होनेसे नहीं जोड़े गये ।
२६ " "	३	३	
२८ " "	२	×	
२९ " "	२	+	२
३० " "	२	+	२
३१ " "	×		२
		१२	+ ६ = १८

अब हमें द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय, इन तीनों विकलेन्द्रिय जीवोंके उदयस्थानोंके भंगोंका योग चाहिये । अतएव अठारहको तीनसे गुणा कर देनेपर चौवन भंग हो जाते हैं (५४) । यहां स्वामित्व आदिके विकल्प जैसे नारकी जीवोंकी प्ररूपणामें पहले कह आये हैं उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये । विशेषता केवल इतनी है कि द्वीन्द्रियादि जीवोंके तीस और इकतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानोंका काल कमसे कम अन्तर्मुहूर्त, और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कम क्रमशः बारह वर्ष, अनंचास रात्रि-दिवस और छह मास होता है । अर्थात् तीस और इकतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानोंका जघन्य काल तो तीनों विकलेन्द्रिय जीवोंके अन्तर्मुहूर्त ही होता है, किन्तु उत्कृष्ट काल द्वीन्द्रियोंके अन्तर्मुहूर्त कम बारह वर्ष, त्रीन्द्रियोंके अन्तर्मुहूर्त कम अनंचास रात्रि-दिन और चतुरिन्द्रिय जीवोंके अन्तर्मुहूर्त कम छह मास होता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचके सामान्यतः इक्कीस, छव्वीस, अट्टाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतियोंवाले छह उदयस्थान होते हैं । २१ | २६ | २८ | २९ | ३० | ३१ । उद्योतोदयसे रहित पंचेन्द्रिय तिर्यंचके पांच उदयस्थान होते हैं, क्योंकि, उसके इकतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान नहीं होता । उद्योतोदय सहित पंचेन्द्रिय तिर्यंचके भी पांच

सुदयद्व्याणाभावादो । वुज्जोबुदयविरहिदपंचिंदियतिरिक्खस्स भण्णमाणे तत्थ इदमेक्क-
वीसाए द्वाणं होदि- तिरिक्खगदि-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस फास-
तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-तस-बादर पज्जत्तापज्जत्ताणमेक्कदरं थिरा-
थिरं सुभासुभं सुभग-दुभगणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जसक्कित्ति-अजस-
क्कित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं च एदासिमेक्कवीसपयडीणमेक्कं चैव द्वाणं । एत्थ
पज्जत्तउदएण अहु भंगा, अपज्जत्तउदएण एक्को । कुदो ? सुभग-आदेज्ज-जसक्कित्तीहि
सह एदस्सुदयाभावा । सव्वभंगसमासो णव । ९ । । सरीरे गहिदे आणुपुव्विमवणिय
ओरालियसरीरं छण्हं संठाणाणं एक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंग छण्हं संघडणाणमेक्कदरं
उवघाद-पत्तेयसरीरमिदि एदेसु कम्मेषु पक्खित्तेषु छव्वीसाए द्वाणं होदि । एत्थ
पज्जत्तउदएण अट्टासीदा वे सदा भंगा होंति । अपज्जत्तउदएण एक्को चैव । कुदो ?
सुहेहि सह अपज्जत्तस्स उदयाभावा । एत्थ सव्वभंगसमासो एकारसूणतिसदमेत्तो । २८९ ।
एत्थ भंगविसयणिच्छयसमुप्पायणट्टमेदाओ गाहाओ वत्तव्वाओ । तं जहा—

ही उदयस्थान होते हैं, क्योंकि, उसके अट्टाईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान नहीं होता ।

अब उद्योतोदय रहित पंचेन्द्रिय तिर्यंचके उदयस्थान कहते हैं । उनमें इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान इस प्रकार है— तिर्यंचगति^१, पंचेन्द्रियजाति^२, तैजस^३ और कार्मणशरीर^४, वर्ण^५, गंध^६, रस^७, स्पर्श^८, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी^९, अगुरुलघुक^{१०}, त्रस^{११}, बादर^{१२}, पर्याप्त और अपर्याप्तमेंसे कोई एक^{१३}, स्थिर^{१४}, और अस्थिर^{१५}, शुभ^{१६} और अशुभ^{१७}, सुभग और दुर्भगमेंसे कोई एक^{१८}, आदेय और अनादेयमेंसे कोई एक^{१९}, यशकीर्ति और अयशकीर्तिमेंसे कोई एक^{२०} और निर्माण^{२१}, इन इक्कीस प्रकृतियोंका एक ही स्थान होता है । यहां पर्याप्तके उदय सहित (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय और यशकीर्ति-अयशकीर्तिके विकल्पोंसे) आठ भंग होते हैं । अपर्याप्तके उदय सहित केवल एक ही भंग है, क्योंकि, सुभग आदेय और यशकीर्ति प्रकृतियोंके साथ अपर्याप्तका उदय नहीं होता । इन सब भंगोंका योग नौ है (९) ।

शरीर ग्रहण करलेनेपर आनुपूर्वीको छोड़ औदारिकशरीर, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहननोंमेंसे कोई एक संहनन, उपघात, और प्रत्येकशरीर, इन छह कर्मोंको मिला देनेपर छव्वीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । यहां पर्याप्तोदय सहित (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान और छह संहनन, इनके विकल्पोंसे २×२×२×६×६=२८८) दो सौ अठासी भंग होते हैं । अपर्याप्तोदय सहित एक ही भंग है, क्योंकि, उक्त वैकल्पिक प्रकृतियोंमेंसे शुभ प्रकृतियोंके साथ अपर्याप्तका उदय नहीं होता । यहां सब भंगोंका योग ग्यारह कम तीनसौ अर्थात् दोसौ नवासी होता है (२८९) ।

यहां भंगोंके विषयमें निश्चय उत्पन्न करानेके लिये ये गाथायें कहने योग्य हैं । जैसे—

संखा तह पत्थारो परियद्वण णट्ट तह समुद्धिदं ।
 एदे पंच वियप्पा द्वाणसमुक्कित्तणा गेयां ॥ ७ ॥
 सव्वे वि पुव्वभंगा उवरिमभंगेसु एककमेक्केसु ।
 मेलंति त्ति य कमसो गुणिदे उप्पज्जदे संखां ॥ ८ ॥
 पढमं पयडिपमाणं क्रमेण णिक्खिविय उवरिमाणं च ।
 पिंडं पडि एककेके णिक्खित्ते होदि पत्थारो ॥ ९ ॥
 णिक्खित्तु विदियमेत्तं पढमं तस्सुवरि विदियमेक्केक्कं ।
 पिंडं पडि णिक्खित्ते एवं सेसा वि कायव्वां ॥ १० ॥
 पढमक्खो अंतगओ आदिगदे संकमेदि विदियक्खो ।
 दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि तदियक्खो ॥ ११ ॥

संख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट और समुद्धिष्ट, इन पांच विकल्पोंको स्थानोंका समुत्कीर्तन अर्थात् विवरण करनेवाले जानना चाहिये ॥ ७ ॥

सभी पूर्ववर्ती भंग उत्तरवर्ती प्रत्येक भंग में मिलते हैं, अतएव उन भंगोंको क्रमशः गुणित करनेपर सब भंगोंकी संख्या उत्पन्न होती है ॥ ८ ॥

पहले प्रकृतिप्रमाणको क्रमसे रखकर अर्थात् उसकी एक एक प्रकृति अलग अलग रखकर एक एकके ऊपर उपरिम प्रकृतियोंके पिंडप्रमाणको रखनेपर प्रस्तार होता है ॥ ९ ॥

दूसरे प्रकृतिपिंडका जितना प्रमाण है उतने वार प्रथम पिंडको रखकर उसके ऊपर द्वितीय पिंडको एक एक करके रखना चाहिये। (इस निक्षेपक योगको प्रथम समझ और अगले प्रकृतिपिंडको द्वितीय समझ तत्प्रमाण इस नये प्रथम निक्षेपको रखकर जोड़ना चाहिये ।) आगे भी शेष प्रकृतिपिंडोंको इसी प्रक्रियासे रखना चाहिये ॥ १० ॥

प्रथम अक्ष अर्थात् प्रकृतिविशेष जब अन्त तक पहुंचकर पुनः आदि स्थानपर आता है, तब दूसरा प्रकृतिस्थान भी संक्रमण कर जाता है अर्थात् अगली प्रकृतिपर पहुंच जाता है; और जब ये दोनों स्थान अन्तको पहुंचकर आदिको प्राप्त हो जाते हैं तब तृतीय अक्षका भी संक्रमण होता है ॥ ११ ॥

१ प्रतिषु ' तस्समुद्धिदं ' इति पाठः ।

२ गो. जी. ३५.

४ गो. जी. ३८.

३ गो. जी. ३६.

५ गो. जी. ४०.

सगमाणेण विहत्ते सेसं लक्खित्तु पक्खिवे^१ रूपं ।

लक्खिज्जंते सुद्धे एवं सव्वन्थ कायव्वं^२ ॥ १२ ॥

संठाविदूण^३ रूपं उवरीदो संगुणित्तु सगमाणे ।

अवणेज्जोणंकिदयं कुज्जा पटमंतियं जावं^४ ॥ १३ ॥

जितनेवां उदयस्थान जानना अभीष्ट हो उसी स्थानसंख्याको पिंडमानसे विभक्त करे। जो शेष रहे उसे अक्षस्थान समझे। पुनः लब्धमें एक अंक मिलाकर दूसरे पिंडमानका भाग देवे और शेषको अक्षस्थान समझे। जहां भाग देनेसे कुछ न बचे वहां अन्तिम अक्षस्थान समझे और फिर लब्धमें एक अंक न मिलावे। इस प्रकार समस्त पिंडों द्वारा विभाजनक्रिया करनेसे उद्दिष्ट स्थान निकल आता है ॥ १२ ॥

एक अंकको स्थापित करके आगेके पिंडका जो प्रमाण हो उससे गुणा करे और लब्धमेंसे अनंकितको घटा दे। ऐसा प्रथम पिंडके अंत तक करता जावे। इस प्रकार उद्दिष्ट निकल आता है ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—पूर्वोक्त सात गाथाओंमें यह बतलाया गया है कि जब अनेक पिंडोंके अन्तर्गत विशेष पदोंके विकल्पोंसे भिन्न भिन्न भंग बनते हैं तब उन सब भंगोंकी संख्या किस प्रकार निकाली जाय, उस संख्याप्रमाण सब भंगोंको क्रमसे जाननेके लिये किस किस प्रकार विस्तार किया जा सकता है, उस विस्तारसे किस प्रकार भंगोंमें परिवर्तन होते हैं, किसी स्थानविशेषकी क्रमसंख्यामात्रके उल्लेखसे उस स्थानवर्ती विशेषोंको कैसे जाना जा सकता है या विशेषोंके नामोल्लेखसे उसकी क्रमसंख्या किस प्रकार जानी जा सकती है। गाथा नं. ७ में इन्हीं प्रक्रियाओंके पांच नामोंका उल्लेख है। भंगोंके प्रमाणको संख्या, उस संख्याप्रमाण भंग प्राप्त करनेकी प्रक्रियाको प्रस्तार, उत्तरोत्तर एक एक विकल्पके नामपरिवर्तनको परिवर्तन, क्रमिक संख्याके उल्लेखसे विकल्पके विशेषोंको जाननेके प्रकारको नष्ट, और विकल्प-विशेषके नामोल्लेखसे उसकी क्रमिक संख्याको जाननेके प्रकारको समुद्दिष्ट कहा है।

गाथा नं. ८ में भंगोंकी सम्पूर्ण संख्या निकालनेका प्रकार बतलाया गया है जिसका उपयोग प्रकृतमें पंचेन्द्रिय जीवोंके सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान और छह संहनन, इनके विकल्पों द्वारा उत्पन्न उदयस्थानोंकी भंगसंख्या निकालनेमें किया जा सकता है। इसके लिये प्रक्रिया यह है कि प्रकृत पिंडप्रमाणोंकी संख्याओंको क्रमशः रखकर परस्पर गुणा कर दो जिससे $२ \times २ \times २ \times ६ \times ६ = २८८$ दो सौ अठ्ठासी विकल्प आ जाते हैं।

१ प्रतिषु 'पक्खिवे' इति पाठः ।

२ प्रतिषु 'संठाविदूण' इति पाठः ।

३ गो. जी. ४१.

४ गो. जी. ४२.

गाथा नं. ९ और १० में बतलाई गई दो भिन्न भिन्न प्रकारकी प्रस्तारप्रक्रियाका स्पष्टीकरण अक्षपरिवर्तनकी प्रक्रियासे होता है जो निम्न प्रकार है—

गाथा नं. ११ में जो अक्षपरिवर्तनका क्रम बतलाया गया है वह द्वितीय प्रस्तारकी अपेक्षा (गाथा नं. १० के अनुसार) सम्भव है। प्रथम प्रस्तारकी अपेक्षा अक्षपरिवर्तनकी निरूपक गाथा यहाँ नहीं दी गई। यह गाथा गोस्मटसार (जी. कां.) के प्रमाद प्रकरणमें इस प्रकार पायी जाती है—

तदियक्खो अंतगदो आदिगदे संकमेदि विदियक्खो ।

दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि पढमक्खो ॥ ३९ ॥

अर्थात् तृतीय अक्ष जब आलापक्रमसे अपने अन्त तक जाकर व फिरसे लौटकर एक साथ अपने प्रथम स्थानको प्राप्त हो जाता है, तब द्वितीय अक्ष बदलकर दूसरे स्थानको प्राप्त होता है। इस प्रकार दोनों ही अक्ष अन्तको प्राप्त होकर व फिरसे लौटकर जब अपने अपने प्रथम स्थानको प्राप्त होते हैं तब प्रथमाक्ष प्रथम स्थानको छोड़कर द्वितीय स्थानपर पहुँच जाता है।

इसके अनुसार प्रकृतमें आलापभेदोंका क्रम निम्न प्रकार होगा—

१	सुभग, आदेय, यशकीर्ति, समचतुरस्र., वज्रवृषभ.
२	” ” ” ” वज्रनाराच.
३	” ” ” ” नाराच.
४	” ” ” ” अर्धनाराच.
५	” ” ” ” कीलित.
६	” ” ” ” असंप्राप्ता.
७	” ” ” ” न्यग्रोध. वज्रवृषभ.
८	” ” ” ” वज्रनाराच.
९	” ” ” ” नाराच.
१०	” ” ” ” अर्धनाराच.

इस प्रकार जैसे समचतुरस्र सहित ६ भंग बने हैं वैसे ही न्यग्रोध सहित ६ भंग बनेंगे और फिर शेष चार संस्थानोंके भी क्रमशः छह छह भंग होंगे जिनका योग होगा ३६। फिर ये ही ३६ भंग अयशकीर्तिके साथ होंगे। फिर अनादेयके यशकीर्तिके साथ ३६ और अयशकीर्तिके साथ ३६ भंग होकर ७२ भंग होंगे। पश्चात् दुर्भंगको लेकर ३६ आदेय यशकीर्ति सहित, ३६ आदेय-अयशकीर्ति सहित, ३६ अनादेय-यशकीर्ति सहित और ३६ अनादेय-अयशकीर्ति सहित ऐसे १४४ भंग होंगे। इस प्रकार इन सबका योग होगा ३६+३६+७२+१४४=२८८।

द्वितीय प्रस्तारकी अपेक्षा (गाथा नं. ११ के अनुसार) आलापभेदोंका क्रम निम्न प्रकार होगा—

१	सुभग,	आदेय,	यशकीर्ति,	समचतुरस्र.,	वज्रवृषभ.
२	दुर्भग	"	"	"	"
३	सुभग,	अनादेय	"	"	"
४	दुर्भग	"	"	"	"
५	सुभग,	आदेय,	अयशकीर्ति,	"	"
६	दुर्भग	"	"	"	"
७	सुभग,	अनादेय	"	"	"
८	दुर्भग	"	"	"	"
९	सुभग,	आदेय,	यशकीर्ति,	न्यग्रोध.	"
१०	दुर्भग	"	"	"	"

इस प्रकार जैसे यहां आदेय सहित २, अनादेय सहित २, फिर अयशकीर्ति-आदेय सहित २ और अयशकीर्ति-अनादेय सहित २ ऐसे ८ भंग बने हैं, वैसे ही न्यग्रोध-यशकीर्ति-आदेय सहित २, न्यग्रोध-यशकीर्ति-अनादेय सहित २, न्यग्रोध-अयशकीर्ति-आदेय सहित २ और न्यग्रोध-अयशकीर्ति-अनादेय सहित २ ऐसे ८ भंग बनेंगे और फिर शेष चार संस्थानोंके भी क्रमशः आठ आठ भंग होकर छहों संस्थानोंके ४८ भंग होंगे। जिस प्रकार ये ४८ भंग प्रथम संहनन सहित हुए हैं उसी प्रकार शेष पांच संहननोंके भी क्रमशः अड़तालीस अड़तालीस भंग होकर सब भंगोंका योग $४८ \times ६ = २८८$ हो जायगा।

गाथा नं. ११ में क्रमिक संख्यापरसे विवक्षित भंग जाननेकी विधि बतलाई है। उदाहरणार्थ — हमें यह जानना है कि उक्त २८८ भंगोंमेंसे १४५ वां भंग कौनसा होगा। अब हमें १४५ को सबसे पहले प्रथम पिंडमान २ से भाजित करना चाहिये जिससे लब्ध ७२ आये और शेष बचा १। अतएव प्रथम स्थानमें सुभग है। फिर लब्धमें १ मिलाकर दूसरे पिंडप्रमाण २ का भाग देनेसे लब्ध आये ३६ और शेष बचा १। इससे जाना गया कि दूसरे स्थानमें आदेय है। फिर लब्धमें १ मिलाकर तीसरे पिंडमान २ का भाग देनेसे लब्ध आये १८ और शेष रहा १। इससे जाना कि तीसरे स्थानमें यशकीर्ति है। फिर लब्धमें एक मिलाकर चौथे पिंडमान ६ का भाग देनेसे लब्ध आये ३ और शेष बचा १। इससे जाना कि चौथे स्थानमें समचतुरस्रसंस्थान है। फिर लब्धमें १ मिलानेपर अन्तिम पिंडमान ६ का भाग न जाकर शेष बचे ४ से अन्तिम पिंडकी चौथी प्रकृति अर्धनाराचसंहनन समझना चाहिये। अतएव १४५ वां भंग सुभग आदेय यशकीर्ति समचतुरस्रसंस्थान व अर्धनाराचसंहनन प्रकृतियोंवाला होगा।

गाथा नं. १३ में विकल्पके नामोल्लेख परसे उसकी क्रमिक संख्या जाननेकी विधि बतलाई गयी है। उदाहरणार्थ— हम जानना चाहते हैं कि दुर्भग, अनादेय, अयशकीर्ति न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान और कीलकशरीरसंहनन कौनसे नम्बरके भंगमें आवेंगे। यहाँ १ अंकको रखकर उसे अन्तिम पिंडमान ६ से गुणा किया और लब्धमेंसे अनंकित १ घटा दिया, क्योंकि, कीलकशरीर पांचवां संहनन है। घटानेसे जो ५ बचे उन्हें अगले पिंडमान ६ से गुणा किया जिससे लब्ध आये ३०। इसमेंसे घटाये ४, क्योंकि, न्यग्रोध-परिमंडल ६ संस्थानोंमेंसे दूसरा ही है। शेष बचे २६ को उससे पूर्ववर्ती पिंडमान दोसे गुणा किया और घटाया कुछ नहीं, क्योंकि, पिंडमान दोमेंसे द्वितीय प्रकृतिको ही ग्रहण किया है अतः अनंकित कुछ नहीं है। इस प्रकार लब्ध ५२ को पुनः २ से गुणा किया फिर भी कुछ नहीं घटाया, क्योंकि, यहाँ भी दोमेंसे दूसरी ही प्रकृति ग्रहण की है। अतएव लब्ध हुए १०४ जिसे पुनः प्रथम पिंडमान २ से गुणा किया और यहाँ भी कुछ नहीं घटाया, क्योंकि, यहाँ भी दूसरी प्रकृति ग्रहण की है। अतएव उक्त विकल्पकी क्रमिक संख्या $१०४ \times २ = २०८$ वीं हुई।

इस प्रकार जहाँ भी अनेक पिंडान्तर्गत विशेषोंके विकल्पसे अनेक भंग बनते हैं वहाँ उनकी संख्यादि ज्ञात की जा सकती है। नीचे दो यंत्र दिये जाते हैं जिनसे किसी भी भंगसंख्याके आलापका व किसी भी आलापसे उसकी भंगसंख्याका ज्ञान पांचों अक्षोंके कोष्ठकोंमें दिये हुए अंकोंके जोड़नेसे प्राप्त किया जा सकता है—

प्रथम प्रस्तार (गाथा २०) की अपेक्षा भंगोंके जाननेका यंत्र

सुभग १	दुर्भग २				
आदेय ०	अनादेय २				
यशकीर्ति ०	अयशकीर्ति ४				
समचतु. ०	न्यग्रोध. ८	स्वाति. १६	कुञ्जक. २४	वामन. ३२	हुण्डक. ४०
वज्रवृषभ. ०	वज्रनाराच. ४८	नाराच. ९६	अर्धनाराच. १४४	कीलित. १९२	असंप्राप्ति. २४०

शरीरपञ्जतीए पञ्जत्तयदस्स अपञ्जत्तमवणिय परघादो दोण्हं विहायगदीण-
मेक्कदरे च पक्खित्ते अट्टावीसाए ट्ठणं होदि । भंगा पंच सदा छावत्तरा होंति | ५७६ | ।
आणापाणपञ्जतीए पञ्जत्तयदस्स उस्सासे पक्खित्ते ण्णुणतीसाए ट्ठणं होदि । भंगा
तेत्तिया चेव | ५७६ | । भासापञ्जतीए पञ्जत्तयदस्स सुस्सर-दुस्सरेसु एक्कदरे पक्खित्ते
तीसाए ट्ठणं होदि । भंगा एक्कारस सदाणि बावणाहियाणि | ११५२ | ।

द्वितीय प्रस्तार (गाथा २१) की अपेक्षा भंगोंके जाननेका यंत्र

वज्रवृषभ. १	वज्रनाराच. २	नाराच. ३	अर्धनाराच. ४	कीलित ५	असंप्राप्ति. ६
समचतु. ०	न्यग्रोध. ६	स्वाति. १२	कुब्जक. १८	वामन. २४	हुण्डक. ३०
यशकीर्ति ०	अयशकीर्ति ३६				
आदेय ०	अनादेय ७२				
सुभग ०	दुर्भग १४४				

शरीरपर्याप्तिको पूर्ण करलेनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचके पूर्वोक्त छव्वीस प्रकृतियों-
वाले उदयस्थानमेंसे अपर्याप्तिको निकालकर व परघात और दो विहायोगतियोंमेंसे
कोई एक, इन दो प्रकृतियोंके मिला देनेपर अट्टाईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता
है । यहां भंग (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान, छह
संहनन तथा प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, इन विकल्पोंके भेदसे) पांच सौ छयत्तर
होते हैं (५७६) ।

आनप्राणपर्याप्तिको पूर्ण करलेनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचके पूर्वोक्त अट्टाईस
प्रकृतियोंमें उच्छ्वास मिलादेनेसे उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहां
भंग उतने ही अर्थात् पांच सौ छयत्तर ही हैं (५७६) ।

भाषापर्याप्तिको पूर्ण करलेनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचके पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियोंमें
सुस्वर और दुस्वरमेंसे कोई एक मिलादेनेसे तीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है ।
यहां (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान, छह संहनन,
प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति और सुस्वर-दुस्वर, इनके विकल्पसे) भंग ग्यारह सौ बावन
हो जाते हैं (११५२) ।

उच्चोवुदयसंजुत्तपंचिदियतिरिक्खस्स एककवीस-छव्वीसुदयद्वाणाइं पुव्वं व वत्त-
व्वाइं । पुणो सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स परघादुज्जोवेसु पसत्थापसत्थाण विहाय-
गदीणमेक्कदरे च पविट्ठेसु एगुणतीसाए द्वाणं होदि । भंगा पंच सदा छावत्तरा |५७६| ।
पुणो एदेसु पढमेगुणतीसाए भंगेसु पक्खित्तेसु सव्वभंगपमाणं एककारस सदाणि
बावणाणि होदि |११५२| । आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स उस्तासे पक्खित्ते
तीसाए द्वाणं होदि । एत्थ पंच सदा छावत्तरि भंगा |५७६| । पुणो एदेसु पढम-
तीसाए भंगेसु छुट्ठेसु सत्तारस सयाइमट्ठवीसाइं तीसाए सव्वभंगा होंति |१७२८| ।
भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स सुस्सर-दुस्सरणमेक्कदरे छुट्ठे एककत्तीसाए द्वाणं होदि ।
भंगा एककारस सदाणि बावणाणि |११५२| । पंचिदियतिरिक्खाणं सव्वभंगसमासो

उद्योतोदयके सहित पंचेन्द्रिय तिर्यचके इक्कीस और छव्वीस प्रकृतियोंवाले
उदयस्थान पूर्वोक्त प्रकारसे ही कहना चाहिये । पुनः शरीरपर्याप्त पूर्ण करलेनेवाले
पंचेन्द्रिय तिर्यचके उक्त छव्वीस प्रकृतियोंमें परघात, उद्योत, और प्रशस्त-अप्रशस्त
विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, इस प्रकार तीन प्रकृतियां मिलादेनेसे उनतीस प्रकृतियों-
वाला उदयस्थान हो जाता है । यहां (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयश-
कीर्ति, छह संस्थान, छह संहनन, और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, इनके विकल्पसे)
भंग पांच सौ छयत्तर होते हैं (५७६) । पुनः इन भंगोंको पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियोंवाले
उदयस्थान सम्बन्धी भंगोंमें मिलादेनेसे उनतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानोंके सब
भंगोंका योग (५७६+५७६=) ११५२ ग्यारह सौ बावन हो जाता है ।

आनप्राणपर्याप्त पूर्ण करलेनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यचके पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियोंमें
उच्छ्वास मिलादेनेपर तीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । यहां भंग (पूर्वोक्त प्रकारसे)
पांच सौ छयत्तर हैं (५७६) । पुनः इन भंगोंमें पूर्वोक्त तीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थान
सम्बन्धी ११५२ भंग मिलादेनेपर तीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थान सम्बन्धी सब भंगोंका
योग (११५२+५७६=) १७२८ सत्तरह सौ अट्ठाईस होता है ।

भाषापर्याप्तिको पूर्ण करलेनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यचके पूर्वोक्त तीस प्रकृतियोंमें
सुस्वर और दुस्वर इनमेंसे कोई एक मिलादेनेपर इकतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान
हो जाता है । यहां भंग (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह
संस्थान, छह संहनन, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति और सुस्वर-दुस्वरके विकल्पोंसे)
ग्यारह सौ बावन होते हैं (११५२) ।

पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके समस्त भंगोंका योग चार हजार नौ सौ छह होता

चत्वारि सहस्साइं णव सयाइं छच्चेव होइ | ४९०६ | । तिरिक्खाणं सव्वभंगसमासो पंच सहस्साणि अट्टणाणि | ४९९२ | । पंचिदियतिरिक्खुदयट्टाणाणं सामित्तं कालो च पुच्चं व वत्तव्वो । णवरि तीसेक्कतीसाणं कालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तमुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तणाणि तिण्णि पल्लिदोवमाणि ।

मणुस्साणं^१ सामण्णेण एककारसुदयट्टाणाणि वीस-एक्कीस-पंचवीस-छव्वीस-सत्तावीस-अट्टावीस-एगूणतीस-तीस-एक्कीस-णव-अट्ट होंति । २० । २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ । सामणमणुस्सा विसेसमणुस्सा विसेसविसेस-मणुस्सा त्ति तिविहा मणुस्सा । सामणमणुस्साणं भण्णमाणे तत्थ इमं एकक्कीसाए ट्टाणं— मणुस्सगदि-पंचिदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुस्सगदि-

हे (४९०६) ।

	उद्योत राहित	उद्योत सहित	
२१ प्रकृतियोंवाले उदयस्थान	९	९	पूर्व भंगोंके ही समान होनेसे इन्हें नहीं जोड़ा गया ।
२६ " " "	२८९	२८९	
२८ " " "	५७६	×	
२९ " " "	५७६	+ ५७६	
३० " " "	११५२	+ ५७६	
३१ " " "	×	११५२	
		२६०२	+ २३०४ = ४९०६

पंचेन्द्रिय तिर्यच्चोंके उदयस्थानोंके स्वामित्व और कालका कथन पूर्वानुसार अर्थात् जैसा नारकियोंके उदयस्थानोंकी प्ररूपणामें कर आये हैं उसी प्रकार करना चाहिये । यहां विशेषता इतनी है कि तीस और इक्कीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम है ।

मनुष्योंके सामान्यतः वीस, इक्कीस, पच्चीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्टाईस, उनतीस, तीस, इक्कीस, नौ और आठ प्रकृतियोंवाले ग्यारह स्थान होते हैं । २० । २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ ।

मनुष्य तीन प्रकारके हैं— सामान्य मनुष्य, विशेष मनुष्य और विशेष-विशेष मनुष्य । सामान्य मनुष्योंके कथनमें यह प्रथम इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान है— मनुष्यगति^१, पंचेन्द्रिय जाति^२, तैजस^३ और कर्मण^४ शरीर, वर्ण^५, गंध^६, रस^७, स्पर्श^८, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी^९, अगुरुलघुक^{१०}, त्रस^{११}, बादर^{१२}, पर्याप्त और अपर्याप्तमेंसे

१ प्रतिषु ' मणुस्साणि ' इति पाठः ।

पाओभगाणुपुव्वि-अगुरुगलहुग-तस-वादर पज्जत्तापज्जत्ताणमेक्कदरं थिराथिरं सुभासुभं सुभग-दुभगाणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं च एदासिं पयडीणमेक्कमुदयट्ठाणं । पज्जत्तउदएण अट्ठ भंगा, अपज्जत्त-उदएण एक्को, तेसिं समासो णव । ९ । गहिदसरीरस्स मणुस्साणुपुव्विमवणेदूण ओरालियसरीर-छसंठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्णं संघडणाणमेक्कदरं उवघादं पत्तेयसरीरं च घेत्तूण पक्खित्ते छव्वीसाए ट्ठाणं होदि । भंगा एक्कारसूणत्तिसदमेत्ता । २८९ । सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स अपज्जत्तमवणिय परघाद पसत्थापसत्थविहाय-गदीणमेक्कदरं च घेत्तूण पक्खित्ते अट्ठावीसाए ट्ठाणं होदि । भंगा चउवीसूणत्तिसदमेत्ता । ५७६ । आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स उस्सासं घेत्तूण पक्खित्ते एगुणतीसाए ट्ठाणं होदि ।

कोई एक^{१३}, स्थिर^{१४}, अस्थिर^{१५}, शुभ^{१६}, अशुभ^{१७}, सुभग और दुर्भगमेंसे कोई एक^{१८}, आदेय और अनादेयमेंसे कोई एक^{१९}, यशकीर्ति और अयशकीर्तिमेंसे कोई एक^{२०} और निर्माण^{२१}, इन प्रकृतियोंका एक उदयस्थान होता है । यहां पर्याप्तोदय सहित (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय और यशकीर्ति-अयशकीर्तिके विकल्पोंसे) आठ भंग होते हैं । अपर्याप्तोदय सहित एक ही भंग है (क्योंकि सुभग, आदेय और यशकीर्तिके साथ अपर्याप्तका उदय नहीं होता) । पर्याप्त और अपर्याप्तके भंगोंका योग हुआ नौ (८ + १ = ९)

शरीर ग्रहण करलेनेवाले मनुष्यके पूर्वोक्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे आनुपूर्वीको छोड़कर औदारिकशरीर, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहननोंमेंसे कोई एक, उपघात और प्रत्येकशरीर, इस प्रकार छह प्रकृतियां मिलादेनेपर छव्वीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहां भंग (पर्याप्तके उदय सहित सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान और छह संहननके विकल्पोंसे २×२×२×६×६=२८८ और अपर्याप्तोदय सहित भंग १, इस प्रकार) दो सौ नवासी होते हैं (२८९) ।

शरीरपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले मनुष्यके पूर्वोक्त छव्वीस प्रकृतियोंमेंसे अपर्याप्तको छोड़कर परघात तथा प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, ऐसी दो प्रकृतियोंको मिलादेनेसे अट्ठाईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । यहां भंग (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान, छह संहनन और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, इनके विकल्पोंसे २×२×२×६×६×२=) ५७६ पांच सौ छयत्तर या चौबीस कम छह सौ होते हैं ।

आनप्राणपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले मनुष्यके पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियोंमें उच्छ्वासको लेकर मिलादेनेसे उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । यहां भंग

भंगा तत्तिया चव | ५७६ | भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स सुस्सरदुस्सराणमेक्कदरे पक्खित्ते चीसाए द्वाणं होदि । भंगा अट्टेदालीसूणवारससदमेत्ता' | ११५२ |

संपहि आहारसरीरोदइल्लाणं विसेसमणुस्साणं भण्णमाणे तेसिं पंचवीस-सत्तावीस-अट्टावीस-एगुणतीस त्ति चत्तारि उदयट्टाणाणि । २५ । २७ । २८ । २९ । मणुस्सगदि-पंचिदियजादि-आहार-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-आहारसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-उवघाद-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-आदेज्ज-जसक्कित्ति-णिमिणणामाणि एदासिं पणुवीसपयडीणमेक्कमुदयट्टाणं । भंगो एक्को | १ | । सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स परघाद-पसत्थविहायगदीसु पक्खित्तासु सत्तावीसाए द्वाणं होदि । भंगो एक्को | १ | । आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स उस्सासे संछुद्धे अट्टावीसाए द्वाणं होदि । भंगो एक्को | १ | । भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स

पूर्वोक्त प्रकार पांच सौ छयत्तर ही हैं (५७६) ।

भाषापर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले मनुष्यके पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियोंमें सुखर और दुखरमेंसे कोई एक मिलादेनेपर तीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । यहां भंग (पूर्वोक्त विकल्पोंके अतिरिक्त सुखर-दुस्वरके विकल्पसे $२ \times २ \times २ \times ६ \times ६ \times २ \times २ =$) ११५२ ग्यारह सौ बावन या अड़तालीस कम बारह सौ हैं ।

अब आहारकशरीरके उदयवाले विशेष मनुष्योंके उदयस्थान कहते हैं । उनके पच्चीस, सत्ताईस, अट्टाईस और उनतीस प्रकृतियोंवाले चार उदयस्थान होते हैं । २५ । २७ । २८ । २९ । मनुष्यगति', पंचेन्द्रिय जाति', आहारक', तैजस' और कामर्ण' शरीर, समचतुरस्रसंस्थान', आहारकशरीरांगोपांग', वर्ण', गंध', रस', स्पर्श', अगुरुलघुक', उपघात', त्रस', बादर', पर्याप्त', प्रत्येकशरीर', स्थिर', अस्थिर', शुभ', अशुभ', सुभग', आदेय', यशकीर्ति' और निर्माण', इन पच्चीस प्रकृतियोंका एक उदयस्थान होता है । यहां भंग एक ही है (१) ।

शरीरपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले विशेष मनुष्यके पूर्वोक्त पच्चीस प्रकृतियोंमें परघात और प्रशस्तविहायोगति मिलादेनेसे सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहां भंग एक है (१) ।

आनप्राणपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले विशेष मनुष्यके पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकृतियोंमें उच्छ्वास मिलादेनेसे अट्टाईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । यहां भंग एक है (१) ।

भाषापर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले विशेष मनुष्यके पूर्वोक्त अट्टाईस प्रकृतियोंमें

१ सण्णिम्मि मणुस्साम्मि य ओघेक्कदरं तु केवले वज्जं । सुभगादेज्जजसाणि य तित्थुद्धे सत्थमेदीदि ॥
गो. क. ६०१.

सुस्सरे पक्खित्ते एगूणतीसाए द्वाणं होदि । भंगो एक्को | १ | । सव्वभंगसमासो चत्तारिं | ४ | ।

विसेसविसेसमणुस्साणं पणुवीसं मोत्तूण दस उदयद्वानाणि होंति । २० । २१ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ । मणुस्सगदि-पंचिदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-तस-बादर-पज्जत्त-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणणामाणि एदासिं वीसण्हं पयडीणं पदरलोकपूरणगद-सजोगिकेवलिसस उदओ होदि । भंगो एक्को | १ | । जदि तित्थयरो तो तित्थयरोदएण एक्कवीसाए द्वाणं होदि । भंगो एक्को । क्वाडं गदस्स एदाओ चेव पयडीओ । णवरि ओरालियसरीर-समचउरससंठाणं । तित्थयरुदयविरहियाणं छण्णं संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-उवघाद-पत्तेयसरीरं च वेत्तूण छव्वीसाए वा सत्त-

सुखर मिलादेनेपर उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । यहां भंग एक है (१) । इस प्रकार विशेष मनुष्यके चारों उदयस्थानों सम्बन्धी सब भंगोंका योग चार हुआ (४) ।

विशेष-विशेष मनुष्योंके पूर्वोक्त ग्यारह उदयस्थानोंमेंसे पच्चीस प्रकृतियोंवाले एक उदयस्थानको छोड़कर शेष दश उदयस्थान होते हैं । २० । २१ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ । मनुष्यगति^१, पंचेन्द्रियजाति^२, तैजस^३ और कार्मणशरीर^४, वर्ण^५, गंध^६, रस^७, स्पर्श^८, अगुरुलघु^९, त्रस^{१०}, बादर^{११}, पर्याप्त^{१२}, स्थिर^{१३}, अस्थिर^{१४}, शुभ^{१५}, अशुभ^{१६}, सुभग^{१७}, आदेय^{१८}, यशकीर्ति^{१९} और निर्माण^{२०} इन वीस नामकर्म प्रकृतियोंका उदय प्रतर और लोकपूरण समुद्धात करनेवाले सयोगिकेवलीके होता है । यहां भंग एक है (१) ।

यदि वह सयोगिकेवली तीर्थकर हो तो पूर्वोक्त वीस प्रकृतियोंके अतिरिक्त तीर्थकर प्रकृतिके उदय सहित इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । भंग एक (१) ।

कपाट समुद्घात करनेवाले विशेषविशेष मनुष्यके भी ये ही प्रकृतियां उदयमें आती हैं, विशेषता केवल यह है कि उनके औदारिकशरीर और समचतुरस्रसंस्थान होता है । तीर्थकर प्रकृतिके उदयसे रहित जीवोंके छह संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिक शरीरांगोपांग, वज्रऋषभनाराचसंहनन, उपघात और प्रत्येकशरीर, इन प्रकृतियोंके ग्रहण करलेनेसे छव्वीस या सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहां भंग छव्वीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानमें छहों संस्थानोंके विकल्पसे छह होंगे और

१ देवाहारे सत्थं कालवियप्पेसु भंगमाणेज्जो । वोच्छिण्णं जाणित्ता गुणपड्डिवण्णेसु सव्वेसु ॥ गो. क. ६०२.

वीसाए वा ड्वाणं होदि । भंगा दोणहं पि छ एक्को । ६ । १ । तित्थयरुदएण वा अणुदएण वा दंडगदस्स परघादं पसत्थापसत्थविहायगदीणमेक्कदरं च घेत्तूण पक्खित्ते अट्ठावीसाए वा एगुणतीसाए वा ठाणं होदि । णवरि तित्थयरारणं पसत्थविहायगदी एक्का चैव उप्पज्जदि' । भंगा अट्ठावीसाए बारस, एगुणतीसाए एक्को । १२ । १ । आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स उस्सासे पक्खित्ते तीसाए एगुणतीसाए वा ठाणं होदि । भंगा एगुणतीसाए बारस, तीसाए एक्को । १२ । १ । भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स सुस्सर-दुस्सरेसु एक्कदरम्मि पविट्ठे तीसाए एक्कतीसाए वा ड्वाणं होदि । भंगा तीसाए चउवीस | २४ | । एक्कतीसाए एक्को, तित्थयरारणं दुस्सर-अप्पमत्थ-विहायगदीणं उदयाभावा | १ | ।

सत्ताईस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानमें केवल एक होगा । ६ । १ ।

तीर्थंकर प्रकृतिके उदयसे रहित पूर्वोक्त छब्बीस प्रकृतियोंमें परघात और प्रशस्त व अप्रशस्त विहायोगतिमेंसे कोई एक लेकर मिलादेनेसे अट्ठाईस प्रकृतियोंवाला तथा तीर्थंकर प्रकृतिके उदय सहित सत्ताईस प्रकृतियोंमें उक्त दो प्रकृतियां मिलादेनेसे उनतीस प्रकृतियोंवाला दंडसमुद्घातगत केवलीका उदयस्थान होता है । विशेषता यह है कि तीर्थंकरोंके केवल एक प्रशस्तविहायोगति ही उदयमें आती है । इस प्रकार अट्ठाईस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानके (छह संस्थान और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगतिके विकल्पोंसे) बारह भंग होते हैं, और उनतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानका विकल्प रहित केवल एक ही भंग है । (१२ । १ ।)

पूर्वोक्त विशेष-विशेष मनुष्यके आनप्राणपर्याप्ति पूर्ण करलेनेपर उक्त अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतियोंमें उच्छ्वास मिलादेनेपर क्रमशः उनतीस व तीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । इनके भंग पूर्वोक्तानुसार उनतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानके बारह और तीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानका केवल एक है । (१२ । १ ।)

उसी विशेष-विशेष मनुष्यके भाषापर्याप्ति पूर्ण करलेनेपर पूर्वोक्त उनतीस व तीस प्रकृतियोंमें सुस्वर और दुस्वरमेंसे कोई एक मिलादेनेसे क्रमशः तीस और इकतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । तीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानके भंग (छह संस्थान, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति और सुस्वर-दुस्वरके विकल्पोंसे) चौबीस होते हैं (२४) । तथा इकतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानका भंग केवल मात्र एक होता है (१) क्योंकि, तीर्थंकरोंके दुस्वर और अप्रशस्त विहायोगति (तथा प्रथम संस्थानको छोड़ शेष पांच संस्थानों) का उदय नहीं होता ।

१ मप्रती ' उज्जदि ' इति पाठः ।

एकत्तीसपयडीणं णामणिहेसो कीरदे- मणुस्सगदि-पंचिदियजादि-ओरालिय-
तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससरीरसंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-
गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-
पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयराणि त्ति
एदाओ एकत्तीसपयडीओ उदेति तित्थयरस्स' । एदस्स कालो जहण्णेण वासपुधत्तं ।
कुदो ? तित्थयरोदइल्लसजोगिजिणविहारकालस्स सव्वजहण्णस्स वि वासपुधत्तादो हेड्ढदो
अणुवलंभा । उक्कस्सेण अंतोसुहुत्तब्भहियगब्भादिअट्ठवस्सेणूणा पुव्वकोडी । सेसाणं
द्वानाणं कालो जाणिदूण वत्तव्वो ।

अजोगिभयवंतस्स भण्णमाणे— मणुस्सगदि-पंचिदियजादि-तस-बादर-पज्जत्त-
सुभग-आदेज्ज-जसकित्ति-तित्थयरमिदि एदाओ णव । भंगो एकको [१] । तित्थयर-
विरहिदाओ अट्ठ' । भंगो एकको [१] । मणुस्साणं सव्वभंगसमासो वत्तीसूणसत्तावीस-

उन तीर्थकरोंके उदयमें आनेवाली इकतीस प्रकृतियोंका नामनिर्देश करते हैं—
मनुष्यगति^१, पंचेन्द्रियजाति^२, औदारिक^३, तैजस^४ और कार्मण शरीर^५, समचतुरस्र-
संस्थान^६, औदारिकशरीरांगोपांग^७, वज्रऋषभनाराचसंहनन^८, वर्ण^९, गंध^{१०}, रस^{११},
स्पर्श^{१२}, अगुरुकलघु^{१३}, उपघात^{१४}, परघात^{१५}, उच्छवास^{१६}, प्रशस्तविहायोगति^{१७}, ब्रस^{१८},
बादर^{१९}, पर्याप्त^{२०}, प्रत्येकशरीर^{२१}, स्थिर^{२२}, अस्थिर^{२३}, शुभ^{२४}, अशुभ^{२५}, सुभग^{२६}, सुस्वर^{२७},
आदेय^{२८}, यशकीर्ति^{२९}, निर्माण^{३०} और तीर्थकर^{३१}, ये इकतीस प्रकृतियां तीर्थकरके उदयमें
आती हैं। इस उदयस्थानका जघन्यकाल वर्षपृथक्त्व है, क्योंकि, तीर्थकर प्रकृतिके
उदयवाले सयोगि जिनका विहारकाल कमसे कम होनेपर भी वर्षपृथक्त्वसे नीचे नहीं
पाया जाता। इस उदयस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक गर्भसे लेकर आठ
वर्ष हीन एक पूर्वकोटि है। शेष उदयस्थानोंका काल जानकर कहना चाहिये।

अब अयोगि भगवान्के उदयस्थान कहते हैं— मनुष्यगति^१, पंचेन्द्रियजाति^२,
ब्रस^३, बादर^४, पर्याप्त^५, सुभग^६, आदेय^७, यशकीर्ति^८ और तीर्थकर^९, ये नव प्रकृतियां
ही अयोगिकेवलीके उदय होती हैं। यहां भंग एक है (१)। इन्हीं नौ प्रकृतियोंमेंसे
तीर्थकर प्रकृतिसे रहित होनेपर आठ प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है। यहां भी
भंग एक है (१)।

मनुष्योंके उदयस्थानों संबंधी समस्त भंगोंका योग बत्तीस कम सत्ताईस सौ

१ प्रतिघु ' मणुसगदीए ' इति पाठः ।

२ पं. सं. भाग १, पृ. २०४.

३ गयजोगस्स य बारे तदियाउग-गोद इदि विहीणेसु । णामस्स य णव उदया अट्ठेव य तित्थहीणेसु ॥

सदमेत्तो | २६६८ | |

देवगदीए एककवीस-पंचवीस-सत्तावीस-अट्ठावीस-एगुणतीसउदयट्ठाणाणि होंति । २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । तत्थ इमं एककवीसाए उदयट्ठाणं- देवगदि-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुअ-तस-बादर-पज्जत्त-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणमिदि एदासिं पयडीणं एकक-ट्ठाणं । भंगो एक्को | १ | । सरीरं गहिदे आणुपुव्विमवणेदूण वेउव्वियसरीर-समचउ-रससंठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-उवघाद-पत्तेयसरीरेसु पविट्ठेसु पणुवीसाए ट्ठाणं होदि । भंगो एक्को | १ | । सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स परघाद-पसत्थविहायगदीसु पक्खित्तासु

अर्थात् छव्वीस सौ अड़सठ होता है (२६६८) ।

		सामान्य	विशेष	वि. वि.
१-२०	प्रकृतियोंवाले उदयस्थान	×	×	१
२-२१	" "	९	×	१
३-२५	" "	×	१	×
४-२६	" "	२८९	×	+ ६
५-२७	" "	×	१	+ १
६-२८	" "	५७६	+	१ + १२
७-२९	" "	५७६	+	१ + १+१२
८-३०	" "	११५२	×	+ १+२४
९-३१	" "	×	×	१
१०-९	" "	×	×	१
११-८	" "	×	×	१

$$* २६०२ + ४ + ६२ = २६६८$$

देवगतिमें इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतियोंवाले पांच उदयस्थान होते हैं । उनमें इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान इस प्रकार है - देवगति^१, पंचेन्द्रियजाति^२, तैजस^३ और कार्मण^४ शरीर, वर्ण^५, गंध^६, रस^७, स्पर्श^८, देवगतिप्रायो-ग्यानुपूर्वी^९, अगुरुलघुक^{१०}, त्रस^{११}, बादर^{१२}, पर्याप्त^{१३}, स्थिर^{१४}, अस्थिर^{१५}, शुभ^{१६}, अशुभ^{१७}, सुभग^{१८}, आदेय^{१९}, यशकीर्ति^{२०} और निर्माण^{२१} इन इक्कीस प्रकृतियोंका एक उदयस्थान होता है । भंग एक है (१) ।

शरीर ग्रहण करलेनेपर देवगतिमें आनुपूर्वीको छोड़कर व वैक्रियिकशरीर, सम-चतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, उपघात और प्रत्येकशरीर, इन पांच प्रकृतियोंको मिलादेनेपर पच्चीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । भंग एक है (१) ।

शरीरपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले देवके पूर्वोक्त पच्चीस प्रकृतियोंमें परघात और

सत्तावीसाए द्वाणं होदि । भंगो एको |१| । आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स उस्सासो पविट्ठो । ताथे अट्ठावीसाए द्वाणं । भंगो एको |१| । भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स सुस्सरे पविट्ठे एगुणतीसाए द्वाणं होदि । भंगो एको |१| । तं केवचिरं ? भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पढमसमयप्पहुडि जाव आउअचरिमसमओ त्ति । तस्स पमाणं जहण्णेण अंतोमुहुत्तूणदसवस्ससहस्साणि, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तूणतेत्तीससागरोवमाणि । एत्थ सच्च-भंगसमासो पंच |५| । चदुगदिभंगसमासो सत्तसहस्सछस्सदसत्तरिपमाणं होदि |७६७०| ।

तम्हा णिरयगदि-तिरिक्खगदि-मणुस्सगदि-देवगदीणमुदएणेव णेरइओ तिरिक्खो

प्रशस्तविहायोगति, इन दोको मिलादेनेपर सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । भंग एक है (१) ।

आनप्राणपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले देवके पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकृतियोंमें उच्छ्वास और प्रविष्ट हो जाता है । उस समय अट्ठाईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । भंग एक है (१) ।

भाषापर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले देवके पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियोंमें सुखरके प्रविष्ट हो जानेपर उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । भंग एक है (१) ।

शंका—इस उनतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानका काल कितना है ?

समाधान—भाषापर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले देवके प्रथम समयसे लेकर आयुका अन्तिम समय आने तक इस उदयस्थानका काल है । उस कालका प्रमाण कमसे कम अन्तर्मुहूर्तसे हीन दश हजार वर्ष और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपमप्रमाण है ।

देवोंके पांचों उदयस्थानोंके समस्त भंगोंका योग पांच हुआ (५) ।

चारों गतियोंके उदयस्थानोंके भंगोंका योग हुआ सात हजार छह सौ सत्तर (७६७०) ।

गति	उदयस्थान	भंग
नरक	५	५
तिर्य्यच	९	३२+५४+४९०६=४९९२
मनुष्य	११	२६६८
देव	५	५

७६७०

इस प्रकार चूंकि एक एक गतिके साथ अनेक कर्मप्रकृतियोंका उदय पार्या जाता है, अतएव केवल नरकगतिके उदयसे नारकी होता है, तिर्य्यचगतिके उदयसे

मणुस्सो देवो होदि त्ति ण घडदे ? विसमो उवण्णासो । कुदो ? णिरयगदिआदिचदुगदि-
उदयाणं व सेसकम्मोदयाणं तत्थ अविणाभावाणुवलंभादो । जिस्से' पयडीए उप्पण्णपढम-
समयप्पहुडि जाव चरिमसमओ-त्ति णियमेण उदओ होदूण अप्पिदगइं मोत्तूण अण्णत्थ
उदयाभावणियमो दिस्सइ तिस्से उदएण णेरइओ तिरिक्खो मणुस्सो देवो त्ति णिहेसो
कीरदे अण्णहा अणवट्टाणादो ।

सिद्धिगदीए सिद्धो णाम कथं भवदि ? ॥ १२ ॥

एत्थ वि पुच्चं व णय-णिक्खेवे अस्सिदूण चालणा कायच्चा उदयादिपंचभावे वा ।

खइयाए लद्धीए ॥ १३ ॥

कम्माणं णिम्मूलखएणुप्पण्णपरिणामो खओ णाम, तस्स लद्धीए खइयलद्धीए सिद्धो
होदि । अण्णे वि सत्त-पमेयत्तादओ तत्थ परिणामा अत्थि, तेहि क्किण्ण सिद्धो होदि ?

तिर्यंच, मनुष्यगतिके उदयसे मनुष्य और देवगतिके उदयसे देव यह कथन घटित
नहीं होता ?

समाधान—यह उपन्यास विषम है, क्योंकि, नारक आदि चार पर्यायोंके प्राप्त
होनेमें जिस प्रकार नरकगति आदि चार प्रकृतियोंके उदयका क्रमशः अविनाभावी
सम्बन्ध हैं वैसा शेष कर्मोंके उदयोंका वहां अविनाभावी सम्बन्ध नहीं पाया जाता ।
उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लगाकर पर्यायके अन्तिम समय तक जिस प्रकृतिका नियमसे
उदय होकर विवक्षित गतिके सिवाय अन्यत्र उदय न होनेका नियम पाया जाता है,
उसी कर्मप्रकृतिके उदयसे नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव होता है, ऐसा निर्देश किया
गया है । अन्यथा अनवस्था उत्पन्न हो जायगी ।

सिद्ध गतिमें जीव सिद्ध किस प्रकार होता है ? ॥ १२ ॥

यहां भी पूर्वानुसार नय और निक्षेपोंका आश्रय लेकर चालना करना चाहिये,
अथवा उदय आदि पांच भावोंके आश्रयसे चालना करना चाहिये ।

क्षायिक लब्धिसे जीव सिद्ध होता है ॥ १३ ॥

कर्मोंके निर्मूल क्षयसे उत्पन्न हुए परिणामको क्षय कहते हैं और उसीकी लब्धि
अर्थात् क्षायिक लब्धिके द्वारा सिद्ध होता है ।

शंका—सिद्ध गतिमें सत्व, प्रमेयत्व आदि अन्य परिणाम भी तो होते हैं, उनसे
सिद्ध होता है, ऐसा क्यों नहीं कहते ?

ण, यदि ते सिद्धत्तस्स कारणं तो सव्वे जीवा सिद्धा होज्ज, तेसिं सव्वजीवेषु संभवो-
वलंभा । तम्हा खइयाए लद्धीए सिद्धो होदि त्ति धेत्तव्वं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिओ वीइंदिओ तीइंदिओ चउरिंदिओ
पंचिंदिओ णाम कधं भवदि ? ॥ १४ ॥

एत्थ णामादिणिकखेवे णेगमादिणए ओदइयादिभावे च अस्सिदूण पुव्वं व
इंदियस्स चालणा कायव्वा ।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ १५ ॥

इंदस्स लिंगमिंदियं । इंदो जीवो, तस्स लिंगं जाणावयं सूचयं जं तमिंदियमिदि
वुत्तं होदि । कधमेइंदियत्तं खओवसमियं ? उच्चदे-पारिंसदियावरणस्स सव्वघादिफइयाणं
संतोवसमेण देसघादिफइयाणमुदएण चक्खु-सोद-घाण-जिर्बिभदियावरणाणं देसघादिफइ-
याणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण तेसिं सव्वघादिफइयाणमुदएण जो उप्पणो
जीवपरिणामो सो खओवसमिओ वुच्चदे । कुदो ? पुव्वुत्ताणं फइयाणं खओवसमेहि

समाधान—नहीं, क्योंकि, यदि सत्व-प्रमेयत्व आदि सिद्धत्वके कारण हैं, तब तो
सभी जीव सिद्ध हो जावेंगे, क्योंकि, उनका अस्तित्व तो सभी जीवोंमें पाया जाता है ।
इसलिये क्षायिक लब्धिसे सिद्ध होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिये ।

इन्द्रियमार्गानुसार एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय
जीव कैसे होता है ? ॥ १४ ॥

यहांपर नामादि निक्षेपों, नैगमादि नयों और औदायिकादि भावोंका आश्रय
लेकर पूर्वानुसार इन्द्रियकी चालना करना चाहिये ।

क्षयोपशमिक लब्धिसे जीव सिद्ध होता है ॥ १५ ॥

इन्द्रके चिह्नको इन्द्रिय कहते हैं । तात्पर्य यह कि इन्द्र जीव है और उसका
जो चिह्न अर्थात् ज्ञापक या सूचक है वह है इन्द्रिय ।

शंका — एकेन्द्रियत्व क्षयोपशमिक किस प्रकार होता है ?

समाधान—कहते हैं । स्पर्शेन्द्रियावरण कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके सर्वो-
पशमसे, उर्साके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; चक्षु, श्रोत्र, घ्राण और जिह्वा इन्द्रियावरण
कर्मोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हीं कर्मोंके सर्वोपशमसे तथा सर्वघाती
स्पर्धकोंके उदयसे जो जीवपरिणाम उत्पन्न होता है उसे क्षयोपशम कहते हैं, क्योंकि,
वह भाव पूर्वोक्त स्पर्धकोंके क्षय और उपशम भावोंसे ही उत्पन्न होता है । इसी जीव-

उप्पणत्तादो । तस्स जीवपरिणामस्स एइंदियमिदि सण्णा । एदेण एक्केण इंदिएण जो जाणदि पस्सदि सेवदि जीवो सो एइंदिओ णाम ।

सव्वघादी-देसघादित्तं णाम किं ? वुच्चदे-दुविहाणि कम्माणि घादिकम्माणि अघादिकम्माणि चैव । णाणावरण-दंसणावरण-मोहणीय-अंतराइयाणि घादिकम्माणि; वेदणीय-आउ-णाम-गोदाणि अघादिकम्माणि । णाणावरणादीणं कधं घादिववदेसो ? ण, केवलणाण-दंसण-सम्मत्त-चरित्त-वीरियाणमणेयभेयभिण्णाणं जीवगुणाणं विरोहित्तणेण तेसिं घादिववदेसादो । सेसकम्माणं घादिववदेसो किण्ण होदि ? ण, तेसिं जीवगुणविणासण-सत्तीए अभावा । कुदो ? ण आउअं जीवगुणविणासयं, तस्स भवधारणम्मि वावारादो । ण गोदं जीवगुणविणासयं, तस्स णीच्चुकुलसमुप्पायणम्मि वावारादो । ण खेत्त-पोग्गलविवाइणामकम्माइं पि, तेसिं खेत्तादिसु पडिबद्धानमण्णत्थ वावारविरोहादो ।

परिणामकी एकेन्द्रिय संज्ञा है ।

इस एक इन्द्रियके द्वारा जो जानता है, देखता है, सेवन करता है वह जीव एकेन्द्रिय होता है ।

शंका—सर्वघातित्व और देशघातित्व किसे कहते हैं ?

समाधान—कहते हैं । कर्म दो प्रकारके हैं, घातिया कर्म और अघातिया कर्म । ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय, ये चार घातिया कर्म हैं । तथा वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र, ये चार अघातिया कर्म हैं ।

शंका—ज्ञानावरण आदिको घातिया कर्म क्यों नाम दिया है ?

समाधान—क्योंकि, केवलज्ञान, केवलदर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र और वीर्य अर्थात् आत्माकी शक्ति रूप जो अनेक भेदोंमें भिन्न जीवगुण हैं उनके उक्त कर्म विरोधी अर्थात् घातक होते हैं और इसीलिये वे घातिया कर्म कहलाते हैं ।

शंका—(जीवगुणोंके विरोधक तो शेष कर्म भी होते हैं, अतएव) शेष कर्मोंको भी घातिया कर्म क्यों नहीं कहते ?

समाधान—शेष कर्मोंको घातिया नहीं कहते, क्योंकि, उनमें जीवके गुणोंका विनाश करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती । जैसे, आयु कर्म जीवके गुणोंका विनाशक नहीं है, क्योंकि, उसका काम तो भव धारण करानेका है । गोत्र भी जीवगुणविनाशक नहीं है, क्योंकि, उसका काम नीच और उच्च कुल उत्पन्न करना है । क्षेत्रविपाकी और पुद्गलविपाकी नामकर्म भी जीवगुणविनाशक नहीं हैं, क्योंकि, उनका सम्बन्ध यथायोग्य क्षेत्र और पुद्गलोंसे होनेके कारण अन्यत्र उनका व्यापार माननेमें विरोध आता है ।

जीवविवाङ्गामकम्मवेयणियाणं' घादिकम्मववएसो किण्ण होदि ? ण, जीवस्स अणप्पभूद-सुभग-दुभगादिपज्जयसमुप्पायणे वावदाणं जीवगुणविणासयत्तविरोहादो । जीवस्स सुहं विणा-सिय दुक्खुप्पाययं असादवेदणीयं घादिववएसं किण्ण लहदे ? ण, तस्स घादिकम्मसहायस्स घादिकम्मेहि विणा सकज्जकरणे असमत्थस्स सदो तत्थ पउत्ती णत्थि त्ति जाणावणट्ठं तव्वववएसोकरणादो ।

तत्थ घादीणमणुभागो दुविहो सव्वघादओ देसघादओ त्ति । वुत्तं च—

सव्वावरणीयं पुण उक्कस्सं होदि दारुगसमाणे ॥

हेट्ठा देसावरणं सव्वावरणं च उवरिल्लं ॥ १४ ॥

शंका—जीवविपाकी नामकर्म एवं वेदनीय कर्मोंको घातिया कर्म क्यों नहीं माना ?

समाधान—नहीं माना, क्योंकि, उनका काम अनात्मभूत सुभग, दुर्भग आदि जीवकी पर्यायें उत्पन्न करना है, जिससे उन्हें जीवगुणविनाशक माननेमें विरोध उत्पन्न होता है ।

शंका—जीवके सुखको नष्ट करके दुख उत्पन्न करनेवाले असाता वेदनीयको घातिया कर्म नाम क्यों नहीं दिया ?

समाधान—नहीं दिया, क्योंकि, वह घातिया कर्मोंका सहायकमात्र है और घातिया कर्मोंके बिना अपना कार्य करनेमें असमर्थ तथा उसमें प्रवृत्ति-रहित है । इसी बातको बतलानेके लिये असाता वेदनीयको घातिया कर्म नहीं कहा ।

इन कर्मोंमें घातिया कर्मोंका अनुभाग दो प्रकारका है—सर्वघातक और देशघातक । कहा भी है—

घातिया कर्मोंकी जो अनुभागशक्ति लता, दारु, अस्थि और शैल समान कही गयी है उसमें दारुतुल्यसे ऊपर अस्थि और शैल तुल्य भागोंमें तो उत्कृष्ट सर्वावरणीय शक्ति पाई जाती है, किन्तु दारुसम भागके नीचले अनन्तिम भागमें (व उससे नीचे सब लतातुल्य भागमें) देशावरण शक्ति है, तथा ऊपरके अनन्त बहुभागोंमें सर्वावरण-शक्ति है ॥ १४ ॥

१ प्रतिष्ठु 'कम्ममेयणियाणं' इति पाठः ।

२ सची य लदा-दारु-अट्टीसेलोवमा हु घादीणं । दारुअणंतिमभागो त्ति देसघादी तदो सव्वं ॥ गो. क. १८०.

गणान्वरणचतुष्कं संसृजितं संसृजिता पंच ।

ता ह्येति देसघादी संजलणा णोकसाया य' ॥ १५ ॥

फासिंदियावरणसव्वघादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसमेण अणुद-
ओवसमेण वा देसघादिफहयाणमुदएण जिब्भिमदियावरणस्स सव्वघादिफहयाणमुदयक्खएण
तेसिं चैव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा देसघादिफहयाणमुदएण चक्खु-सोद-घाणिं-
दियावरणाणं देसघादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा
सव्वघादिफहयाणमुदएण खओवसमियं जिब्भिमदियं समुप्पज्जदि । पस्सिंदियाविणा-
भावेण तं चैव जिब्भिमदियं बीइंदियं ति भण्णदि बीइंदियजादिणामकम्मोदयाविणाभावादो
वा । तेण बेइंदिएण बेइंदिएहि वा जुत्तो जेण बीइंदिओ णाम तेण खओवसमियाए लद्धीए
बीइंदिओ त्ति सुत्ते भणिदं ।

पस्सिंदियावरणस्स सव्वघादिफहयाणं संतोवसमेण देसघादिफहयाणमुदएण
जिब्भा-घाणिंदियावरणाणं सव्वघादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसमेण अणुद-
ओवसमेण वा देसघादिफहयाणमुदएण चक्खु-सोदिंदियाणं (देसघादि-) फहयाणं उदय-

मति, श्रुत, अवाधि और मनःपर्यय, ये चार ज्ञानावरण; चक्षु, अचक्षु और अवाधि,
ये तीन दर्शनावरण; दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य, ये पांचों अन्तराय, तथा
संज्वलनचतुष्क और नव नोकराय, ये तेरह मोहनीय कर्म देशघाती होते हैं ॥ १५ ॥]

स्पर्शेन्द्रियावरणके सर्वघाति स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सत्त्वोपशमसे
अथवा अनुदयोपशमसे, और देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; जिह्वेन्द्रियावरणके सर्वघाती
स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सत्त्वोपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे, और देशघाती
स्पर्धकोंके उदयसे; एवं चक्षु, श्रोत्र व घ्राणेन्द्रियावरणोंके देशघाती स्पर्शकोंके उदयक्षयसे,
उन्हींके सत्त्वोपशम अथवा अनुदयोपशमसे और सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपश-
मिक जिह्वेन्द्रिय उत्पन्न होती है । स्पर्शेन्द्रियका अविनाभावी अथवा द्वीन्द्रियनामकर्मो-
दयका अविनाभावी होनेसे जिह्वेन्द्रियको द्वितीय इन्द्रिय कहते हैं, चूंकि उक्त द्वितीय
इन्द्रियसे अथवा दो इन्द्रियोंसे युक्त होनेके कारण जीव द्वीन्द्रिय होता है, इसलिये
' क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव द्वीन्द्रिय होता है ' ऐसा सूत्रमें कहा गया है ।

स्पर्शेन्द्रियावरणके सर्वघाती स्पर्धकोंके सत्त्वोपशमसे और देशघाती स्पर्धकोंके
उदयसे; जिह्वा और घ्राणेन्द्रियावरणोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सत्त्वो-
पशमसे अथवा अनुदयोपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; एवं चक्षु और श्रोत्रे-
न्द्रियोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे उन्हींके सत्त्वोपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे

क्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सव्वघादिफहयाणमुदएण घाणि-
दियमुप्पज्जदि । तं चेव घाणिंदियं पास-जिब्भदियाविणाभावेण तेइंदियजादिणामकम्मो-
दयाविणाभावेण वा तेइंदियो गाम । तेण जुत्तो जीवो वि तेइंदियो होदि । एदेण कारणेण
खओवसमियाए लद्धीए तेइंदिओ होदि त्ति सुत्ते उत्तं ।

परिसिदियावरणस्स सव्वघादिफहयाणं संतोवसमेण देसघादिफहयाणमुदएण
चक्खु-घाण-जिब्भदियावरणाणं सव्वघादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण
अणुदओवसमेण वा देसघादिफहयाणमुदएण सोइंदियावरणस्स देसघादिफहयाणं उदय-
क्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सव्वघादिफहयाणमुदएण चक्खि-
दियं उप्पज्जदि । फास-जिब्भा-घाणिंदियाविणाभावेण चक्खिदियं (चउरिंदियं) ति
भण्णदि । तेण जुत्तो जीवो चउरिंदियो । चउरिंदियजादिणामकम्मोदयाविणाभावेण वा
चक्खु चउरिंदियं ति वत्तव्वं । फासिंदियादिचउहि इंदिएहि जुत्तो त्ति वा जीवो
चउरिंदिओ गाम । तेण कारणेण खओवसमियाए लद्धीए चउरिंदिओ होदि त्ति उत्तं ।

फासिंदियावरणस्स सव्वघादिफहयाणं संतोवसमेण देसघादिफहयाणमुदएण
चदुण्णिमिंदियाणं सव्वघादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण देसघादिफहयाण-

तथा सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न होती है । वही घ्राणेन्द्रिय स्पर्श
और जिह्वा इन्द्रियोंकी अविनाभावी अथवा त्रीन्द्रिय जाति नामकर्मोदयकी अविनाभावी
होनेसे तृतीय इन्द्रिय कहलाती है । उस इन्द्रियसे युक्त जीव भी त्रीन्द्रिय होता है ।
इसी कारणसे ' क्षायोपशमिक लब्धिके द्वारा जीव त्रीन्द्रिय होता है ' ऐसा सूत्रमें कहा
गया है ।

स्पर्शेन्द्रियावरणके सर्वघाती स्पर्धकोंके सत्त्वोपशम व देशघाती स्पर्धकोंके
उदयसे; चक्षु, घ्राण और जिह्वा इन्द्रियावरणोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे व
उन्हींके सत्त्वोपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे एवं देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; तथा
श्रोत्रेन्द्रियावरणके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे व उन्हींके सत्त्वोपशमसे अथवा
अनुदयोपशमसे एवं सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे चक्षु इन्द्रिय उत्पन्न होती है । स्पर्श, जिह्वा
और घ्राण इन्द्रियोंकी अविनाभावी होनेसे चक्षु इन्द्रिय चतुर्थ इन्द्रिय कहलाती है । उस
चक्षु इन्द्रियसे युक्त जीव चतुरिन्द्रिय होता है । अथवा, चतुरिन्द्रिय जाति नामकर्मो-
दयकी अविनाभावी होनेसे चक्षुको चतुरिन्द्रिय कहना चाहिये । स्पर्शेन्द्रियादि चार
इन्द्रियोंसे युक्त होनेके कारण जीव चतुरिन्द्रिय कहलाता है । इसी कारण ' क्षायोपशमिक
लब्धिके द्वारा जीव चतुरिन्द्रिय होता है ' ऐसा कहा गया है ।

स्पर्शेन्द्रियावरणके सर्वघाती स्पर्धकोंके सत्त्वोपशम व देशघाती स्पर्धकोंके
उदयसे; चार इन्द्रियोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षय और उन्हींके सत्त्वोपशमसे तथा

मुदरण जेण सोर्दिदियमुप्पज्जदि तेण तं खओवसमियं । सेमचउग्गिदियाविणाभावादो पंचिदियजादिणामकम्मोदयाविणाभावादो वा तं पंचिदियं । तेण पंचिदिणं पंचहि इंदिएहि वा जुत्तो जीवो पंचिदिओ णाम ।

फास-जिह्वा-घ्राण-चक्षु-सोर्दिदियावरणाणि पयडिममुक्कित्तणाणं णोवइट्ठाणि, कथं तेसिमिह णिद्वेसो ? ण, फासिदियावरणादीणं मदिआवरणे अंतःभावादो । ण च पंचिदियखओवसमं तत्तो समुप्पण्णणं वा मुच्चा अण्णं मदिणाणमत्थि जेणिदियावरणे-हिंतो मदिणाणावरणं पुधभूदं होज्ज । ण च एदेहिंतो पुधभूदं णोइंदियमत्थि जेण णोइंदियणाणस्स मदिणाणत्तं होज्ज । णोइंदियावरणखओवसमजणिदं णोइंदियमिदि तदो पुधभूदं चेव ? जदि एवं तो णं तदो समुप्पण्णणं मदिणाणं, मदिणाणावरणखओव-समेणाणुप्पणत्तादो । तदो मदिणाणाभावेण मदिणाणावरणस्म वि अभावो होज्ज । तम्हा

देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे चूंकि श्रोत्रेन्द्रिय उत्पन्न होती है इसीसे उन क्षयोपशमिक कहा है । शेष चारों इन्द्रियोंकी अविनाभावी होनेसे अथवा पंचेन्द्रिय जाति नामकर्मो-दयकी अविनाभावी होनेसे श्रोत्रेन्द्रिय पंचम इन्द्रिय है । उस पंचम इन्द्रियसे अथवा पांचों इन्द्रियोंसे युक्त जीव पंचेन्द्रिय होता है ।

शंका—स्पर्श, जिह्वा, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियावरणोंका प्रकृतिसमुत्की-र्तन अधिकारमें तो उपदेश नहीं दिया गया, फिर यहां उनका कैसे निर्देश किया जाता है ?

समाधान—नहीं, स्पर्शेन्द्रियादिक आवरणोंका मतिआवरणमें ही अन्तर्भाव होनेसे वहां उनके पृथक् उपदेशकी आवश्यकता नहीं समझी गई । पंचेन्द्रियोंके क्षयोप-शमको वा उससे उत्पन्न हुए ज्ञानको छोड़कर अन्य कोई मतिज्ञान है ही नहीं जिससे इन्द्रियावरणोंसे मतिज्ञानावरण पृथग्भूत होवे । और न इन पांचों इन्द्रियोंसे पृथग्भूत नोइन्द्रिय है जिससे नोइन्द्रियज्ञानको मतिज्ञान कहा जा सके ।

शंका—नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाली नोइन्द्रिय उक्त पांच इन्द्रियोंसे पृथग्भूत ही है ?

समाधान—यदि ऐसा है तो उससे उत्पन्न होने वाला ज्ञान मतिज्ञान नहीं होगा, क्योंकि वह मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे नहीं उत्पन्न हुआ । इस प्रकार मति-ज्ञानके अभावसे मतिज्ञानावरणका भी अभाव हो जायगा । इसलिये छहों इन्द्रियोंका

छणमिंदियाणं खओवसमो ततो समुप्पण्णणं वा मदिणाणं, तस्सावरणं मदिणाणावरण-
मिदि इच्छिदव्वमण्णहा मदिआवरणस्साभावप्पसंगा ।

एइंदियादीणमोदइओ भावो वत्तव्वो, एइंदियजादिआदिणामकम्मोदएण एइं-
यादिभावोवलंभा । जदि एवं ण इच्छिज्जदि तो सजोगि-अजोगिजिणाणं पंचिंदियत्तं ण
लब्भदे, खीणावरणे पंचण्हमिंदियाणं खओवसमाभावा । ण च तेसिं पंचिंदियत्ताभावो,
पंचिंदिएसु समुग्घादपदेण असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा त्ति सुत्तविरोहादो ?

एत्थ परिहारो वुच्चदे— एइंदियादीणं भावो ओदइओ होदि चेव, एइंदियजादि-
आदिणामकम्मोदएण तेसिमुप्पत्तीदंसणादो । एदम्हादो चेव सजोगि-अजोगिजिणाणं
पंचिंदियत्तं जुज्जदि त्ति जीवङ्काणे पि उववण्णं । किंतु खुद्दाबंधे सजोगि-अजोगिजिणाणं
सुद्धणएणाणिंदियाणं पंचिंदियत्तं जदि इच्छिज्जदि तो ववहारणएण वत्तव्वं । तं जहा-
पंचसु जाईसु जाणि पडिबद्दाणि पंच इंदियाणि ताणि खओवसमियाणि त्ति काऊण
उवयारेण पंच वि जादीओ खओवसमियाओ त्ति कट्टु सजोगि-अजोगिजिणाणं खओव-

क्षयोपशम अथवा उस क्षयोपशमसे उत्पन्न हुआ ज्ञान मतिज्ञान है और उसीका आवरण
मतिज्ञानावरण होता है, ऐसा मानना चाहिये । अन्यथा मतिज्ञानावरणके अभावका
प्रसंग आ जायगा ।

शंका—एकेन्द्रियादिको औदयिक भाव कहना चाहिये, क्योंकि एकेन्द्रियजाति
आदिक नामकर्मके उदयसे एकेन्द्रियादिक भाव पाये जाते हैं । यदि ऐसा न माना
जायगा तो सयोगी और अयोगी जिनोंके पंचेन्द्रियभाव नहीं पाया जायगा, क्योंकि,
उनके आवरणके क्षीण हो जानेपर पांचों इन्द्रियोंके क्षयोपशमका भी अभाव हो गया
है । और सयोगि-अयोगी जिनोंके पंचेन्द्रियत्वका अभाव होता नहीं है, क्योंकि, वैसा
माननेपर “ पंचेन्द्रिय जीवोंकी अपेक्षा समुद्घात पदके द्वारा लोकके असंख्यात बहु-
भागोंमें अथवा सर्व लोकमें जीवोंका अस्तित्व है ” इस सूत्रसे विरोध आ जायगा ?

समाधान—यहां उक्त शंकाका परिहार कहते हैं । एकेन्द्रियादि जीवोंका भाव
औदयिक तो होता ही है, क्योंकि, एकेन्द्रियजाति आदि नामकर्मोंके उदयसे ही
उनकी उत्पत्ति पायी जाती है । और इसीसे सयोगी व अयोगी जिनोंका पंचेन्द्रियत्व
योग्य होता है, ऐसा जीवस्थान खंडमें भी स्वीकार किया गया है । किन्तु, इस श्रुद्रक-
बंध खंडमें श्रुद्र नयसे अनिन्द्रिय कहे जानेवाले सयोगी और अयोगी जिनोंके यदि
पंचेन्द्रियत्व कहना है, तो वह केवल व्यवहार नयसे ही कहा जा सकता है । वह इस
प्रकार है— पांच जातियोंमें जो क्रमशः पांच इन्द्रियां सम्बद्ध हैं वे क्षायोपशमिक हैं
ऐसा मानकर और उपचारसे पांचों जातियोंको भी क्षायोपशमिक स्वीकार करके

समियं पंचिदियत्तं जुज्जदे । अधवा खीणावरणे णट्टे वि पंचिदियखओवसमे खओवसम-
जणिदाणं पंचण्हं बज्झिदियाणमुवयारेण' लद्धखओवसमसण्णाणमत्थित्तदंसणादो सजोगि-
अजोगिजिणाणं पंचिदियत्तं साहेयव्वं ।

अणिंदिओ णाम कधं भवदि ? ॥ १६ ॥

एत्थ पुच्चं व णय-णिवखेवे अस्सिदूण चालणा कायव्वा ।

खइयाए लद्धीए ॥ १७ ॥

एत्थ चोदगो भणदि- इंदियमए सरीरे विणट्टे इंदियाणं पि णियमेण विणासो,
अण्णहा सरीरिंदियाणं पुधभावप्पसंगादो । इंदिएसु विणट्टेसु णाणास्स विणासो,
कारणेण विणा कज्जुप्पत्तीविरोहादो । णाणाभावे जीवविणासो, णाणाभावेण णिच्चेयणत्त-
वुत्तस्स जीवत्तविरोहादो । जीवाभावे ण खइया लद्धी वि, परिणामिणा विणा परि-
णामाणमत्थित्तविरोहादो त्ति । णेदं जुज्जदे । कुदो ? जीवो णाम णाणसहावो, अण्णहा

सयोगी और अयोगी जिनोंके क्षयोपशमिक पंचेन्द्रियत्व सिद्ध हो जाता है । अथवा,
आवरणके क्षीण होनेसे पंचेन्द्रियोंके क्षयोपशमके नष्ट हो जानेपर भी क्षयोपशमसे उत्पन्न
और उपचारसे क्षायोपशमिक संज्ञाको प्राप्त पांचों बाह्येन्द्रियोंका अस्तित्व पाये जानेसे
सयोगी और अयोगी जिनोंके पंचेन्द्रियत्व सिद्ध कर लेना चाहिये ।

जीव अनिन्द्रिय किस प्रकार होता है ? ॥ १६ ॥

यहां पूर्वानुसार नयों और निक्षेपोंका आश्रय लेकर चालना करना चाहिये ।

क्षायिक लब्धिसे जीव अनिन्द्रिय होता है ॥ १७ ॥

शंका—यहां शंकाकार कहता है—इन्द्रियमय शरीरके विनष्ट हो जानेपर
इन्द्रियोंका भी नियमसे विनाश होता है, अन्यथा शरीर और इन्द्रियोंके पृथग्भावका
प्रसंग आता है । इस प्रकार इन्द्रियोंके विनष्ट हो जानेपर ज्ञानका भी विनाश हो
जायगा, क्योंकि, कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । ज्ञानके
अभावमें जीवका भी विनाश हो जायगा, क्योंकि, ज्ञानरहित होनेसे निश्चेतन पदार्थके
जीवत्व माननेमें विरोध आता है । जीवका अभाव हो जानेपर क्षायिक लब्धि भी नहीं
हो सकती, क्योंकि, परिणामी के विना परिणामोंका अस्तित्व माननेमें विरोध आता है ।
(इस प्रकार इन्द्रियरहित जीवके क्षायिक लब्धिकी प्राप्ति सिद्ध नहीं होती) ?

समाधान—यह शंका उपयुक्त नहीं है, क्योंकि, जीव ज्ञानस्वभावी है, नहीं तो

जीवाभावप्पसंगादो । होदु चे ण, पमाणाभावे पमेयस्स वि अभावप्पसंगा । ण चेवं, तहाणुवलंभादो । तम्हा णाणस्स जीवो उवायाणकारणमिदि घेत्तव्वं । तं च उवादेयं जावदव्वभावि, अण्णहा दव्वणियमाभावादो । तदो इंदियविणासे ण णाणस्स विणासो । णाणसहकारिकारणइंदियाणमभावे कधं णाणस्स अत्थित्तमिदि चे ण, णाण-सहावपोगलदव्वाणुप्पणउप्पाद-व्वय-धुअत्तुवलक्खियजीवदव्वस्स विणासाभावा । ण च एककं कज्जं एककादो चेव्व कारणादो सव्वत्थ उप्पज्जदि, खइर-सिसव-धव-धम्मण-गोमय-सूरयर-सुज्जकंतेहिंतो समुप्पज्जमाणेककग्गिकज्जुवलंभा । ण च छदुमत्थावत्थाए णाणकारणत्तेण पडिविण्णदियाणि खीणावरणे भिण्णजादीए णाणुप्पत्तिमिह सहकारिकारणं होंति त्ति णियमो, अइप्पसंगादो, अण्णहा मोक्खाभावप्पसंगा । ण च मोक्खाभावो, बंध-कारणपडिवक्खतिरयणाणमुवलंभा । ण च कारणं सकज्जं सव्वत्थ ण करेदि त्ति णियमो अत्थि, तहाणुवलंभा । तम्हा अणिदिएसु करणककमव्ववहाणादीदं णाणमत्थि त्ति घेत्तव्वं । ण च तण्णिककारणं अप्पट्टसण्णिहाणेण तदुप्पत्तीदो । सव्वकम्माणं खएणु-

जीवके अभावका प्रसंग आ जायगा । यदि कहा जाय कि हो जाने दो ज्ञानस्वभावी जीवका अभाव, तो भी ठीक नहीं, क्योंकि प्रमाणके अभावमें प्रमेयके भी अभावका प्रसंग आ जायगा । और प्रमेयका अभाव है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता । इससे यही ग्रहण करना चाहिये कि ज्ञानका जीव उपादान कारण है । और वह ज्ञान उपादेय है जो कि यावत् द्रव्यमात्रमें रहता है, अन्यथा द्रव्यके नियमका अभाव हो जायगा । इसलिये इन्द्रियोंका विनाश हो जानेपर ज्ञानका विनाश नहीं होता ।

शंका—ज्ञानके सहकारी कारणभूत इन्द्रियोंके अभावमें ज्ञानका अस्तित्व किस प्रकार हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ज्ञानस्वभाव और पुद्गलद्रव्यसे अनुत्पन्न, तथा उत्पाद व्यय एवं ध्रुवत्वसे उपलक्षित जीवद्रव्यका विनाश न होनेसे इन्द्रियोंके अभावमें भी ज्ञानका अस्तित्व हो सकता है । एक कार्य सर्वत्र एक ही कारणसे उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि, खदिर, शीशम धौ, धम्मन, गोवर, सूर्यकिरण व सूर्यकान्त मणि, इन भिन्न भिन्न कारणोंसे एक अग्नि रूप कार्य उत्पन्न होता पाया जाता है । तथा छद्मस्थावस्थामें ज्ञानके कारण रूपसे ग्रहण की गई इन्द्रियां क्षीणावरण जीवके भिन्न जातीय ज्ञानकी उत्पत्तिमें सहकारी कारण हों, ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर अतिप्रसंग दोष आजायगा, या अन्यथा मोक्षके अभावका ही प्रसंग आजायगा । और मोक्षका अभाव है नहीं, क्योंकि, बन्धकारणोंके प्रतिपक्षी रत्नत्रयकी प्राप्ति है । और कारण सर्वत्र अपना कार्य नहीं करेगा, ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता । इस कारण अनिन्द्रिय जीवोंमें करण, क्रम और व्यवधानसे अतीत ज्ञान होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये । यह ज्ञान निष्कारण भी नहीं है, क्योंकि, आत्मा और पदार्थके साधि-धान अर्थात् सामीप्यसे वह उत्पन्न होता है । इस प्रकार समस्त कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न

प्यणत्तादो खइयाए लद्धीए अण्णिदियत्तं होदि ।

कायाणुवादेण पुढविकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ १८ ॥

पुढविकायादो किण्णिग्गदो भूदपुव्वो त्ति पुढविकाइओ वुच्चदि, किं पुढवि-
काइयाणमहिमुहो णेगमणयावलंबणेण पुढविकाइओ वुच्चदि, किं पुढविकाइयाणाम-
कम्मोदएणेत्ति बुद्धीए काऊण कधं होदि त्ति वुत्तं ।

पुढविकाइयाणामाए उदएण ॥ १९ ॥

णामपयडीसु पुढवि-आउ-तेउ-वाउ-वणप्फदिसण्णिदओ पयडीओ ण णिहिट्ठाओ,
तेण पुढविकाइयाणामाए उदएण पुढविकाइओ त्ति णेदं घड्दे ? ण, एइंदियजादिणामाए
एदासिमतंभावादो । ण च कारणेण विणा कज्जाणमुप्पत्ती अत्थि । दीसंति च पुढवि-
आउ-तेउ-वाउ-वणप्फदि-तसकाइयादिसु अणेगाणि कज्जाणि । तदो कज्जमेत्ताणि चेव
कम्माणि वि अत्थि त्ति णिच्छओ कायव्वो । जदि एवं तो भमर-महुवर-
सलह-पयंग-गोम्हिहदगोव-संख-मंकुण-णिंब-जंबु-जंबीर कयंवादिसण्णिदेहि वि णाम-

होनेके कारण क्षायिक लब्धिके द्वारा ही जीव अनिन्द्रिय होता है ।

कायमार्गणानुसार जीव पृथिवीकायिक कैसे होते हैं ? ॥ १८ ॥

क्या पृथिवीकायसे निकला हुआ जीव भूतपूर्व नयसे पृथिवीकायिक कहलाता
है ? या पृथिवीकायिकोंके अभिमुख हुआ जीव नैगम नयके अवलम्बनसे पृथिवीकायिक
कहा जाता है ? या पृथिवीकायिक नामकर्मके उदयसे पृथिवीकायिक कहा जाता है ?
ऐसी मनमें शंका करके पूछा गया है कि कैसे होता है ।

पृथिवीकायिक नामकर्मके उदयसे जीव पृथिवीकायिक होता है ॥ १९ ॥

शंका—नामकर्मकी प्रकृतियोंमें पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, और वनस्पति नामकी
प्रकृतियां निर्दिष्ट नहीं की गईं । इसलिये ' पृथिवीकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव
पृथिवीकायिक होता है ' यह बात घटित नहीं होती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एकेन्द्रिय जाति नामकर्मकी प्रकृतिमें उक्त सब
प्रकृतियोंका अन्तर्भाव हो जाता है । कारणके बिना तो कार्योंकी उत्पत्ति होती नहीं है ।
और पृथिवी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति और ब्रसकायिक आदि जीवोंमें उनकी उक्त
पर्यायों रूप अनेक कार्य देखे जाते हैं । इसलिये जितने कार्य हैं उतने उनके कारणरूप कर्म
भी हैं, ऐसा निश्चय कर लेना चाहिये ।

शंका—यदि जितने कार्य हों उतने ही कारणरूप कर्म आवश्यक हों तो भ्रमर, मधु-
कर, शलभ, पतंग, गोम्ही, इन्द्रगोप, शंख, मत्कुण, निंब, आम्र, जम्बु, जम्बीर और कदम्ब

कम्मेहि होदव्वमिदि ? ण एस दोसो, इच्छिज्जमाणादो । पुढविकाइयाणं एक्कवीसाए चउवीसाए पंचवीसाए छव्वीसाए सत्तवीसाए त्ति पंच उदयट्ठाणाणि । २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । एदेसिं ठाणाणं पयडीओ उच्चारिय घेत्तव्वाओ । एवमेदासु बहुसु पयडीसु उदयमागच्छमाणासु कधं पुढविकाइयणामाए उदएण पुढविकाइओ त्ति जुज्जदे ? ण, इदरपयडीणमुदयस्स साहारणत्तुवलंभादो । ण च पुढविकाइयणामकम्मोदओ तहा साहारणो, अण्णत्थेदस्साणुवलंभा ।

आउकाईओ णाम कधं भवदि ? ॥ २० ॥

आउकाइयणामाए उदएण ॥ २१ ॥

तेउकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ २२ ॥

तेउकाइयणामाए उदएण ॥ २३ ॥

वाउकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ २४ ॥

आदिक नामों वाले भी नामकर्म होना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यह बात तो इष्ट ही है ।

शंका—पृथिवीकायिक जीवोंके इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छव्वीस और सत्ताईस प्रकृतियोंवाले पांच उदयस्थान होते हैं । २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । इन पांच उदयस्थानोंकी प्रकृतियोंका उच्चारण करके ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकार इन बहुत प्रकृतियोंके (एक साथ) उदय आनेपर यह कैसे उपयुक्त हो सकता है कि पृथिवीकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव पृथिवीकायिक होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि दूसरी प्रकृतियोंका उदय तो अन्य पर्यायोंके साथ भी पाया जाता है और इसलिये वह साधारण है । किन्तु पृथिवीकायिक नामकर्मका उदय उस प्रकार साधारण नहीं है, क्योंकि, अन्य पर्यायोंमें वह नहीं पाया जाता ।

जीव अप्कायिक कैसे होता है ? ॥ २० ॥

अप्कायिक नाम प्रकृतिके उदयसे जीव अप्कायिक होता है ॥ २१ ॥

जीव अग्निकायिक कैसे होता है ? ॥ २२ ॥

अग्निकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव अग्निकायिक होता है ॥ २३ ॥

जीव वायुकायिक कैसे होता है ? ॥ २४ ॥

वाउकाइयणामाए उदएण ॥ २५ ॥

वणप्फइकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ २६ ॥

वणप्फइकाइयणामाए उदएण ॥ २७ ॥

एदेसिं सुत्ताणमत्थो सुगमो । णवरि आउकाइयादीणं एककवीस-चउवीस-पंच-वीस-छव्वीसमिदि चत्तारि उदयट्ठाणाणि । सत्तावीसाए ट्ठाणं गत्थि, आदावुज्जोवाण-मुदयाभावा । णवरि आउ-वणप्फदिकाइयाणं सत्तावीसाए सह पंच उदयट्ठाणाणि, आदावेण विणा तत्थ उज्जोवस्स कत्थ वि उदयदंसणादो ।

तसकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ २८ ॥

सुगममेदं ।

तसकाइयणामाए उदएण ॥ २९ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं । णवरि वीसाए एककवीसाए पणुवीसाए छव्वीसाए सत्तावीसाए अट्ठावीसाए एगुणतीसाए तीसाए एककत्तीसाए णवण्णमट्ठणमुदयट्ठाणमिदि

वायुकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव वायुकायिक होता है ॥ २५ ॥

जीव वनस्पतिकायिक कैसे होता है ? ॥ २६ ॥

वनस्पतिकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव वनस्पतिकायिक होता है ॥ २७ ॥

इन सूत्रोंका अर्थ सुगम है। विशेषता केवल इतनी है कि अप्कायिक आदि जीवोंके इक्कीस, चौवीस, पच्चीस और छव्वीस प्रकृतियोंवाले चार उदयस्थान हैं। उनके सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान नहीं है, क्योंकि उनके आताप और उद्योत इन दो प्रकृतियोंके उदयका अभाव होता है। किन्तु अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंके सत्ताईस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानको मिलाकर पांच उदयस्थान होते हैं, क्योंकि, उनके आतापके विना उद्योतका कहीं कहीं उदय देखा जाता है।

जीव त्रसकायिक कैसे होता है ? ॥ २८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

त्रसकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव त्रसकायिक होता है ॥ २९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है। विशेषता यह है कि त्रसकायिक जीवोंके वीस, इक्कीस, पच्चीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस, नौ और आठ

एककारस उदयट्ठाणाणि होंति । एदाणि जाणिदूण वत्तव्वाणि ।

अकाइओ णाम कधं भवति ? ॥ ३० ॥

छक्काइयणामाणं विणासो णत्थि, मिच्छत्तादिआसवाणं विणासाणुवलंभादो । ण चाणादित्तेण णिच्चं मिच्छत्तं' विणस्सदि, णिच्चस्स विणासविरोहादो । ण मिच्छत्तादिआसवो सादी, संवरेण णिम्मूलदो ओसरिदासवस्स पुणरुप्पत्तिविरोहादो । एदं सर्वं मणेण अवहारिय अकाइओ णाम कधं होदि त्ति वुत्तं ।

खइयाए लद्धीए ॥ ३१ ॥

ण च अणादित्तादो णिच्चो आसवो, कूडत्थाणादिं मुच्चा पवाहाणादिमिह णिच्चत्ताणुवलंभादो । उवलंभे वा ण बीजादीणं विणासो, पवाहसरूवेण तेसिमणादित्तदंसणादो । तदो णाणादित्तं साहणं, अणेयंतियादो । ण चासवो कूडत्थाणादिसहावो,

प्रकृतियोंवाले ग्यारह उदयस्थान होते हैं । इनको जानकर कहना चाहिये । (देखो ऊपर पृ: ५२)

जीव अकायिक कैसे होता है ? ॥ ३० ॥

षट्कायिक नामप्रकृतियोंका विनाश तो होता नहीं है, क्योंकि, मिथ्यात्वादिक आस्रवोंका विनाश पाया नहीं जाता । अनादित्वकी अपेक्षा नित्य मिथ्यात्व विनष्ट भी नहीं होता, क्योंकि, नित्यका विनाशके साथ विरोध है । मिथ्यात्वादिक आस्रव सादि भी नहीं है, क्योंकि, संवरके द्वारा निर्मूलतः आस्रवके दूर हो जाने पर उसकी पुनः उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । यह सब मनमें धारण करके कहा गया है कि 'जीव अकायिक कैसे होता है' ।

क्षायिक लब्धिसे जीव अकायिक होता है ॥ ३१ ॥

अनादि होनेसे आस्रव नित्य नहीं हो जाता, क्योंकि कूटस्थ अनादिको छोड़कर प्रवाह अनादिमें नित्यत्व नहीं पाया जाता । यदि पाया जाय तो बीजादिकका विनाश नहीं होना चाहिये, क्योंकि, प्रवाह रूपसे तो उनमें अनादित्व देखा जाता है । इसलिये अनादित्व आस्रवके नित्यत्व सिद्ध करनेमें साधन नहीं हो सकता, क्योंकि, वह अनैकान्तिक है अर्थात् पक्ष और विपक्षमें समानरूपसे पाया जाता है । और आस्रव कूटस्थ अनादि स्वभाववाला है नहीं, क्योंकि, प्रवाह-अनादि रूपसे आये हुए

१ प्रतिष्ठ ' ण भाणादित्तेण णिच्चमिच्छत्तं ' इति पाठः ।

मिच्छत्तासंजम-कसायासवाणं पत्राहाणादिसरूवेण समागदाणं वट्टमाणकाले वि कत्थ वि जीवे विणासदंसणादो ।

जेण्णाएवादेण मणजोगी वचिजोगी कायजोगी णाम कधं भवदि ? ॥ ३२ ॥

किमोदइओ किं खओवसमिओ किं पारिणामिओ किं खइओ किमुवसमिओ त्ति ? ण ताव खइओ, संसारिजीवेसु सव्वकम्मणं उदएण वट्टमाणेसु जोगाभावप्पसंगादो, सिद्धेसु सव्वकम्मोदयविरहिदेसु जोगस्स अत्थित्तप्पसंगादो च । ण पारिणामिओ, खइयम्मि बुत्तासेसदोसप्पसंगादो । णोवसमिओ, ओवसमियभावेण मुक्कमिच्छाइड्डि-गुणम्मि जोगाभावप्पसंगादो । ण घादिकम्मोदयसमुब्भूदो, केवलिम्मि खीणघादिकम्मोदए जोगाभावप्पसंगादो । णाघादिकम्मोदयसमुब्भूदो, अजोगिम्मि वि जोगस्स सत्तपसंगादो । ण घादिकम्मणं खओवसमजणिदो, केवलिम्मि जोगाभावप्पसंगा । णाघादिकम्म-कखओवसमजणिदो, तत्थ सव्व-देसघादिफदयाभावादो खओवसमाभावा । एदं सव्वं

मिथ्यात्व, असंयम और कबाय रूप आस्त्रवोंका वर्तमान कालमें भी किसी किसी जीवमें विनाश देखा जाता है ।

योगमार्गणानुसार जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी कैसे होता है ? ॥ ३२ ॥

शंका—योग क्या औदयिक भाव है, कि क्षयोपशमिक, कि पारिणामिक, कि क्षायिक, कि औपशमिक ? योग क्षायिक तो हो नहीं सकता, क्योंकि वैसा माननेसे तो सर्व कर्मोंके उदय सहित संसारी जीवोंके वर्तमान रहते हुए भी योगके अभावका प्रसंग आजायगा, तथा सर्व कर्मोदयसे रहित सिद्धोंके योगके अस्तित्वका प्रसंग आजायगा । योग पारिणामिक भी नहीं हो सकता, क्योंकि, ऐसा मानने पर भी क्षायिक माननेसे उत्पन्न होनेवाले समस्त दोषोंका प्रसंग आजायगा । योग औपशमिक भी नहीं है, क्योंकि, औपशमिक भावसे रहित मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें योगके अभावका प्रसंग आजायगा । योग घातिकर्मोंके उदयसे उत्पन्न भी नहीं है, क्योंकि, सयोगिकेवलीमें घातिकर्मोंका उदय क्षीण होनेके साथ ही योगके अभावका प्रसंग आजायगा । योग अघातिकर्मोंके उदयसे उत्पन्न भी नहीं है, क्योंकि, वैसा माननेसे अयोगिकेवलीमें भी योगकी सत्ताका प्रसंग आजायगा । योग घातिकर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न भी नहीं है, क्योंकि, इससे भी सयोगिकेवलीमें योगके अभावका प्रसंग आजायगा । योग अघातिकर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न भी नहीं है, क्योंकि, अघातिकर्मोंमें सर्वघाती और देशघाती दोनों प्रकारके स्पर्धकोंका अभाव होनेसे क्षयोपशमका भी अभाव है । यह सब मनमें

बुद्धिभिह काऊण मण-वचि-कायजोगी कधं होदि त्ति वुत्तं ।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ३३ ॥

जोगो णाम जीवपदेसाणं परिप्फंदो संकोच-विकोचलक्खणो । सो च कम्मणं उदयजणिदो, कम्मोदयविरहिदसिद्धेसु तदणुवलंभा । अजोगिकेवलिभिह जोगाभावा जोगो ओदइओ ण होदि त्ति वोत्तुं ण जुत्तं, तत्थ सरीरणामकम्मोदयाभावा । ण च सरीरणामकम्मोदएण जायमाणो जोगो तेण विणा होदि, अइप्पसंगादो । एवमोदइयस्स जोगस्स कधं खओवसमियत्तं उच्चदे ? ण, सरीरणामकम्मोदएण सरीरपाओग्गपोग्गलेसु बहुसु संचयं गच्छमाणेसु विरियंतराइयस्स सव्वघादिफहयाणमुदयाभावेण तेसिं संतो-वसमेण देसघादिफहयाणमुदएण समुब्भवादो लद्धखओवसमववएसं विरियं वड्ढदि, तं विरियं पप्प जेण जीवपदेसाणं संकोच-विकोचो वड्ढदि तेण जोगो खओवसमिओ त्ति वुत्तो । विरियंतराइयखओवसमजणिदवलवड्ढि-हाणीहिंतो जदि जीवपदेसपरिप्फंदस्स वड्ढि-हाणीओ

विचार कर पूछा गया है कि जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी कैसे होता है ।

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव मनोयोगी, वचनयोगी आर काययोगी होता है ॥ ३३ ॥

शंका—जीवप्रदेशोंके संकोच और विकोच अर्थात् विस्तार रूप परिस्पंदको योग कहते हैं । यह परिस्पंद कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होता है, क्योंकि, कर्मोदयसे रहित सिद्धोंके वह नहीं पाया जाता । अयोगिकेवलीमें योगके अभावसे यह कहना उचित नहीं है कि योग औदयिक नहीं होता, क्योंकि, अयोगिकेवलीके यदि योग नहीं होता तो शरीर नामकर्मका उदय भी तो नहीं होता । शरीर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाला योग उस कर्मोदयके विना नहीं हो सकता, क्योंकि, वैसा माननेसे अतिप्रसंग दोष उत्पन्न होगा । इस प्रकार जब योग औदयिक होता है, तो उसे क्षायोपशमिक क्यों कहते हैं ?

समाधान—ऐसा नहीं, क्योंकि जब शरीर नामकर्मके उदयसे शरीर बननेके योग्य बहुतसे पुद्गलोंका संचय होता है और वीर्यान्तराय कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावसे व उन्हीं स्पर्धकोंके सत्वोपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण क्षायोपशमिक कहलानेवाला वीर्य (बल) बढ़ता है, तब उस वीर्यको पाकर चूंकि जीवप्रदेशोंका संकोच-विकोच बढ़ता है, इसीलिये योग क्षायोपशमिक कहा गया है ।

शंका—यदि वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए बलकी वृद्धि और हानिसे

होंति तो खीणंतराइयमि सिद्धे जोगबहुत्तं पसज्जदे ? ण, खओवसमियबलादो खइयस्स बलस्स पुधत्तदंसणादो । ण च खओवसमियबलवड्ढि-हाणीहिंतो वड्ढि-हाणीणं गच्छमाणो जीवपदेसपरिप्फंदो खइयबलादो वड्ढि-हाणीणं गच्छदि, अइप्पसंगादो । जदि जोगो वीरियंतराइयखओवसमजणिदो तो सजोगिभिह जोगाभावो पसज्जदे ? ण, उवयारेण खओवसमियं भावं पत्तस्स ओदइयस्स जोगस्स तत्थाभावविरोहादो ।

सो च जोगो त्तिविहो मणजोगो वच्चिजोगो कायजोगो ति । मणवग्गणादो णिप्फण्णदच्चमणमवलंबियं^१ जो जीवस्स संकोच-विकोचो सो मणजोगो । भासावग्गणा-पोगलखंधे अवलंबिय जो जीवपदेसाणं संकोच-विकोचो सो वच्चिजोगो णाम । जो चउव्विह^२सरीराणि अवलंबिय जीवपदेसाणं संकोच-विकोचो सो कायजोगो णाम । दो

जीवप्रदेशोंके परिस्पन्दकी वृद्धि और हानि होती है, तब तो जिसके अन्तराय कर्म क्षीण हो गया है ऐसे सिद्ध जीवमें योगकी बहुलताका प्रसंग आता है ?

समाधान—नहीं आता, क्योंकि क्षायोपशमिक बलसे क्षायिक बल भिन्न देखा जाता है। क्षायोपशमिक बलकी वृद्धि-हानिसे वृद्धि-हानिको प्राप्त होनेवाला जीवप्रदेशोंका परिस्पन्द क्षायिक बलसे वृद्धि-हानिको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेसे तो अतिप्रसंग दोष आजायगा।

शंका—यदि योग वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है, तो सयोगिकेवलीमें योगके अभावका प्रसंग आता है ?

समाधान—नहीं आता, क्योंकि योगमें क्षायोपशमिक भाव तो उपचारसे माना गया है। असलमें तो योग औद्यिक भाव ही है, और औद्यिक योगका सयोगिकेवलीमें अभाव माननेमें विरोध आता है।

वह योग तीन प्रकारका है—मनोयोग, वचनयोग, और काययोग। मनो-वर्गणासे निष्पन्न हुए द्रव्यमनके अवलम्बनसे जो जीवका संकोच-विकोच होता है वह मनोयोग है। भाषावर्गणासम्बन्धी पुद्गलस्फूर्तोंके अवलम्बनसे जो जीवप्रदेशोंका संकोच-विकोच होता है वह वचनयोग है। जो चतुर्विध शरीरोंके अवलम्बनसे जीवप्रदेशोंका संकोच-विकोच होता है वह काययोग है।

१ प्रतिष्ठा ' -दच्चमणवलंबिय ' इति पाठः ।

२ प्रतिष्ठा ' चउव्विहो ' इति पाठः ।

वा तिण्णि वा जोगा जुगवं किण्ण होंति ? ण, तेसिं णिसिद्धाकमवुत्तीदो । तेसिमक्कमेण वुत्ती वुवलंभदे चे ? ण, इंदियविसयमइक्कंतजीवपदेसपरिप्फंदस्स इंदिएहि उवलंभविरोहादो । ण जीवे चलंते जीवपदेसाणं संकोच-विकोचणियमो, सिंज्झंतपढमसमए एत्तो लोअग्गं गच्छंतम्मि जीवपदेसाणं संकोच-विकोचाणुवलंभा ।

कथं मणजोगो खओवसमियो ? वुत्तदे । वीरियंतराइयस्स सव्वघादिफहयाणं संतोवसमेण देसघादिफहयाणमुदएण णोइंदियावरणस्स सव्वघादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण देसघादिफहयाणमुदएण मणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स जेण मणजोगो समुप्पज्जदि तेणोसो^१ खओवसमिओ । वीरियंतराइयस्स सव्वघादिफहयाणं संतोवसमेण देसघादिफहयाणमुदएण जिड्ढिभदियावरणस्स सव्वघादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण देसघादिफहयाणमुदएण भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स सरणाम-

शंका—दो या तीन योग एक साथ क्यों नहीं होते ?

समाधान—नहीं होते, क्योंकि, उनकी एक साथ वृत्तिका निषेध किया गया है ।

शंका—अनेक योगोंकी एक साथ वृत्ति पायी तो जाती है ?

समाधान—नहीं पायी जाती, क्योंकि इन्द्रियोंके विषयसे परे जो जीवप्रदेशोंका परिस्पन्द होता है उसका इन्द्रियों द्वारा ज्ञान मान लेनेमें विरोध आता है । जीवोंके चलते समय जीवप्रदेशोंके संकोच-विकोचका नियम नहीं है, क्योंकि, सिद्ध होनेके प्रथम समयमें जब जीव यहाँसे, अर्थात् मध्यलोकसे, लोकके अग्रभागको जाता है तब उसके जीवप्रदेशोंमें संकोच-विकोच नहीं पाया जाता ।

शंका—मनोयोग क्षायोपशमिक कैसे है ?

समाधान—बतलाते हैं । चूंकि वीर्यान्तरायकर्मके सर्वघाति स्पर्धकोंके सत्त्वोपशमसे व देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; नोइन्द्रियावरण कर्मके सर्वघाति स्पर्धकोंके उदयक्षयसे व उन्हीं स्पर्धकोंके सत्त्वोपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे मनपर्याप्ति पूरी करलेनेवाले जीवके मनोयोग उत्पन्न होता है, इसलिये उसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं ।

उसी प्रकार, वीर्यान्तरायकर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके सत्त्वोपशमसे व देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; जिह्नेन्द्रियावरण कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे व उन्हींके सत्त्वोपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे भाषापर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले स्वर-

१ कप्रती ' तेण सो ' इति पाठः ।

कम्मोदइल्लस्स वच्चिजोगस्सुवलंभा खओवसमिओ वच्चिजोगो । वीरियंतराइयस्स सव्व-
घादिफह्याणं संतोवसमेण देसघादिफह्याणमुदएण कायजोगुवलंभादो खओवसमिओ
कायजोगो ।

अजोगी णाम कधं भवदि ? ॥ ३४ ॥

एत्थ णय-णिकखेवेहि अजोगित्तस्स पुवं व चालणा कायव्वा ।

खइयाए लद्धीए ॥ ३५ ॥

जोगकारणसरीरादिकम्माणं णिम्मूलखएणुप्पणत्तादो खइया लद्धी अजोगस्स ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदो पुरिसवेदो णवुंसयवेदो णाम कधं
भवदि ? ॥ ३६ ॥

किमोदइएण भावेण किमुवसमिएण किं खइएण किं पारिणामिएण भावेणेत्ति
बुद्धीए काऊण इत्थिवेदादओ कधं होदि त्ति वुत्तं । एवंविहसंसयविणासणट्टमुत्तरसुत्तं
भणदि—

नामकर्मादय सहित जीवके वचनयोग पाया जाता है, इसीसे वचनयोग भी क्षायो-
पशमिक है ।

वीर्यान्तरायकर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके सत्त्वोपशमसे व देशघाती स्पर्धकोंके
उदयसे काययोग पाया जाता है, इसीसे काययोग भी क्षायोपशमिक है ।

जीव अयोगी कैसे होता है ? ॥ ३४ ॥

यहां भी नयों और निक्षेपोंके द्वारा अयोगित्वकी पूर्ववत् चालना करना चाहिये ।

क्षायिक लब्धिसे जीव अयोगी होता है ॥ ३५ ॥

योगके कारणभूत शरीरादिक कर्मोंके निर्मूल क्षयसे उत्पन्न होनेके कारण
अयोगकी लब्धि क्षायिक है ।

वेदमार्गानुसार जीव स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी कैसे होता है ? ॥ ३६ ॥

क्या औदयिक भावसे, कि औपशमिक भावसे, कि क्षायिक भावसे, कि पारि-
णामिक भावसे जीव स्त्रीवेदी आदि होता है ? ऐसा मनमें विचार कर ' स्त्रीवेदी आदि
कैसे होता है ' यह प्रश्न किया गया है । इस प्रकारके संशयका विनाश करनेके लिये
आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं —

चरित्तमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदा ॥ ३७ ॥

चरित्तमोहणीयस्स उदएण होंति त्ति सामण्णेण वुत्ते सव्वस्स चरित्तमोहणीयस्स उदएण तिण्हं वेदाणमुप्पत्ती पसज्जेदे । ण च एवं, विरुद्धाणं तिण्हमेक्कदो उप्पत्तिविरोहादो । तदो णेदं सुत्तं घडदि त्ति ? ण, ' सामान्यचोदनाश्च विशेषेणवतिष्ठंत ' इति न्यायात् जइवि सामण्णेण वुत्तं तो वि विसेसोवल्लुद्धी होदि त्ति, सामण्णादो चरित्तमोहणीयादो तिण्हं विरुद्धाणमुप्पत्तिविरोहादो । तदो इत्थिवेदोदएण इत्थिवेदो, पुरिसवेदोदएण पुरिस-वेदो, णवुंसयवेदोदएण णवुंसयवेदो होदि त्ति सिद्धं ।

इत्थिवेददव्वकम्मजणिदपरिणामो किमित्थिवेदो वुच्चदि णामकम्मोदयजणिद-थण-जहण-जोणिविसिद्धुसरीरं वा । ण ताव सरीरमेत्थिवेदो, ' चारित्तमोहोदएण वेदाणमुप्पत्तिं परूवेमो ' त्ति एदेण सुत्तेण सह विरोहादो, सरीरीणमवगदवेदत्ताभावादो वा ।

चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे जीव स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी होता है ॥ ३७ ॥

शंका—' चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे स्त्रीवेदी आदिक होते हैं ' ऐसा सामान्यसे कह देनेपर समस्त चारित्रमोहनीयके उदयसे तीनों वेदोंकी उत्पत्तिका प्रसंग आता है । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, परस्पर विरोधी तीनों वेदोंकी एक ही कारणसे उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । इसलिये यह सूत्र घटित नहीं होता ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, ' सामान्यतः एक रूपसे निर्दिष्ट किये गये भावोंकी आन्तरिक व्यवस्था विशेष विशेष रूपसे होती है ' इस न्यायके अनुसार यद्यपि सामान्यसे वैसा कह दिया गया है, तथापि पृथक् पृथक् वेदोंकी पृथक् पृथक् व्यवस्था पायी जाती है, क्योंकि, सामान्य चारित्रमोहनीयसे तीनों विरुद्ध वेदोंकी उत्पत्ति माननेमें तो विरोध आता ही है । अतः स्त्रीवेदके उदयसे स्त्रीवेद उत्पन्न होता है, पुरुषवेदके उदयसे पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयसे नपुंसकवेद उत्पन्न होता है, ऐसा सिद्ध हुआ ।

शंका—क्या स्त्रीवेद-द्रव्यकर्मसे उत्पन्न परिणामको स्त्रीवेद कहते हैं, या नाम-कर्मके उदयसे उत्पन्न स्तन, जघन, योनि आदिसे विशिष्ट शरीरको स्त्रीवेद कहते हैं ? शरीरको तो यहां स्त्रीवेद मान नहीं सकते, क्योंकि, वैसा माननेपर ' चारित्रमोहके उदयसे वेदोंकी उत्पत्तिका प्ररूपण करते हैं ' इस सूत्रसे विरोध आता है और शरीर सहित जीवोंके अपगतवेदत्वके अभावका भी प्रसंग आता है । प्रथम पक्ष भी माना नहीं

ण पढमपक्खो, एककम्मि कज्ज-कारणभावविरोहादो ? एत्थ परिहारो बुच्चदे । ण विदिय-पक्खो, अणब्भुवगमादो । ण च पढमपक्खम्मि बुत्तदोसो संभवदि, परिणामादो परिणामिणो कथंचिभेदेण एयत्ताभावादो । कुदो ? चारित्तमोहणीयस्स उदओ कारणं, कज्जं पुण तदुदयविसिद्धो इत्थिवेदसण्णदो जीवो । तेण पज्जाएण तस्सुप्पज्जमाणत्तादो ण कारण-कज्जभावो एत्थ विरुज्झदे । एवं सेसवेदाणं पि वत्तव्वं । सेसा वि भावा एत्थ संभवन्ति, तेहि भोवेहि वेदाणं णिहेसो किण्ण कदो ? ण, वेदणिबंधणपरिणामस्स खओवसमियादिपरिणामाभावा वेदविसिद्धजीवदव्वट्टियसेसभावाणं पि तिवेयसाहारणाणं तद्वेतुत्तविरोहादो ।

अवगदवेदो णाम कथं भवदि ? ॥ ३८ ॥

एत्थ णय-णिकखेव-भावे अस्सिदूण पुव्वं व चालणा कायव्वा ।

जा सकता, क्योंकि, एक ही वस्तुमें कार्य और कारण भाव स्थापित करनेमें विरोध उत्पन्न होता है ?

समाधान—इस शंकाका परिहार कहते हैं । द्वितीय पक्ष तो ठीक नहीं है, क्योंकि वैसा माना ही नहीं गया है । किन्तु प्रथम पक्षमें जो दोष बतलाया गया है वह घटित नहीं होता, क्योंकि, परिणामसे परिणामी कथंचित् भिन्न होता है जिससे उनमें एकत्व नहीं पाया जाता । जैसे—चारित्रमोहनीयका उदय तो कारण है, और उसका कार्य है उस कर्मोदयसे विशिष्ट खीवेदी कहलानेवाला जीव । चूंकि त्रिवाक्षित कर्मोदयसे उस पर्यायसे विशिष्ट वह जीव उत्पन्न हुआ है, अतएव यहां कारण-कार्य भाव विरोधको प्राप्त नहीं होता । इसी प्रकार शेष वेदोंके विषयमें भी कहना चाहिये ।

शंका—शेष क्षायोपशमिक आदि भाव भी तो यहां संभव हैं, फिर उन भावोंसे वेदोंका निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं किया, क्योंकि, वेदमूलक परिणाममें क्षायोपशमिकादि परिणामोंका अभाव है तथा वेदविशिष्ट जीव द्रव्यमें स्थित शेष भावोंके तीनों वेदोंमें साधारण होनेसे उन्हें विवाक्षित वेदका हेतु माननेमें विरोध आता है ।

जीव अपगतवेदी कैसे होता है ? ॥ ३८ ॥

यहां नय, निक्षेप और भावोंका आश्रय कर पूर्वके समान चालना करना चाहिये ।

१ कप्रतौ ' तिवेद ' इति पाठः ।

२ प्रतिष्ठु ' तद्वेतुत्तविरोहादो ' मप्रतौ ' तद्वेतुत्तविरोहादो ' इति पाठः ।

उवसमियाए खइयाए लद्धीए ॥ ३९ ॥

अप्पिदवेदोदएण उवसमसेडिं चट्टिय मोहणीयस्स अंतरं करिय जहाजोग्ग-
ट्टाणम्मि अप्पिदवेदस्स उदय-उदीरणा-ओकट्टुकट्टण-परपयडिसंकम-ट्टिदि-अणु भागखंडएहि
विणा जीवम्मि पोग्गलखंधाणमच्छणमुवसमो । तत्थ जा जीवस्स वेदाभावसरूवा
लद्धी तीए अवगदवेदो जेण होदि तेण उवसमियाए लद्धीए अवगदवेदो होदि त्ति
वुत्तं । अप्पिदवेदोदएण खवगसेडिं चट्टिय अंतरकरणं करिय जहाजोग्गट्टाणे अप्पिदवेदस्स
पोग्गलखंधाणं ट्टिदि-अणु भागेहि सह जीवपदेसेहिंतो णिस्सेसोसरणं खओ णाम ।
तत्थुप्पणजीवपरिणामो खइओ, तस्स लद्धी खइया लद्धी, तीए खइयाए लद्धीए वा
अवगदवेदो होदि ।

वेदाभाव-लद्धीणं एककालम्मि चैव उप्पज्जमाणीणं कधमाहाराहेयभावो,
कज्ज-कारणभावो वा ? ण, समकालेणुप्पज्जमाणच्छायंकुराणं कज्ज-कारणभावदंसणादो,
घट्टुप्पत्तीए कुसूलाभावदंसणादो च । होदु णाम तिवेददव्वकम्मकखएण भाववेदाभावो,

औपशमिक व क्षायिक लब्धिसे जीव अपगतवेदी होता है ॥ ३९ ॥

विवक्षित वेदके उदय सहित उपशमश्रेणीको चढ़कर, मोहनीय कर्मका अन्तर
करके, यथायोग्य स्थानमें विवक्षित वेदके उदय, उदीरणा, अपकर्षण, उत्कर्षण, परप्रकृति-
संक्रम, स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकके विना जीवमें जो पुद्गलस्कंधोंका अवस्थान
होता है उसे उपशम कहते हैं । उस समय जो जीवकी वेदके अभाव रूप लब्धि है
उसीसे जीव अपगतवेदी होता है और इसीसे यह कहा गया है कि उपशमलब्धिसे
जीव अपगतवेदी होता है ।

अथवा—विवक्षित वेदके उदयसे क्षपकश्रेणीको चढ़कर, अन्तरकरण करके,
यथायोग्य स्थानमें विवक्षित वेदसम्बन्धी पुद्गलस्कंधोंके स्थिति और अनुभाग सहित
जीवप्रदेशोंसे निःशेषतः दूर हो जानेको क्षय कहते हैं । उस अवस्थामें जो जीवका
परिणाम होता है वह क्षायिक भाव है । उसी भावकी लब्धिको क्षायिक लब्धि कहते हैं ।
उस क्षायिक लब्धिसे अपगतवेदी होता है ।

शंका—वेदका अभाव और उस अभाव सम्बन्धी लब्धि ये दोनों जब एक ही
कालमें उत्पन्न होते हैं, तब उनमें आधार-आधेयभाव या कार्य-कारणभाव कैसे बन
सकता है ?

समाधान—बन सकता है, क्योंकि, समान कालमें उत्पन्न होनेवाले छाया और
अंकुरमें कार्य-कारणभाव देखा जाता है, तथा घटकी उत्पत्तिके कालमें ही कुशूलका
अभाव देखा जाता है ।

शंका—तीनों वेदोंके द्रव्यकर्मोंके क्षयसे भाववेदका अभाव भले ही हो,

कारणाभावो कज्जाभावस्स' गाइयत्तादो । किंतु उवसमसेडिभिह संतेसु दव्वकम्मकखंधेसु भाववेदाभावो ण घड्ढे, संते कारणे कज्जाभावविरोहादो ? ण, ओसहाणं दिड्डसत्तीणं सामजीवे पवुत्ताणं आमेष षडिहंयसत्तीणं सकज्जकरणाणुवलंभादो' ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई गाम कधं भवदि ? ॥ ४० ॥

क्रोधो दुविहो दव्वकोधो भावकोधो चेदि । दव्वकोधो गाम भावकोधुप्पत्ति-णिमित्तदव्वं । तं दुविहं कम्मदव्वं णोकम्मदव्वं चेदि । जं तं कम्मदव्वं तं तिविहं बंधुदय-संतभेएण । जं तं कोहणिमित्तंणोकम्मदव्वं णेगमणयाहिप्पाएण लद्धकोहववएसं तं दुविहं सचित्तमचित्तं चेदि । एदे कोधकसाया जस्स अत्थि सो कोधकसाई । एत्थ अप्पिदकोधकसाई कधं भवदि केण पयारेण होदि त्ति पुच्छा कदा । एवं सेसकसायाणं

क्योंकि, कारणके अभावसे कार्यका अभाव मानना न्यायसंगत है । किन्तु उपशमश्रेणीमें त्रिवेद सम्बन्धी पुद्गलद्रव्यस्कंधोंके रहते हुए भाववेदका अभाव घटित नहीं होता, क्योंकि, कारणके सद्भावमें कार्यका अभाव माननेमें विरोध आता है ?

समाधान—विरोध नहीं आता, क्योंकि, जिनकी शक्ति देखी जा चुकी है ऐसी औषधियां जब किसी आमरोग सहित अर्थात् अजीर्णके रोगी जीवको दी जाती हैं, तब उस अजीर्ण रोगसे उन औषधियोंकी वह शक्ति प्रतिहत हो जाती है और वे अपने कार्य करनेमें असमर्थ पायी जाती हैं ।

कषायमार्गणानुसार जीव क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी कैसे होता है ? ॥ ४० ॥

क्रोध दो प्रकारका है— द्रव्यक्रोध और भावक्रोध । भावक्रोधकी उत्पत्तिके निमित्तभूत द्रव्यको द्रव्यक्रोध कहते हैं । वह द्रव्यक्रोध दो प्रकारका है— कर्मद्रव्य और नोकर्मद्रव्य । कर्मद्रव्य बंध, उदय और सत्त्वके भेदसे तीन प्रकारका है । क्रोधके निमित्तभूत जिस नोकर्मद्रव्यने नैगम नयके अभिप्रायसे क्रोध संज्ञा प्राप्त की है वह दो प्रकारका है— सचित्त और अचित्त । ये सब क्रोधकषाय जिस जीवके होते हैं वह क्रोधकषायी है । प्रस्तुत सूत्रमें यह बात पूछी गयी है कि विवक्षित क्रोधकषायी कैसे अर्थात् किस प्रकारसे होता है । इसी प्रकार शेष कषायोंका भी कथन करना चाहिये । अविवक्षित

१ प्रतिषु ' कज्जामावस्स वि ' इति पाठः । मप्रतौ तु ' वि ' इति पाठः नास्ति ।

२ प्रतिषु ' सकज्जकारणाणुवलंभादो ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' कोसाणिमित्त- ' इति पाठः ।

पि वत्तव्वं । अणप्पिदकसाए णिवारिय अण्पिदकसायजाणावणट्टमुत्तरसुत्तमागदं—

चरित्तमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण ॥ ४१ ॥

सामण्णेण णिद्देसे कदे वि एत्थ विसेसोवलद्धी होदि, 'सामान्यचोदनाश्च विशेषेष्ववतिष्ठन्ते' इति न्यायात् । तेण क्रोधकसायस्स उदएण क्रोधकसाई, माणकसायस्स उदएण माणकसाई, मायाकसायस्स उदएण मायकसाई, लोभकसायस्स उदएण लोभकसाइ त्ति सिद्धं ।

अकसाई णाम कधं भवदि ? ॥ ४२ ॥

पुव्वुत्तकसायाणं कस्स अभावेण अकसाई होदि त्ति पुच्छा कदा होदि । अण्पिदकसाइगहणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

उवसमियाए खइयाए लद्धीए ॥ ४३ ॥

चरित्तमोहणीयस्स उवसमेण खएण च जा उप्पणलद्धी तीए अकसायत्तं होदि, ण सेसकम्माणं खएणुवसमेण वा, तत्तो जीवस्स उवसमिय-खइयलद्धीणमणुप्पत्तीदो ।

कषायोंको छोड़ विवक्षित कषायोंका ज्ञान करानेके लिये अगला सूत्र आया है—

चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे जीव क्रोध आदि कषायी होता है ॥ ४१ ॥

सामान्यसे निर्देश किये जानेपर भी यहां विशेष व्यवस्था समझमें आजाती है क्योंकि 'सामान्य निर्देश विशेषोंमें भी घटित होते हैं' ऐसा न्याय है । अतः क्रोधकषायके उदयसे क्रोधकषायी, मानकषायके उदयसे मानकषायी, मायाकषायके उदयसे मायाकषायी और लोभकषायके उदयसे लोभकषायी होता है, यह बात सिद्ध हो जाती है ।

जीव अकषायी कैसे होता है ? ॥ ४२ ॥

'पूर्वोक्त कषायोंमेंसे किस कषायके अभावसे जीव अकषायी होता है ' यह बात यहां पूछी गयी है । विवक्षित अकषायीके ग्रहण करानेके लिये अगला सूत्र कहते हैं—

औपशमिक व क्षायिक लब्धिसे जीव अकषायी होता है ॥ ४३ ॥

चारित्रमोहनीयके उपशमसे और क्षयसे जो लब्धि उत्पन्न होती है उसीसे अकषायत्व उत्पन्न होता है । शेष कर्मोंके क्षय व उपशमसे अकषायत्व उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि उससे जीवके (तत्प्राद्योग्य) औपशमिक या क्षायिक लब्धियां उत्पन्न नहीं होतीं ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणि-
बोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी भणपज्जवणाणी णाम कधं
भवदि ? ॥ ४४ ॥

तत्थ ताव मदिअण्णाणस्स उच्चदे— मदिअण्णाणकारणं दुविहं दव्वकारणं भाव-
कारणं चेदि । तत्थ दव्वकारणं मदिअण्णाणमिच्चदव्वं । तं दुविहं कम्म-णोकम्मभेएण ।
कम्मं तिविहं बंधुदय-संतमिदि, ओग्गहावरणादिभेएण अणेयविहं वा । णोकम्मदव्वं
तिविहं सच्चित्त-अच्चित्त-मिस्समिदि । एदेसिं दव्वाणं जा मदिअण्णाणुप्पायणसत्ती तं जाव
कारणं । एदेहिंतो उत्पण्णमदिअण्णाणी सो कधं भवदि केण पयारेण होदि त्ति वुत्तं
होदि । एवं सेसणाणाणं पि वत्तव्वं ।

एत्थ चोदओ भणदि— अण्णाणमिदि वुत्ते किं णाणस्स अभावो घेप्पदि आहो
ण घेप्पदि त्ति ? णाइल्लो पक्खो मदिणाणाभावे मदिपुव्वं सुदमिदि कट्टु सुदणाणस्स वि
अभावप्पसंगादो । ण चेदं पि, ताणमभावे सव्वणाणाणमभावप्पसंगा । णाणाभावे ण

ज्ञानमार्गणानुसार जीव मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिक-
ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी किस प्रकार होता है ? ॥ ४४ ॥

इनमेंसे प्रथम मतिअज्ञानका कथन करते हैं— मत्यज्ञानका कारण दो प्रकारका
है— द्रव्यकारण और भावकारण । उनमेंसे द्रव्यकारण मतिअज्ञानका निमित्तभूत द्रव्य
है, जो कर्म और नोकर्मके भेदसे दो प्रकारका है । कर्मद्रव्यकारण तीन प्रकारका है—
बन्धकर्मद्रव्य, उदयकर्मद्रव्य और सत्त्वकर्मद्रव्य । अथवा, यह कर्मद्रव्य अवग्रहावरण
आदि भेदसे अनेक प्रकारका है । नोकर्मद्रव्य तीन प्रकारका है— सच्चित्त नोकर्मद्रव्य,
अच्चित्त नोकर्मद्रव्य और मिश्र नोकर्मद्रव्य । इन द्रव्योंकी जो मतिअज्ञानको उत्पन्न करने-
वाली शक्ति है वही मतिअज्ञानकी कारणभूत है । इन सब कारणोंसे जो मतिअज्ञानी
होता है वह कैसे अर्थात् किस प्रकारसे होता है, यह अर्थ कहा गया है । इसी प्रकार
शेष ज्ञानोंके विषयमें भी कहना चाहिये ।

शंका—यहां शंकाकार कहता है कि अज्ञान कहने पर क्या ज्ञानका अभाव ग्रहण
किया है या नहीं किया ? प्रथम पक्ष तो बन नहीं सकता, क्योंकि मतिज्ञानका अभाव
माननेपर चूंकि 'मतिपूर्वक ही श्रुतज्ञान होता है' इसलिये श्रुतज्ञानके भी अभावका
प्रसंग आजायगा । और ऐसा भी माना जा सकता नहीं है, क्योंकि, मति और श्रुत
दोनों ज्ञानोंके अभावमें सभी ज्ञानोंके अभावका प्रसंग आजाता है । ज्ञानके अभावमें

दंसणं पि, दोणमण्णोणाविणाभावादो । णाण-दंसणाणमभावे ण जीवो वि, तस्स तल्लक्खणत्तादो त्ति । ण विदियपक्खो वि, पडिसेहस्स फलाभावप्पसंगादो त्ति ? एत्थ परिहारो बुच्चदे- ण पढमपक्खवुत्तदोससंभवो, पसज्जपडिसेहेण एत्थ पओजणाभावा । ण विदियपक्खुत्तदोसो वि, अप्पेहिंतो' वदिरित्तासेसदव्वेसु सविहिवहसंठिएसु पडिसेहस्स फलभावुवलंभादो । किमडुं पुण सम्माइट्ठीणाणस्स पडिसेहो ण कीरदे, विहि-पडिसेह-भावेण दोणहं णाणाणं विसेसाभावा ? ण परदो वदिरित्तभावसामणमवेक्खिय एत्थ पडिसेहो कदो जेण सम्माइट्ठीणाणस्स वि पडिसेहो होज्ज, किंतु अप्पणो अवगयत्थे जम्हि जीवे सदहणं ण बुप्पज्जदि अवगयत्थविवरीयसद्दुप्पायणंमिच्छत्तुदयबलेण तत्थ जं

दर्शन भी नहीं हो सकता, क्योंकि, ज्ञान और दर्शन इन दोनोंका परस्पर अविनाभावी सम्बन्ध है । तथा ज्ञान और दर्शनके अभावमें जीव भी नहीं रहता, क्योंकि, जीवका तो ज्ञान और दर्शन ही लक्षण है । दूसरा पक्ष भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि, यदि अज्ञान कहनेपर ज्ञानका अभाव न माना जाय तो फिर प्रतिषेधके फलाभावका प्रसंग आजाता है ?

समाधान—इस शंकाका परिहार कहते हैं— प्रथम पक्षमें कहे गये दोषकी प्रस्तुतमें संभावना नहीं है, क्योंकि यहाँपर प्रसज्यप्रतिषेध अर्थात् अभावमात्रसे प्रयोजन नहीं है । दूसरे पक्षमें कहा गया दोष भी नहीं आता, क्योंकि, यहाँ जो अज्ञान शब्दसे ज्ञानका प्रतिषेध किया गया है उसकी आत्माको छोड़ अन्य समीपवर्ती प्रदेशमें स्थित समस्त द्रव्योंमें स्व-पर विवेकके अभाव रूप सफलता पायी जाती है । अर्थात् स्व-पर विवेकसे रहित जो पदार्थ ज्ञान होता है उसे ही यहाँ अज्ञान कहा है ।

शंका—तो यहाँ सम्यग्दृष्टिके ज्ञानका भी प्रतिषेध क्यों न किया जाय, क्योंकि, विधि और प्रतिषेध भावसे मिथ्यादृष्टिज्ञान और सम्यग्दृष्टिज्ञानमें कोई विशेषता नहीं है ?

समाधान—यहाँ अन्य पदार्थोंमें परत्वबुद्धिके अतिरिक्त भावसामान्यकी अपेक्षा प्रतिषेध नहीं किया गया जिससे सम्यग्दृष्टिज्ञानका भी प्रतिषेध होजाय । किन्तु ज्ञात वस्तुमें विपरीत श्रद्धा उत्पन्न करानेवाले मिथ्यात्वोदयके बलसे जहाँपर जीवमें अपने जाने हुए

१ प्रतिषु 'अप्पेहिंतो' इति पाठः ।

२ प्रतिषु 'विवरीयसद्दुप्पायण-' इति पाठः ।

णाणं तसण्णाणमिदि भण्णइ, णाणफलाभावादो । घड-पडत्थंभादिसु' मिच्छाइट्ठीणं जहावगमं सहहणमुवल्लभदे चे ? ण, तत्थ वि तस्स अणज्झवसायदंसणादो । ण चेदमसिद्धं 'इदमेवं चेवेत्ति' णिच्छयाभावा । अधवा जहा दिसामूढो वण्ण-गंध-रस-फासजहावगमं सहहंतो वि अण्णाणी वुच्चदे जहावगमदिससहहणाभावादो, एवं थंभादिपयत्थे जहावगमं सहहंतो वि अण्णाणी वुच्चदे जिणवयणेण सहहणाभावादो ।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ४५ ॥

कथं मदिअण्णाणस्स खओवसमिया लद्धी ? मदिअण्णाणावरणस्स देशघादि-फहयाणमुदएण मदिअण्णाणित्तुवलंभादो । जदि देसघादिफहयाणमुदएण अण्णाणित्तं होदि तो तस्स ओदइयत्तं पसज्जदे ? ण, सच्चघादिफहयाणमुदयाभावा । कथं पुण खओव-

पदार्थमें श्रद्धान नहीं उत्पन्न होता, वहां जो ज्ञान होता है वह अज्ञान कहलाता है, क्योंकि, उसमें ज्ञानका फल नहीं पाया जाता ।

शंका—घट, पट, स्तंभ आदि पदार्थोंमें मिथ्यादृष्टियोंके भी यथार्थ ज्ञान और श्रद्धान पाया तो जाता है ?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि, उनके उस ज्ञानमें भी अनध्यवसाय अर्थात् अनिश्चय देखा जाता है । यह बात असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, 'यह ऐसा ही है' ऐसे निश्चयका वहां अभाव होता है ।

अथवा, यथार्थ दिशाके सम्बन्धमें विमूढ जीव वर्ण, गंध, रस और स्पर्श, इन इन्द्रिय-विषयोंके ज्ञानानुसार श्रद्धान करता हुआ भी अज्ञानी कहलाता है, क्योंकि, उसके यथार्थ ज्ञानकी दिशामें श्रद्धानका अभाव है । इसी प्रकार स्तंभादि पदार्थोंमें यथा-ज्ञान श्रद्धा रखता हुआ भी जीव जिन भगवान्के वचनानुसार श्रद्धानके अभावसे अज्ञानी ही कहलाता है ।

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव मतिअज्ञानी आदि होता है ॥ ४५ ॥

शंका—मतिअज्ञानी जीवके क्षायोपशमिक लब्धि कैसे मानी जा सकती है ?

समाधान—क्योंकि, उस जीवके मत्यज्ञानावरण कर्मके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे मत्यज्ञानित्व पाया जाता है ।

शंका—यदि देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे अज्ञानित्व होता है तो अज्ञानित्वको औदयिक भाव माननेका प्रसंग आता है ?

समाधान—नहीं आता, क्योंकि वहां सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयका अभाव है ?

शंका—तो फिर अज्ञानित्वमें क्षायोपशमिकत्व क्या है ?

समियत्तं ? आवरणे संते वि आवरणिज्जस्स णाणस्स एगदेसो जम्हि उदए उवलम्भदे तस्स भावस्स खओवसमववएसादो खओवसमियत्तमण्णाणस्स ण विरुज्जदे । अधवा णाणस्स विणासो खओ णाम, तस्स उवसमो एगदेसक्खओ, तस्स खओवसमसण्णा । तत्थ णाणमण्णाणं वा उप्पज्जदि त्ति खओवसमिया लद्धी बुच्चदे ।

एवं सुदअण्णाण विभंगणान-आभिणिबोहियणान-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणानं पि खओवसमिओ भावो वत्तव्वो । णवरि अप्पणो आवरणानं देसघादिफइयाणमुदएण खओवसमिया लद्धी होदि त्ति वत्तव्वं । सत्तहं णाणानं सत्त चैव आवरणाणि किण्ण होदि त्ति चे ? ण, पंचणानवदिरित्तणानाणुवलंभा । मदिअण्णाण-सुदअण्णाण-विभंगणानान-मभावो वि णत्थि, जहाकमेण आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणानेसु तेसिमंतवभावादो ।

पुव्वमिंदिय-जोगमग्गणासु खओवसमियभावपरूवणाए सव्वघादिफइयाणमुदय-क्खएण तेसिं चैव संतोवसमेण देसघादिफइयाणमुदएणेत्ति परूविदं । संपहि दोण्हं पडिसेहं कादूण देसघादिफइयाणमुदएणेव खओवसमियभावो होदि त्ति परूवेंतस्स सुववयण-

समाधान—आवरणके होते हुए भी आवरणीय ज्ञानका एक देश जहांपर उदयमें पाया जाता है उसी भावको क्षायोपशमिक नाम दिया गया है । इससे अज्ञानको क्षायोपशमिक भाव माननेमें कोई विरोध नहीं आता । अथवा, ज्ञानके विनाशका नाम क्षय है । उस क्षयका उपशम हुआ एकदेश क्षय । इस प्रकार ज्ञानके एकदेशीय क्षयकी क्षयोपशम संज्ञा मानी जा सकती है । ऐसा क्षयोपशम होनेपर जो ज्ञान या अज्ञान उत्पन्न होता है उसीको क्षायोपशमिक लब्धि कहते हैं ।

इसी प्रकार श्रुताज्ञान, विभंगज्ञान, आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानको भी क्षायोपशमिक भाव कहना चाहिये । विशेषता केवल यह है कि इन सब ज्ञानोंमें अपने अपने आवरणोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपशमिक लब्धि होती है, ऐसा कहना चाहिये ।

शंका—इन सातों ज्ञानोंके सात ही आवरण क्यों नहीं होते ?

समाधान— नहीं होते, क्योंकि, पांच ज्ञानोंके अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञान पाये नहीं जाते । किन्तु इससे मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान और विभंगज्ञानका अभाव नहीं हो जाता, क्योंकि, उनका यथाक्रमसे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानमें अन्तर्भाव होता है ।

शंका— पहले इन्द्रियमार्गणा और योगमार्गणामें सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हीं स्पर्धकोंके सत्त्वोपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपशमिक भावकी प्ररूपणा की गयी है । किन्तु यहांपर सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षय और उनके सत्त्वोपशम इन दोनोंका प्रतिषेध करके केवल देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपशमिक भाव होता

विरोहो किण्ण जायदे ? ण, जदि सव्वघादिफहयाणमुदयक्खएण संजुत्तदेसघादिफहयाण-
मुदएणेव खओवसमियो भावो इच्छिज्जदि तो फासिंदिय-फायजोगो-मदि-सुदणाणाणं
खओवसमिओ भावो ण पावदे, पासिंदियावरण-वीरियंतराइय-मदि-सुदणाणावरणाणं
सव्वघादिफहयाणं सव्वकालमुदयाभावा । ण च सुववयणविरोहो वि, इंदिय-जोगमग्गणासु
अण्णेसिमाइरियाणं वक्खाणक्कमजाणावणट्ठं तत्थ तधापरूवणादो । जं जदो णियमेण
उप्पज्जदि तं तस्स कज्जमियरं च कारणं । ण च देसघादिफहयाणमुदओ व्व सव्वघादि-
फहयाणमुदयक्खओ णियमेण अप्पणो णाणजणओ, खीणकसायचरिमसमए ओहि-
मणपज्जवणाणावरणसव्वघादिफहयाणं खएण समुप्पज्जमाणओहि-मणपज्जवणाणाणमणु-
वलंभादो ।

केवलणाणी णाम कधं भवदि ? ॥ ४६ ॥

किमोदइएणोवसमिएण खओवसमिएण पारिणामिएणेत्ति ? ण पारिणामिएण

है ऐसा प्ररूपण करनेवालेके स्ववचनविरोध दोष क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं होता, क्योंकि यदि सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे संयुक्त
देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे ही क्षायोपशमिक भाव मानना इष्ट हो तो स्पर्शेन्द्रिय,
काययोग और मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान, इनके क्षायोपशमिक भाव प्राप्त नहीं होगा,
चूंकि, स्पर्शेन्द्रियावरण, वीर्यान्तराय और मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान इनके आवरणोंके
सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयका सब कालमें अभाव है । अर्थात् उक्त आवरणोंके सर्वघाती
स्पर्धकोंका उदय कभी होता ही नहीं है । इसमें कोई स्ववचन विरोध भी नहीं है क्योंकि
इन्द्रियमार्गणा और योगमार्गणामें अन्य आचार्योंके व्याख्यानक्रमका ज्ञान करानेके
लिये वहां वैसा प्ररूपण किया गया है । जो जिससे नियमतः उत्पन्न होता है वह उसका
कार्य होता है और वह दूसरा उसको उत्पन्न करने वाला कारण होता है । किन्तु देश-
घाती स्पर्धकोंके उदयके समान सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षय नियमसे अपने अपने
ज्ञानके उत्पादक नहीं होते, क्योंकि, क्षीणकषायके अन्तिम समयमें अवधि और मनःपर्यय
ज्ञानावरणोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके क्षयसे अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न होते
हुए नहीं पाये जाते ।

जीव केवलज्ञानी कैसे होता है ? ॥ ४६ ॥

क्या औदायिक भावसे, कि औपशमिक भावसे, कि क्षायोपशमिक भावसे, कि
पारिणामिक भावसे जीव केवलज्ञानी होता है ? पारिणामिक भावसे तो होता नहीं,

भावेण होदि, सव्वजीवाणं केवलणाणुप्पत्तिप्पसंगादो । णोदइएण, केवलणाणपडिबंधि-
 कम्मोदयस्स तदुप्पायणविरोहादो । णोवसमियं, णाणावरणस्स मोहणीयस्सेवुवसमाभावा ।
 ण खओवसमियं, असहायस्स करण-क्कम-व्ववहाणादीदंस्स खओवसमियत्तविरोहादो ।
 सव्वं पि णाणं केवलणाणमेव आवरणविगमवसेण तत्तो विणिग्गयणाणकणाणमुवलंभादो ।
 ण च एसो णाणकणो केवलणाणादो अण्णो, जीवे पंचण्हं णाणाणमभावादो । तेसिमभावो
 कुदोवगम्मदे ? केवलणाणेण तिकालगोयरासेसदव्व-पज्जयविसएणाक्कमेण इंदियालोआदि-
 सहेज्जाणवेक्खेण सुहुम-दूर-समिवादिविग्गसंघुम्मुककेणक्कंतासेसजीवपदेसेसु सक्कम-सस-
 हेज्ज-सपडिवक्ख-परिमिय-अविसदणाणाणमत्थित्तविरोहादो । किं च ण केवलणाणेण
 अवगयत्थे सेसणाणाणं पवुत्ती, विसदाविसदाणमेक्कत्थेक्ककालम्मि पवुत्तीविरोहादो,
 अवगदावगमे फलाभावादो च । णाणवगदे वि पवुत्ती तदणवगदत्थाभावादो । तदो

क्योंकि, यदि ऐसा होता तो सभी जीवोंके केवलज्ञानकी उत्पात्तिका प्रसंग आजाता ।
 औद्यिक भावसे भी केवलज्ञान नहीं होता, क्योंकि, केवलज्ञानके प्रतिबंधक कर्मोद्यसे
 उसकी उत्पात्ति माननेमें विरोध आता है । केवलज्ञान औपशमिक भी नहीं है, क्योंकि,
 मोहनीयके समान ज्ञानावरणका तो उपशम ही नहीं होता ।

केवलज्ञान क्षायोपशमिक भी नहीं है, क्योंकि असहाय और करण, क्रम एवं
 व्यवधानसे रहित ज्ञानको क्षायोपशमिक माननेमें विरोध आता है । यहां शंका होती है
 कि समस्त ज्ञान केवलज्ञान ही हैं, क्योंकि, आवरणके दूर हो जानेसे उसीसे निकलने-
 वाले ज्ञानकण पाये जाते हैं । यह ज्ञानकण केवलज्ञानसे भिन्न नहीं हैं, क्योंकि, जीवमें
 पांच ज्ञानोंका अभाव पाया जाता है । यदि कहा जाय कि जीवमें पांच ज्ञानोंका अभाव
 है, यह कहाँसे जाना जाता है ? तो इसका समाधान है कि केवलज्ञान होता है त्रिकाल-
 गोचर, समस्त द्रव्यों और उनकी पर्यायोंको विषय करनेवाला, अक्रमभावी, इन्द्रिया-
 लोकादि साधनोंसे निरपेक्ष, और सूक्ष्म, दूर, समीप (?) आदि विघ्नसमूहसे मुक्त । ऐसे
 केवलज्ञानसे जीवके जो समस्त प्रदेश व्याप्त हैं उनमें क्रमभावी, साधनसापेक्ष, सप्रतिपक्ष,
 परिमित और अविशद् मति आदि ज्ञानोंका अस्तित्व माननेमें विरोध आता है ? और
 केवलज्ञानसे पदार्थोंके जान लेनेपर शेषज्ञानोंकी प्रवृत्ति भी नहीं होती, क्योंकि, विशद्
 और अविशद् ज्ञानोंकी एकत्र एक कालमें प्रवृत्ति माननेमें विरोध आता है और जाने हुए
 पदार्थको पुनः जाननेमें कोई फल भी नहीं है । मति आदि ज्ञानोंकी प्रवृत्ति केवलज्ञानसे
 न जाने हुए पदार्थोंमें होती है, ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि, केवलज्ञानसे न जाना

जीवे ण पंच णाणाणि, केवलणाणमेक्कं चेव । ण चावरणाणि णाणमुप्पाइयंति विणासयाणं तदुप्पायणविरोहादो । तदो केवलणाणं खओवसमियं भावं लहदि त्ति ण, एदस्स सस-हेज्जस्स केवलत्तविरोहादो । ण च छारेणोडुद्धग्गिविणिग्गयन्नप्फाए अग्गिववएसो अग्गिबुद्धी वा अग्गिववहारो वा अत्थि, अणुवलंभादो । तदो णेदाणि णाणाणि केवलणाणं । तेण कारणेण केवलणाणं ण खओवसमियमिदि । ण खइयं पि, खओ णाम अभावो तस्स कारणत्तविरोहादो । एदं सव्वं बुद्धीए काऊण केवलणाणी कधं होदि त्ति भणिदं ।

खइयाए लद्धीए ॥ ४७ ॥

ण च केवलणाणावरणन्नखओ तुच्छो त्ति ण कज्जयरो, केवलणाणावरणबंध-संतो-दयाभावस्स अणंतवीरिय-वेरग्ग-सम्मत्त-दंसणादिगुणेहि जुत्तजिविदव्वस्स तुच्छत्तविरोहादो । भावस्स अभावत्तं ण विरुज्झदे, भावाभावाणमणोणं विस्ससेणेव सव्वप्पणा आलिंकिऊण

गया हो ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं है : इसलिये जीवमें पांच ज्ञान नहीं होते, एकमात्र केवलज्ञान ही होता है ?

आवरणोंको ज्ञानका उत्पादक मान नहीं सकते, क्योंकि, जो विनाशक हैं उन्हें उत्पादक माननेमें विरोध आता है । इसलिये 'केवलज्ञान क्षायोपशमिक भाव ही प्राप्त होता है' ऐसा भी नहीं मान सकते, क्योंकि, क्षायोपशमिक भाव साधनसापेक्ष होनेसे उसके केवलत्व माननेमें विरोध आता है । क्षार (भस्म) से ढकी हुई अग्निसे निकले हुए बाष्पको अग्नि नाम नहीं दिया जा सकता, न उसमें अग्निकी बुद्धि उत्पन्न होती, और न अशिका व्यवहार ही, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता । अतएव ये सब मति आदि ज्ञान केवलज्ञान नहीं हो सकते । इस कारणसे केवलज्ञान क्षायोपशमिक भी नहीं है ।

केवलज्ञान क्षायिक भी नहीं है, क्योंकि, क्षय तो अभावको कहते हैं, और अभावको कारण माननेमें विरोध आता है ।

इन सब विकल्पोंको मनमें करके 'जीव केवलज्ञानी कैसे होता है' यह प्रश्न किया गया है ।

क्षायिक लब्धिसे जीव केवलज्ञानी होता है ॥ ४७ ॥

केवलज्ञानावरणका क्षय तुच्छ अर्थात् अभावरूप मात्र है इसलिये वह कोई कार्य-करनेमें समर्थ नहीं हो सकता, ऐसा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि, केवलज्ञानावरणके बन्ध, सत्त्व और उदयके अभाव सहित तथा अनन्तवीर्य, वैराग्य, सम्यक्त्व व दर्शन आदि गुणोंसे युक्त जीव द्रव्यको तुच्छ माननेमें विरोध आता है । किसी भावको अभावरूप मानना विरोधी बात नहीं है, क्योंकि भाव और अभाव स्वभावसे ही एक दूसरेको

द्विदाणमुवलंभादो । ण च उवलंभमाणे विरोहो^१ अत्थि, अणुवलद्विविसयस्स तस्स उवलद्वीए अत्थित्तविरोहादो ।

संजमाणुवादेण संजदो सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदो णाम कधं भवदि ? ॥ ४८ ॥

णामसंजमो ठवणसंजमो दव्वसंजमो भावसंजमो चेदि चउव्विहो संजमो । णाम-द्ववणसंजमा गदा । दव्वसंजमो दुविहो आगम-णोआगमभेएण । आगमो गदो । णोआगमो तिविहो जाणुगसरीरणोआगमदव्वसंजम-भवियणोआगमदव्वसंजम-तव्वदिरित्त-णोआगमदव्वसंजमभेएण । जाणुग-भवियाणि^२ गदाणि । तव्वदिरित्तदव्वसंजमो संजम-साहणपिच्छाहार-कवली-पोत्थयादीणि^३ । भावसंजमो दुविहो आगम-णोआगमभेएण । आगमो गदो । णोआगमो तिविहो खइओ खओवसमिओ उवसमिओ चेदि । एदेसु संजम-पयारेसु केण पयारेण संजमो होदि त्ति पुच्छा कदा । एवं सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धि-संजदाणं पि णिकखेवो कायव्वो ।

सर्वात्म रूपसे आलिंगन करके स्थित पाये जाते हैं । जो बात पाई जाती है उसमें विरोध नहीं रहता, क्योंकि, विरोधका विषय अनुपलब्धि है और इसलिये जहां जिस बातकी उपलब्धि होती है उसमें फिर विरोधका अस्तित्व माननेमें ही विरोध आता है ।

संयममार्गणानुसार जीव संयत तथा सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धि संयत कैसे होता है ? ॥ ४८ ॥

नामसंयम, स्थापनासंयम, द्रव्यसंयम और भावसंयम, इस प्रकार संयम चार प्रकारका है । नाम और स्थापना संयम तो गये । द्रव्यसंयम आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । आगमद्रव्यसंयम भी गया । नोआगमद्रव्यसंयमके तीन भेद हैं— ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यसंयम, भव्य नोआगमद्रव्यसंयम और तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यसंयम । ज्ञायकशरीर और भव्य भी गये । तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्य-संयम संयमके साधनभूत पिच्छिका, आहार, कण्डलु (?) पुस्तक आदिको कहते हैं ।

भावसंयम आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । आगमभावसंयम गया । नोआगमभावसंयम तीन प्रकारका है— क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक ।

इन संयमोंके प्रकारोंमेंसे किस प्रकारसे संयम होता है यह प्रश्न किया गया है । इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमोंका भी निक्षेप करना चाहिये ।

१ प्रतिषु ' विरोहा ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' -भविय ' इति पाठः ।

३ कप्रतौ ' केवलीपोत्थयादीणि ' इति पाठः ।

उवसमियाए खइयाए खओवसमियाए लद्धीए ॥ ४९ ॥

संजमस्स ताव उच्चदे- चरित्तावरणस्स सव्वोवसमेण उवसंतकसायम्मि संजमो होदि त्ति उवसमियाए लद्धीए संजमस्सुप्पत्ती उत्ता । कथं तस्स खइया लद्धी ? चरित्तावरणस्स खएण संजमुप्पत्तीदो । कथं खओवसमिया लद्धी ? चदुसंजलण-णवणो-कसायाणं देसघादिफइयाणमुदएण संजमुप्पत्तीदो । कथमेदेसिं उदयस्स खओवसमववएसो ? सव्वघादिफइयाणि अणंतगुणहीणाणि होदूण देसघादिफइयत्तणेण परिणमिय उदयमाग-च्छंति, तेसिमणंतगुणहीणत्तं खओ गाम । देसघादिफइयसरूवेणवट्ठाणमुवसमो । तेहि खओवसमेहि संजुत्तोदओ^१ खओवसमो गाम । तदो समुप्पण्णो संजमो वि तेण खओव-

औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव संयत व सामायिक-छेदोपस्थान-शुद्धिसंयत होता है ॥ ४९ ॥

पहले संयमका वर्णन करते हैं — चारित्रावरण कर्मके सर्वोपशमसे जिस जीवकी कषायें उपशान्त हो गई हैं उसके संयम होता है। इस प्रकार औपशमिक लब्धिसे संयमकी उत्पत्ति कही ।

शंका — संयतके क्षायिक लब्धि कैसे होती है ?

समाधान—चूंकि चारित्रावरण कर्मके क्षयसे भी संयमकी उत्पत्ति होती है, इससे क्षायिक लब्धि द्वारा जीव संयत होता है ।

शंका—संयतके क्षायोपशमिक लब्धि किस प्रकार होती है ?

समाधान—चारों संज्वलन कषायों और नौ नोकषायोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे संयमकी उत्पत्ति होती है, इस प्रकार संयतके क्षायोपशमिक लब्धि पायी जाती है ।

शंका—नोकषायोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदयको क्षयोपशम नाम क्यों दिया गया ?

समाधान—सर्वघाती स्पर्धक अनन्तगुणे हीन होकर और देशघाती स्पर्धकोंमें परिणत होकर उदयमें आते हैं । उन सर्वघाती स्पर्धकोंका अनन्तगुणहीनत्व ही क्षय कहलाता है और उनका देशघाती स्पर्धकोंके रूपसे अवस्थान होना उपशम है । उन्हीं क्षय और उपशमसे संयुक्त उदय क्षयोपशम कहलाता है । उसी क्षयोपशमसे उत्पन्न

१ प्रतिष्ठु 'खओवसमोहि संजुत्तादओ' इति पाठः ।

समिओ । एवं सामाह्यच्छेदोवद्वावणसुद्धिसंजदाणं पि वत्तव्वं ।

होदु णाम एदेसिं खओवसमलद्धी, णोवसमिया खइया च, अणियद्धीगुणट्ठाणादो उवरि एदेसिमभावा । ण च हेट्ठिमखवगुवसामगदोगुणट्ठाणेषु चरित्तमोहणीयस्स खवणा उवसामणा वा अत्थि जेणेदेसिं खइया उवसमिया वा लद्धी होअ ? ण, खवगुवसामगअणियद्धीगुणट्ठाणे वि लोभसंजलणवदिरित्तासेसचरित्तमोहणीयस्स खवणुवसामणदंसणेण तत्थ खइय-उवसमियलद्धीणं संभवुवलंभा । अधवा खवगुवसामगअणुवकरणपढमसमयप्पहुडि उवरि सव्वत्थ खइय-उवसमियसंजमलद्धीओ अत्थि चेव । कुदो ? पारद्वपढमसमयप्पहुडि थोवथोवखवणुवसामणकज्जणिप्पत्तिदंसणादो । पडिसमयं कज्जणिप्पत्तीए विणा चरिमसमए चेव णिप्पज्जमाणकज्जाणुवलंभादो च । कधमेक्कस्स चरित्तस्स तिण्णि भावा ? ण, एकस्स वि चित्तपर्यंगस्स बहुवण्णदंसणादो ।

संयम भी इसी कारण क्षायोपशमिक होता है । इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापन शुद्धिसंयतोंके विषयमें भी कहना चाहिये ।

शंका—सामायिक और छेदोपस्थापन शुद्धिसंयतोंके क्षयोपशम लब्धि भले ही हो, किन्तु उनके औपशमिक और क्षायिक लब्धि नहीं हो सकती, क्योंकि अनिवृत्तिकरण गुणस्थानसे ऊपर इन संयतोंका अभाव पाया जाता है । और नीचेके अर्थात् अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दो क्षपक व उपशामक गुणस्थानोंमें चारित्रमोहनीयकी क्षपणा व उपशामना होती नहीं है, जिससे उक्त संयतोंके क्षायिक व औपशमिक लब्धि संभव हो सके ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि क्षपक व उपशामक सम्बन्धी अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें भी लोभ संज्वलनको छोड़कर अशेष चारित्रमोहनीयका क्षपण व उपशमनके पाये जानेसे वहां क्षायिक व औपशमिक लब्धियोंकी संभावना पाई जाती है । अथवा, क्षपक और उपशामक सम्बन्धी अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लगाकर ऊपर सर्वत्र क्षायिक और औपशमिक संयमलब्धियां हैं ही, क्योंकि, उक्त गुणस्थानके प्रारंभ होनेके प्रथम समयसे लगाकर थोड़े थोड़े क्षपण और उपशामन रूप कार्यकी निष्पत्ति देखी जाती है । यदि प्रत्येक समय कार्यकी निष्पत्ति न हो तो अन्तिम समयमें भी कार्य पूरा होता नहीं पाया जा सकता ।

शंका—एक ही चारित्रके औपशमिकादि तीन भाव कैसे होते हैं ?

समाधान—जिस प्रकार एक ही चित्र पतंग अर्थात् बहुवर्ण पक्षीके बहुतसे वर्ण देखे जाते हैं, उसी प्रकार एक ही चारित्र नाना भावोंसे युक्त हो सकता है ।

परिहारसुद्धिसंजदो संजदासंजदो णाम कथं भवदि ? ॥ ५० ॥

एत्थ वि णय-णिक्खेवे अस्सिदूण पुव्वं व चालणा कायव्वा ।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ५१ ॥

चदुसंजलण-णवणोकसायाणं सव्वघादिफहयाणमणंतगुणहाणीए खयं गंतूण देसघादिच्छेणुवसंतफहयाणमुदएण परिहारसुद्धिमंजमुप्पत्तीदो खओवसमियाए लद्धीए परिहारसुद्धिसंजमो । चदुसंजलण-णवणोकसायाणं खओवसममणिददेसघादिफहयाणमुदएण संजमासंजमुप्पत्तीदो खओवसमलद्धीए संजमासंजमो । तेरसण्हं पयडीणं देसघादिफहयाणमुदओ संजमलंभणिमित्तो कथं संजमासंजमणिमित्तं पडिवज्जदे ? ण, पच्चक्खाणावरणसव्वघादिफहयाणमुदएण पडिहयचदुसंजलणादिदेसघादिफहयाणमुदयस्स संजमासंजमं मोत्तूण संजमुप्पायणे असमत्थत्तादो ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदो जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदो णाम कथं भवदि ? ॥ ५२ ॥

जीव परिहारशुद्धिसंयत और संयतासंयत कैसे होता है ? ॥ ५० ॥

यहां भी नय और निक्षेपोंका आश्रय लेकर पूर्ववत् चालना करना चाहिये ।

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव परिहारशुद्धिसंयत व संयतासंयत होता है ॥ ५१ ॥

चार संज्वलन और नव नोकषायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके अनन्तगुणी हानि द्वारा क्षयको प्राप्त होकर देशघाती रूपसे उपशान्त हुए स्पर्धकोंके उदयसे परिहारशुद्धिसंयमकी उत्पत्ति होती है, इसीलिये क्षायोपशमिक लब्धिसे परिहारशुद्धिसंयम होता है । चार संज्वलन और नव नोकषायोंके क्षयोपशम संज्ञावाले देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे संयमासंयमकी उत्पत्ति होती है, इसीलिये क्षयोपशम लब्धिसे संयमासंयम होता है ।

शंका — चार संज्वलन और नव नोकषाय, इन तेरह प्रकृतियोंके देशघाती स्पर्धकोंका उदय तो संयमकी प्राप्तिमें निमित्त होता है, वह संयमासंयमका निमित्त कैसे स्वीकार किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रत्याख्यानावरणके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे जिन चार संज्वलनादिकके देशघाती स्पर्धकोंका उदय प्रतिहत हो गया है उस उदयके संयमासंयमको छोड़ संयम उत्पन्न करनेका सामर्थ्य नहीं होता ।

जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत कैसे होता है ? ॥ ५२ ॥

सुगममेदं ।

उवसमियाए खइयाए लद्धीए ॥ ५३ ॥

उवसामग-कखवगसुहुमसांपराइयगुणट्टाणेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजमस्सुवलंभादो उवसमियाए खइयाए लद्धीए सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजमो । उवसंत-खीणकसायादिसु जहाकखादविहारसुद्धिसंजमुवलंभादो उवसमियाए खइयाए लद्धीए जहाकखादविहार-सुद्धिसंजमो ।

असंजदो णाम कधं भवदि ? ॥ ५४ ॥

सुगममेदं ।

संजमघादीणं कम्माणमुदएण ॥ ५५ ॥

अपच्चक्खाणावरणस्स उदओ चेत्र असंजमस्स हेदू, संजमासंजमपडिसेहमुहेण सव्वसंजमघादितादो । तदो संजमघादीणं कम्माणमुदएणेत्ति कधं घडदे ? ण, इदरेसिं पि चरित्तावरणीयाणं कम्माणमुदएण विणा अपच्चक्खाणावरणस्स देससंजमघायणे सामत्थि-

यह सूत्र सुगम है ।

औपशमिक और क्षायिक लब्धिसे जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत होता है ॥ ५३ ॥

उपशामक और क्षपक दोनों प्रकारके सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानोंमें सूक्ष्म-सांपरायिकशुद्धिसंयमकी प्राप्ति होती है, इसीलिये औपशमिक व क्षायिक लब्धिसे सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयम होता है ।

उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय आदि गुणस्थानोंमें यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमकी प्राप्ति होनेसे औपशमिक व क्षायिक लब्धिसे यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम होता है ।

जीव असंयत कैसे होता है ? ॥ ५४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयमके घाती कर्मोंके उदयसे जीव असंयत होता है ॥ ५५ ॥

शंका—एक अप्रत्याख्यानावरणका उदय ही असंयमका हेतु माना गया है, क्योंकि, वही संयमासंयमके प्रतिषेधसे प्रारम्भ कर समस्त संयमका घाती होता है। तब फिर 'संयमघाती कर्मोंके उदयसे असंयत होता' ऐसा कहना कैसे घटित होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दूसरे भी चारित्रावरण कर्मोंके उदयके विना केवल अप्रत्याख्यानावरणके देशसंयमको घात करनेका सामर्थ्य नहीं होता ।

याभावादो । संजमो णाम जीवसहावो, तदो ण सो अण्णेहि विणासिज्जदि तत्विणासे जीवद्वस्स वि विणासप्पसंगादो ? ण, उवजोगस्सेव संजमस्स जीवस्स लक्खणत्ता-भावादो । किं लक्खणं ? जस्साभावे द्वस्साभावो होदि तं तस्स लक्खणं, जहा-पोग्गल-द्वस्स रूव-रस-गंध-फासा, जीवस्स उवजोगो । तम्हा ण संजमाभावेण जीवद्वस्सा-भावो इदि ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी णाम कधं भवदि ? ॥ ५६ ॥

एत्थ पुवं व णिक्खेवो कायव्वो । ण दंसणमत्थि विसयाभावादो । ण बज्झत्थ-सामण्णग्गहणं दंसणं, केवलदंसणस्स अभावप्पसंगादो । कुदो ? केवलणाणेण तिकाल-गोयतराणंतत्थ-वेजणपज्जयसरूवेसु सव्वदव्वेसु अवगएसु केवलदंसणस्स विसयाभावा ।

शंका—संयम तो जीवका स्वभाव ही है, इसीलिये वह अन्यके द्वारा विनष्ट नहीं किया सकता, क्योंकि, उसका विनाश होनेपर तो जीव द्रव्यके भी विनाशका प्रसंग आजायगा ?

समाधान—नहीं आयगा, क्योंकि, जिस प्रकार उपयोग जीवका लक्षण माना गया है, उस प्रकार संयम जीवका लक्षण नहीं होता ।

शंका—लक्षण किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसके अभावमें द्रव्यका भी अभाव हो जाता है वही उस द्रव्यका लक्षण है । जैसे—पुद्गल द्रव्यका लक्षण रूप, रस, गंध और स्पर्श; व जीवका उपयोग ।

अतएव संयमके अभावमें जीव द्रव्यका अभाव नहीं होता ।

दर्शनमार्गणानुसार जीव चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी व अवधिदर्शनी कैसे होता है ? ॥ ५६ ॥

यहां पूर्वानुसार निक्षेप करना चाहिये ।

शंका—दर्शन है ही नहीं, क्योंकि, उसका कोई विषय नहीं है । बाह्य पदार्थोंके सामान्यको ग्रहण करना दर्शन नहीं हो सकता, क्योंकि, वैसा माननेपर केवलदर्शनके अभावका प्रसंग आजायगा । इसका कारण यह है कि जब केवलज्ञानके द्वारा त्रिकाल-गोचर अनन्त अर्थ और व्यंजन पर्याय सरूप समस्त द्रव्योंको जान लिया जाता है, तब केवलदर्शनके लिये कोई विषय ही नहीं रहता । ऐसा तो हो नहीं सकता कि केवल-

ण च गहिदमेव गेण्हदि केवलदंसणं, गहिदग्गहणे फलाभावा । ण चासेसविसेसमेत्तग्गाही केवलणाणं जेण सयलत्थसामणं केवलदंसणस्स विसओ होज्ज, संसारावत्थाए आवरणवसेण कमेण पयड्डमाणणाण-दंसणाणं^१ दव्वावगमाभावप्पसंगादो । कुदो ? ण णाणं दव्वपरिच्छेदयं, सामण्णवदिरित्तविसेसेसु तस्स वावारादो । ण दंसणं पि दव्वपरिच्छेदयं, तस्स विसेसवदिरित्तसामण्णम्मि वावारादो । ण केवलं संसारावत्थाए चैव दव्वग्गहणाभावो, किंतु ण केवलिम्हि वि दव्वग्गहणमत्थि, सामण्ण-विसेसेसु एयंत-दुरंतपथसंठिएसु वावदाणं केवलदंसण-णाणाणं दव्वम्मि वावारविरोहादो । ण च एयंते सामण्ण-विसेसा अत्थि जेण ते तेसिं विसओ होज्ज । असंतस्स पमेयत्ते इच्छिज्जमाणे गह्हसिगं पि पमेयत्त-मल्लिएज्ज, अभावं पडि विसेसाभावादो । पमेयाभावे ण पमाणं पि, तस्स तण्णि-बंधणत्तादो । तग्हा ण दंसणमत्थि त्ति सिद्धं ?

ज्ञानके द्वारा ग्रहण किये पदार्थको ही केवलदर्शन ग्रहण करता है, क्योंकि, जो वस्तु ग्रहण की जा चुकी है उसे ही पुनः ग्रहण करनेका कोई फल नहीं । यह भी नहीं हो सकता कि समस्त विशेषमात्रका ग्रहण करनेवाला ही केवलज्ञान हो जिससे समस्त पदार्थोंका सामान्य धर्म केवलदर्शनका विषय हो जाय, क्योंकि ऐसा माननेपर तो संसारावस्थामें जब आवरणके वशसे ज्ञान और दर्शनकी प्रवृत्ति क्रमशः होती है तब द्रव्यके ज्ञान होनेके अभावका ही प्रसंग आजायगा । इसका कारण यह है— ज्ञान द्रव्यका परिच्छेदक अर्थात् ज्ञान करानेवाला नहीं रहा, क्योंकि उसका व्यापार सामान्य रहित विशेषोंमें ही परिमित हो गया और न दर्शन ही द्रव्यका परिच्छेदक रहा, क्योंकि, उसका व्यापार विशेष रहित सामान्यमें सीमित हो गया । इस प्रकार न केवल संसारावस्थामें ही द्रव्यके ग्रहणका अभाव होगा, किन्तु केवलीमें भी द्रव्यका ग्रहण नहीं हो सकेगा, क्योंकि एकान्तरूपी दुरन्त पथमें स्थित सामान्य व विशेषमें प्रवृत्त हुए केवलदर्शन और केवलज्ञानका द्रव्यमात्रमें व्यापार माननेमें विरोध आता है । एकान्ततः पृथक् सामान्य व विशेष तो होते नहीं हैं जिससे कि वे क्रमशः केवलदर्शन और केवलज्ञानके विषय हो सकें । और यदि जो है ही नहीं उसको भी प्रमेयरूपसे मानना अभीष्ट हो तो गधेका सींग भी प्रेमय कोटिमें आजायगा, क्योंकि, अभावकी अपेक्षा दोनोंमें कोई विशेषता रही नहीं । प्रमेयके न रहनेपर प्रमाण भी नहीं रहता, क्योंकि, प्रमाण तो प्रमेयमूलक ही होता है । इसलिये दर्शनकी कोई अलग सत्ता है ही नहीं यह सिद्ध हुआ ?

१ प्रतिष्ठ '—दंसणाए' इति पाठः ।

एत्थ परिहारो उच्चदे- अत्थि दंसणं, सुत्तम्मि अट्टकम्मणिहेसादो । ण चासंते आवरणिज्जे आवारयमत्थि, अण्णत्थ तहाणुवलंभादो । ण चोवयारेणं दंसणावरणणिहेसो, ष्ट्हियस्साभावे उवयाराणुववत्तीदो । ण चावरणिज्जं गत्थि, चक्खुदंसणी अचक्खु-दंसणी ओहिदंसणी खओवसमियाए, केवलदंसणी खइयाए लद्धीए त्ति तदत्थित्तपदु-प्पायणजिणवयणदंसणादो ।

एओ मे सस्सदो अप्पा णाण-दंसणलक्खणो ।

सेसा में बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥ १६ ॥

असररीरा जीवघणा उवजुत्ता दंसणे य णाणे य ।

सायारमणायारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥ १७ ॥

इच्छादिउपसंहारसुत्तदंसणादो च । आगमपमाणेण होदु णाम दंसणस्स अत्थित्तं ण जुत्तीए चे ? ण, जुत्तीहि आगमस्स बाहाभावादो । आगमेण वि जच्चा जुत्ती ण

समाधान—अब यहां उक्त शंकाका परिहार कहते हैं— दर्शन है, क्योंकि, सूत्रमें आठ कर्मोंका निर्देश किया गया है। आवरणियोंके अभावमें आवारक हो नहीं सकता, क्योंकि, अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता। यह भी नहीं कह सकते कि दर्शनावरणका निर्देश केवल उपचारसे किया गया है, क्योंकि, मुख्य वस्तुके अभावमें उपचारकी उपपत्ति नहीं बनती। आवरणिय है ही नहीं सो बात भी नहीं है, क्योंकि, 'चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी क्षायोपशमिक लद्धिसे तथा केवलदर्शनी क्षायिक लद्धिसे होते हैं' ऐसे आवरणियोंके अस्तित्वका प्रतिपादन करनेवाले जिन भगवान् के वचन देखे जाते हैं। तथा—

ज्ञान और दर्शनरूप लक्षणवाला मेरा एक आत्मा ही शाश्वत है। शेष समस्त संयोगरूप लक्षणवाले पदार्थ मुझसे बह्य हैं ॥ १६ ॥

अशरीर अर्थात् काय रहित, शुद्ध जीवप्रदेशोंसे घनीभूत, दर्शन और ज्ञानमें अनाकार व साकार रूपसे उपयोग रखनेवाले, यह सिद्ध जीवोंका लक्षण है ॥ १७ ॥

इस प्रकारके अनेक उपसंहारसूत्र देखनेसे भी यही सिद्ध होता है कि दर्शन है।

शंका—आगम प्रमाणसे भले ही दर्शनका अस्तित्व हो, किन्तु युक्तिसे तो दर्शनका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता ?

समाधान—होता है, क्योंकि, युक्तियोंसे आगमकी बाधा नहीं होती।

शंका—आगमसे भी तो जाल्य अर्थात् उत्तम युक्तिकी बाधा नहीं होना चाहिये ?

बाहिज्जदि त्ति चे? सच्चं ण बाहिज्जदि जच्चा जुत्ती, किंतु इमा बाहिज्जदि जच्चत्ता-
भावादो । तं जहा— ण णाणेण विसेसो चेव वेप्पदि सामण-विसेसप्पयत्तणेण पत्त-
जच्चंतरदच्चुवलंभादो । ण च णयदुवविसयमगेण्हंतस्स णाणस्स सायारत्तमत्थि,
विरोहादो । तथा समंतभद्दसामिणा वि उच्चं—

विधिर्विषक्तप्रतिषेधरूपः

गुणो परो मुस्यनिचनहेतुर्नयःसं दृष्टांतसमर्थनस्ते^१ ॥ इति ॥ १८ ॥

ण च एवं संते दंसणस्स अभावो, बज्झत्थे मोत्तूण तस्स अंतरंगत्थे वावारादो ।
ण च केवलणामेव सत्तिदुवसंजुत्तत्तादो बहिरंतरंगत्थपरिच्छेदयं^४, णाणस्स पज्जयस्स
पज्जायाभावादो । भावे वा अणवत्था दुक्कदे, अवट्ठाणकारणाभावादो । तम्हा अंतरंगोव-
जोगादो बहिरंगुवजोगेण पुधभूदेण होदव्वमण्णहा सव्वण्हुत्ताणुववत्तीदो । अंतरंग-

समाधान—सचमुत्र ही आगमसे उत्तम युक्तिकी बाधा नहीं होती, किन्तु
प्रस्तुत युक्तिकी बाधा अवश्य होती है, क्योंकि, वह उत्तम युक्ति नहीं है । वह इस
प्रकार है— ज्ञान द्वारा केवल विशेषका ग्रहण नहीं होता, क्योंकि, सामान्य-विशेषात्मक
होनेसे ही द्रव्यका जात्यन्तर स्वरूप पाया जाता है । और सामान्य तथा विशेष दोनों
नयोंके विषयभूत पदार्थका ग्रहण न करनेसे ज्ञानका साकारत्व भी नहीं बन सकता,
क्योंकि, वैसा माननेमें विरोध आता है । तथा समन्तभद्र स्वामीने भी कहा है—

(हे श्रेयांस जिन!) आपके मतमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, इन स्व-चतुष्टयकी
अपेक्षा किये जानेवाले विधानका स्वरूप परचतुष्टयकी अपेक्षासे होनेवाले प्रतिषेधसे
सम्बद्ध पाया जाता है । विधि और प्रतिषेध, इन दोनोंमेंसे जो एक प्रधान होता है वही
प्रमाण है, और दूसरा गौण है । इनमें जो प्रधानताका नियामक है वही नय है जो
दृष्टान्तका अर्थात् धर्मविशेषका समर्थन करता है ॥ १८ ॥

इस प्रकार आगम और युक्तिसे दर्शनका अस्तित्व सिद्ध होने पर उसका अभाव
नहीं माना जा सकता, क्योंकि, दर्शनका व्यापार बाह्य पदार्थोंको छोड़ अन्तरंग वस्तुमें
होता है । यहां यह नहीं कह सकते कि केवलज्ञान ही दो शक्तियोंसे संयुक्त होनेके
कारण बहिरंग और अन्तरंग दोनों वस्तुओंका परिच्छेदक है, क्योंकि, ज्ञान स्वयं एक
पर्याय है, और पर्यायमें दूसरी पर्याय होती नहीं है । यदि पर्यायमें भी और पर्याय मानी
जाय तो अवस्थानका कोई कारण न होनेसे अनवस्था दोष उत्पन्न होता है । इसलिये
अन्तरंग उपयोगसे बहिरंग उपयोगको पृथग्भूत ही होना चाहिये, अन्यथा सर्वज्ञत्वकी
उपपत्ति नहीं बनती । अतएव आत्माको अन्तरंग उपयोग और बहिरंग उपयोग ऐसी

१ प्रतिषु ' विषिक्त ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' -नयस्य ' इति पाठः ।

३ बृहत्स्वयंभूस्तोत्र ५२.

४ प्रतिषु ' बहिरंगत्थपरिच्छेदयं ' इति पाठः ।

बहिरंगुवजोगसण्णिददुसत्तीजुत्तो अप्पा इच्छिदव्वो ।

जं नान्णग्गहणं भावाणं णेव कट्टु आयारं ।

अविसेसिदूण अत्थे दंसणमिदि भण्णदे समए ॥ १९ ॥

ण च एदेण सुत्तेणेदं वक्खाणं विरुज्झदे, अप्पत्थम्मि पउत्तसामण्णसद्दग्गहणादो ।
ण च जीवस्स सामण्णत्तमसिद्धं णियमेण विणा विसईकयत्तिकालगोयराणंतत्थ-वैजण-
पज्जओवचियबज्झंतरंगाणं तत्थ सामण्णत्ताविरोहादो । होदु गाम सामण्णेण दंसणस्स
सिद्धी केवलदंसणस्स सिद्धी च, ण सेसदंसणाणं;

चक्खूण जं पयासदि दिस्सदि तं चक्खुदंसणं वेत्ति ।

दिट्ठस्स य जं सरणं णायव्वं तं अचक्खु ती ॥ २० ॥

परमाणुआदियाइं अंतिमखंधं ति मुत्तिदव्वाइं ।

तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सदि ताणि पच्चक्खं ॥ २१ ॥

इदि वज्झत्थविसयदंसणपरूवणादो ? ण, एदाणं गाहाणं परमत्थत्थाणुवगमादो ।

दो शक्तियोंसे युक्त मानना अभीष्ट सिद्ध होता है । ऐसा मानने पर—

वस्तुओंका आकार न करके व पदार्थोंमें विशेषता न करके जो वस्तु-सामान्यका
ग्रहण किया जाता है उसे ही शास्त्रमें दर्शन कहा है ॥ १९ ॥

इस सूत्रसे प्रस्तुत व्याख्यान विरुद्ध भी नहीं पड़ता, क्योंकि, उक्त सूत्रमें
' सामान्य ' शब्दका प्रयोग आत्म-पदार्थके लिये ही किया गया है । (इसीके विशेष
प्रतिपादनके लिये देखो षट्खंडागम, जीवट्टाण, सत्पररूपणा, भाग १, पृष्ठ १४७ आदि)
जीवका सामान्यत्व असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, नियमके बिना ज्ञानके विषयभूत किये
गये त्रिकालगोचर अनन्त अर्थ और व्यंजन पर्यायसे संचित बहिरंग और अन्तरंग
पदार्थोंका जीवमें सामान्यत्व माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

शंका—इस प्रकार सामान्यसे दर्शनकी सिद्धि और केवलदर्शनकी भी
सिद्धि भले हो जाय, किन्तु उससे शेष दर्शनोंकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि—

जो चक्षुइन्द्रियोंको प्रकाशित होता है या दिखता है उसे चक्षुदर्शन समझा
जाता है, और जो अन्य इन्द्रियोंसे देखे हुए पदार्थका ज्ञान होता है उसे अचक्षुदर्शन
जानना चाहिये ॥ २० ॥

परमाणुसे लेकर अन्तिम स्कंध तक जितने मूर्तिक द्रव्य हैं उन्हें जो प्रत्यक्ष देखता
है वह अवधिदर्शन है ॥ २१ ॥

इन सूत्रवचनोंमें दर्शनकी प्ररूपणा बाह्यार्थविषयक रूपसे की गई है ?

समाधान— ऐसा नहीं है, क्योंकि, तुमने इन गाथाओंका परमार्थ नहीं समझा ।

को सो परमत्थत्थो ? वुच्चदे— जं यत् चक्खुणं चक्षुषां पयासदि प्रकाशते दिस्सदि चक्षुषा दृश्यते वा तं तत् चक्खुदंसणं चक्षुर्दर्शनमिति वेत्ति ब्रुवते । चर्क्खिदियणाणादो जो पुव्वमेव सुवसत्तीए सामण्णाए अणुहओ चक्खुणाणुप्पत्तिणिमित्तो तं चक्खुदंसणमिदि उत्तं होदि । कधमंतरंगाए चर्क्खिदियविसयपडिबद्धाए सत्तीए चर्क्खिदियस्स पउत्ती ? ण, अंतरंगे बहिरंगत्थोवयारेण बालजणबोहणद्धं चक्खुणं जं दिस्सदि तं चक्खुदंसणमिदि परूवणादो । गाहाए गलभंजणमकाऊण उज्जुवत्थो किण्ण धेप्पदि ? ण, तत्थ पुव्वुत्तासेसदोसप्पसंगादो ।

दिट्ठस्स शेषेन्द्रियैः प्रातिपन्नस्यार्थस्य जं यस्मात् सरणं अवगमनं णायव्वं ज्ञातव्यं तं तत् अचक्खु त्ति अचक्षुर्दर्शनमिति । सेसिंदियणाणुप्पत्तीदो जो पुव्वमेव सुवसत्तीए अप्पणो विसयम्मि पडिबद्धाए सामण्णेण संवेदो अचक्खुणाणुप्पत्तिणिमित्तो तमचक्खुदंसणमिदि उत्तं होदि ।

शंका— वह परमार्थ कौनसा है ?

समाधान— कहते हैं । ' जो चक्षुओंको प्रकाशित होता है अर्थात् दिखता है, अथवा आंख द्वारा देखा जाता है वह चक्षुदर्शन है ' इसका अर्थ ऐसा समझना चाहिये कि चक्षुइन्द्रियज्ञानसे जो पूर्व ही सामान्य स्वशक्तिका अनुभव होता है, जो कि चक्षुज्ञानकी उत्पत्तिमें निमित्तरूप है, वह चक्षुदर्शन है ।

शंका— उस चक्षुइन्द्रियके विषयसे प्रतिबद्ध अंतरंग शक्तिमें चक्षुइन्द्रियकी प्रवृत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान— नहीं, यथार्थमें तो चक्षुइन्द्रियकी अन्तरंगमें ही प्रवृत्ति होती है, किन्तु बालक जनोंको ज्ञान करानेके लिये अंतरंगमें बहिरंग पदार्थोंके उपचारसे चक्षुओंको जो दिखता है वही चक्षुदर्शन है, ऐसा प्ररूपण किया गया है ।

शंका— गाथाका गला न घोंटकर सीधा अर्थ क्यों नहीं करते ?

समाधान— नहीं करते, क्योंकि वैसा करनेमें तो पूर्वोक्त समस्त दोषोंका प्रसंग आता है ।

गाथाके उत्तरार्धका अर्थ इस प्रकार है — ' जो देखा गया है, अर्थात् जो पदार्थ शेष इन्द्रियोंके द्वारा जाना गया है, उससे जो सरण अर्थात् ज्ञान होता है उसे अचक्षुदर्शन जानना चाहिये ' । चक्षुइन्द्रियको छोड़ शेष इन्द्रियज्ञानोंकी उत्पत्तिसे पूर्व ही अपने विषयमें प्रतिबद्ध स्वशक्तिका अचक्षुज्ञानकी उत्पत्तिका निमित्तभूत जो सामान्यसे संवेद या अनुभव होता है वह अचक्षुदर्शन है, ऐसा कहा गया है ।

परमाणुआदियाइं परमाण्वादिकानि अंतिमखंधं ति आ पश्चिमस्कंधादिति मुत्तिद-
व्वाइं मूर्तिद्रव्याणि जं यस्मात् पस्सदि पश्यति जानीते ताणि तानि पच्चकखं साक्षात् तं
तत् ओहिदंसणं अवधिदर्शनमिति द्रष्टव्यम् । परमाणुमादिं कादूण जाव पच्छिमखंधो
त्ति द्विदपोगलदव्वाणमवगमादो पच्चकखादो जो पुव्वमेव सुवसत्तीविसयउवजोगो ओहि-
णाणुप्पात्तिणिमित्तो तं ओहिदंसणमिदि घेत्तव्वं, अण्णहा णाण-दंसणाणं भेदाभावादो ।
कधं केवलणाणेण केवलदंसणं समाणं ? ण, णेयप्पमाणकेवलणाणभेएण भिण्णप्प-
विसयउवजोगस्स वि तत्तियमेत्तत्ताविरोहादो ।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ५७ ॥

चक्खुदंसणावरणस्स देसघादिफहयाणमुदएण समुप्पणत्तादो (चक्खुदंसणं खओ-
वसमियं) । कधमुदयगददेसघादिफहयाण खओवसमियत्तं ? उच्चदे-उदयम्मि पदणकाले
सव्वघादिफहयाणं जमणंतगुणहीणत्तं सो तेसिं खओ णाम; देसघादिफहयाणं सरूवेण

द्वितीय गाथाका अर्थ इस प्रकार है — ' परमाणुसे लगाकर अन्तिम स्कंधपर्यन्त
जितने मूर्तिक द्रव्य हैं उन्हें जिसके द्वारा साक्षात् देखता है या जानता है वह
अवधिदर्शन है, ऐसा जानना चाहिये ' । परमाणुसे लेकर अन्तिम स्कंधपर्यंत जो पुद्गल-
द्रव्य स्थित हैं उनके प्रत्यक्ष ज्ञानसे पूर्व ही जो अवधिज्ञानकी उत्पत्तिका निमित्तभूत
स्वशक्तिविषयक उपयोग होता है वही अवधिदर्शन है ऐसा ग्रहण करना चाहिये,
अन्यथा ज्ञान और दर्शनमें कोई भेद नहीं रहता ।

शंका—केवलज्ञानसे केवलदर्शन समान किस प्रकार होता है ?

समाधान—क्यों न हो, क्योंकि, जानने योग्य पदार्थके प्रमाणानुसार केवल-
ज्ञानके भेदसे भिन्न आत्मविषयक उपयोगको भी तत्प्रमाण माननेमें कोई विरोध
नहीं आता ।

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी
होता है ॥ ५७ ॥

चक्षुदर्शनावरणके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण चक्षुदर्शन
क्षायोपशमिक होता है ।

शंका—उदयमें आये हुए देशघाती स्पर्धकोंके क्षायोपशमिक भाव कैसे हुआ ?

समाधान—बताते हैं । उदयमें आकर गिरनेके समयमें सर्वघाती स्पर्धकोंका
जो अनन्तगुण हीन हो जाना है वही उनका क्षय है, और देशघाती स्पर्धकोंके स्वरूपसे

जमवट्ठाणं सो उवसमो; तदुभयगुणसमण्णिदचक्खुदंसणावरणीयकम्मक्खंधविवागजणिद-
जीवपरिणामो लद्धि त्ति घेत्तव्वो । अचक्खुदंसणावरणीयस्स देसघादिफइयाणमुदएण
अचक्खुदंसणं होदि त्ति कट्टु खओवसमियाए लद्धीए अंचक्खुदंसणमिदि उत्तं । ओधि-
दंसणावरणीयस्स देसघादिफइयाणमुदयजणिदलद्धीदो ओधिदंसणी होदि त्ति खओव-
समियाए लद्धीए ओधिदंसणी णिहिट्ठो ।

केवलदंसणी णाम कथं भवदि ? ॥ ५८ ॥

सुगममेदं ।

खइयाए लद्धीए ॥ ५९ ॥

दंसणावरणीयस्स णिम्मूलविणासो खओ णाम । तत्तो जादजीवपरिणामो खइया
लद्धी । तत्तो केवलदंसणी होदि । एत्थुवउज्जंती गाहा—

एवं सुत्तपसिद्धं भणंति जे केवलं ण चत्थि त्ति ।

मिच्छादिट्ठी अण्णो को तत्तो एत्थ जियलोए ॥ २२ ॥

जो उनका अवस्थान है वही उपशम है । इन्हीं क्षय और उपशम रूप दो गुणोंसे युक्त
चक्षुदर्शनावरणीय कर्मके स्कंधोंके उदयसे जो जीवपरिणाम उत्पन्न होता है वही
क्षायोपशमिक लब्धि है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये ।

अचक्षुदर्शनावरणीयके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे अचक्षुदर्शन होता है, ऐसा
मानकर 'क्षायोपशमिक लब्धिसे अचक्षुदर्शन होता है' ऐसा कहा गया है । अवधिदर्श-
नावरणीयके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे उत्पन्न हुई लब्धि द्वारा अवधिदर्शनी होता
है, इसीसे क्षायोपशमिक लब्धिसे अवधिदर्शनीके होनेका निर्देश किया गया है ।

जीव केवलदर्शनी कैसे होता है ? ॥ ५८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिक लब्धिसे जीव केवलदर्शनी होता है ॥ ५९ ॥

दर्शनावरणीय कर्मका निर्मूल विनाश क्षय है । उस क्षयसे उत्पन्न जीवपरि-
णामको क्षायिक लब्धि कहते हैं । उसी क्षायिक लब्धिसे केवलदर्शनी होता है । यहाँ
यह उपयोगी गाथा है —

इस प्रकार सूत्र द्वारा प्रसिद्ध होते हुए भी जो कहते हैं कि केवलदर्शन नहीं
है उनसे बड़ा इस जीवलोकमें कौन मिथ्यात्वी होगा ? ॥ २२ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिओ णील्लेस्सिओ काउलेस्सिओ
तेउलेस्सिओ पम्मलेस्सिओ सुक्कलेस्सिओ णाम कधं भवदि? ॥६०॥

एत्थ पुब्बं व णिकखेवे अस्सिदण चालणा परूवेदव्वा । एत्थ णोआगमभाव-
लेस्साए अहियारो ।

ओदइएण भावेण ॥ ६१ ॥

कसायाणुभागफइयाणमुदयमागदानं जहण्णफइयप्पहुडि जाव उक्कस्सफइया
त्ति ठइदाणं छ्भभागविहत्ताणं पढमभागो मंदतमो, तदुदएण जादकसाओ सुक्कलेस्सा
णाम । विदियभागो मंदतरो, तदुदएण जादकसाओ पम्मलेस्सा णाम । तदियभागो
मंदो, तदुदएण जादकसाओ तेउलेस्सा णाम । चउत्थभागो तिच्चो, तदुदएण जादकसाओ
काउलेस्सा णाम । पंचमभागो तिच्चयरो, तस्सुदएण जादकसाओ णील्लेस्सा णाम । छट्ठो
तिच्चतमो, तस्सुदएण जादकसाओ किण्णलेस्सा णाम । जेणेदाओ छप्पि लेस्साओ
कसायाणमुदएण होंति तेण ओदइयाओ । जदि कसाओदएण^१ लेस्साओ उच्चंति तो

लेश्यामार्गणानुसार जीव कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या,
पद्मलेश्या और शुक्कलेश्या वाला कैसे होता है ? ॥ ६० ॥

यहां पूर्वानुसार निक्षेपोंका आश्रय लेकर चालना करना चाहिये । प्रस्तुतमें
नोआगम भावलेश्याका अधिकार है ।

औदयिक भावसे जीव कृष्ण आदि लेश्यावाला होता है ॥ ६१ ॥

उदयमें आये हुए कषायानुभागके स्पर्धकोंके जघन्य स्पर्धकसे लेकर उत्कृष्ट
स्पर्धक पर्यंत स्थापित करके उनको- छह भागोंमें विभक्त करनेपर प्रथम भाग मंदतम
कषायानुभागका होता है और उसीके उदयसे जो कषाय उत्पन्न होती है उसीका नाम
शुक्कलेश्या है । दूसरा भाग मन्दतर कषायानुभागका है, और उसीके उदयसे उत्पन्न
हुई कषायका नाम पद्मलेश्या है । तृतीय भाग मन्द कषायानुभागका है, और उसके
उदयसे उत्पन्न कषाय तेजोलेश्या है । चतुर्थ भाग तीव्र कषायानुभागका है, और उसके
उदयसे उत्पन्न कषाय कापोतलेश्या होती है । पांचवां भाग तीव्रतर कषायानुभागका है,
और उसके उदयसे उत्पन्न कषायको नीललेश्या कहते हैं । छठवां भाग तीव्रतम कषाय-
ानुभागका है, और उससे उत्पन्न कषायका नाम कृष्णलेश्या है । चूंकि ये छहों ही लेश्यायें
कषायोंके उदयसे होती हैं, इसीलिये वे औदयिक हैं ।

शंका—यदि कषायोंके उदयसे लेश्याओंका उत्पन्न होना कहा जाता है तो

१ प्रतिषु ' कसाओदइएण ' इति पाठः ।

खीणकसायाणं लेस्साभावो पसज्जदे ? सच्चमेदं जदि कसाओदयादो चेव लेस्सुप्पत्ती इच्छिज्जदि । किंतु सरीरणामकम्मोदयजणिदजोगो वि लेस्सा त्ति इच्छिज्जदि, कम्म-बंधाणिमित्तत्तादो । तेण कसाए फिट्ठे वि जोगो अत्थि त्ति खीणकसायाणं लेस्सत्तं ण विरुज्जदे । जदि बंधकारणाणं लेस्सत्तं उच्चदि तो पमादस्स वि लेस्सत्तं किण्ण इच्छि-ज्जदि ? ण, तस्स कसाएसु अंतव्भावादो । असंजमस्स किण्ण इच्छिज्जदि ? ण, तस्स वि लेस्सायम्मे अंतव्भावादो । मिच्छत्तस्स किण्ण इच्छिज्जदि ? होदु तस्स लेस्साववएसो, विरोहाभावादो । किंतु कसायाणं चेव एत्थ पहाणत्तं हिंसादिलेस्सायम्मकारणादो, सेसेसु तदभावादो ।

अलेस्सिओ णाम कधं भवदि ? ॥ ६२ ॥

एत्थ वि णिकखेवमस्सिदूण परूवणा कादव्वा ।

बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षीणकषाय जीवोंके लेइयाके अभावका प्रसंग आता है ?

समाधान—सचमुच ही क्षीणकषाय जीवोंमें लेइयाके अभावका प्रसंग आता यदि केवल कषायोदयसे ही लेइयाकी उत्पत्ति मानी जाती । किन्तु शरीरनाम-कर्मके उदयसे उत्पन्न योग भी तो लेइया माना गया है, क्योंकि, वह भी कर्मके बन्धमें निमित्त होता है । इस कारण कषायके नष्ट हो जानेपर भी चूंकि योग रहता है इसीलिये क्षीणकषाय जीवोंके लेइया माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

शंका—यदि बन्धके कारणोंको ही लेइयाभाव कहा जाता है तो प्रमादको भी लेइयाभाव क्यों न मान लिया जाय ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रमादका तो कषायोंमें ही अन्तर्भाव हो जाता है ?

शंका—असंयमको भी लेइयाभाव क्यों नहीं मानते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि असंयमका भी तो लेइयाकर्ममें अन्तर्भाव हो जाता है ।

शंका—मिथ्यात्वको लेइयाभाव क्यों नहीं मानते ?

समाधान—मिथ्यात्वको लेइया कह सकते हैं, क्योंकि, उसमें कोई विरोध नहीं आता । किन्तु यहां कषायोंका ही प्राधान्य है, क्योंकि कषाय ही लेइयाकर्मके कारण हैं और अन्य बन्धकारणोंमें उसका अभाव है ।

जीव अलेइयिक कैसे होता है ? ॥ ६२ ॥

यहां भी निक्षेपके आश्रयसे प्ररूपणा करना चाहिये ।

खइयाए लद्वीए ॥ ६३ ॥

लेस्साए कारणकम्माणं खएणुप्पणजीवपरिणामो खइया लद्वी, तीए अलेस्सिओ होदि त्ति एतं होदि । ण सरीरणामकम्मसंतस्स अत्थित्तं पडुच्च खइयत्तं विरुज्झदे, तस्स तंतत्ताभावादो ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिओ अभवसिद्धिओ णाम कथं भवदि ?
॥ ६४ ॥

सुगममेदं ।

पारिणामिण भावेण ॥ ६५ ॥

एदं पि सुगमं ।

णेव भवसिद्धिओ णेव अभवसिद्धिओ णाम कथं भवदि ? ॥ ६६ ॥

एदं पि सुगमं ।

खइयाए लद्वीए ॥ ६७ ॥

सुगममेदं ।

क्षायिक लब्धिसे जीव अलेस्सियक होता है ॥ ६३ ॥

लेइयाके कारणभूत कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न हुए जीव-परिणामको क्षायिक लब्धि कहते हैं, उसी क्षायिक लब्धिसे जीव अलेस्सियक होता है यह सूत्रका तात्पर्य है । शरीर-नामकर्मकी सत्ताका होना क्षायिकत्वके विरुद्ध नहीं है, क्योंकि क्षायिक भाव शरीर-नामकर्मके अधीन नहीं है ।

भव्यमार्गणानुसार जीव भव्यसिद्धिक व अभव्यसिद्धिक कैसे होता है ? ॥ ६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पारिणामिक भावसे जीव भव्यसिद्धिक व अभव्यसिद्धिक होता है ॥ ६५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

जीव न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक कैसे होता है ? ॥ ६६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

क्षायिक लब्धिसे जीव न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक होता है ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्टी णाम कथं भवदि ? ॥ ६८ ॥

किमोदइएण किमुवसमिएण किं खइएण किं खओवसमिएण किं पारिणामिएणेत्ति बुद्धीए काऊणेदं कथं होदि त्ति वुत्तं ।

उवसमियाए खइयाए खओवसमियाए लद्धीए ॥ ६९ ॥

दंसणमोहणीयस्स उवसमेण उवसमसम्मत्तं होदि, खएण खइयं होदि, खओवसमेण वेदगसम्मत्तं । एदेसिं तिण्हं सम्मत्ताण जमेयत्तं तं सम्माइट्टी णाम । तिस्से इमे तिण्णि भावा जेण अत्थि तेण सम्माइट्टी उवसमियाए खइयाए खओवसमियाए लद्धीए होदि त्ति उत्तं । कथमेयस्स तिण्णि भावा ? ण, पुधसामण्णस्स एककस्स अक्कमेणाणेववण्णाणं जहा विरोहो णत्थि तथा एयस्स बहुपरिणामेहि विरोहाभावादो ।

खइयसम्माइट्टी णाम कथं भवदि ? ॥ ७० ॥

सुगममेदं ।

सम्यक्त्वमार्गणानुसार जीव सम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ६८ ॥

क्या औद्यिक भावसे सम्यग्दृष्टि होता है, कि औपशमिक भावसे, कि क्षायिक भावसे, कि क्षायोपशमिक भावसे, कि पारिणामिक भावसे, ऐसा मनमें विचार कर पूछा गया है कि कैसे होता है ।

औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव सम्यग्दृष्टि होता है ॥ ६९ ॥

दर्शनमोहनीयके उपशमसे उपशम सम्यक्त्व होता है, क्षयसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है, और क्षयोपशमसे वेदक सम्यक्त्व होता है । इन तीनों सम्यक्त्वोंका जो एकत्व है उसीका नाम सम्यग्दृष्टि है । चूंकि उस सम्यग्दृष्टिके ये तीन भाव होते हैं, इसीलिये सम्यग्दृष्टि औपशमिक, क्षायिक व क्षायोपशमिक लब्धिसे होता है, ऐसा कहा गया है ।

शंका— एक ही सम्यग्दृष्टिके तीन भाव कैसे होते हैं ?

समाधान — जैसे स्पष्ट है सामान्य जिसका ऐसी एक ही वस्तुमें एक साथ अनेक वर्ण होते हुए भी कोई विरोध नहीं आता, उसी प्रकार एक ही सम्यग्दर्शनके अनेक परिणाम होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

खइयाए लद्वीए ॥ ७१ ॥

दंसणमोहणीयस्स णिस्सेसविणासो खओ णाम । तम्हि उप्पण्णजीवपरिणामो लद्वी णाम । तीए लद्वीए खइयसम्मादिद्वी होदि ।

वेदगसम्मादिद्वी णाम कथं भवदि ? ॥ ७२ ॥

सुगममेदं ।

खओवसमियाए लद्वीए ॥ ७३ ॥

तं जहा- सम्मत्तदेसघादिफइयाणमणंतगुणहाणीए उदयभागदानमइदहरदेसघादि-
त्तणेण उवसंतारणं जेण खओवसमसण्णा अत्थि तेण तत्थुप्पण्णजीवपरिणामो खओवसम-
लद्वीसण्णिदो । तीए खओवसमलद्वीए वेदगसम्मत्तं होदि ।

उवसमसम्माइद्वी णाम कथं भवदि ? ॥ ७४ ॥

सुगमं ।

उवसमियाए लद्वीए ॥ ७५ ॥

क्षायिक लब्धिसे जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि होता है ॥ ७१ ॥

दर्शनमोहनीय कर्मके निशेष विनाशको क्षय कहते हैं, और उस क्षयसे जो जीवपरिणाम उत्पन्न होता है वह क्षायिक लब्धि कहलाती है। उसी क्षायिक लब्धिसे जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि होता है।

जीव वेदकसम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

क्षयोपशमिक लब्धिसे जीव वेदकसम्यग्दृष्टि होता है ॥ ७३ ॥

वह इस प्रकार है— अनन्तगुणी हानिके द्वारा उदयमें आये हुए तथा अत्यन्त अल्प देशघातित्वके रूपसे उपशान्त हुए सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंका चूंकि क्षयोपशम नाम दिया गया है, इसीलिये उस क्षयोपशमसे उत्पन्न जीवपरिणामको क्षयोपशम लब्धि कहते हैं। उसी क्षयोपशम लब्धिसे वेदक सम्यक्त्व होता है।

जीव उपशमसम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

औपशमिक लब्धिसे जीव उपशमसम्यग्दृष्टि होता है ॥ ७५ ॥

कुदो ? दंसणमोहणीयस्स उवसमेणेदस्सुप्पत्तिदंसणादो ।

सासणसम्माइट्ठी णाम कथं भवदि ? ॥ ७६ ॥

एत्थ पुच्चं व णिकखेवे काऊण णोआगमदो भावसासणसम्माइट्ठी धेत्तच्चो । सो कथं होदि केण पयारेण होदि त्ति पुच्छा ।

पारिणामिण्ण भावेण ॥ ७७ ॥

एसो सासणपरिणामो खईओ ण होदि, दंसणमोहक्खएणाणुप्पत्तीदो । ण खओवसमिओ वि, देसघादिफद्दयाणमुदएण अणुप्पत्तीए । उवसमिओ वि ण होदि, दंसणमोहुवसमेणाणुप्पत्तीदो । ओदइओ वि ण होदि, दंसणमोहस्सुदएणाणुप्पत्तीदो । पारिसेसादो पारिणामिण्ण भावेण सासणो होदि । अणंताणुबंधीणमुदएण सासणगुणस्सुवलंभादो ओदइओ भावो किण्ण उच्चदे ? ण, दंसणमोहणीयस्स उदय-उवसम-खय-खओवसमेहि विणा उप्पज्जदि त्ति सासणगुणस्स कारणं चरित्तमोहणीयं तस्स दंसण-

क्योंकि, दर्शनमोहनीय कर्मके उपशमसे उपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

जीव सासादनसम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७६ ॥

यहां पूर्वानुसार निक्षेपोंको करके नोआगम भावसासादनसम्यग्दृष्टिका ग्रहण करना चाहिये । वह सासादनसम्यग्दृष्टि कैसे होता है अर्थात् किस प्रकार होता है ऐसा सूत्रमें प्रश्न किया गया है ।

पारिणामिक भावसे जीव सासादनसम्यग्दृष्टि होता है ॥ ७७ ॥

यह सासादन परिणाम क्षायिक नहीं होता, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके क्षयसे उसकी उत्पत्ति नहीं होती । सासादन परिणाम क्षायोपशमिक भी नहीं है, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे उसकी उत्पत्ति नहीं होती । सासादन परिणाम औपशमिक भी नहीं है, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके उपशमसे उसकी उत्पत्ति नहीं होती । सासादन परिणाम औद्भिक भी नहीं है, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके उदयसे उसकी उत्पत्ति नहीं होती । अतएव पारिशेष न्यायसे पारिणामिक भावसे ही सासादन परिणाम होता है ।

शंका—अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदयसे सासादन गुणस्थान पाया जाता है, अतएव उसे औद्भिक भाव क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं कहते, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके उदय, उपशम, क्षय व क्षयोपशमके विना उत्पन्न होनेसे सासादन गुणस्थानका कारण चरित्र मोहनीय कर्म ही हो

मोहणीयत्वविरोहादो । अणंताणुबंधीचदुक्कं तदुभयमोहणं चे ? होदु णाम, किंतु णेदमेत्थ विवक्खियं । अणंताणुबंधीचदुक्कं चरित्तमोहणीयं चेत्तेत्ति विवक्खाए सासणगुणो पारिणामिओ त्ति भणिदो । .

सम्मामिच्छादिट्ठी णाम कथं भवदि ? ॥ ७८ ॥

सुगमं ।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ७९ ॥

सम्मामिच्छत्तस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदएण सम्मामिच्छादिट्ठी जदो होदि तेण तस्स खओवसमिओ भावो त्ति ण जुज्जदे ? होदु णाम सम्मत्तं पडुच्च सम्मामिच्छत्त-फद्दयाणं सव्वघादित्तं, किंतु असुद्धएण विवक्खिए ण सम्मामिच्छत्तफद्दयाणं सव्वघादित्त-मत्थि, तेसिमुदए संते वि मिच्छत्तसंवल्लिदसम्मत्तकणस्सुवलंभादो । ताणि सव्वघादि-फद्दयाणि उच्चंति जेसिमुदएण सव्वं घादिज्जदि । ण च एत्थ सम्मत्तस्स णिम्मूल-

सकता है और चरित्रमोहनीयके दर्शनमोहनीय माननेमें विरोध आता है ।

शंका—अनन्तानुबन्धीचतुष्क तो दर्शन और चारित्र दोनोंमें मोह उत्पन्न करनेवाला है ?

समाधान—भले ही अनन्तानुबन्धीचतुष्क उभयमोहनीय हो, किन्तु यहां वैसी विवक्षा नहीं है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क चारित्रमोहनीय ही है, इसी विवक्षासे सासा-दन गुणस्थानको पारिणामिक कहा है ।

जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि होता है ॥ ७९ ॥

शंका—चूंकि सम्यग्मिथ्यात्व नामक दर्शनमोहनीय प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि होता है, इसलिये उसके क्षायोपशमिक भाव उपयुक्त नहीं है ?

समाधान—सम्यक्त्वकी अपेक्षा भले ही सम्यग्मिथ्यात्वके स्पर्धकोंमें सर्वघाती-पना हो, किन्तु अशुद्धनयकी विवक्षासे सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके स्पर्धकोंमें सर्वघातीपना नहीं होता, क्योंकि, उनका उदय रहनेपर भी मिथ्यात्वमिश्रित सम्यक्त्वका कण पाया जाता है । सर्वघाती स्पर्धक तो उन्हें कहते हैं जिनका उदय होनेसे समस्त (प्रतिपक्षी गुणका) घात हो जाय । किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्पत्तिमें तो हम

विणासं पेच्छामो, सब्भूदासब्भूदत्थेसु तुल्लस्सद्दहणदंसणादो । तदो जुज्जदे सम्मा-
मिच्छत्तस्स खओवसमिओ भावो त्ति ।

मिच्छादिट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥ ८० ॥

सुगमं ।

मिच्छत्तकम्मस्स उदएण ॥ ८१ ॥

एदं पि सुगमं ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी णाम कधं भवदि ? ॥ ८२ ॥

सुगमं ।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ८३ ॥

णोइंदियावरणस्स सच्चघादिफइयाणं जादिवसेण अणंतगुणहाणीए हाइदूण देस-
घादित्तं पाविय उवसंताणमुदएण सण्णित्तदंसणादो ।

असण्णी णाम कधं भवदि ? ॥ ८४ ॥

सम्यक्त्वका निर्मूल विनाश नहीं देखते, क्योंकि, यहां सद्भूत और असद्भूत पदार्थोंमें
समान श्रद्धान होता देखा जाता है। इसलिये सम्यग्मिथ्यात्वको क्षायोपशमिक भाव
मानना उपयुक्त है।

जीव मिथ्यादृष्टि कैसे होता है ? ॥ ८० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मिथ्यात्वकर्मके उदयसे जीव मिथ्यादृष्टि होता है ? ॥ ८१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

संज्ञीमार्गणानुसार जीव संज्ञी कैसे होता है ? ॥ ८२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव संज्ञी होता है ॥ ८३ ॥

क्योंकि, नोहान्द्रियावरण कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके अपनी जातिविशेषके
प्रभावसे अनन्तगुणी हानिरूप घातके द्वारा देशघातित्वको प्राप्त होकर उपशान्त हुए
पुनः उन्हींके उदय होनेसे संज्ञित्व उत्पन्न होता देखा जाता है ।

जीव असंज्ञी कैसे होता है ? ॥ ८४ ॥

सुगमं ।

ओदइएण भावेण ॥ ८५ ॥

णोइंदियावरणस्स सब्बघादिफइयाणमुदएण असणित्तस्स दंसणादो । ण च णोइंदियावरणमसिद्धं कज्जणय-वदिरेगेहि कारणस्स अत्थित्तसिद्धीदो ।

णेव सण्णी णेव असण्णी णाम कधं भवदि ? ॥ ८६ ॥

सुगममेदं ।

खइयाए लद्धीए ॥ ८७ ॥

णाणावरणस्स णिम्मूलक्खएणुप्पणपरिणामो इंदियणिरवेक्खलक्खणो खइया लद्धी णाम । तीए खइयाए लद्धीए णेव-सण्णी णेव-असणित्तं होदि ।

आहाराणुवादेण आहारो णाम कधं भवदि ? ॥ ८८ ॥

सुगममेदं ।

ओदइएण भावेण ॥ ८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदयिक भावसे जीव असंज्ञी होता है ॥ ८५ ॥

क्योंकि, नोइन्द्रियावरणकर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे असंज्ञी भाव देखा जाता है । नोइन्द्रियावरण कर्म असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, कार्यके अन्वय और व्यतिरेकके द्वारा कारणके अस्तित्वकी सिद्धि हो जाती है ।

जीव न संज्ञी न असंज्ञी कैसे होता है ? ॥ ८६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिक लब्धिसे जीव न संज्ञी न असंज्ञी होता है ॥ ८७ ॥

ज्ञानावरण कर्मके निर्मूल क्षयसे जो इन्द्रियनिरपेक्ष लक्षणवाला जीवपरिणाम उत्पन्न होता है उसीको क्षायिक लब्धि कहते हैं । उसी क्षायिक लब्धिसे जीव न संज्ञी न असंज्ञी होता है ।

आहारमार्गणानुसार जीव आहारक कैसे होता है ? ॥ ८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदयिक भावसे जीव आहारक होता है ॥ ८९ ॥

ओरालिय-वेउच्चिय-आहारसरीरणमुदएण चाहारो होदि । तेजा-कम्मइयाण-
मुदएण आहारो किण्ण बुच्चदे ? ण, विग्गहगदीए वि आहारित्तप्पसंगादो । ण च एवं,
विग्गहगदीए अणाहारित्तदंसणादो ।

अणाहारो णाम कधं भवदि ? ॥ ९० ॥

सुगममेदं ।

ओदइएण भावेण पुण खइयाए लद्धीए ॥ ९१ ॥

अजोगिभयवंतस्स सिद्धाणं च अणाहारत्तं खइयं घादिकम्माणं सव्वकम्माणं च
खएण । विग्गहगदीए पुण ओदइएण भावेण, तत्थ सव्वकम्माणमुदयदंसणादो ।

एवमेगजीवेण सामित्तं णाम अणियोगद्वारं समत्तं ।

औदारिक, वैकियिक व आहारक शरीरनामकर्म प्रकृतियोंके उदयसे जीव
आहारक होता है ।

शंका—तैजस और कार्मण शरीरोंके उदयसे जीव आहारक क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं होता, क्योंकि वैसा माननेपर विग्रहगतिमें भी जीवके आहारक
होनेका प्रसंग आजायगा । और वैसा है नहीं, क्योंकि, विग्रहगतिमें जीवके अनाहारक-
भाव पाया जाता है ।

जीव अनाहारक कैसे होता है ? ॥ ९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदयिक भावसे तथा क्षायिक लब्धिसे जीव अनाहारक होता है ॥ ९१ ॥

अयोगिकेवली भगवान् और सिद्धोंके क्षायिक अनाहारत्व होता है, क्योंकि, उनके
क्रमशः घातिया कर्मोंका व समस्त कर्मोंका क्षय होता है । किन्तु विग्रहगतिमें औदयिक
भावसे अनाहारत्व होता है, क्योंकि, विग्रहगतिमें सभी कर्मोंका उदय पाया जाता है ।

इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

एगजीवेण कालाणुगमो

एगजीवेण कालाणुगमेण गदियाणुवादेण गिरयगदीए णेरइया
केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १ ॥

एत्थ मूलोहो किण्ण परूविदो ? ण, चउग्गइपरूवणेण तदवगमादो । गिरय-
गइणिहेसो सेसगइणिसेहट्ठो ।

जहण्णेण दसवस्ससहस्साणि ॥ २ ॥

तिरिक्खस्स वा मणुस्सस्स वा दसवस्ससहस्साउट्ठिदीएसु णेरइएसु उप्पज्जिदण
णिप्फिडिदस्स दसवस्ससहस्समेत्तट्ठिदिदसणादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ३ ॥

तिरिक्खस्स वा मणुस्सस्स वा सत्तमाए पुढवीए तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिं बंधिऊण
तत्थुप्पज्जिय सगाट्ठिदिमणुपालिय णिप्फिडिदस्स तेत्तीससागरोवममेत्तणिरय भावुवलंभादो ।

एक जीवकी अपेक्षा कालानुगमसे गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकी कितने
काल तक रहते हैं ? ॥ १ ॥

शंका—यहां मूलौच अर्थात् गतिसामान्यकी अपेक्षा प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

समाधान—नहीं की, क्योंकि, चारों गतियोंके प्ररूपणसे उसका ज्ञान हो ही
जाता है ।

सूत्रमें नरकगतिका निर्देश शेष गतियोंके निषेध करनेके लिये किया गया है ।

जीव कमसे कम दश हजार वर्ष तक नरकगतिमें रहता है ॥ २ ॥

क्योंकि, किसी तिर्यंच या मनुष्यके दश हजार वर्षकी आयुस्थितिवाले नारकियोंमें
उत्पन्न होकर वहांसे निकल आनेपर नरकमें दस हजार वर्षमात्रकी स्थिति पायी जाती है ।

जीव अधिकसे अधिक तेतीस सागरोपम काल तक नरकमें रहता है ॥ ३ ॥

किसी तिर्यंच या मनुष्यके सातवीं पृथिवीमें तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिको
बांधकर व वहां उत्पन्न होकर अपनी स्थिति पूरी करके निकल आनेपर तेतीस सागरो-
पममात्र नरकभाव पाया जाता है ।

पढमाए पुढवीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४ ॥

‘केवचिरं’ सहो समय-खण-लव-मुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवत्सर-जुग-पुव्व-पल्ल-सागरोवमादीणि अवेक्खदे । सेसं सुगमं ।

जहण्णेण दसवाससहस्साणि ॥ ५ ॥

सुगममेदं, णिरओघम्मि परूविदत्तादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमं ॥ ६ ॥

पढमाए पुढवीए सागरोवमाउट्टिदिं वंधिदूण पढमाए पुढवीए उप्पज्जिय सग-ट्टिदिमणुपालिय णिप्पिडिदतिरिक्ख-मणुस्सेसु तदुवलंभादो । एदं पढमाए पुढवीए वुत्तजहण्णुककस्साउअं सीमंत-णिरय-रोरुअ-भंत-उब्भंत-संभंत-असंभंत-विब्भंत-तत्त-तसिद-वक्कंत-अवक्कंत-विककंतसाण्णिदतेरसण्हमिंदयाणं ससेडीवद्ध-पइणयाणं किमेधं चेव होदि आहो ण होदि त्ति ? एदेसिं सव्वेसिं एदं चेव जहण्णुककस्साउअं ण होदि, किंतु

प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४ ॥

‘कितने काल तक’ यह शब्द समय, क्षण, लव, मुहुत्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, पूर्व, पल्य व सागर आदि कालमानोंकी अपेक्षा रखता है ।

प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव कमसे कम दश हजार वर्ष तक रहते हैं ॥ ५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, इसकी प्ररूपणा ओघ नारकियोंकी प्ररूपणामें की जा चुकी है ।

प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव अधिकसे अधिक एक सागरोपम तक रहते हैं ॥ ६ ॥

क्योंकि, प्रथम पृथिवीकी एक सागरोपम आयुस्थितिको बांधकर प्रथम पृथिवीमें उत्पन्न होकर व अपनी स्थितिको पूरी करके वहाँसे निकलनेवाले तिर्यंच व मनुष्योंके एक सागरोपमकी नरकस्थिति पायी जाती है ।

शंका—यह जो प्रथम पृथिवीकी जघन्य और उत्कृष्ट आयु बतलायी गई है सो क्या सीमन्त, नरक, रौरव, भ्रान्त, उद्भ्रान्त, संभ्रान्त, असंभ्रान्त, विभ्रान्त, तप्त, त्रसित, वक्रान्त, अवक्रान्त और विक्रान्त नामक तेरहों इन्द्रकों तथा उनसे सम्बद्ध श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक सब बिलोंकी यही आयुस्थिति होती है, या नहीं होती ?

समाधान—प्रथम पृथिवीके उक्त समस्त बिलोंकी जघन्य और उत्कृष्ट आयु

सर्व्वेसिं पुध पुध जहण्णुक्कस्साउअं होदि । तं जहा—

सीमंतम्मि ससेडीबद्ध-पङ्णयम्मि जहण्णमाउअं दसवस्ससहस्साणि, उक्कस्सं णउदिवस्ससहस्साणि $\boxed{१००००१९००००}$ । बिदियपत्थडे णउदिवस्ससहस्साणि समयाहियाणि जहण्णमाउअं, उक्कस्सं पुण णवुदिवस्ससदसहस्साणि । ९०००००० । तदियपत्थडे जहण्णमाउअं णउदिवस्ससदसहस्साणि समयाहियाणि । ९०००००० । उक्कस्समसंखेज्जाओ पुव्वकोडीओ । चउत्थपत्थडे जहण्णमसंखेज्जाओ पुव्वकोडीओ समयाहियाओ, उक्कस्सं सागरोवमस्स दसमभागो । इमं मुहं होदि अप्पत्तादो, सागरोवमं भूमी होदि बहुदरत्तादो । भूमिदो कयसरिसच्छेदादो मुहमवणिय वृद्धिदे सुद्धसेसमेत्तियं होदि $\boxed{१\frac{१}{१०}}$ । पुणो उस्सेधो दस होदि, दससु अवड्ढिदवड्ढिहाणिदंसणादो । तत्थ दससु पढमस्स वड्ढी णत्थि त्ति एगरूवमवणिय सुद्धसेसणओवड्ढिदे लद्धं वड्ढि हाणिपमाणं होदि $\boxed{१\frac{१}{१०}}$ । एत्थ उवउज्जंती करणगाहा—

इतनी ही नहीं होती, किन्तु सब बिलोंकी पृथक् पृथक् जघन्य और उत्कृष्ट आयु होती है । वह इस प्रकार है—

अपने श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों सहित सीमन्त नामक प्रथम इन्द्रकर्म जघन्य आयु दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट आयु नब्बे हजार वर्षकी होती है $\boxed{१०००० \mid ९००००}$ । दूसरे पाथड़ेमें जघन्य आयु एक समय अधिक नब्बे हजार वर्ष और उत्कृष्ट नब्बे लाख वर्षकी होती है । ९०००००० । तीसरे पाथड़ेमें जघन्य आयु एक समय अधिक नब्बे लाख वर्ष ९०००००० और उत्कृष्ट आयु असंख्यात पूर्वकोटियोंकी होती है । चतुर्थ पाथड़ेमें जघन्य आयु एक समय अधिक असंख्यात पूर्वकोटि और उत्कृष्ट आयु एक सागरोपमके दशम भाग होती है । यही सागरोपमका दशमांस 'मुख' कहलाता है, क्योंकि, वह अल्प है, तथा पूरा एक सागरोपम 'भूमि' कहलाता है, क्योंकि, वह मुखकी अपेक्षा बड़ा है । भूमिको मुखके समान भागोंमें खंडित करके उसमेंसे मुखको घटा देनेपर शेष मान होता है— $\frac{१}{१०} - \frac{१}{१०} = \frac{९}{१०}$ । उत्सेध दश है, क्योंकि, चतुर्थ आदि तेरहवें पाथड़े पर्यन्त दश पाथड़ोंका आयुप्रमाण निकालना है और इन्हीं दश स्थानोंमें अवस्थित हानि-वृद्धि पायी जाती है । इन दश स्थानोंमें चतुर्थ पाथड़े संबंधी प्रथम स्थानमें तो वृद्धि है नहीं । इसलिये एकको दशमेंसे घटाकर शेष नौका नौ बटे दशमें भाग देनेसे जो लब्ध आता है वह वृद्धि-हानिका प्रमाण होता है । ($१० - १ = ९$; $\frac{१}{१०} \div ९ = \frac{१}{९०}$) । यहां निम्न करण गाथा उपयोगी है—

मुह-भूमीण विसेसो उच्छयभजिदो दु जो हवे वड्डी ।

वड्डी इच्छागुणिदा मुहसहिया होइ वड्डीफलं ॥ १ ॥

पुणो एवमाणिदवड्ढिं दससु ठाणेसु ठविय एगादिएंगुत्तरसलागाहि गुणिय मुह-
पक्खेवे कदे इच्छिद-इच्छिदपत्थडाणमाउअं होदि । तस्स पमाणभेदं

१	१	३	३
१०	५	१०	५

३	७	४	१०	१
५	१०	५	१०	५

 । एसो अत्थो सुत्ते अवुत्तो कथं णव्वदे ? किमिदि ण वुत्तो, वुत्तो
चेव देसामासियभावेण । एदं सुत्तं देसामासियमिदि कुदो णव्वदे ? गुरूवदेसादो ।

विदियाए जाव सत्तमाए पुठवीए णेरइया केवचिरं कालादो
होंति ? ॥ ७ ॥

मुख और भूमिका जो विशेष अर्थात् अन्तर हो उसे उत्सेधसे भाजित कर देनेपर
जो वृद्धिका प्रमाण आता है, उस वृद्धिको अभीष्टसे गुणा करके मुखमें जोड़नेपर वृद्धिका
फल प्राप्त हो जाता है ॥ १ ॥

पुनः इस प्रकार लाये हुए वृद्धिके प्रमाणको दश स्थानोंमें स्थापित कर एकादि
उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शलाकाओंसे गुणितकर लब्धको मुखमें मिला देनेसे प्रत्येक अभीष्ट
पाथङ्केका आयुप्रमाण निकल आता है । इस प्रकार निकाला हुआ चतुर्थ आदि पाथङ्गोंका
आयुप्रमाण निम्न प्रकार है —

क्रम सं.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
पाथङ्ग	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
आयुप्र.	१०	२	३०	२	३	३	१०	५	१०	१

शंका—ऐसा अर्थ सूत्रमें तो कहा नहीं गया, फिर वह कहाँसे जाना जाता है ?

समाधान—कैसे नहीं कहा गया ? देशामर्शक भावसे कहा तो गया है ।

शंका—प्रस्तुत सूत्र देशामर्शक है यह कैसे जान लिया ?

समाधान—गुरुजीके उपदेशसे हमने जाना कि प्रस्तुत सूत्र देशामर्शक है ।

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नरकोंमें नारकी जीव कितने काल
तक रहते हैं ? ॥ ७ ॥

१ प्रतिपु 'आणत्तुर्षु कोष्ठेषु

१	१	२	१
१०	५	१०	५

 ' इति पाठः ।

सुगममेदं ।

जहण्णेण एक्क तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस सागरो-
वमाणि सादिरेयाणि ॥ ८ ॥

बिदियाए पुढवीए समयाहियमेक्कं सागरोवमं । तदियाए पुढवीए तिण्णि
सागरोवमाणि समयाहियाणि । चउत्थीए पुढवीए सत्त सागरोवमाणि समयाहियाणि ।
पंचमीए पुढवीए दस सागरोवमाणि समयाहियाणि । छट्ठीए पुढवीए सत्तारस सागरो-
वमाणि समयाहियाणि । सत्तमीए पुढवीए बावीस सागरोवमाणि समयाहियाणि ।
सादिरेयमिदि वुत्ते एक्को चव समओ अहिओ त्ति कधं णव्वदे ? ' उवरिल्लुक्कस्सट्ठिदी
समयाहिया हेट्ठिमपुढवीणं जहण्णा ' त्ति' वयणादो णव्वदे ।

उक्कस्सेण तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस तेत्तीसं सागरो-
वमाणि ॥ ९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम दूसरी पृथिवीमें कुछ अधिक एक सागरोपम, तीसरीमें कुछ अधिक
तीन, चौथीमें कुछ अधिक सात, पांचवीमें कुछ अधिक दश, छठवींमें कुछ अधिक
सत्तरह और सातवींमें कुछ अधिक बाईस सागरोपम तक नारकी जीव रहते हैं ॥ ८ ॥

दूसरी पृथिवीमें एक समय अधिक एक सागरोपम, तीसरी पृथिवीमें एक समय
अधिक तीन सागरोपम, चौथी पृथिवीमें एक समय अधिक सात सागरोपम, पांचवीं
पृथिवीमें एक समय अधिक दश सागरोपम, छठी पृथिवीमें एक समय अधिक सत्तरह
सागरोपम और सातवीं पृथिवीमें एक समय अधिक बाईस सागरोपम आयुका प्रमाण है ।

शंका—सूत्रमें जो 'सातिरेक' अर्थात् 'कुछ अधिक' शब्द आया है उससे एक
मात्र समय ही अधिक होता है यह कैसे जान लिया ?

समाधान—क्योंकि 'उत्तरोत्तर ऊपरकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय अधिक होकर
नीचे नीचेकी पृथिवियोंकी जघन्य स्थिति होती है' इस आगमवचनसे ही जाना जाता
है कि उपर्युक्त पृथिवियोंकी जघन्यायुमें सातिरेकका प्रमाण एक मात्र समय अधिक है ।

द्वितीयादि पृथिवियोंमें नारकी जीव अधिकसे अधिक क्रमशः तीन, सात, दश,
सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपम काल तक रहते हैं ॥ ९ ॥

१ नारकाणां च द्वितीयादिषु । त. सू. ४, ३५. उवरिसउक्कस्सांके समयज्जुदो हेट्ठिमे जहण्णं खु ॥
ति. प. २, २१५.

एत्थ जहासंखणाओ अल्लिएदव्वो । एदाणि दो वि सुत्ताणि देसामासियाणि,
पादेकं पुढवीणं जहण्णुक्कस्सट्टिदीपरूवणामुहेण सव्वपत्थडाणमाउट्टिदिसूचनादो । एदेहि
दोहि वि सुत्तेहि सूचिदत्थस्स परूवणं कस्सामो । तं जहा - तणओ' थणओ वणओ
मणओ घादो संघादो जिब्भो जिब्भओ लोलो लोलुवो थणलोलुवो चेदि एदे विदिय-
पुढवीए इंदया । एदेसिमाउट्टिदीए आणिज्जमाणाए पढमपुढविउक्कस्साउअं मुहं काऊण
विदियाए पुढवीए उक्कस्साउअं तिण्णिसागरोवमपमाणं भूमिं काऊण एक्कारस इंदए
उस्सेहं काऊण पुव्विल्लकरणगाहाए विदियपुढवीएक्कारसपत्थडाणं पादेकमाउपमाण-
माणेदव्वं । तेसिं पमाणमेदं

१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	३
२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४	२६
११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११

। तदियाए
पुढवीए तत्तो तसिदो तवणो तावणो णिदाहो पज्जलिदो उज्जलिदो सुपज्जलिदो संपज्ज-

यहां पर सूत्रके अर्थ करनेमें 'यथासंख्य' न्यायका आश्रय लेना चाहिये अर्थात्
तीन, सात आदि सागरोपमोंको क्रमशः दूसरी, तीसरी आदि पृथिवियोंके आयुप्रमाण
रूपसे योजित करना चाहिये। पूर्वोक्त दोनों सूत्र देशामर्शक हैं, क्योंकि, वे प्रत्येक पृथिवीकी
जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिकी प्ररूपणा द्वारा अपने अपने समस्त पाथडोंकी आयुस्थितिकी
सूचना करते हैं। अब हम यहां इन दोनों सूत्रोंके द्वारा सूचित अर्थका प्ररूपण करते हैं।
बह इस प्रकार है -

तनक, स्तनक, वनक, मनक, घात, संघात, जिब्ब, जिब्बक, लोल, लोलुप और
स्तनलोलुप ये क्रमशः द्वितीय पृथिवीके ग्यारह इन्द्रकोंके नाम हैं। इनकी आयुस्थिति
लानेके लिये प्रथम पृथिवीकी उत्कृष्ट स्थितिको मुख करके तथा दूसरी पृथिवीकी तीन
सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयुको भूमि करके और ग्यारह इन्द्रकोंको उत्सेध करके पूर्वोक्त
करणगाथानुसार द्वितीय पृथिवीके ग्यारह पाथडोंमेंसे प्रत्येकका आयुप्रमाण ले आना
चाहिये।

उदाहरण—द्वि. पृ. संबंधी मुख = १ सा., भूमि = ३ सा., उत्सेध = ११. अतएव
प्रत्येक प्रस्तरके लिये वृद्धिका प्रमाण हुआ— (३-१) ÷ ११ = $\frac{२}{११}$ । इसको इच्छा अर्थात्
प्रस्तरकी क्रमसंख्यासे गुणा करनेपर व भूमिमें मिलानेपर ग्यारहों प्रस्तरोंका आयुप्रमाण
इस प्रकार आता है—

प्रस्तर	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
आ. प्र. सा.	$\frac{१}{११}$	$\frac{२}{११}$	$\frac{३}{११}$	$\frac{४}{११}$	$\frac{५}{११}$	$\frac{६}{११}$	$\frac{७}{११}$	$\frac{८}{११}$	$\frac{९}{११}$	$\frac{१०}{११}$	३

तीसरी पृथिवीमें तप्त, त्रसित, तपन, तापन, निदाघ प्रज्वलित, उज्वलित,

१ प्रतिष्ठा 'थदओ' इति पाठः।

लिदो सि एदे णव इंदया । एदेसिमाउअं पुव्वं व जाणिदूण आणेदव्वं । तेसिं संदिट्ठी एसा

४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२

। चउत्थीए पुढवीए आरो तारो मारो वंतो तमो खादो

खदखदो चेदि सत्त इंदया । एदेसिमाउअपमाणं पुव्वं व आणेदव्वं । तस्स संदिट्ठी एसा

४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२

। पंचमीए पुढवीए तमो भमो झसो अंधो तिमिसो चेदि

पंच इंदया । एदेसिमाउअपमाणस्स संदिट्ठी एसा

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२

। छट्ठीए पुढवीए हिमो वड्डलो लल्लंको चेदि तिण्णि इंदया । तेसिमाउअपमाणस्स संदिट्ठी एसा

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२

। सत्तमाए पुढवीए अवहिट्ठाणमिदि एकको चव इंदओ । तत्थ जहणु-

सुप्रज्वलित और संप्रज्वलित नामक नव इन्द्रक हैं । इनकी आयु भी पूर्वोक्त विधिसे जानकर ले आना चाहिये । उनकी संदृष्टि इस प्रकार है—

प्रस्तर	१	२	३	४	५	६	७	८	९
आ. प्र. सा.	३ ^४ / _२	३ ^८ / _२	४ ^३ / _२	४ ^७ / _२	५ ^२ / _२	५ ^६ / _२	६ ^१ / _२	६ ^५ / _२	७

चौथी पृथिवीमें आर, तार, मार, वान्त, तम, खात और खातखात नामक सात इन्द्रक हैं । इनका आयुप्रमाण भी पूर्वानुसार ले आना चाहिये । उसकी संदृष्टि इस प्रकार है—

प्रस्तर	१	२	३	४	५	६	७
आ. प्र. सा.	७ ^३ / _७	७ ^६ / _७	८ ^२ / _७	८ ^५ / _७	९ ^१ / _७	९ ^४ / _७	१०

पांचवीं पृथिवीमें तम, भ्रम, झष, अन्ध, और तिमिस नामक पांच इन्द्रक हैं । उनके आयुप्रमाणकी संदृष्टि इस प्रकार है—

प्रस्तर	१	२	३	४	५
आ. प्र. सा.	११ ^२ / _२	१२ ^४ / _२	१४ ^१ / _२	१५ ^३ / _२	१७

छठी पृथिवीमें हिम, वर्दल और लल्लंको नामक तीन इन्द्रक हैं । उनके आयु-प्रमाणकी संदृष्टि यह है—

प्रस्तर	१	२	३
आ. प्र. सा.	१८ ^२ / _३	२० ^१ / _३	२२

सातवीं पृथिवीमें अवधिस्थान नामक एक ही इन्द्रक हैं । वहां जघन्य आयु

१ कप्रतौ ' एदेसिमाउआणं पमाणं ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' अल्लंको ' इति पाठः ।

क्कस्साउअं च समयाहियं बावीसं तेत्तीसं सागरोवमाणि २२। २३।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खो केवचिरं कालादो होदि? ॥ १० ॥

सुगममेदं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ११ ॥

मणुस्सेहिंतो आगंतूण तिरिक्खअपज्जत्तेसुप्पज्जिय तत्थ जहण्णाउट्ठिदिमच्छिय
णिप्फिडिदूण गदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तजहण्णकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १२ ॥

अणप्पिदगदीहिंतो आगंतूण तिरिक्खेसुप्पज्जिय आवलियाए असंखेज्जदिभाग-
मेत्तपोग्गलपरियट्टे तिरिक्खेसु परियट्टिदूण अण्णगदिं गदस्स सुत्तुत्तकालुवलंभादो ।
असंखेज्जपोग्गलपरियट्टेत्ति वुत्ते आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता चेव होंति ।

एक समय अधिक बाईस सागरोपम तथा उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरोपम है । २२। ३३।

तिर्यचगतिमें तिर्यच जीव कितने काल तक रहता है ? ॥ १० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यचगतिमें तिर्यच जीव कमसे कम एक क्षुद्रभवग्रहण काल तक रहता
है ॥ ११ ॥

क्योंकि, मनुष्यगतिसे आकर तिर्यच अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर वहां जघन्य
आयुस्थितिमात्र काल रहकर वहांसे निकलनेवाले जीवके क्षुद्रभवग्रहणमात्र जघन्य
काल पाया जाता है ।

तिर्यचगतिमें जीव अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त
काल तक रहता है ॥ १२ ॥

क्योंकि, अविश्रित गतियोंसे आकर तिर्यचोंमें उत्पन्न होकर और आवलीके
असंख्यातवें भागमात्र वार पुद्गलपरिवर्तन काल तक तिर्यचोंमें परिभ्रमण करके अन्य-
गतिमें जानेवाले जीवके सूत्रोक्त असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल पाया
जाता है । असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन कहनेका तात्पर्य आवलीके असंख्यातवें भागमात्र
वारसे है ।

१ छवीसं तिण्णि सया लद्धिं न्नात्तं । अंतोसुहुत्तमज्जे पत्तो सि णिगोयवासम्मि ॥ वियलिदिए
असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणेह । पंचिदिय चउवीसं खुद्दमवतोसुहुत्तस्स ॥ भावप्राश्रित २८-२९.

वड्डिया णं होंति त्ति कधं णव्वदे ? ण, आइरियपरंपरागदुवदेसादो ।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजो-
णिणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १३ ॥

(सुगममेदं ।)

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं ॥ १४ ॥

पंचिंदियतिरिक्खाणं खुदाभवग्गहणं, तत्थ अपज्जत्ताणं संभवादो । सेसेसु
अंतोमुहुत्तं, तत्थ अपज्जत्ताणमभावादो । ण च पज्जत्तेसु जहण्णाउट्टिदिपमाणं खुदाभव-
ग्गहणं होदि, अंतोमुहुत्तुवदेसस्स एदस्स अणत्थयत्तप्पसंगादो ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणव्वभहियाणि
॥ १५ ॥

शंका—असंख्यात पुद्गलपरिदूर्तनोंका तात्पर्य आवलीके असंख्यातवें भागमात्र
वारसे ही है, अधिक नहीं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेशसे ।

जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त व पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती
कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १३ ॥

(यह सूत्र सुगम है ।)

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणकाल व अन्तर्मुहूर्तकाल तक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच,
पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त व पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती होते हैं ॥ १४ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका कमसे कम काल क्षुद्रभवग्रहणमात्र है, कारण कि
पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें अपर्याप्त जीवोंका होना भी संभव है । शेष तिर्यंचोंका काल अन्त-
र्मुहूर्त है, क्योंकि, उनमें अपर्याप्त नहीं होते । पर्याप्तक जीवोंमें जघन्यायुस्थितिका प्रमाण
क्षुद्रभवग्रहणकाल मात्र नहीं होता, अर्थात् उससे अधिक होता है, क्योंकि, यदि पर्याप्त-
कोंका जघन्य आयुप्रमाण भी क्षुद्रभवग्रहणकाल मात्र होता तो प्रस्तुत सूत्रमें अन्तर्मुहूर्त
कालके उपदेशके निरर्थक होनेका प्रसंग आजाता ।

अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पलयोपमप्रमाण काल तक
जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त व पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती रहते
हैं ॥ १५ ॥

अर्णिदिएहिंतो' आगंतूण पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिणीसु उप्पज्जिय जहाकमेण पंचाणउदि-सत्तेत्तालीस-पण्णारसपुव्वकोडीओ परिभमिय दाणेण दाणाणुमोदणेण वा तिपलिदोवमाउट्टिदिएसु तिरिक्खेसु उप्पज्जिय सगआउट्टिदिमच्छिय देवेसु उप्पणस्स एत्तियमेत्तकालस्सुवलंभादो । कधं तिरिक्खेसु दाणस्स संभवो ? ण, तिरिक्खसंजदासंजदाणं सच्चित्तभंजणे गहिदपच्चक्खाणं सल्लइपल्ल-वादिं देततिरिक्खाणं तदविरोधादो । इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु अट्टट्टपुव्वकोडीओ अच्छदि त्ति कधं णव्वदे ? आइरियपरंपरागयउव्वेसादो ।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १६ ॥
सुगममेदं ।

जहणेण खुदाभवग्गहणं ॥ १७ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रियोंको छोड़ एकेन्द्रिय आदि अन्य जानीय जीवोंमेंसे आकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त व पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें उत्पन्न होकर क्रमशः पंचानवे, सैंतालीस व पन्द्रह पूर्वकोटिप्रमाण काल तक परिभ्रमण करके दान देनेसे अथवा दानका अनुमोदन करनेसे तीन पल्योपमकी आयुस्थितिवाले भोग-भूमिक तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर अपनी आयुस्थितिमात्र वहां रहकर देवोंमें उत्पन्न होने-वाले जीवके सूत्रोक्त काल घटित होता पाया जाता है ।

शंका—तिर्यंचोंमें दान देना कैसे संभव हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जो तिर्यंच संयतासंयत जीव सच्चित्तभंजनके प्रत्याख्यान अर्थात् ग्रहणकर लेते हैं उनके लिये शल्लकीके पत्तों आदिका दान करनेवाले तिर्यंचोंके दान देना मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

शंका—स्त्री, पुरुष व नपुंसक वेदी पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें आठ आठ पूर्वकोटि-प्रमाण काल तक ही जीव रहता है यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेशसे ।

जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त रहते हैं ॥ १७ ॥

अणप्पिदेहिंतो आगंतूण पंचिंदिय (-तिरिक्ख-) अपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वजहण्ण-
कालेण भुंजमाणाउअं कदलीघादेण घादिय खुद्दाभवग्गहणमच्छिय णिप्पिडिदस्स एतदुवलं-
भादो । पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तएसु कदलीघादेण घादिदभुंजमाणाउएसु खुद्दाभवग्गहणकालो
किमिदि णोवलब्भदे ? ण, तत्थ अइसुद्दुघादं पत्तस्स वि भुंजमाणाउअस्स अंतोमुहुत्तस्स
हेट्ठदो पदणाभावा । देव-णेरइएसु खुद्दाभवग्गहणमेत्ता अंतोमुहुत्तमेत्ता वा आउट्ठिदी
किण्ण लब्भदे ? ण, तत्थ दसण्हं वस्ससहस्साणं हेट्ठदो आउअस्स बंधाभावा, तत्थतण-
भुंजमाणाउअस्स कदलीघादाभावादो च ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८ ॥

कुदो ? अणप्पिदेहिंतो आगंतूण पंचिंदियतिरिक्ख अपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वु-
क्कस्सियं भवट्ठिदिमच्छिय णिप्पिडिदस्स वि अंतोमुहुत्तादो अहियकालस्साणुवलंभा ।

क्योंकि, किन्हीं भी अविवक्षित पर्यायोंसे आकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें
उत्पन्न होकर व सर्वजघन्य कालसे भुज्यमान आयुको कदलीघातसे नष्ट करके
शुद्रभवग्रहणकालमात्र जीकर निकल जानेवाले जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

शंका—कदलीघातसे भुज्यमान आयुको नष्ट करनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त-
कोंमें शुद्रभवग्रहणमात्र काल क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि, पर्याप्तकोंमें अत्यन्त शीघ्र आयुका
घात करनेवाले जीवके भी भुज्यमान आयुका अन्तर्मुहूर्तकालसे कममें नष्ट होना संभव
नहीं है ।

शंका—देव और नारकी जीवोंमें शुद्रभवग्रहणमात्र अथवा अन्तर्मुहूर्तमात्र
आयुस्थिति क्यों नहीं पायी जाती ?

समाधान—नहीं पायी जाती, क्योंकि, देव और नारकियों सम्बन्धी आयुका बंध
दश हजार वर्षसे कम नहीं होता, और उनकी भुज्यमान आयुका कदलीघात भी नहीं
होता ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त रहते
है ॥ १८ ॥

क्योंकि, किन्हीं भी अविवक्षित पर्यायोंसे आकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें
उत्पन्न होकर और वहां सर्वोत्कृष्ट भवस्थितिमात्र काल तक रहकर निकलनेवाले जीवके
भी अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल नहीं पाया जाता ।

(मणुसगदीए) मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी केवचिरं कालादो
होति ? ॥ १९ ॥

एगजीवस्स कालाणुगमे कीरमाणे 'मणुसो केवचिरं कालादो होदि' ति एगजीव-
विसयपुच्छाए होदव्वमिदि ? ण, एककम्हि वि जीवे एयाणेयसंखोवलक्खिए असुद्धव्व-
ट्टियविवक्खाए अणेयत्तस्स अविरोहादो । सव्वत्थ पुच्छापुव्वो चेव अत्थणिहेसो
किमट्ठं कीरदे ? ण, वयणपवुत्तीए परट्ठत्तपटुप्पायणफलत्तादो ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं ॥ २० ॥

सामणमणुस्साणं जहण्णाउट्ठिदिपमाणं खुद्दाभवग्गहणं होदि, तत्थ अपज्जत्ताणं
संभवादो । पज्जत्त-मणुसिणीसु जहण्णाउट्ठिदिपमाणमंतोमुहुत्तं, तत्थ तत्तो हेट्ठिमआउट्ठिदि-
वियप्पाणमणुवलंभादो । सेसं सुगमं ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदेवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहि-
याणि ॥ २१ ॥

(मनुष्यगतिये) जीव मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यिनी कितने काल तक रहते
हैं ? ॥ १९ ॥

शंका—जब एक जीवकी अपेक्षा कालानुगम किया जा रहा है तब 'जीव मनुष्य
कितने काल तक रहता है' इस प्रकार एक जीव विषयक ही प्रश्न होना चाहिये, (न कि
बहुवचनात्मक जैसा कि सूत्रमें पाया जाता है) ?

समाधान— नहीं, क्योंकि एक व अनेक संख्यासे उपलक्षित जीवमें अशुद्ध
द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा अनेकत्वके कथनसे कोई विरोध नहीं उत्पन्न होता ।

शंका— सर्वत्र प्रश्नपूर्वक ही अर्थका निर्देश क्यों किया जा रहा है ?

समाधान— 'यह वचनप्रवृत्ति परोपकारार्थ है' ऐसी श्रद्धा उत्पन्न करने रूप
फलकी अभिलाषासे ही यहां प्रश्नपूर्वक अर्थका निर्देश किया जा रहा है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र या अन्तर्मुहूर्तमात्र काल तक जीव मनुष्य,
मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यिनी रहते हैं ॥ २० ॥

सामान्य मनुष्योंकी जघन्य आयुस्थितिका प्रमाण क्षुद्रभवग्रहणमात्र होता है,
क्योंकि, सामान्य मनुष्योंमें अपर्याप्त जीवोंका होना संभव है । किन्तु पर्याप्तक मनुष्य और
मनुष्यिनियोंमें जघन्य आयुस्थितिका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, उनमें (अपर्याप्तकोंके
अभावसे) आयुस्थितिके विकल्प अन्तर्मुहूर्तसे कमके नहीं पाये जाते । शेष सूत्रार्थ
सुगम है ।

अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पर्योपम काल तक जीव
मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त व मनुष्यिनी रहते हैं ॥ २१ ॥

कुदो ? अणप्पिदेहिंतो आगंतूण अप्पिदमणुसेसुववाज्जिय सत्तेतालीस-तेवीस-सत्तपुव्वकोडीओ जहाकमेण परिभमिय दाणेण दाणाणुमोदेण वा त्तिपलिदोवमाउट्टिदि-मणुस्सेसुप्पण्णस्स तदुवलंभादो ।

मणुस्सअपज्जता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २२ ॥

कधमेत्थ बहुवयणणिद्देशो जुज्जदे ? ण, पुव्वुत्तकमेण एककम्हि बहुत्तणिद्देशस्स अविरोधादो । अथवा ण एत्थ एककेण चेत्र जीवेण अहियारो, किंतु पादेककं सव्वजीवेहि अहियारो त्ति काऊण बहुवयणणिद्देशो उव्वज्जदे ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ २३ ॥

कुदो ? अणप्पिदेहिंतो आगंतूण तत्थुप्पज्जिय घादखुदाभवग्गहणमच्छिय णिप्फिडिदूण अणप्पिएसु उप्पण्णस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४ ॥

क्योंकि, किन्हीं भी अविश्वित पर्यायोंसे आकर विश्वित मनुष्योंमें उत्पन्न होकर क्रमशः सैंतालीस, तेईस व सात पूर्वकोटि काल परिभ्रमण करके दान देकर अथवा दानका अनुमोदन करके तीन पद्योपम आयुस्थितिवाले (भोगभूमिज) मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

जीव अपर्याप्तक मनुष्य कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २२ ॥

शंका—सूत्रमें बहुवचनात्मक निर्देश कैसे उपयुक्त ठहरता है ?

समाधान — क्योंकि, जैसा पहले कह चुके हैं उसी क्रमसे चूंकि जीव एक भी है, अनेक भी है, अतएव अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे बहुवचनके निर्देशसे कोई विरोध उत्पन्न नहीं होता । अथवा, यहां केवल एक ही जीवकी अपेक्षाका अधिकार नहीं है, किन्तु प्रत्येक रूपसे सभी जीवोंकी अपेक्षा अधिकार है, ऐसा समझकर बहुवचननिर्देश उपयुक्त सिद्ध हो जाता है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक जीव अपर्याप्त मनुष्य रहते हैं ॥ २३ ॥

क्योंकि, किन्हीं भी अन्य पर्यायोंसे आकर अपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होकर कदलीघातसे भुज्यमान आयुके घात द्वारा क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक रहकर व वहांसे निकलकर किसी भी अन्य पर्यायमें उत्पन्न होनेवाले जीवके सूत्रोक्त कालकी प्राप्ति होती है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव अपर्याप्त मनुष्य रहते हैं ॥२४॥

कुदो ? अइवहुवारमेदेसु अइदीहाउओ होदूण उप्पणस्स वि दोघडियामेत्तभव-
ट्टिदीए अभावादो ।

देवगदीए देवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २५ ॥

सुगममेदं'

जहण्णेण दसवाससहस्साणि ॥ २६ ॥

तिरिक्ख मणुस्सेहिंतो जहण्णाउट्टिदिदेवेसुप्पज्जिय णिग्गयस्स एत्तियमेत्तकालु-
वलंभादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ २७ ॥

सव्वट्टसिद्धिदेवेसु आउअं बंधिय कमेण तत्थुप्पज्जिय तेत्तीससागरोवमाणि
तत्थच्छिदूण णिग्गयस्स तदुवलंभादो । सत्तट्टभवग्गहणाणि दीहाउट्टिदिएसु देवेसु
उप्पाइदे कालो बहुओ लब्भदि त्ति वुत्ते ण, देव-णेरइयाणं भोगभूमितिक्ख-मणुस्साणं

क्योंकि, अनेक बहुवार अपर्याप्त मनुष्योंमें अतिदीर्घायु होकर भी उत्पन्न हुए
जीवके दो घड़ी मात्र भवस्थितिका होना असंभव है ।

देवगतिमें जीव देव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम दश हजार वर्ष तक जीव देव रहते हैं ॥ २६ ॥

क्योंकि, तिर्यंचों या मनुष्योंमेंसे निकलकर व जघन्य आयुवाले देवोंमें उत्पन्न
होकर वहांसे निकले हुए जीवके सूत्रोक्त मात्र काल ही देवपर्यायमें पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक तेत्तीस सागरोपम काल तक जीव देव रहते हैं ॥ २७ ॥

क्योंकि, सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें आयुको बांधकर क्रमशः वहां उत्पन्न
होकर व तेत्तीस सागरोपम काल मात्र वहां रहकर निकले हुए जीवके सूत्रोक्त काल
पाया जाता है ।

शंका—दीर्घायुस्थितिवाले देवोंमें सात आठ भवोंका ग्रहण करनेसे और भी
अधिक काल देवगतिमें पाया जा सकता है ?

समाधान—नहीं पाया जा सकता, क्योंकि देव, नारकी, भोगभूमिज तिर्यंच

च मुदाणं पुणो तत्थेवाणंतरमुप्पत्तीए अभावादो । कुदो ? अच्चंताभावादो ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा केवचिरं कालादो होंति ?

॥ २८ ॥

सुगममेदं ।

जहण्णेण दसवाससहस्साणि, (दसवाससहस्साणि,) पलिदोवमस्स अट्टमभागो ॥ २९ ॥

भवणवासिय-वाणवेंतराणं दसवाससहस्साणि जहण्णाउट्ठिदी, जोदिसियाणं पलिदो-
वमस्स अट्टमो भागो । वियच्चासो किण्ण होदि ? ण, समेसु उद्देसाणुद्देसीसु जहासंखं
मोत्तूण अण्णस्सासंभवादो । सेसं सुगमं ।

उक्कस्सेण सागरोवमं सादिरेयं, पलिदोवमं सादिरेयं, पलिदो-
वमं सादिरेयं ॥ ३० ॥

और भोगभूमिज मनुष्य, इनके मरनेपर पुनः उसी पर्यायमें अनन्तर उत्पत्ति नहीं पायी जाती, चूंकि इसका अत्यन्त अभाव है ।

जीव भवनवासी, वानव्यन्तर व ज्योतिषी देव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम दश हजार वर्ष तक, दश हजार वर्ष तक तथा पल्योपमके अष्टम भाग काल तक जीव क्रमशः भवनवासी, वानव्यन्तर व ज्योतिषी देव रहते हैं ॥ २९ ॥

भवनवासी और वानव्यन्तर देवोंकी जघन्य आयुस्थिति दश हजार वर्ष है, तथा ज्योतिषी देवोंमें जघन्य आयुस्थिति पल्योपमके अष्टम भागप्रमाण है ।

शंका—जघन्य आयुस्थिति इसके विपर्यासरूपसे अर्थात् भवनवासी और वानव्यन्तर देवोंमें पल्योपमके अष्टम भाग और ज्योतिषी देवोंमें दश हजार वर्षकी क्यों नहीं हो सकती ?

समाधान—नहीं हो सकती, क्योंकि उद्दिष्ट और अनुद्दिष्ट पदोंके समान होनेपर यथासंख्य न्यायको छोड़कर अन्य प्रकार विधान होना असंभव है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

अधिकसे अधिक क्रमशः सातिरेक एक सागरोपम, सातिरेक एक पल्योपम व सातिरेक एक पल्योपम काल तक जीव भवनवासी, वानव्यन्तर व ज्योतिषी देव रहते हैं ॥ ३० ॥

भवनवासिएसु सागरोवममद्दसागरोवमहियं । वाणवेंतर-जोदिसिएसु पलिदोवमं अद्दपलिदोवमहियं उक्कस्सट्ठिदिपमाणं होदि । ण च बंधसुत्तेण सह विरोहो, उवरिम-आउवमोवट्टणाघादेण धादिय उप्पण्णेषु एदेसिमाउवाणमुवलभादो । एत्थ सब्वत्थ किंचूण-पमाणं जाणिदूण वत्तव्वं । एदेसु तिसु वि देवलोएसु जहण्णाउअप्पहुडि जावुक्कस्साउवं त्ति समउत्तरवट्टीए आउवं वट्टुदि, पत्थडाणमभावा । सेसं सुगमं ।

सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३१ ॥

सुगममेदं ।

जहण्णेण पलिदोवमं वे सत्त दस चोदस सोलस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३२ ॥

सोधम्मीसाणेषु दिवड्डपलिदोवमं जहण्णाउअं, सणक्कुमार-माहिंदेसु अट्टाड्ज-

भवनवासी देवोंमें उत्कृष्ट आयुस्थितिका प्रमाण अर्ध सागरोपम अधिक एक सागरोपम होता है, तथा वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें अर्ध पल्योपम अधिक एक पल्योपम होता है । इस प्रकार उत्कृष्ट आयुके प्रमाणके कथनका आयुवन्धसम्बन्धी सूत्रमें कहे गये प्रमाणसे विरोध नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि, ऊपरकी आयुको उद्घर्तनाघातसे घात करके उत्पन्न हुए भवनवासी आदि देवोंमें आयुओंका प्रमाण इसी प्रकार पाया जाता है । इन सब आयुओंमें जो किंचित् हीन प्रमाण होता है उसका कथन जानकर करना चाहिये । (देखो जीवट्टाण, कालानुगम, सूत्र ९६ टीका, भाग ४ पृ. ३८२)

इन तीनों देवलोकोंमें जघन्यायुसे लेकर उत्कृष्ट आयु पर्यन्त उत्तरोत्तर एक एक समय अधिक क्रमसे आयु बढ़ती है, क्योंकि यहाँ प्रस्तरोंका अभाव है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

जीव सौधर्म-ईशानसे लगाकर शतार-सहस्रार पर्यन्त कल्पवासी देव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्रमसे कम सातिरेक एक पल्योपम, दो सागरोपम, सात सागरोपम, दश सागरोपम, चौदह सागरोपम व सोलह सागरोपम काल तक जीव सौधर्म-ईशानसे लेकर शतार-सहस्रार तकके कल्पवासी देव होते हैं ॥ ३२ ॥

सौधर्म और ईशान स्वर्गोंमें डेढ़ पल्योपम जघन्य आयु है । सनत्कुमार और

सागरोवमाणि, बम्ह-बम्होत्तरेसु साद्रसत्तसागरोवमाणि, लांतव-कापिट्टेसु साद्रदससागरो-
वमाणि । सुक्क-महासुक्केसु साद्रचोदससागरोवमाणि सदर-सहस्सारकप्पेसु साद्रसोलस-
सागरोवमाणि जहण्णाउवं ।

उक्कस्सेण वे सत्त दस चोदस सोलस अट्टारस सागरोवमाणि
सादिरेयाणि ॥ ३३ ॥

सोहम्मीसाणेसु^१ अट्टाइज्जसागरोवमाणि देख्खणाणि, सणक्कुमार-माहिंदेसु साद्रसत्त-
सागरोवमाणि देख्खणाणि, बम्ह-बम्होत्तरेसु साद्रदससागरोवमाणि देख्खणाणि, लांतव-कापिट्टेसु
साद्रचोदससागरोवमाणि देख्खणाणि, सुक्क-महासुक्केसु साद्रसोलससागरोवमाणि देख्खणाणि,
सदर-सहस्सारेसु साद्रअट्टारससागरोवमाणि देख्खणाणि । एत्थ देख्खणपमाणं जाणिदूण
वत्तव्वं । एदाणि दो वि सुत्ताणि देसामासयाणि । तेणेदेहि सइदत्थस्स परूवणं कस्सामो ।
तं जहा— उदू विमलो चंदो वग्गू वीरो अरुणो णंदणो णलिणो कांचणो^२ रुहिरो चंचो
मरुदिद्विसो वेलुरिओ रुजगो रुचिरो अंको फलिहो तवणीओ मेहो अब्भं हरिदो पउमं

मोहेन्द्र स्वर्गोंमें अढ़ाई सागरोपम, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गोंमें साढ़े सात सागरोपम,
लांतव और कापिष्ठ स्वर्गोंमें साढ़े दश सागरोपम, शुक्र और महाशुक्रमें साढ़े चौदह
सागरोपम, तथा शतार और सहस्रार स्वर्गोंमें साढ़े सोलह सागरोपम जघन्य आयु है ।

अधिकसे अधिक सातिरेक दो, सात, दश, चौदह, सोलह व अठारह सागरोपम
काल तक जीव सौधर्म-ईशान आदि कल्पोंमें रहते हैं ॥ ३३ ॥

सौधर्म-ईशान कल्पोंमें कुछ कम अढ़ाई सागरोपम, सनत्कुमार-मोहेन्द्रमें कुछ कम
साढ़े सात सागरोपम, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें कुछ कम साढ़े दश सागरोपम, लांतव-कापिष्ठमें
कुछ कम साढ़े चौदह सागरोपम, शुक्र-महाशुक्रमें कुछ कम साढ़े सोलह सागरोपम, तथा
शतार-सहस्रार कल्पोंमें कुछ कम साढ़े अठारह सागरोपम उत्कृष्ट आयुप्रमाण होता है ।
यहां देशोन अर्थात् कुछ कमका प्रमाण जानकर कहना चाहिये ।

उपर्युक्त दोनों सूत्र देशामर्शक हैं, इसलिये इनके द्वारा सूचित अर्थका प्ररूपण
करते हैं । वह इस प्रकार है—

ऋतु, विमल, चन्द्र, वल्गु, वीर, अरुण, नन्दन, नलिन, कांचन, रुधिर, चंच,
मरुत् (मारुतज्ञ), ऋद्धीश (द्वीश), वैदूर्य, रुचक, रुचिर, अङ्क, स्फटिक, तपनीय,
मेघ (मेघ), अन्न, हरित, पद्म, लोहिताङ्क, वरिष्ठ, नन्दावर्त, प्रभंकर, पिष्टाक, गज, मित्र

१ प्रतिषु 'सोहम्मीसाणे' इति पाठः ।

२ अ-आप्रजोः 'कीचणो' इति पाठः ।

लोहिदंको वरिद्धो गंदावत्तो पंहंक्रो पिट्टो गजो मित्तो पभा चेदि सोधम्मीसाणे एकक-
त्तीस पत्थडा होंति । एत्थ उदुम्हि पढमपत्थडे जहणमाउअं दिवद्धपलिदोवमं उक्कस्स-
मद्धसागरोवमं । एत्तो तीसणहं इंदयाणं वड्डी बुच्चदे । तत्थ अद्धसागरोवमं मुहं होदि,
भूमी अद्धाइज्जसागरोवमाणि । भूमीदो मुहमवणिय उच्छएण भागे हिदे सागरोवमस्स
पण्णारसभागो वड्डी होदि [१५] । एदमिच्छिदपत्थडसंखाए गुणिय मुहे पक्खित्ते विमला-
दीणं तीसणहं पत्थडाणमाउआणि होंति । तेसिमेसा संदिट्ठी—

१७	१९	७	२३	५	०	२९	३९	१९	७	३७	१३	४९	४३	३	४७	४०	१७	५	१९
३०	३०	१०	३०	६	१०	३०	३०	१०	६	३०	१०	३०	३०	३	३०	३०	१०	५	१९

१०	५	९	६	१	२	१	१	३	६	७	२	३	७	१	७	३	५
१०	३०	३०	१०	६	३०	१०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	२	

सोधम्मीसाणे एककत्तीसं पत्थडाणि त्ति कथं णव्वदे ?

इगितीस सत्त चत्तारि दोण्णि एककेक्क छक्क एककाए ।

उदुआदिविमाणिदा तिरधियसट्ठी मुणेयव्वा^१ ॥ २ ॥

और प्रभा, इन नामोंके इकतीस प्रस्तर सौधर्म-ईशान कल्पमें हैं । इनमेंसे ऋतु नामक प्रथम प्रस्तरमें जघन्य आयु डेढ़ पल्योपम व उत्कृष्ट आयु अर्ध सागरोपमप्रमाण है । अब यहां द्वितीयादि तीस इन्द्रकोंमें वृद्धिका प्रमाण कहते हैं— यहां अर्ध सागरोपम तो मुख है और अढ़ाई सागरोपम भूमि है । अतएव भूमिमेंसे मुखको घटा देने व उच्छ्रय अर्थात् उत्सेध (३०) से भाग देनेपर $(२\frac{१}{२} - \frac{१}{२}) \div ३० = \frac{२}{३०} = \frac{१}{१५}$ एक सागरोपमका पन्द्रहवां भाग वृद्धिका प्रमाण आता है । इस $\frac{१}{१५}$ को अभीष्ट प्रस्तरकी संख्यासे गुणित करके मुखमें मिला देनेसे विमलादिक तीस प्रस्तरोंकी आयुका प्रमाण होता है । उनकी संदष्टि इस प्रकार है । (मूलमें देखिये)

शंका—सौधर्म-ईशान कल्पमें इकतीस प्रस्तर हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान—सौधर्म-ईशान कल्पोंमें इकतीस विमान-प्रस्तर हैं, सानत्कुमार-माहेंद्र कल्पोंमें सात, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें चार, लांतव-कपिष्ठमें दो, शुक्र-महाशुक्रमें एक, शतार-सहस्रारमें एक, आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पोंमें छह, तथा नौ त्रैव्यकोंमें एक एक, अनुदिशोंमें एक और अनुत्तर विमानोंमें एक, इस प्रकार ऋतु आदिक इन्द्रक विमान तिरैसठ जानना चाहिये ॥ २ ॥

१ त. रा. वा. ४, १९, ८.

२ इगितीस सत्त चत्तारि दोण्णि एककेक्क छक्क चट्ठकाए ।

इदि आरिसवयणादो ।

अंजणो वणमालो णागो गरुडो लंगलो बलहदो चक्कमिदि एदे सणक्कुमार-
मार्हिंदेसु सत्त पत्थडा । एदेसिमाउअप्पमाणे आणिज्जमाणे मुहमड्ढाइज्जसागरोवमाणि,
भूमि साद्वसत्तसागरोवमाणि, सत्त उस्सेहो होदि । तेषिं संदिट्ठी—

५	६	७	८
१४	१४	१४	१४

३	३	३	३
१४	१४	१४	१४

। अरिट्ठो देवसमितो बम्हो बम्हुत्तरो त्ति चत्तारि बम्ह-बम्हुत्तरकप्पेसु
पत्थडा । एदेसिमाउआणं संदिट्ठी एसा—

२	०	०	१	०
१	०	३	५	०
१	०	४	०	०

। बम्हणिलओ लंतओ त्ति
लांतय-काविट्ठेसु दाण्णि पत्थडा । तेषिमाउआणमेसा संदिट्ठी—

१	५
२	५

१	५
२	५

इस आर्ष वचनसे जाना जाता है कि सौधर्म ईशान कल्पमें इकतीस प्रस्तर हैं ।

अंजन, वनमाल, नाग, गरुड़, लांगल, बलभद्र और चक्र, ये सात प्रस्तर
सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंमें हैं । उनमें आयुका प्रमाण लानेके लिये मुख अढ़ाई सागरोपम,
भूमि साढ़े सात सागरोपम और उत्सेध सात है । (अतएव यहां वृद्धिका प्रमाण हुआ
($७\frac{1}{2} - २\frac{1}{2}$) $\div ७ = ८$, इस प्रकार प्रथम प्रस्तरका आयुप्रमाण हुआ $\frac{1}{2} + ७ = ७\frac{1}{2} = २\frac{1}{2}$ ।
इसी प्रकार वृद्धिमें इष्ट प्रस्तरकी संख्याका गुणा करके मुखमें जोड़नेसे वनमालमें
आयुका प्रमाण $३\frac{1}{2}$, नागमें $४\frac{1}{2}$, गरुड़में $५\frac{1}{2}$, लांगलमें $६\frac{1}{2}$, बलभद्रमें $६\frac{1}{2}$
और चक्रमें $७\frac{1}{2}$ आता है ।

अरिष्ट, देवसमित, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर, ये चार विमान-प्रस्तर ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर
कल्पोंमें हैं । इनकी आयुका प्रमाण मुख $७\frac{1}{2}$, भूमि $१०\frac{1}{2}$ और उत्सेध ४ लेकर पूर्वोक्त
विधिके अनुसार अरिष्टमें $७\frac{1}{2} + \frac{3}{8} = ८\frac{1}{8}$, देवसमितमें $\frac{3}{8} \times २ + ७\frac{1}{2} = ९$, ब्रह्ममें
 $\frac{3}{8} \times ३ + ७\frac{1}{2} = ९\frac{3}{8}$ और ब्रह्मोत्तरमें $\frac{3}{8} \times ४ + ७\frac{1}{2} = १०\frac{1}{2}$ आता है ।

ब्रह्मनिलय और लांतव, ये लांतव-कापिष्ठ कल्पोंके दो विमान-प्रस्तर हैं, जिनमें
पूर्वोक्त विधि अनुसार आयुका प्रमाण इस प्रकार है—($१४\frac{1}{2} - १०\frac{1}{2}$) $\div २ = २$ हा. वृ. ।
 $२ \times १ + १०\frac{1}{2} = १२\frac{1}{2}$, $२ \times २ + १०\frac{1}{2} = १४\frac{1}{2}$ अर्थात् ब्रह्मनिलयमें $१२\frac{1}{2}$ और लांतवमें $१४\frac{1}{2}$
सागरोपम है ।

शुक्र-महाशुक्र कल्पोंमें महाशुक्र नामका एक ही प्रस्तर है । वहां आयुके प्रमाण-
की संदृष्टि है $१६\frac{1}{2}$ सा. ।

१ प्रतिष्ठु ' णंगलो ' इति पाठः ।

२ अ-आप्रत्योः ' एदेसुमाउआणं ' इति पाठः ।

सहस्रारो त्ति एक्को च्च पत्थडो सदर-सहस्रारकप्पेसु । तस्स आउअस्स संदिट्ठी

१८
१
३

 ।

आणदप्पहुडि जाव अवराइदविमाणवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३४ ॥

सुगममेदं ।

जहण्णेण अट्टारस वीसं वावीसं तेवीसं चउवीसं पणुवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्टावीसं एगुणत्तीसं तीसं एकत्तीसं बत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३५ ॥

आणद-पाणदकप्पे साद्धअट्टारससागरोवमाणि । आरण-अच्चुदकप्पे समयाहिय-वीसं सागरोवमाणि । उवरि जहाकमेण णवगेवज्जेसु वावीसं तेवीसं चउवीसं पणुवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्टावीसं एगुणत्तीसं तीसं सागरोवमाणि समयाहियाणि । णवाणुद्धिसेसु एकत्तीससागरोवमाणि समयाहियाणि । चदुसु अणुत्तरेसु बत्तीसं सागरोवमाणि

शतार-सहस्रार कल्पोंमें सहस्रार नामका एक ही प्रस्तर है । उसमें आयुप्रमाण है १८^१ सा. ।

जीव आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके विमानवासी देव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्रमसे क्रम सातिरेक अठारह, बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्टाईस, उनतीस, तीस, इकतीस व बत्तीस सागरोपम काल तक जीव क्रमशः आनत आदि अपराजित विमानवासी देव रहते हैं ॥ ३५ ॥

आनत-प्राणत कल्पमें जघन्य आयु-प्रमाण साढ़े अठारह सागरोपम व आरण-अच्युत कल्पमें एक समय अधिक बीस सागरोपम है । इससे ऊपर नव त्रैवेयकोंमें क्रमशः सुदर्शनमें बाईस, अमोघमें तेईस, सुप्रबुद्धमें चौबीस, यशोधरमें पच्चीस, सुभद्रमें छब्बीस, विशालमें सत्ताईस, सुमनसमें अट्टाईस, सौमनसमें उनतीस और प्रीतिकरमें तीस सागरोपमप्रमाण जघन्य आयुस्थिति है । त्रैवेयकोंसे ऊपर अर्चिष्, अर्चिमाली आदि नव अनुदिशोंमें एक समय अधिक इकतीस सागरोपमप्रमाण जघन्य आयुस्थिति है । अनुदिशोंसे ऊपर विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित, इन चार अनुत्तर विमानोंमें

समयाहियाणि । सेसं सुगमं ।

उक्कस्सेण वीसं वावीसं तेवीसं चउवीसं पणुवीसं छुवीसं
सत्तावीसं अट्ठावीसं एगुणतीसं तीसं एककत्तीसं वत्तीसं तेत्तीसं सागरो-
वमाणि ॥ ३६ ॥

एदाणि उक्कस्साउआणि जहण्णाउअविहाणेण जोजेयव्वाणि । एदेहि जहण्णुक्कस्स-
सुत्तेहि देसामासिएहि सइदत्थस्स परूवणा कीरदे । तं जहा- आणदो पाणदो पुप्फओ
त्ति आणद-पाणदकप्पेसु तिण्णि पत्थडा । तेसिमाउअस्स पुव्वुत्तकमेण आणिदसंदिट्ठी
एसा-

१०	१०	२०
२	१	२

 । सादंकरो आरणो अच्चुदो त्ति आरण-अच्चुदकप्पेसु तिण्णि पत्थडा ।
एदेसिमाउआणं संदिट्ठी-

२०	२१	२२
३	१	३

 । एत्तो उवरि सुदंसणो अमोघो सुप्पबुद्धो जसो-

एक समय अधिक वत्तीस सागरोपमप्रमाण जघन्य आयु है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

अधिकसे अधिक बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस, बत्तीस और तेतीस सागरोपम काल तक जीव आनत-प्राणत आदि विमानवासी देव रहते हैं ॥ ३६ ॥

इन उत्कृष्ट आयुओंको जघन्य आयुके विवरणानुसार योजित कर लेना चाहिये । अर्थात् आनत-प्राणतमें उत्कृष्ट आयु बीस सागरोपम, व आरण-अच्युतमें वाईस सागरोपम है । नौ त्रेवयकोंमें क्रमशः २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ सागरोपम है । नौ अनुदिशोंमें बत्तीस सागरोपम है और चार अनुत्तर विमानोंमें तेतीस सागरोपम उत्कृष्ट आयु है ।

जघन्य और उत्कृष्ट आयुस्थितिका निर्देश करनेवाले उपर्युक्त दोनों सूत्र देशा-
मर्शक हैं, अतएव उनके द्वारा सूचित किये गये अर्थकी यहां प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है-

आनत-प्राणत कल्पोंमें तीन प्रस्तर हैं - आनत, प्राणत और पुष्पक । इनमें पूर्वोक्त क्रमसे निकाला गया आयुप्रमाण इस प्रकार है— आनतमें १९, प्राणतमें १९ $\frac{१}{३}$ और पुष्पकमें २० सागरोपम ।

आरण-अच्युत कल्पोंमें तीन प्रस्तर हैं— सातंकर, आरण और अच्युत । इनकी आयुका प्रमाण निकालने पर सातंकरमें २० $\frac{२}{३}$, आरणमें २१ $\frac{१}{३}$ और अच्युतमें २२ सागरोपम आता है ।

अच्युत कल्पसे ऊपर नौ त्रेवयकोंके नौ प्रस्तर हैं जिनके नाम हैं—सुदर्शन,

हरो सुभहो सुविसालो सुमणसो सोमणसो पीदिंकरो त्ति एदे णव पत्थडा णवगेवज्जेसु ।
 एदेसिमाउवाणं वड्ढि-हाणीओ णत्थि, पादेक्कमेक्केक्कपत्थडस्स पाहणियादो । तेसिमाउ-
 आणं संदिट्ठी एसा- [२३|२४|२५|२६|२७|२८|२९|३०|३१] । णवाणुदिसेसु आइच्चो
 णाम एक्को चेव पत्थडो । तम्हि' आउअं एत्तियं होदि [३२] । पंचाणुत्तरेसु सव्वट्ठ-
 सिद्धिसण्णियो एक्को चेव पत्थडो । विजय-वैजयंत-जयंत-अवराजिदाणं जहण्णाउअं
 समयाहियवत्तीससागरोवममेत्तमुक्कस्सं तेत्तीससागरोवमाणि । जहण्णुक्कस्सभेदाभावो
 सव्वट्ठसिद्धिविमाणस्स पुध परुवणा कीरदे —

सव्वट्ठसिद्धियविमाणवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३७ ॥
 गयत्थभेदं ।

जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि ॥ ३८ ॥
 एदं पि सुगमं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३९ ॥

अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, सुविशाल, सुमनस्, सौमनस् और प्रीतिकर । इनमें
 आयुओंकी हानि-वृद्धि नहीं है, क्योंकि प्रत्येकमें एक एक प्रस्तरकी प्रधानता है । इनकी
 आयुओंकी संदृष्टि यह है । (मूलमें देखिये)

नौ अनुदिशोंमें आदित्य नामका एक ही प्रस्तर है जिसमें आयुका प्रमाण ३२
 सागरोपम है ।

पांच अनुत्तरोंमें सर्वार्थसिद्धि नामका एक ही प्रस्तर है । इनमें विजय, वैजयन्त
 जयन्त और अपराजित, इन चार विमानोंकी जघन्य आयु एक समय अधिक बत्तीस
 सागरोपमप्रमाण तथा उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरोपमप्रमाण है ।

सर्वार्थसिद्धि विमानमें जघन्य और उत्कृष्ट आयुका भेद नहीं है, इसलिये उसकी
 पृथक् प्ररूपणा की जाती है ।

जीव सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ३७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

कमसे कम और अधिकसे अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण काल तक जीव
 सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव रहते हैं ॥ ३८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इन्द्रियमार्गानुसार जीव एकेन्द्रिय कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ३९ ॥

सुगममेदं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ४० ॥

कुदो ? अणप्पिदिंदिएहिंतो एइंदिएसुप्पज्जिय वादखुदाभवग्गहणमेत्तकालमच्छिय अण्णिदियं गदस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ४१ ॥

कुदो ? अणप्पिदिंदिएहिंतो एइंदिएसुप्पज्जिय आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-
पोग्गलपरियट्टे कुंभारचक्कं व परियट्टिय अण्णिदियं गयस्स तदुवलंभादो ।

बादरेइंदिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४२ ॥

सुगममेदं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ४३ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ
ओसप्पिणिउस्सप्पिणीओ ॥ ४४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव एकेन्द्रिय रहते हैं ॥ ४० ॥

क्योंकि, अन्य अविचक्षित इन्द्रियोंवाले जीवोंमेंसे आकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर, कदलीघातसे घातित क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल रहकर अन्य द्वीन्द्रियादि जीवोंमें गये हुए जीवके सूत्रोक्त कालप्रमाण पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात् पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक जीव एकेन्द्रिय रहते हैं ॥ ४१ ॥

क्योंकि, अविचक्षित इन्द्रियोंवाले जीवोंमेंसे आकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर आवलीके असंख्यात् भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन कुम्भारके चक्रके समान परिभ्रमण करके द्वीन्द्रियादिक अन्य जीवोंमें गये हुए जीवके सूत्रोक्त काल घटित होता है ।

जीव बादर एकेन्द्रिय कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक जीव बादर एकेन्द्रिय रहते हैं ॥ ४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यातासंख्यात् अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाण अंगुलके असंख्यातवें भाग काल तक जीव बादर एकेन्द्रिय रहते हैं ॥ ४४ ॥

अणप्पिदिदिएहितो बादरेइंदियेसुप्पज्जिय अंगुलस्स असंखेज्जिदिभागमसंखेज्जा-
संखेज्ज-ओसप्पिणी-उवसप्पिणीमेत्तकालं कुलालचक्कं व तत्थेव परिभमिय णिग्गयस्स
एदस्स संभुवुलंभा ।

बादरएइंदियपज्जता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४५ ॥

सुगममेदं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४६ ॥

पज्जत्तएसु अंतोमुहुत्तं मोत्तूण अण्णस्स जहण्णाउअस्स अणुवलंभादो ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ४७ ॥

अणप्पिदिदिएहितो बादरेइंदियपज्जत्तएसुप्पज्जिय संखेज्जाणि वाससहस्साणि
तत्थेव परिभमिय णिग्गयस्स तदुवलंभादो । बहुवं कालं तत्थ किण्ण हिंडदे ? ण,
केवलणाणादो विणिग्गयज्जिणवयणस्सेदस्स सयलपमाणेहितो अहियस्स विसंवादाभावा ।

अविवक्षित इन्द्रियोंवाले जीवोंमेंसे आकर बादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर
अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी मात्र काल
तक कुम्हारके चक्केके समान उसी पर्यायमें परिभ्रमण करके निकलनेवाले जीवके सूत्रोक्त
कालका होना संभव पाया जाता है ।

जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त रहते हैं ॥ ४६ ॥

क्योंकि, पर्याप्तक जीवोंमें अन्तर्मुहूर्तके सिवाय अन्य जघन्य आयु पायी ही
नहीं जाती ।

अधिकसे अधिक संख्यात हजार वर्षों तक जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त
रहते हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, विवक्षितको छोड़ अन्य इन्द्रियोंवाले जीवोंमेंसे आकर बादर एकेन्द्रिय
पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर संख्यात हजार वर्षों तक उसी पर्यायमें परिभ्रमण करके निकले
हुए जीवके सूत्रोक्त कालप्रमाण पाया जाता है ।

शंका—संख्यात हजार वर्षोंसे अधिक काल तक जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें
क्यों नहीं भ्रमण करता ?

समाधान—नहीं करता, क्योंकि केवलज्ञानसे निकले हुए व समस्त प्रमाणोंसे
अधिक प्रमाणभूत इस जिनवचनके संबंधमें विसंवाद नहीं हो सकता ।

बादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ४९ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५० ॥

अण्यसहस्सवारं तत्थेव पुणो पुणो उप्पण्णस्स वि अंतोमुहुत्तं मोत्तूण उवरि
आउठिदीणमणुवलंभादो ।

सुहुमेइंदिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५१ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ५२ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ ५३ ॥

जीव बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक जीव बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त रहते हैं ॥ ४९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहुर्त काल तक जीव एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्त रहते हैं ॥ ५० ॥

क्योंकि, अनेक हजारों बार उसी पर्यायमें पुनः पुनः उत्पन्न हुए जीवके भी अन्तर्मुहुर्तको छोड़ और ऊपरकी आयुस्थितियां पायी ही नहीं जातीं ।

जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय रहते हैं ॥ ५२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण काल तक जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय रहते हैं ॥ ५३ ॥

अभिणदिएहिंतो आगंतूण सुहुमेइंदिएसुप्पज्जिय असंखेज्जलोगमेत्तकालमइहिदजलं
व तत्थेव परिभमिय णिग्गयम्मि तदुवलंभादो । बादरड्ढिदीदो किमडुं सुहुमड्ढिदी ण
अब्भहिया जादा^१ ? ण, बादरेइंदिएसु आउवबंधमाणवारेहिंतो सुहुमेइंदिएसु आउवबंधमाण-
वाराणमसंखेज्जगुणत्तादो । तं कथं णव्वदे ? एदम्हादो जिणवयणादो ।

सुहुमेइंदिया पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५४ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५५ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५६ ॥

अन्य इन्द्रियोंवाले जीवोंमेंसे आकर सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें उत्पन्न होकर
असंख्यात लोकप्रमाण काल तक तपाये हुए जलके समान उसी पर्यायमें परिभ्रमण
करके निकले हुए जीवमें सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

शंका—बादर जीवोंकी स्थितिसे सूक्ष्म जीवोंकी स्थिति अधिक क्यों नहीं हुई?

समाधान—नहीं हुई, क्योंकि बादर एकेन्द्रिय जीवोंमें जितनी वार आयुबन्ध
होता है उनसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके असंख्यातगुणी अधिक वार आयुके बंध होते हैं ।

शंका—यह कैसे जाना कि सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके बादर एकेन्द्रियोंकी अपेक्षा
असंख्यातगुणी वार अधिक आयुबंध होते हैं ?

समाधान—इसी जिनवचनसे ही तो यह बात जानी जाती है ।

जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ५४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक रहते
हैं ? ॥ ५५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक
रहते हैं ॥ ५६ ॥

अण्यसहस्रवारं तत्थुप्पण्णे वि अंतोमुहुत्तादो अहियभवद्धिदीए अणुवलंभा ।
सुहुमेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५७ ॥
सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ५८ ॥
एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५९ ॥

सुहुमेइंदियपज्जत्ताणमपज्जत्ताणं च उक्कस्सभवद्धिदिपमाणमंतोमुहुत्तमेव, सुहु-
माणं पुण भवद्धिदी असंखेज्जा लोगा, कधमेदं ण विरुज्झदे ? ण, पज्जतापज्जत्तएसु
असंखेज्जालोगमेत्तवारगदिमागदिं च करंतस्स तदविरोधादो ।

बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-
पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ६० ॥

क्योंकि, अनेक सहस्रवार उसी उसी पर्यायमें उत्पन्न होने पर भी अन्तर्मुहूर्तसे
अधिक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंकी भवस्थिति नहीं पायी जाती ।

जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ५७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त रहते
हैं ॥ ५८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त
रहते हैं ॥ ५९ ॥

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट भवस्थितिका
प्रमाण अन्तर्मुहूर्त ही है, जब कि सूक्ष्म जीवोंकी भवस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है,
यह बात परस्पर विरुद्ध क्यों न मानी जाय ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूक्ष्म जीव असंख्यात लोकमात्र वार पर्याप्तक और
अपर्याप्तकोंमें आवागमन करते हैं, इसलिये उनके अविच्छिन्न पर्याप्त व पर्याप्त कालके
अन्तर्मुहूर्तमात्र होते हुए भी सूक्ष्म पर्यायसम्बन्धी कालके असंख्यात लोकप्रमाण होनेमें
कोई विरोध नहीं आता ।

जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तथा द्वीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त
व चतुरिन्द्रिय पर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ६० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं ॥ ६१ ॥

एत्थ जहाकमेण बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियाणं सर्गतब्भूदअपज्जत्तसंभवादो खुदाभवग्गहणमेदेसिं चैव पज्जत्ताणमंतोमुहुत्तं, तत्थ अपज्जत्ताणमभावादो ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ६२ ॥

अणप्पिदिदिएहिंतो आगंतूण वारसवास-एगुणवण्णरादिंदिय-छम्मासाउएसु बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिएसुप्पज्जिय बहुवारं तत्थेव परियट्ठिय णिग्गयस्स वुत्तकाल-संभवादो ।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होति ?

॥ ६३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल व अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव विकलत्रय व विकलत्रय पर्याप्त होते हैं ॥ ६१ ॥

यहां क्रमाजुत्तार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंमें उनके अपर्याप्तोंका भी अन्तर्भाव है, अतएव उन्हीं अपर्याप्तोंकी अपेक्षा उनका कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल होता है। उन्हीं द्वीन्द्रियादिक जीवोंके पर्याप्तोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, उनमें अपर्याप्तोंका अभाव है ।

अधिकसे अधिक संख्यात हजार वर्षों तक जीव विकलत्रय व विकलत्रय पर्याप्त होते हैं ॥ ६२ ॥

अविवक्षित इन्द्रियवाले जीवोंमेंसे आकर बारह वर्ष, उनंचास रात्रिदिन तथा छह मासकी आयुवाले द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जीवोंमें उत्पन्न होकर बहुत वार उन्हीं पर्याप्तोंमें परिभ्रमण करके निकलनेवाले जीवके सूत्रोक्त कालका होना संभव है ।

जीव द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त व चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ६३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव विकलत्रय अपर्याप्त रहते हैं ॥ ६४ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६५ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ६६ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं ॥ ६७ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि
सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ६८ ॥

पंचिंदियाणं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियसागरोवमसहस्साणि । एत्थ सागरोवम-
सहस्समिदि एगवयणेण होदव्वं, बहूणं सहस्साणमभावादो ? ण, सागरावेमेसु बहुत्त-

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव विकलत्रय अपर्याप्त रहते
हैं ॥ ६५ ॥

ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

जीव पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ६६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल व अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पंचेन्द्रिय व
पंचेन्द्रिय पर्याप्त रहते हैं ॥ ६७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र व सागरोपमशत-
पृथक्त्व काल तक जीव क्रमशः पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त रहते हैं ॥ ६८ ॥

पंचेन्द्रिय जीवोंका काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागरोपमप्रमाण
होता है ।

शंका—इस सूत्रमें 'सागरोपमसहस्रं' ऐसा एक वचनात्मक निर्देश होना
चाहिये था न कि बहुवचनात्मक, क्योंकि सामान्य पंचेन्द्रिय जीवोंके भवस्थितिकालमें
अनेक सहस्र सागरोपम नहीं होते ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सहस्रमें नहीं किन्तु सागरोपमोंमें

दंसणादो । ण सहस्ससद्दस्स पुब्बणिवादो' होदि त्ति आसंकणिज्जं, लक्खाणुसारेण लक्खणस्स पुब्बुत्तिदंसणादो । पज्जत्ताण पुण सागरोवमसदपुधत्तं । कधमेदं णव्वदे ? जहासंखणायादो ।

पंचिन्द्रियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ६९ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ७० ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७१ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ७२ ॥

एदं पि सुगमं ।

तो बहुस्व पाया जाता है । ऐसी भी आशंका नहीं करना चाहिये कि यदि बहुवचनका संबंध सहस्रसे न होकर सागरोपमोंसे था तो सहस्र शब्दको सागरोपमके पश्चात् न रखकर उससे पूर्व विशेषणरूपसे रखना था, क्योंकि लक्ष्यके अनुसार लक्षणकी प्रवृत्ति देखी जाती है ।

पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका काल सागरोपमशतपृथक्त्व ही है ।

शंका—पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंका सागरोपमशतपृथक्त्व काल कैसे जाना ?

समाधान—सूत्रमें यथासंख्य न्यायसे उपर्युक्त प्रमाण जाना जाता है ।

जीव पंचेन्द्रिय अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव पंचेन्द्रिय अपर्याप्त रहते हैं ॥ ७० ॥

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पंचेन्द्रिय अपर्याप्त रहते हैं ॥ ७१ ॥

ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

कायमार्गणानुसार जीव पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक व वायुकायिक कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ७२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ७३ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ ७४ ॥

अणप्पिदकायादो आगंतूण अण्णिदकायम्मि समुप्पज्जिय असंखेज्जलोगमेत्त कालं
तत्थ परियट्ठिय णिग्गयम्मि तदुवलंभादो ।

बादरपुठवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ-बादरवणफ्फदिपत्तेय-
सरीरा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ७५ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ७६ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी ॥ ७७ ॥

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेज-
कायिक व वायुकायिक रहते हैं ॥ ७३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यातलोकप्रमाण काल तक जीव पृथिवीकायिक, अप्कायिक,
तेजकायिक व वायुकायिक रहते हैं ॥ ७४ ॥

क्योंकि, अविबक्षित कायसे आकर व विवक्षित कायमें उत्पन्न होकर असंख्यात-
लोकमात्र काल तक उसी पर्यायमें परिभ्रमण करके निकलनेवाले जीवके सूत्रोक्त काल
पाया जाता है ।

जीव बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायु-
कायिक व बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ७५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव बादर पृथिवीकायादिक उपर्युक्त
पर्यायोंमें रहते हैं ॥ ७६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक कर्मस्थितिप्रमाण काल तक जीव बादर पृथिवीकायादिक
उपर्युक्त पर्यायोंमें रहते हैं ॥ ७७ ॥

कम्मट्टिदि त्ति वुत्ते सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्ता धेत्तव्वा, कम्मविसेसट्टिदिं मोत्तूण कम्मस्साउट्टिदिगहणादो । के वि आइरिया सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे बादरपुढविकायादीणं कायट्टिदीं होदि त्ति भणंति । तेसिं कम्मट्टिदिववएसो कज्जे कारणोवयारादो । एदं वक्खाणमत्थि त्ति कधं णव्वदे ? कम्मट्टिदिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे बादरट्टिदी होदि त्ति परियम्मवयणणहाणुववत्तीदो । तत्थ सामण्णेण बादरट्टिदी होदि त्ति जदि वि उत्तं तो वि पुढविकायादीणं बादराणं पत्तेयकायट्टिदी धेत्तव्वा, असंखेज्जासंखेज्जाओ ओस्सप्पिणी-उस्सप्पिणीओ त्ति सुत्तम्मि बादरट्टिदिपरूवणादो ।

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?

॥ ७८ ॥

सुगमं ।

सूत्रमें जो कर्मस्थिति शब्द है उससे सत्तर सागरोपम कोडाकोड़ि मात्र कालका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि विशेष कर्मोंकी स्थितिको छोड़कर कर्मसामान्यकी आयुस्थितिका ही यहां ग्रहण किया गया है । कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि सत्तर सागरोपम कोडाकोड़िको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर बादर पृथिवीकायादिक जीवोंकी कायस्थितिका प्रमाण आता है । किन्तु उनकी यह कर्मस्थिति संज्ञा कार्यमें कारणके उपचारसे ही सिद्ध होती है ।

शंका—ऐसा व्याख्यान है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—‘कर्मस्थितिको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर बादरस्थिति होती है’ ऐसे परिकर्मके वचनकी अन्यथा उपपत्ति बन नहीं सकती, इसीसे उपर्युक्त व्याख्यान जाना जाता है ।

वहांपर यद्यपि सामान्यसे ‘बादरस्थिति होती है’ ऐसा कहा है, तो भी पृथिवीकायादिक बादर प्रत्येकशरीर जीवोंकी स्थिति ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, सूत्रमें बादरस्थितिका प्ररूपण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी प्रमाण किया गया है ।

जीव बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कार्यिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक व बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ७८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७९ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ८० ॥

अणप्पिदकायादो आगंतूण बादरपुठवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ बादर-
वणप्फदिपत्तेयसरीरपज्जत्तएसु जहाकमेण बावीसवस्ससहस्स-सत्तवस्ससहस्स-तिण्णिदिवस-
तिण्णिवस्ससहस्स-दसवस्ससहस्साउएसु उप्पज्जिय संखेज्जवस्ससहस्साणि तत्थच्छिय
णिग्गदस्स तदुवलंभादो ।

बादरपुठवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ-बादरवणप्फदिपत्तेय-
सरीरअपज्जता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ८१ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ८२ ॥

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव बादर पृथिवीकायिक आदि पर्याप्त
रहते हैं ॥ ७९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक संख्यात हजार वर्षों तक जीव बादर पृथिवीकायिकादि
पर्याप्त रहते हैं ॥ ८० ॥

अविवक्षित कायसे आकर बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर
तेजकायिक, बादर वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकोंमें
यथाक्रमसे बाईस हजार वर्ष, सात हजार वर्ष, तीन दिवस, तीन हजार वर्ष व दश
हजार वर्षकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर व संख्यात हजार वर्षों तक उसी पर्यायमें
रहकर निकलनेवाले जीवके सूत्रोक्त प्रमाण काल पाया जाता है ।

जीव बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायु-
कायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव बादर पृथिवीकायिक आदि अपर्याप्त
रहते हैं ॥ ८२ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८३ ॥

एदाणि वि सुगमाणि ।

सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुम-
वाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा पज्जत्ता अपज्जत्ता
सुहुमेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो ॥ ८४ ॥

जहा सुहुमेइंदियाणं जहण्णेण सुद्दाभवग्गहणं उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा तथा
एदेसिं सुहुमपुढविआदीणं छण्हं जहण्णुक्कस्सकाला' होंति । जहा सुहुमेइंदियपज्जत्ताणं
जहण्णकालो उक्कस्सकालो वि अंतोमुहुत्तं होदि तथा सुहुमपुढविकायादीणं छण्हं पज्ज-
त्ताणं जहण्णुक्कस्सकाला होंति । जहा सुहुमेइंदियअपज्जत्ताणं जहण्णकालो सुद्दाभव-
ग्गहणमुक्कस्सो अंतोमुहुत्तं तथा एदेसिं छण्हमपज्जत्ताणं जहण्णुक्कस्सकाला होंति ति
भणिदं होदि । सुहुमणिगोदग्गहणमणत्थयं, सुहुमवणप्फदिकाइयग्गहणेणेव सिद्धीदो ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तरु जीव वादर पृथिवीकायिक आदि
अपर्याप्त रहते हैं ॥ ८३ ॥

ये सूत्र भी सुगम हैं ।

सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक,
सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोदजीव तथा इन्हीं पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंके
कालका निरूपण क्रमसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त व सूक्ष्म एकेन्द्रिय
अपर्याप्तोंके समान है ॥ ८४ ॥

जिस प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंका जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे
असंख्यात लोकप्रमाण काल है उसी प्रकार इन सूक्ष्म पृथिवीकायिकादिक छहोंका
जघन्य और उत्कृष्ट काल होता है । जिस प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका जघन्य
काल और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त होता है उसी प्रकार सूक्ष्म पृथिवीकायिकादिक छह
पर्याप्तोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल होता है । जिस प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त
जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त होता है उसी प्रकार इन छह
अपर्याप्तोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल होता है । यह सूत्रका अभिप्राय है ।

शंका— सूत्रमें सूक्ष्म निगोदजीवोंका ग्रहण करना अनर्थक है, क्योंकि, सूक्ष्म
वनस्पतिकायिक जीवोंके ग्रहणसे ही उनका ग्रहण सिद्ध है । तथा सूक्ष्म वनस्पतिकायिक

१ अप्रती 'छण्हं पज्जत्ताणं जहण्णुक्कस्सकाला' इति पाठः ।

न च सुहुमवणप्फदिकाइयवदिरत्ता सुहुमणिगोदा अत्थि, तहाणुवलंभादो ? णेदं जुज्जदे, जत्थ सुत्तं णत्थि तत्थ आइरियवयणाणं वक्खाणाणं च पमाणत्तं होदि । जत्थ पुण जिणवयणविणिग्गयं सुत्तमत्थि ण तत्थ एदेसिं पमाणत्तं । सुहुमवणप्फदिकाइए भणिदूण सुहुमणिगोदजीवा सुत्तम्मि परूविदा, तदे एदेसिं पुघ परूवणणहाणुववत्तीदो सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदाणं विसेसो अत्थि त्ति णव्वदे ।

वणप्फदिकाइया एइंदियाणं भंगो ॥ ८५ ॥

जहा एइंदियाणं जहणकालो खुदाभवग्गहणमुक्कस्सो अणंतकालमसंखेज्ज-योग्गलपरियट्टं तहा वणप्फदिकाइयाणं जहणकालो उक्कस्सकालो च होदि त्ति उत्तं होइ ।

णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ८६ ॥

सुगमं ।

जहणणेण खुदाभवग्गहणं ॥ ८७ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अइइज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ८८ ॥

जीवोंसे भिन्न सूक्ष्म निगोद जीव हैं भी नहीं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता ?

समाधान— यह शंका ठीक नहीं है, क्योंकि, जहां सूत्र नहीं है वहां आचार्य-वचनोंको और व्याख्यानोंको प्रमाणता होती है। किन्तु जहां जिन भगवानके मुखसे निर्गत सूत्र है वहां इनको प्रमाणता नहीं होती। चूंकि सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंको कहकर सूत्रमें सूक्ष्म निगोदजीवोंका निरूपण किया गया है, अतः इनके पृथक् प्ररूपणकी अन्यथानुपपत्तिसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोदजीवोंके भेद है, यह जाना जाता है ।

वनस्पतिकायिक जीवोंके कालका कथन एकेन्द्रिय जीवोंके समान है ॥ ८५ ॥

जिस प्रकार एकेन्द्रियोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है उसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवोंका जघन्य काल और उत्कृष्ट काल होता है, यह सूत्रका अर्थ है ।

जीव निगोदजीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ८६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जीव जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण काल तक निगोदजीव रहते हैं ॥ ८७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

जीव अधिकसे अधिक अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल तक निगोदजीव रहते हैं ? ॥ ८८ ॥

अणिगोदजीवस्स णिगोदेसु उत्पण्णस्स उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्ठेहिंते उवरि परिभवणाभावादो ।

बादरणिगोदजीवा बादरपुढविकाइयाणं भंगो ॥ ८९ ॥

जहा बादरपुढविकाइयाणं जहणकालो खुदाभवग्गहणमुक्कस्सो कम्मट्ठिदी तथा एदेसिं जहण्णुक्कस्सकाला होंति । जहा बादरपुढविकाइयपज्जत्ताणं कालो तथा बादरणिगोदपज्जत्ताणं होदि । णवरि बादरपुढविकाइयपज्जत्ताणं उक्कस्साउट्ठिदी संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि, बादरणिगोदपज्जत्ताणं पुण उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तं । जहा बादरपुढविकाइयअपज्जत्ताणं जहणकालो खुदाभवग्गहणमुक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तं तथा बादरणिगोदअपज्जत्ताणं जहण्णुक्कस्सकालो त्ति भणिदं होदि ।

तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥९०॥
सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं ॥ ९१ ॥

क्योंकि, निगोदजीवोंमें उत्पन्न हुए निगोदसे भिन्न जीवका उत्कर्षसे अड्डाई पुद्गलपरिवर्तनोंसे ऊपर परिभ्रमण है ही नहीं ।

बादर निगोदजीवोंका काल बादर पृथिवीकायिकोंके समान है ॥ ८९ ॥

जिस प्रकार बादर पृथिवीकायिकोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट कर्मस्थिति प्रमाण है, उसी प्रकार बादर निगोदजीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल होता है । जिस प्रकार बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तोंका काल है उसी प्रकार बादर निगोद पर्याप्तोंका काल होता है । विशेष केवल इतना है कि बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तोंकी उत्कृष्ट आयुस्थिति संख्यात हजार वर्ष है, परन्तु बादर निगोद पर्याप्तोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है । जिस प्रकार बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है उसी प्रकार बादर निगोद अपर्याप्तोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल होता है ।

जीव त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव क्रमसे त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त रहते हैं ॥ ९१ ॥

सुगममेदं पि ।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि
बे सागरोवमसहस्साणि ॥ ९२ ॥

तसकाइयाणं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि बे सागरोवमसहस्साणि, तेसिं पज्ज-
त्ताणं बे सागरोवमसहस्सं चेव । कुदो ? जहासंखणायदो ।

तसकाइयअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ९३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ९४ ॥

सुगमं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९५ ॥

एदं पि सुगमं ।

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो सागरोपमसहस्र और केवल
दो सागरोपमसहस्र काल तक जीव क्रमशः त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त रहते
हैं ॥ ९२ ॥

त्रसकायिकोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो सागरोपमसहस्र
और त्रसकायिक पर्याप्तोंका केवल दो सागरोपमसहस्र ही है, क्योंकि, यहां यथासंख्य-
न्याय लगता है ।

जीव त्रसकायिक अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ९३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्र भवग्रहण काल तक जीव त्रसकायिक अपर्याप्त रहते हैं ॥ ९४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव त्रसकायिक अपर्याप्त रहते
हैं ॥ ९५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवच्चिजोगी केवचिरं कालादो
होंति ? ॥ ९६ ॥

‘जोगिणो’ इदि वयणादो बहुवयणणिदेसो किण्ण कदो ? ण, पंचण्हं पि
एयत्ताविणाभावेण एयवयणुववत्तीदो । सेसं सुगमं ।

जहण्णेण एयसमओ ॥ ९७ ॥

मणजोगस्स ताव एगसमयपरूवणा कीरदे । तं जहा— एगो कायजोगेण अच्छिदो
कायजोगद्वाए खएण मगजोगे आगदो, तेणेगसमयमच्छिय विदियसमये मरिय काय-
जोगी जादो । लद्धो मणजोगस्स एगसमओ । अधवा कायजोगद्वाखएण मणजोगे आगदे
विदियसमए वाघादिदस्स पुणरवि कायजोगो चेव आगदो । लद्धो विदियपयरेण
एगसमओ । एवं सेसाणं चदुण्हं मणजोगाणं पंचण्हं वच्चिजोगाणं च एगसमयपरूवणा
दोहि पयारेहि णादूण कायव्वा ।

योगमार्गानुसार जीव पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी कितने काल
तक रहते हैं ? ॥ ९६ ॥

शंका—‘जोगिणो’ इस प्रकारके वचनसे यहां बहुवचनका निर्देश क्यों
नहीं किया ?

समाधान—नहीं किया, क्योंकि पांचोंके ही एकत्वके साथ अविनाभाव होनेसे
यहां एकवचन उचित है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी रहते
हैं ॥ ९७ ॥

प्रथमतः मनोयोगके एक समयकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है—
एक जीव काययोगसे स्थित था, वह काययोगकालके क्षयसे मनोयोगमें आया, उसके साथ
एक समय रहकर व द्वितीय समयमें मरकर काययोगी हो गया । इस प्रकार मनोयोगका
जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है । अथवा काययोगकालके क्षयसे मनोयोगके
प्राप्त होनेपर द्वितीय समयमें व्याघातको प्राप्त हुए उसको फिर भी काययोग ही प्राप्त
हुआ । इस तरह द्वितीय प्रकारसे एक समय प्राप्त होता है । इसी प्रकार शेष चार
मनोयोगों और पांच वचनयोगोंके भी एक समयकी प्ररूपणा दोनों प्रकारोंसे जानकर
करना चाहिये ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९८ ॥

अणप्पिदजोगादो अण्णिदजोगं गंतूण उक्कस्सेण तत्थ अंतोमुहुत्तावट्ठाणं पडि विरोहाभावादो ।

कायजोगी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ९९ ॥

किमट्ठमेत्थ एगवयणणिहेसो कदो ? ण एस दोसो, एगजीवं मोत्तूण बहूहि जीवेहि एत्थ पओजणाभावादो ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०० ॥

अणप्पिदजोगादो कायजोगं गदस्स जहण्णकालस्स वि अंतोमुहुत्तपमाणं मोत्तूण एगसमयादिपमाणाणुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगगलपरियट्ठं ॥ १०१ ॥

अणप्पिदजोगादो कायजोगं गंतूण तत्थ सुट्ठु दीहट्ठमच्छिय कालं करिय एइदियेसु उत्पण्णस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोगगलपरियट्ठाणि परियट्ठिदस्स कायजोगुक्कस्सकालुवलंभादो ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पांच मनोयोगी और पांच वचन-योगी रहते हैं ॥ ९८ ॥

क्योंकि, अविचक्षित योगसे विचक्षित योगको प्राप्त होकर उत्कर्षसे वहां अन्तर्मुहूर्त तक अवस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

जीव काययोगी कितने काल तक रहता है ? ॥ ९९ ॥

शंका—यहां एकवचनका निर्देश किस लिये किया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, एक जीवको छोड़कर बहुत जीवोंसे यहां प्रयोजन नहीं है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त तक जीव काययोगी रहता है ॥ १०० ॥

क्योंकि, अविचक्षित योगसे काययोगको प्राप्त हुए जीवके जघन्य कालका प्रमाण अन्तर्मुहूर्तको छोड़कर एक समयादिरूप नहीं पाया जाता ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक जीव काययोगी रहता है ॥ १०१ ॥

क्योंकि, अविचक्षित योगसे काययोगको प्राप्त होकर और वहां अतिशय दीर्घ काल तक रहकर कालको करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुए जीवके आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन भ्रमण करते हुए काययोगका उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

ओरालियकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०२ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ १०३ ॥

मणजोगेण वचिजोगेण वा अच्छिय तेसिमद्वाखएण ओरालियकायजोगंगद-
बिदियसमए कालं कादूण जोगंतरं गदस्स एगसमयदंसणादो ।

उक्कस्सेण बावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि ॥ १०४ ॥

बावीसवाससहस्साउअपुढवीकाइएसु उप्पज्जिय सव्वजहण्णेण कालेण ओरालिय-
मिस्सद्वं गमिय पज्जत्तिंगदपढमसमयप्पहुडि जाव अंतोमुहुत्तणवावीसवाससहस्साणि
ताव ओरालियकायजोगुवलंभादो ।

ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी आहारकायजोगी
केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०५ ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ १०६ ॥

जीव औदारिककाययोगी कितने काल तक रहता है ? ॥ १०२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव औदारिककाययोगी रहता है ॥ १०३ ॥

क्योंकि, मनोयोग अथवा वचनयोगके साथ रहकर उनके कालक्षयसे औदारिक-
काययोगको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें मरकर योगान्तरको प्राप्त हुए जीवके एक
समय देखा जाता है ।

अधिकसे अधिक बाईस हजार वर्षों तक जीव औदारिककाययोगी रहता
है ॥ १०४ ॥

क्योंकि, बाईस हजार वर्षकी आयुवाले पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न होकर सर्व-
जघन्य कालसे औदारिकमिश्रकालको चितकर पर्याप्तको प्राप्त होनेके प्रथम समयसे
लेकर अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष तक औदारिककाययोग पाया जाता है ।

जीव औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी
कितने काल तक रहता है ? ॥ १०५ ॥

कमसे कम एक समय तक जीव औदारिकमिश्रकाययोगी आदि रहता है ॥ १०६ ॥

ओरालियकायजोगाविणाभाविदंडादो कवाडंगदसजोगिजिणभिह ओरालिय-मिस्सस्स एगसमओ लब्भदे, तत्थ ओरालियमिस्सेण विणा अण्णजोगाभावादो । मण-वचि-जोगेहिंतो वेउव्वियजोगंगदविदियसमए मदस्स एगसमओ वेउव्वियकायजोगस्स उव-लब्भदे, मुदपढमसमए कम्मइय-ओरालिय-वेउव्वियमिस्सकायजोगे मोत्तूण वेउव्वियकाय-जोगाणुवलंभादो । मण-वचिजोगेहिंतो आहारकायजोगंगदविदियसमए मुदस्स मूलसरीरं पविट्टस्स वा आहारकायजोगस्स एगसमओ लब्भदे, मुदाणं मूलसरीरपविट्टाणं च पढमसमए आहारकायजोगाणुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०७ ॥

मणजोगादो वचिजोगादो वा वेउव्विय-आहारकायजोगं गंतूण सव्वुक्कस्सं अंतो-मुहुत्तमच्छिय अण्णजोगं गदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो, अण्णपिदजोगादो ओरा-लियमिस्सजोगं गंतूण सव्वुक्कस्सकालमच्छिय अण्णजोगं गदस्स ओरालियमिस्सस्स अंतोमुहुत्तमेत्तुक्कस्सकालुवलंभादो । सुहुमेइंदियअपज्जत्तएसु वादरेइंदियअपज्जत्तएसु च

औदारिककाययोगके अविनाभावी दण्डसमुद्घातसे कपाटसमुद्घातको प्राप्त हुए सयोगी जिनमें औदारिकमिश्रका एक समय पाया जाता है, क्योंकि, उस अवस्थामें औदारिकमिश्रके बिना अन्य योग पाया नहीं जाता । मनोयोग या वचनयोगसे वैक्रियिक-काययोगको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें मृत्युको प्राप्त हुए जीवके वैक्रियिककाययोगका एक समय पाया जाता है, क्योंकि, मर जानेके प्रथम समयमें कार्मणकाययोग, औदारिक-मिश्रकाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोगको छोड़कर वैक्रियिककार्ययोग पाया नहीं जाता । मनोयोग अथवा वचनयोगसे आहारककाययोगको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें मृत्युको प्राप्त हुए या मूल शरीरमें प्रविष्ट हुए जीवके आहारककाययोगका एक समय पाया जाता है, क्योंकि, मृत्युको प्राप्त या मूल शरीरमें प्रविष्ट हुए जीवोंके प्रथम समयमें आहारककाययोग पाया नहीं जाता ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव औदारिकमिश्रकाययोगी आदि रहता है ॥ १०७ ॥

क्योंकि, मनोयोग अथवा वचनयोगसे वैक्रियिक या आहारककाययोगको प्राप्त होकर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर अन्य योगको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त-मात्र काल पाया जाता है, तथा अविदक्षित योगसे औदारिकमिश्रयोगको प्राप्त होकर व सर्वोत्कृष्ट काल तक रहकर अन्य योगको प्राप्त हुए जीवके औदारिकमिश्रका अन्तर्-मुहूर्तमात्र उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंमें और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंमें सात

सत्तद्भवग्रहणाणि गिरंतरमुष्णस्स बहुओ कालो क्णिण लब्भदे ? ण, ताओ सवाओ
ट्टिदीओ एक्कदो कदे वि अंतोमुहुत्तमेत्तकालुत्तलंभादो ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहारमिस्सकायजोगी केवचिरं
कालादो होदि ? ॥ १०८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०९ ॥

एगसमओ क्णिण लब्भदे ? ण, एत्थ मरण-जोगपरावत्तीणमसंभवादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११० ॥

सुगमं ।

कम्मइयकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १११ ॥

आठ भवग्रहण तक निरन्तर उत्पन्न हुए जीवके बहुत काल क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि, उन सब स्थितियोंको इकट्ठा करनेपर
भी अन्तर्मुहूर्तमात्र काल पाया जाता है ।

जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी कितने काल तक
रहता है ? ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारक-
मिश्रकाययोगी रहता है ॥ १०९ ॥

शंका — यहां एक समयमात्र जघन्य काल क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि, यहां मरण और योगपरावृत्तिका होना
असम्भव है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और
आहारकमिश्रकाययोगी रहता है ॥ ११० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जीव कार्मणकाययोगी कितने काल तक रहता है ? ॥ १११ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ११२ ॥

एगविग्गहं कादूण उप्पण्णस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तिण्णिण समया ॥ ११३ ॥

तिण्हं समयाणमुवरि विग्गहाणुवलंभादो ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ११४ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ११५ ॥

उवसमसेडीदो ओदरिय सवेदो होदूण विदियसमए मुदस्स पुरिसवेदेण परिणयस्स एगसमओवलंभादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ॥ ११६ ॥

अणप्पिदवेदादो इत्थिवेदं गंतूण पलिदोवमसदपुधत्तं तत्थेव परिभमिय पच्छा

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव कर्मणकाययोगी रहता है ॥ ११२ ॥

क्योंकि, एक विग्रह (मोड़ा) करके उत्पन्न हुए जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक तीन समय तक जीव कर्मणकाययोगी रहता है ॥ ११३ ॥

क्योंकि, तीन समयोंके ऊपर विग्रह पाये नहीं जाते ।

वेदमार्गणानुसार जीव स्त्रीवेदी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ११४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव स्त्रीवेदी रहता है ॥ ११५ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणीसे उतरकर सवेद होते हुए द्वितीय समयमें मृत्युको प्राप्त होकर पुरुषवेदसे परिणत हुए जीवके एक समय पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक पल्योपमशतपृथक्त्व काल तक जीव स्त्रीवेदी रहता है ॥ ११६ ॥

जीव अविवाक्षित वेदसे स्त्रीवेदको प्राप्त होकर और पल्योपमशतपृथक्त्व काल

अण्णवेदं' गदो । सदपुधत्तमिदि किं ? तिसदप्पहुडि जाव णवसदाणि ति एदे सच्च-
वियप्पा सदपुधत्तमिदि बुच्चंति ।

पुरिसवेदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ११७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११८ ॥

पुरिसवेदोदएण उवसमसेडिं चट्ठिय अवगदवेदो होदूण पुणो उवसमसेडीदो
ओदरमाणो सवेदो होदूण वेदस्स आदिं करिय सच्चजहण्णमंतोमुहुत्तमद्दमच्छिय पुणो
उवसमसेडिं चट्ठिय अवगदवेदभावं गदम्मि पुरिसवेदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालस्सुवलंभादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ११९ ॥

णवुंसयवेदम्मि अणंतकालभसंखेज्जलोगमेत्तं वा अच्छिय पुरिसवेदं गंतूण तम-
छंडिय सागरोवमसदपुधत्तं तत्थेव परिभमिय अण्णवेदं गदस्स तदुवलंभादो । १००

तक उसमें ही परिभ्रमण करके पश्चात् अन्य वेदको प्राप्त हुआ ।

शंका—शतपृथक्त्व किसे कहते हैं ?

समाधान—तीन सौसे लेकर नौ सौ तक ये सब विकल्प 'शतपृथक्त्व'
कहे जाते हैं ।

जीव पुरुषवेदी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ११७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पुरुषवेदी रहते हैं ॥ ११८ ॥

पुरुषवेदके उदयसे उपशमश्रेणी चढ़कर, अपगतवेदी होकर, पुनः उपशम-
श्रेणीसे उतरता हुआ सवेद होकर, वेदका आदि करके, सर्वज्ञग्रन्थ अन्तर्मुहूर्त काल
तक रहकर, और फिर उपशमश्रेणी चढ़कर अपगतवेदत्वको प्राप्त हुए जीवके पुरुष-
वेदका अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक जीव पुरुषवेदी रहते
हैं ॥ ११९ ॥

नपुंसकवेदमें अनन्त काल अथवा असंख्यात लोकमात्र काल तक रहकर
पुरुषवेदको प्राप्त होकर और फिर उसे न छोड़कर सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक
उसमें ही परिभ्रमण करके अन्य वेदको प्राप्त हुए जीवके वह सूत्रोक्त काल पाया जाता

एदमेत्थ सदपुधत्तमिदि गहिदं ।

णवुंसयवेदा केवचिरं कालादो हंति ? ॥ १२० ॥

सुगमं ।

जहणणेण एगसमओ ॥ १२१ ॥

णवुंसयवेदोदएण उवसमसेडिं चडिय ओदरिय सवेदो होदूण बिदियसमए कालं करिय पुरिसवेदं गदस्स एगसमयदंसणादो । पुरिसवेदस्स एगसमओ किण्ण लद्धो ? ण, अवगदवेदो होदूण सवेदजादबिदियसमए कालं करिय देवेसुप्पणो वि पुरिसवेदं मोत्तूण अणवेदस्सुदयाभावेण एगसमयाणुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगगलपरियट्ठं ॥ १२२ ॥

अणप्पिदवेदा णवुंसयवेदयं गंतूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोगगलपरियट्ठे परियट्ठिदूण अणवेदं गदस्स तदुवलद्धीदो ।

है । ९०० सागरोपम यहां शतपृथक्त्वसे ग्रहण किये गये हैं ।

जीव नपुंसकवेदी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १२० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव नपुंसकवेदी रहते हैं ॥ १२१

क्योंकि, नपुंसकवेदके उदयसे उपशमश्रेणी चढ़कर, फिर उतरकर, सवेद होकर और द्वितीय समयमें मरकर पुरुषवेदको प्राप्त हुए जीवके नपुंसकवेदका कमसे कम एक समय काल देखा जाता है ।

शंका — पुरुषवेदका जघन्य काल एक समय क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि, अपगतवेद होकर और सवेद होनेके द्वितीय समयमें मरकर देवोंमें उत्पन्न होनेपर भी पुरुषवेदको छोड़कर अन्य वेदके उदयका अभाव होनेसे एक समय काल नहीं पाया जाता ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक जीव नपुंसकवेदी रहते हैं ॥ १२२ ॥

क्योंकि, अविश्रित वेदसे नपुंसकवेदको प्राप्त होकर और आवलीके असंख्यातवै भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण करके अन्य वेदको प्राप्त हुए जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

अवगदवेदा केवचिरं कालादो ह्येति ? ॥ १२३ ॥

सुगमं ।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १२४ ॥

उवसमसेडिं चडिय अवगदवेदो होदूण एगसमयमाच्छिय विदियसमए कालं कादूण वेदभावं गदस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२५ ॥

इत्थिवेदोदएण णवुंसयवेदोदएण वा उवसमसेडिं चडिय अवगदवेदो होदूण सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमाच्छिय वेदभावं गदस्स तदुवलंभादो ।

खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२६ ॥

खवगसेडिं चडिय अवगदवेदो होदूण सव्वजहण्णेण कालेण परिणिव्वुदस्स तदुवलंभादो ।

जीव अपगतवेदी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १२३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमककी अपेक्षा कमसे कम एक समय तक जीव अपगतवेदी रहते हैं ॥ १२४ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणी चढ़कर, अपगतवेदी होकर और एक समय रहकर द्वितीय समयमें मरकर सवेदपनेको प्राप्त हुए जीवके एक समय काल पाया जाता है ।

आधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव अपगतवेदी रहते हैं ॥ १२५ ॥

क्योंकि, स्त्रीवेदके उदयसे या नपुंसकवेदके उदयसे उपशमश्रेणी चढ़कर, अपगतवेदी होकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर वेदपनेको प्राप्त हुए जीवके उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

क्षपककी अपेक्षा कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव अपगतवेदी रहते हैं ॥ १२६ ॥

क्योंकि, क्षपकश्रेणी चढ़कर और अपगतवेदी होकर सर्वजघन्य कालसे मुक्तिको प्राप्त हुए जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ १२७ ॥

देवस्स णेरइयस्स वा खइयसम्माइड्डिस्स पुव्वकोडाउएसु मणुसेसुववाज्जिय अट्टवस्साणि गमिय संजमं पडिबज्जिय सव्वजहणकालेण खवगसेडिं चाडिय अवगदवेदो होदूण केवलणाणं समुप्पाइय देसूणपुव्वकोडिं विइरिय अबंधगभावं गदस्स तदुवलंभादो ।

कसायाणुवादेण क्रोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १२८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एयसमओ ॥ १२९ ॥

अणप्पिदकसायादो क्रोधकसायं गंतूण एगसमयमच्छिय कालं करिय णिरयगइं मोत्तूणण्णगईसुप्पणस्स एगसमओवलंभादो । क्रोधस्स वाघादेण एगसमओ णत्थि, वाघादिदे वि क्रोधस्सेव समुप्पत्तीदो । एवं सेसतिण्हं कसायाणं पि एगसमयपरूवणा कायव्वा । णवरि एदेसिं तिण्हं कसायाणं वाघादेण वि एगसमयपरूवणा कायव्वा ।

अधिकसे अधिक कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्ष तक जीव अपगतवेदी रहते हैं ॥ १२७ ॥

क्योंकि, देव अथवा नारक क्षायिकसम्यग्दृष्टिके पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, आठ वर्ष चिताकर, संयमको प्राप्त कर, सर्वजघन्य कालसे क्षपकश्रेणी चढ़कर, अपगतवेदी होकर, केवलज्ञानको उत्पन्न कर, और कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक विहार करके अबंधक अवस्थाको प्राप्त होनेपर वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

कषायमार्गानुसार जीव क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी कब तक रहता है ? ॥ १२८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव क्रोधकषायी आदि रहता है ॥ १२९ ॥

क्योंकि, अविबक्षित कषायसे क्रोधकषायको प्राप्त होकर, एक समय रहकर और फिर मरकर नरकगतिको छोड़ अन्य गतियोंमें उत्पन्न हुए जीवके एक समय पाया जाता है । क्रोधके व्याघातसे एक समय नहीं पाया जाता, क्योंकि व्याघातको प्राप्त होनेपर भी पुनः क्रोधकी ही उत्पत्ति होती है । इसी प्रकार शेष तीन कषायोंके भी एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिये । विशेष इतना है कि इन तीन कषायोंके व्याघातसे भी एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिये । मरणकी अपेक्षा एक समय

मरणेण एगसमए भण्णमाणे माणस्स मणुसगइं, मायाए तिरिक्खगइं, लोभस्स देवगइं मोत्तूण सेसासु तिसु गईसु उप्पाएअव्वो । कुदो ? गिरय-मणुस-तिरिक्ख-देवगईसु उप्पण्णाणं पढमसमए जहाकमेण कोध-माण-माया-लोभाणं चेवुदयदंसणादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३० ॥

अणप्पिदकसायादो अप्पिदकसायं गंतूणुक्कस्सकालं तत्थ द्विदस्स वि अंतोमुहुत्तादो अधियकालाणुवलंभादो ।

अकसाई अवगदवेदभंगो ॥ १३१ ॥

जहा अवगदवेदाणं उवसममेडिं खवगसेडिं च पडुच्च जहण्णेण एगसमय-अंतोमुहुत्तपरूवणा, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त-देसूणपुव्वकोडिपरूवणा च कदा तथा अकसायाणं पि जहण्णुक्कस्सेहि कालपरूवणा कादव्वा त्ति भणिदं होदि ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३२ ॥

कहनेपर मानकी मनुष्यगति, मायाकी तिर्यचगति और लोभकी देवगतिको छोड़कर शेष तीन गतियोंमें जीवको उत्पन्न कराना चाहिये । कारण यह कि नरक, मनुष्य, तिर्यच और देव गतियोंमें उत्पन्न हुए जीवोंके प्रथम समयमें यथाक्रमसे क्रोध, मान, माया और लोभका उदय देखा जाता है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव क्रोधकषायी आदि रहता है ॥ १३० ॥

क्योंकि, अविश्रुत कषायसे विश्रुत कषायको प्राप्त होकर उत्कृष्ट काल तक वहीं स्थित हुए भी जीवके अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल नहीं पाया जाता ।

अकषायी जीवोंका काल अपगतवेदियोंके समान है ॥ १३१ ॥

जिस प्रकार अपगतवेदियोंके उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय व अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा, तथा उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त व कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण कालकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार अकषायी जीवोंकी भी जघन्य और उत्कर्षसे कालप्ररूपणा करना चाहिये । यह उक्त सूत्रका अर्थ है ।

ज्ञानमार्गणाणुसार जीव मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी कितने काल तक रहता है ? ॥ १३२ ॥

सुगमं ।

अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ १३३ ॥

अभवियं पडुच्च एसो णिहेसो, अभव्वसमाणभव्वं वा ।

अणादिओ सपज्जवसिदो ॥ १३४ ॥

एसो भवियजीवं पडुच्च णिहेसो कदो ।

सादिओ सपज्जवसिदो ॥ १३५ ॥

एसो णिहेसो णाणादो अण्णाणंगदभवियजीवं पडुच्च कदो ।

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिहेसो-जहण्णेण
अंतोमुहुत्तं ॥ १३६ ॥

सम्माइट्टिस्स मिच्छत्तं गंतूण मदि-सुदअण्णाणाणि पडिवज्जिय सव्वजहण्ण-
मंतोमुहुत्तमच्छिय सम्मत्तं गंतूण पडिवण्णमदि-सुदणाणस्स जहण्णकालुवलंभादो ।

उवकस्सेण अद्धपोगगलपरियट्ठं देसूणं ॥ १३७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंका काल अनादि-अनन्त है ॥ १३३ ॥

यह निर्देश अभव्य अथवा अभव्य समान भव्य जीवकी अपेक्षासे किया गया है ।

उक्त दोनों अज्ञानियोंका काल अनादि-सान्त है ॥ १३४ ॥

यह निर्देश भव्य जीवकी अपेक्षासे किया गया है ।

उक्त दोनों अज्ञानियोंका काल सादि-सान्त है ॥ १३५ ॥

यह निर्देश ज्ञानसे अज्ञानको प्राप्त हुए भव्य जीवकी अपेक्षासे किया गया है ।

जो वह सादि-सान्त है उसका निर्देश इस प्रकार है-सम्यग्ज्ञानसे मिथ्याज्ञानको प्राप्त हुआ भव्य जीव कमसे कम अन्तर्मुहूर्त तक मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी रहता है ॥ १३६ ॥

क्योंकि, सम्यग्दृष्टि जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानको प्राप्त कर एवं सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर सम्यक्त्वको प्राप्त होकर मतिज्ञान और श्रुतज्ञानको प्राप्त करलेनेपर जघन्य काल पाया जाता है ।

उपर्युक्त जीव अधिकसे अधिक कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी रहता है ॥ १३७ ॥

अणादियमिच्छाइड्डिस्स तिण्णि वि करणाणि अद्धपोग्गलपरियट्टस्स बाहिं काऊण पोग्गलपरियट्टादिसमए उवसमसम्मत्तं घेत्तूण आभिणिबोहिय-सुदणाणाणि पडिवज्जिय सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय छआवालियाओ अत्थि त्ति सासणं गंतूण मदि-सुदअण्णाण-मादिं करिय मिच्छत्तं गंतूण पोग्गलपरियट्टस्स अद्धं देसूणं परिभमिय पुणो अपच्छिमे भवे मदि-सुदणाणाणि उप्पाइय अंतोमुहुत्तेण अबंधगतं मदस्स देसूणपोग्गलपरियट्टस्स अद्धवलंभादो ।

विभंगणाणी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ १३९ ॥

देवस्स णेरइयस्स वा उवसमसम्माइड्डिस्स उवसमसम्मत्तद्वाए एगसमयावेससाए सासणं गंतूण विभंगणाणेण सह एगसमयमच्छिय विदियसमए मदस्स' तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ १४० ॥

क्योंकि, अनादिमिथ्यादृष्टि जीवके अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालके बाहिर तीनों ही करणोंको करके पुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें उपशमसम्यक्त्वको ग्रहणकर आभिनि-बोधिक व श्रुत ज्ञानको प्राप्त करके और सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर उपशम-सम्यक्त्वमें छह आवालियां शेष रहनेपर सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त होकर मति और श्रुत अज्ञानका आदि करके मिथ्यात्वको प्राप्त हो कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक भ्रमण करके पुनः अन्तिम भवमें मति एवं श्रुत ज्ञानको उत्पन्न कर अन्तर्मुहूर्त कालसे अबन्धक अवस्थाको प्राप्त होनेपर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल पाया जाता है ।

जीव विभंगज्ञानी कितने काल तक रहता है ? ॥ १३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव विभंगज्ञानी रहता है ॥ १३९ ॥

क्योंकि, देव अथवा नारकी उपशमसम्यग्दृष्टिके उपशमसम्यक्त्वकालमें एक समय शेष रहनेपर सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त होकर और विभंगज्ञानके साथ एक समय रहकर द्वितीय समयमें मृत्युको प्राप्त होनेपर वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक कुछ कम तेत्तीस सागरोपम काल तक जीव विभंगज्ञानी रहता है ॥ १४० ॥

तिरिक्खस्स मणुसस्स वा तेत्तीसाउट्टिदिएसु सत्तमपुढविणेरईएसु उप्पज्जिय
छपज्जत्तीओ समाणिय विभंगणाणी होदूण अंतोमुहुत्तेणूणतेत्तीसाउट्टिदिमच्छिय
णिग्गदस्स तदुवलंभादो ।

आभिनिबोहिय-सुद-ओहिणाणी केवचिरं कालादो होदि ?
॥ १४१ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४२ ॥

देवस्स णेरईयस्स वा मदि-सुद-विभंगअण्णाणेहि अच्छिदस्स सम्मत्तं घेत्तूणुप्पा-
इदमदिसुदोहिणाणस्स जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गयस्स तदंसणादो ।

उक्कस्सेण छावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १४३ ॥

देवस्स णेरइयस्स वा पडिवण्णउवसमसम्मत्तेण सह समुप्पण्णमदि-सुद-ओहि-
णाणस्स वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय अविणट्टतिणाणेहि अंतोमुहुत्तमच्छिय एदेणंतोमुहुत्ते-
णूणपुव्वकोडाउअमणुस्सेसुववज्जिय पुणो वीसंसागरोवमिएसु देवेसुववज्जिय पुणो पुव्व-

क्योंकि, तिर्यंच अथवा मनुष्यके तेतीस सागरोपमप्रमाण आयुवाले सप्तम
पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न होकर, छह पर्यातियोंको पूर्ण कर विभंगज्ञानी होकर अन्त-
र्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपमप्रमाण आयुस्थिति तक रहकर वहांसे निकलनेपर वह
सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

जीव आभिनिबोधिक, श्रुत और अवधि ज्ञानी कितने काल तक रहता है ? ॥ १४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी एवं अवधि-
ज्ञानी रहता है ॥ १४२ ॥

क्योंकि मति, श्रुत और विभंग अज्ञानके साथ स्थित देव अथवा नारकीके
सम्यक्त्वको ग्रहणकर और मति, श्रुत एवं अवधि ज्ञानको उत्पन्न करके उनमें जघन्य
अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर उक्त काल देखा जाता है ।

अधिकसे अधिक साधिक छ्यासठ सागरोपम काल तक जीव आभिनिबोधिकज्ञानी,
श्रुतज्ञानी एवं अवधिज्ञानी रहता है ॥ १४३ ॥

देव अथवा नारकीके प्राप्त हुए उपशमसम्यक्त्वके साथ मति, श्रुत और अवधि
ज्ञानको उत्पन्न करके, वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर अविनष्ट तीनों ज्ञानोंके साथ अन्तर्मुहूर्त
काल तक रहकर, इस अन्तर्मुहूर्तसे हीन पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, पुनः
बीस सागरोपमप्रमाण आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर, पुनः पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें

कोडाउएसु मणुस्सेसुववज्जिय बावीसंसागरोवमड्ढिदीएसु देवेसुववज्जिदूण पुणो पुव्वकोडा-
 उएसु मणुस्सेसुववज्जिय खइयं पट्टविय चउवीसंसागरोवमाउड्ढिदिएसु देवेसुववज्जिदूण
 पुणो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसुववज्जिय थोवावसेसे जीविण केवलणाणी होदूण अबंधगतं
 गदस्स चदुहि पुव्वकोडीहि सादिरेयछावड्ढिसागरोवमाणमुवलंभादो । वेदगसम्मत्तेण
 छावड्ढिसागरोवमाणि भमाविय खइयं पट्टविय तेतीससागरोवमाउड्ढिदिएसु देवेसुप्पाइय
 अबंधओ किण्ण कओ ? ण, सम्मत्तेण सह जदि संसारे सुट्टु बहुअं कालं परिभवइ तो
 चदुहि पुव्वकोडीहि सादिरेयछावड्ढिसागरोवमाणे चव परिभमदि ति वक्खाणंतरदंसणट्ट-
 मुवदैसणादो । अंतोमुहुत्ताहियछावड्ढिसागरोवमाणि किण्ण वुत्ताणि ? ण, केवलवेदगसम्मत्तेण
 छावड्ढिसागरोवमाणि संपुण्णाणि परिभमिय खइयभावं गदस्स तदुवलंभादो ।

मणपज्जवणाणी केवलणाणी केवचिरं कालादो हंति ? ॥ १४४ ॥

सुगमं ।

उत्पन्न होकर, पुनः बाईस सागरोपम आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर, पुनः पूर्वकोटि आयुवाले
 मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, क्षायिकसम्यक्त्वका प्रारंभ करके, चौबीस सागरोपम आयुस्थिति-
 वाले देवोंमें उत्पन्न होकर, पुनः पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, जीवितके
 थोड़ा शेष रहनेपर केवलज्ञानी होकर अबन्धक अवस्थाको प्राप्त होनेपर चार पूर्वकोटियोंसे
 अधिक छयासठ सागरोपम पाये जाते हैं ।

शंका—वेदकसम्यक्त्वके साथ छयासठ सागरोपमप्रमाण घुमाकर और फिर
 क्षायिकसम्यक्त्वको प्रारंभ कर तेतीस सागरोपमप्रमाण आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न
 कराकर अबन्धक क्यों नहीं किया ?

समाधान - नहीं, क्योंकि 'सम्यक्त्वके साथ यदि जीव संसारमें खूब बहुत काल
 तक भ्रमण करे तो चार पूर्वकोटियोंसे साधिक छयासठ सागरोपमप्रमाण ही भ्रमण करता
 है' ऐसा अन्य व्याख्यान दिखलानेके लिये वैसा उपदेश दिया है ।

शंका—अन्तर्मुहूर्तसे अधिक छयासठ सागरोपम क्यों नहीं कहे ?

समाधान—नहीं कहे, क्योंकि, केवल वेदकसम्यक्त्वके साथ सम्पूर्ण छयासठ
 सागरोपम भ्रमणकर क्षायिकभावको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्तसे अधिक छयासठ
 सागरोपम पाये जाते हैं ।

जीव मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १४४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४५ ॥

दोसु संजदेसु परिणामपच्चएणुप्पाइदकेवल-मणपज्जवणाणेसु सव्वजहणं कालं तेहि सह अच्छिय असंजममबंधयभावं गदेसु एदस्सुवलंभादो ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ १४६ ॥

कुदो ? गम्भादिअट्टवस्सेहि संजमं पडिवज्जिय आभिणिबोहिय-सुदणाणाणि उप्पाइय अंतोमुहुत्तेण मणपज्जवणाणमुप्पाइय पुव्वकोडिं विहारिय देवेमुप्पणस्स देसूणपुव्वकोडिकालोवलंभादो । एवं केवलणाणस्स वि उक्कस्सकालो वत्तव्वो । णवरि देवेहिंतो णेरइएहिंतो वा आगंतूण पुव्वकोडाउएमु खइयसम्मत्तेण सह उप्पाज्जिय गम्भादिअट्टवस्सेहि संजमं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तमच्छिय केवलणाणमुप्पाइय देसूणपुव्वकोडिं विहारिय अबंधगत्तं गदस्स वत्तव्वं ।

संजमाणुवादेण संजदा परिहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा केव-
चिरं कालादो होंति ? ॥ १४७ ॥

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त तक जीव मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी रहते हैं
॥ १४५ ॥

क्योंकि, दो संयत जीवोंके परिणामोंके निमित्तसे केवलज्ञान व मनःपर्ययज्ञानको उत्पन्न करके और सर्वजघन्य काल तक उनके साथ रहकर असंयम एवं अवन्धक भावको प्राप्त होनेपर यह काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक जीव मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी रहते हैं ॥ १४६ ॥

क्योंकि, गर्भसे आदि लेकर आठ वर्षोंसे संयमको प्राप्त कर, अन्तर्मुहूर्तसे मनःपर्ययज्ञानको उत्पन्न कर और पूर्वकोटि वर्ष तक विहार करके देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके कुछ कम पूर्वकोटि काल पाया जाता है इसी प्रकार केवलज्ञानीका भी उत्कृष्ट काल कहना चाहिये । विशेष यह है कि देवों या नाराकियोंमेंसे आकर, पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें क्षायिकसभ्यत्वके साथ उत्पन्न होकर, गर्भसे आदि लेकर आठ वर्षोंसे संयमको प्राप्त कर, अन्तर्मुहूर्त रहकर, केवलज्ञान उत्पन्न कर और कुछ कम पूर्वकोटि तक विहार करके अबन्धक अवस्थाको प्राप्त हुए जीवके कुछ कम पूर्वकोटि काल पाया जाता है, ऐसा कहना चाहिये ।

जीव संयममार्गणानुसार संयत, परिहारशुद्धिसंयत और संयतासंयत कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १४७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४८ ॥

कुदो ? संजमं परिहारसुद्धिसंजमं संजमासंजमं च गंतूण जहण्णकालमच्छिष्य
अण्णगुणं गदेसु तदुवलंभादो ।

उवकस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ १४९ ॥

कुदो ? मणुस्सस्स गव्भादिअट्टवस्सेहि संजमं पडिवज्जिय देसूणपुव्वकोडिं
संजममणुपालिय कालं काऊण देवेसुप्पणस्स देसूणपुव्वकोडिमेत्तसंजमकालुवलंभादो ।
एवं परिहारसुद्धिसंजदस्स वि उक्कस्सकालो वत्तव्वो । णवरि सव्वसुही होदूण तीसं
वस्साणि गमिय तदो वासपुधत्तेण तित्थयरपादमूले पच्चक्खाणणामधेयपुव्वं पट्टिदूण
पुणो पच्छा परिहारसुद्धिसंजमं पडिवज्जिय देसूणपुव्वकोडिकालमच्छिदूण देवेसुप्पणस्स
वत्तव्वं । एवमट्टतीसवस्सेहि ऊणिया पुव्वकोडी परिहारसुद्धिसंजमस्स कालो वुत्तो ।
के वि आइरिया सोलसवस्सेहि के वि बावीसवस्सेहि ऊणिया पुव्वकोडि ति भणंति ।
एवं संजदासंजस्स वि उक्कस्सकालो वत्तव्वो । णवरि अंतोमुहुत्तपुधत्तेण ऊणिया

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव संयत आदि रहते हैं ॥ १४८ ॥

क्योंकि संयम, परिहारशुद्धिसंयम और संयमासंयमको प्राप्त होकर व जघन्य
काल तक रहकर अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेपर वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक कुछ कम पूर्वकोटि काल तक जीव संयत आदि रहते
हैं ॥ १४९ ॥

क्योंकि, गर्भसे लेकर आठ वर्षोंसे संयमको प्राप्त कर और कुछ कम पूर्वकोटि
वर्ष तक संयमका पालन कर व मरकर देवोंमें उत्पन्न हुए मनुष्यके कुछ कम पूर्वकोटि-
मात्र संयमकाल पाया जाता है । इसी प्रकार परिहारशुद्धिसंयतका भी उत्कृष्ट काल
कहना चाहिये । विशेष इतना कि सर्वसुखी होकर तीस वर्षोंको विताकर, पश्चात्
वर्षपृथक्त्वसे तीर्थंकरके पादमूलमें प्रत्याख्यान नामक पूर्वको पढ़कर पुनः तत्पश्चात् परि-
हारशुद्धिसंयमको प्राप्त कर और कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक रहकर देवोंमें उत्पन्न हुए
जीवके उपर्युक्त कालप्रमाण कहना चाहिये । इस प्रकार अड़तीस वर्षोंसे कम पूर्वकोटि
वर्षप्रमाण परिहारशुद्धिसंयमका काल कहा गया है । कोई आचार्य सोलह वर्षोंसे
और कोई बाईस वर्षोंसे कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण कहते हैं । इसी प्रकार संयतासंयतका
भी उत्कृष्ट काल कहना चाहिये । विशेष यह कि अन्तर्मुहूर्तपृथक्त्वसे कम पूर्वकोटि वर्ष

पुव्वकोडी संजमासंजमस्स कालो ति वत्तव्वं ।

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ?
॥ १५० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ १५१ ॥

उवसमसेडीदो ओयरमाणस्स सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजमादो सामाइय-छेदोवट्ठा-
वणसुद्धिसंजमं पडिवज्जिय तत्थ एगसमयमच्छिय विदियसमए मुदस्स एगसमओ-
वलंभादो ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ १५२ ॥

पुव्वकोडाउअमणुस्सस्स गब्भादिअट्ठवस्सेहि सामाइय-छेदोवट्ठाणियसुद्धिसंजमं
पडिवज्जिय अट्ठवस्सणपुव्वकोडिं विहरिय देवेसुप्पणस्स तदुवलंभादो ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥१५३॥

संयमासंयमका काल होता है, ऐसा कहना चाहिये ।

जीव सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत कितने काल तक रहते हैं ? ॥१५०॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत रहते
हैं ॥ १५१ ॥

उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवके सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयमसे सामायिक-
छेदोपस्थापनशुद्धिसंयमको प्राप्त कर और उसमें एक समय तक रहकर द्वितीय
समयमें मरनेपर एक समय पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण काल तक जीव सामायिक-
छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १५२ ॥

पूर्वकोटि वर्षप्रमाण आयुवाले मनुष्यके गर्भादि आठ वर्षोंसे सामायिक-
छेदोपस्थानिकशुद्धिसंयमको प्राप्त कर और आठ वर्ष कम पूर्वकोटि वर्ष तक बिहार
करके देवोंमें उत्पन्न होनेपर वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १५३ ॥

सुगमं ।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १५४ ॥

कुदो ? चडंतो वा अणियट्ठी उवसमओ उवसंतकंसाओ वा सुहुमसांपराइयसुद्धि-
संजदो जादो, तत्थ एगसमयमाच्छिय विदियसमए मुदस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५५ ॥

सुहुमसांपराइयगुणट्ठाणम्मि अंतोमुहुत्तादो अहियकालमवट्ठाणाभावा ।

खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५६ ॥

कुदो ? सुहुमसांपराइयखवगस्स मरणाभावादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५७ ॥

सुगमं ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १५८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमकी अपेक्षा कमसे कम एक समय तक जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत
रहते हैं ॥ १५४ ॥

क्योंकि, चढ़ता हुआ अनिवृत्तिकरण उपशमक अथवा उपशान्तकषाय जीव
सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत हुआ, वहाँ एक समय रहकर द्वितीय समयमें मरणको प्राप्त
हुए उसके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत रहते
हैं ॥ १५५ ॥

क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानमें अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक अवस्थान
ही नहीं होता ।

क्षपककी अपेक्षा कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धि-
संयत रहते हैं ॥ १५६ ॥

क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत क्षपकके मरणका अभाव है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत रहते
हैं ॥ १५७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जीव यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १५८ ॥

सुगमं ।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १५९ ॥

कुदो ? सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदस्स उवसंतकसायत्तं पडिवज्जिय एगसमयमच्छिय विदियसमए मुदस्स एगसमओवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १६० ॥

कुदो ? उवसंतकसायस्स अंतोमुहुत्तादो अ हियकालाभावा ।

खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १६१ ॥

कुदो ? खवगसेडिं चडिय खीणकसायट्ठणे जहाक्खादसंजमं पडिवज्जिय सजोगी होदूण अंतोमुहुत्तेण अबंधगत्तं गदस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ १६२ ॥

कुदो ? गव्भादिअडुवस्साणि गमिय संजमं वेत्तूण सव्वलहुएण कालेण मोहणीयं

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमकी अपेक्षा कमसे कम एक समय तक जीव यथाख्यातविहारशुद्धि-संयत रहते हैं ॥ १५९ ॥

क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतके उपशान्तकषायत्वको प्राप्त होकर और एक समय रहकर द्वितीय समयमें मरण करनेपर एक समय काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १६० ॥

क्योंकि, उपशान्तकषायका अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल है ही नहीं ।

क्षपककी अपेक्षा कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव यथाख्यातविहारशुद्धि-संयत रहते हैं ॥ १६१ ॥

क्योंकि, क्षपकश्रेणीपर चढ़कर क्षीणकषाय गुणस्थानमें यथाख्यातसंयमको प्राप्त कर और फिर सयोगी होकर अन्तर्मुहूर्तसे अबन्धक अवस्थाको प्राप्त हुए जीवके वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक जीव यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १६२ ॥

क्योंकि, गर्भादि आठ वर्षोंको विताकर संयमको प्राप्त कर, सर्वलघु कालसे

खविय जहाकखादसंजदो होदूण देखणपुव्वकोडिं विहरिय अबंधगतं गदस्स तदुवलंभादो ।

असंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १६३ ॥

सुगमं ।

अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ १६४ ॥

अभवियं पडुच्च एसो णिद्दसो ।

अणादिओ सपज्जवसिदो ॥ १६५ ॥

भवियं पडुच्च एसो णिद्दसो ।

सादिओ सपज्जवसिदो ॥ १६६ ॥

सादि-सांतमसंजमं पडुच्च एसो णिद्दसो ।

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्दसो—जहणणेण
अंतोमुहुत्तं ॥ १६७ ॥

कुदो ? संजदस्स परिणामपच्चएण असंजमं गंतूण तत्थ सच्चजहणमंतोमुहुत्त-
मच्छिय संजमं गदस्स जहणकालुवलंभादो ।

मोहनीयका क्षय कर, यथाख्यातसंयत होकर और कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक विहार
कर अबन्धक अवस्थाको प्राप्त हुए जीवके वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

जीव असंयत कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १६३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंयत जीवोंका काल अनादि-अनन्त है ॥ १६४ ॥

यह निर्देश अभव्य जीवकी अपेक्षासे किया गया है ।

असंयतोंका काल अनादि-सान्त है ॥ १६५ ॥

यह निर्देश भव्य जीवकी अपेक्षासे किया गया है ।

असंयतोंका काल सादि-सान्त है ॥ १६६ ॥

यह निर्देश सादि-सान्त असंयमकी अपेक्षा किया गया है ।

जो वह सादि-सान्त असंयम है उसका इस इकार निर्देश है—कमसे कम अन्त-
मुहूर्त काल तक जीव असंयत रहते हैं ॥ १६७ ॥

क्योंकि, संयत जीवके परिणामोंके निमित्तसे असंयमको प्राप्त होकर और वहां
सर्वजघन्य अन्तमुहूर्त काल तक रहकर पुनः संयमको प्राप्त करनेपर उक्त जघन्य काल
पाया जाता है ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १६८ ॥

कुदो ? अद्धपोग्गलपरियट्टस्स आदिसमए संजमं वेत्तूण उवसमसम्मत्तद्वाए छावलियावसेसाए असंजमं गंतूण उवद्धपोग्गलपरियट्टं परियट्टिदूण पुणो तिण्णि करणाणि कादूण संजमं पडिवण्णस्स तदुवलंभादो ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १६९ ॥
सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७० ॥

कुदो ? अचक्खुदंसणेण ट्टिदस्स चक्खुदंसणं गंतूण जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो अचक्खुदंसणं गदस्स तदुवलंभादो । चउरिंदियअपज्जत्तएसु उप्पाइय सुदाभवग्गहणं जहण्णकालो ति किण्ण परूविदं ? ण, चक्खुदंसणीअपज्जत्तएसु सुदाभवग्गहणमेत्तजहण्ण-कालाणुवलंभादो ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि ॥ १७१ ॥

अधिकसे अधिक कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक जीव असंयत रहते हैं ॥ १६८ ॥

क्योंकि, अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें संयमको ग्रहण कर उपशम-सम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां शेष रहनेपर असंयमको प्राप्त होकर कुछ कम अर्ध-पुद्गलपरिवर्तन भ्रमण कर पुनः तीन करणोंको करके संयमको प्राप्त हुए जीवके वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

दर्शनमार्गानुसार जीव चक्षुदर्शनी कितने काल तक रहते हैं ॥ १६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव चक्षुदर्शनी रहते हैं ॥ १७० ॥

क्योंकि, अचक्षुदर्शन सहित स्थित जीवके चक्षुदर्शनी होकर कमसे कम अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः अचक्षुदर्शनी होनेपर अचक्षुदर्शनका अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो जाता है ।

शंका—किसी जीवको चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें अर्थात् लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न कराकर चक्षुदर्शनका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणमात्र क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

समाधान—नहीं किया, क्योंकि, चक्षुदर्शनी अपर्याप्तकोंमें क्षुद्रभवग्रहणमात्र जघन्य काल नहीं पाया जाता । (देखो जीवट्टाण, कालानुगम, सूत्र २७८ टीका) ।

अधिकसे अधिक दो हजार सागरोपम काल तक जीव चक्षुदर्शनी रहता है ॥ १७१ ॥

एइंदिओ बेइंदिओ तेइंदिओ चउरिंदियादिसु उप्पज्जिय बेसागरोवमसहस्साणि परिभमिय अचक्खुदंसणीसु उप्पणस्सुवलंभादो । चक्खुदंसणक्खओवसमस्स एसो कालो णिदिट्ठो । उवजोगं पुण पट्टुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोप्पुट्टुचमेत्तो चव ।

अचक्खुदंसणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १७२ ॥

सुगमं ।

अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ १७३ ॥

अभवियमभवियसमाणभवियं वा पट्टुच्च एसो णिदेसो । कुदो ? अचक्खुदंसणक्खओवसमरहिदच्छदुमत्थाणमणुवलंभादो ।

अणादिओ सपज्जवसिदो ॥ १७४ ॥

णिच्छण सिज्जमाणभवियजीवं पट्टुच्च एसो णिदेसो । अचक्खुदंसणस्स सादित्तं णात्थि, केवलदंसणादो अचक्खुदंसणसागच्छंताणमभावादो ।

ओधिदंसणी ओधिणाणीभंगो ॥ १७५ ॥

क्योंकि, किसी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय व त्रीन्द्रिय जीवके चतुरिन्द्रियादि जीवोंमें उत्पन्न होकर दो हजार सागरोपम काल तक परिभ्रमण करके अचक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न होनेपर चक्षुदर्शनका दो हजार सागरोपम काल प्राप्त हो जाता है । यह काल चक्षुदर्शनके क्षयोपशमका कहा गया है । उपयोगकी अपेक्षा तो चक्षुदर्शनका जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है ।

जीव अचक्षुदर्शनी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १७२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जीव अनादि अनन्त भी अचक्षुदर्शनी होता है ॥ १७३ ॥

अभव्य या अभव्यके समान भव्यकी अपेक्षासे यह निर्देश किया गया है, क्योंकि अचक्षुदर्शनके क्षयोपशमसे रहित छद्मस्थ जीव पाये नहीं जाते ।

जीव अनादि सान्त भी अचक्षुदर्शनी होता है ॥ १७४ ॥

यह निर्देश निश्चयसे सिद्ध होनेवाले भव्य जीवकी अपेक्षा किया गया है । अचक्षुदर्शन सादि नहीं होता, क्योंकि केवलदर्शनसे पुनः अचक्षुदर्शनमें आनेवाले जीवोंका अभाव है ।

अवधिदर्शनीकी कालप्ररूपणा अवधिज्ञानीके समान है ॥ १७५ ॥

कुदो ? ओहिणाणिस्सेव जहण्णेण अंतोमुहुत्तस्स, उक्कस्सेण सादिरेयछावट्टिसाग-
रोवमाणमुवलंभादो ।

केवलदंसणी केवलणाणीभंगो ॥ १७६ ॥

कुदो ? केवलणाणीणं (व) जहण्णुक्कस्सपदेहि अंतोमुहुत्त-देसूणपुव्वकोडीणं
केवलदंसणीणमुवलंभादो ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिया केवचिरं
कालादो होंति ? ॥ १७७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७८ ॥

कुदो ? अणप्पिदलेस्सादो अविरोद्धादो अण्णिदलेस्समागंतूणं सव्वजहण्णमंतोमुहुत्त-
मच्छियं अविरोद्धलेस्संतरं गयस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि सादिरेयाणि
॥ १७९ ॥

क्योंकि, अवधिज्ञानीके समान अवधिदर्शनका भी कमसे कम अन्तर्मुहूर्त और
अधिकसे अधिक सातिरेक छयासठ सागरोपम काल पाया जाता है ।

केवलदर्शनीकी कालप्ररूपणा केवलज्ञानीके समान है ॥ १७६ ॥

क्योंकि, केवलज्ञानियोंके समान केवलदर्शनी जीवोंका भी जघन्य काल अन्त-
र्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि पाया जाता है ।

लेश्यामार्गणानुसार जीव कृष्णलेश्या, नीललेश्या व कापोतलेश्यावाले कितने
काल तक रहते हैं ? ॥ १७७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव कृष्णलेश्या, नीललेश्या व कापोतलेश्या-
वाले रहते हैं ॥ १७८ ॥

क्योंकि, अविवक्षित अविरोद्ध लेश्यासे विवक्षित लेश्यामें आकर सबसे कम
अन्तर्मुहूर्त काल रहकर अन्य अविरोद्ध लेश्यामें जानेवाले जीवके उक्त लेश्याओंका
अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त होता है ।

अधिकसे अधिक सातिरेक तेत्तीस, सत्तर व सात सागरोपम काल तक जीव
कृष्ण, नील व कापोत लेश्यावाले रहते हैं ॥ १७९ ॥

कुदो ? तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा किण्ह-णील-काउलेस्साहि सञ्जुक्कस्समतोमुहुत्त-
मच्छिय पुणो तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाउट्टिदिणेरइएसु उपज्जिय किण्ह-णील-काउ-
लेस्साहि सह अप्पणो आउट्टिदिमच्छिय तत्तो णिप्फिडिंदूण अंतोमुहुत्तकालं ताहि चेव
लेस्साहि गमेदूण अविरुद्धलेस्संतरं गदस्स दोहि अंतोमुहुत्तेहि समहियतेत्तीस-सत्तारस-
सत्तसागरोवममेत्ततिलेस्साकालुवलंभादो ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ?

॥ १८० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८१ ॥

कुदो ? अणप्पिदलेस्सादो अविरुद्धादो अप्पिदलेस्सं गंतूण तत्थ जहणमंतो-
मुहुत्तमच्छिय अविरुद्धलेस्संतरं गयस्स जहणकालदंसणादो ।

उक्कस्सेण बे-अट्टारस-तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १८२ ॥

क्योंकि, तिर्यंचों या मनुष्योंमें कृष्ण, नील व कापोतलेश्या सहित सबसे अधिक
अन्तर्मुहूर्त काल रहकर फिर तेत्तीस, सत्तरह व सात सागरोपम आयुस्थितिवाले
नारकियोंमें उत्पन्न होकर कृष्ण, नील व कापोत लेश्याओंके साथ अपनी अपनी आयु-
स्थितिप्रमाण रहकर वहांसे निकल अन्तर्मुहूर्त काल उन्हीं लेश्याओं सहित व्यतीत करके
अन्य अविरुद्ध लेश्यामें गये हुए जीवके उक्त तीन लेश्याओंका दो अन्तर्मुहूर्त सहित
क्रमशः तेत्तीस, सत्तरह व सात सागरोपममात्र काल पाया जाता है ।

जीव तेजलेश्या, पद्मलेश्या व शुक्ललेश्यावाले कितने काल तक रहते हैं ?

॥ १८० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्रमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव तेज, पद्म व शुक्ल लेश्यावाले रहते हैं

॥ १८१ ॥

क्योंकि, अविवक्षित अविरुद्ध लेश्यासे विवक्षित लेश्यामें जाकर वहां कमसे
कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर अन्य अविरुद्ध लेश्यामें जानेवाले जीवके उक्त
लेश्याओंका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य काल देखा जाता है ।

अधिकसे अधिक सातिरेक दो, अठारह व तेत्तीस सागरोपम काल तक जीव
क्रमशः तेज, पद्म व शुक्ल लेश्यावाले रहते हैं ॥ १८२ ॥

कुदो ? तेउ पम्म-सुक्कलेस्साहि सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमेत्तमच्छिय पुणो जहाकमेण अट्ठाइज्ज-साट्ठड्ढारस-तेत्तीससागरोपमाउट्ठिदिएसु देवेसुप्पज्जिय अवट्ठिदलेस्साहि सग-सगाउट्ठिदिमणुपालिय तत्तो च'विय' अंतोमुहुत्तकालं ताहि चेव लेस्साहि अच्छिय अविरुद्ध-लेस्संतरं गयस्स सगसगुक्कस्सकालाणमुवलंभादो ।

भवियाणुवादेण भावसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥१८३॥

सुगमं ।

अणादिओ सपज्जवसिदो ॥ १८४ ॥ -

कुदो ? अणाइसरूवेणागयस्स भवियभावस्स अजोगिचरिमसमए विणासुवलंभादो । अभवियसमाणो वि भवियजीवो अत्थि त्ति अणादिओ अपज्जवसिदो भवियभावो किण्ण परूविदो ? ण, तत्थ अविणाससत्तीए अभावादो । सत्तीए चेव एत्थ अहियारो, वत्तीए

क्योंकि, तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याओं सहित सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तमात्र रहकर पुनः यथाक्रमसे अढ़ाई, साढ़े अठारह व तेतीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर अवस्थित लेश्याओं सहित अपनी अपनी आयुस्थितिको पूरी करके वहाँसे निकल कर अन्तर्मुहूर्त काल तक उन्हीं लेश्याओं सहित रहकर अन्य अविरुद्ध लेश्यामें गये हुए जीवके उक्त लेश्याओंका अपना अपना उत्कृष्ट काल प्राप्त हो जाता है ।

भव्यभार्गणानुसार जीव भव्यसिद्धिक कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १८३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जीव अनादि सान्त भव्यसिद्धिक होता है ॥ १८४ ॥

क्योंकि, अनादि स्वरूपसे आये हुए भव्यभावका अयोगिकेवलीके अन्तिम समयमें विनाश पाया जाता है ।

शंका—अभव्यके समान भी तो भव्य जीव होना है, तब फिर भव्यभावको अनादि और अनन्त क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

समाधान—नहीं किया, क्योंकि भव्यत्वमें अविनाश शक्तिका अभाव है । अर्थात् यद्यपि अनादिसे अनन्त काल तक रहनेवाले भव्य जीव हैं तो सही, पर उनमें शक्ति रूपसे तो संसारविनाशकी संभावना है, अविनाशत्वकी नहीं ।

शंका—यहां भव्यत्वशक्तिका अधिकार है, उसकी व्यक्तिका नहीं, यह कैसे

णत्थि ति कथं णव्वदे ? अणादि-सपज्जवसिदसुत्तण्णाणुववत्तीदो ।

सादिओ सपज्जवसिदो ॥ १८५ ॥

अभविओ भवियभावं ण गच्छदि, भवियाभवियभावाणमच्चंताभावपडिग्गहियाण-
मेयाहियरणत्तविरोहादो । ण सिद्धो भविओ होदि, णट्ठासेसासवाणं पुणरुप्पत्तिविरोहादो ।
तम्हा भवियभावो ण सादि त्ति ? ण एस दोसो, पज्जवट्ठियणयावलंबणादो अप्पडिवण्णे
सम्मत्ते अणादि-अणंतो भवियभावो अंतादीदसंसारादो; पडिवण्णे सम्मत्ते अण्णो भवियभावो
उप्पज्जइ', पोग्गलपरियट्ठस्स अद्धमेत्तसंसारावट्ठाणादो । एवं समऊण-दुसमऊणादिउवट्ठु-
पोग्गलपरियट्ठसंसाराणं जीवाणं पुध्व पुध्व भवियभावो वत्तव्वो । तदो सिद्धं भवियाणं
सादि-सांतत्तमिदि ।

अभवियसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १८६ ॥

जाना जाता है ?

समाधान—भव्यत्वको अनादि-सपर्यवसित कहनेवाले सूत्रकी अन्यथा उपपत्ति
बन नहीं सकती, इसीसे जाना जाता है कि यहां भव्यत्व शक्तिसे अभिप्राय है ।

जीव सादि सान्त भव्यसिद्धिक भी होता है ॥ १८५ ॥

शंका—अभव्य भव्यत्वको प्राप्त हो नहीं सकता, क्योंकि भव्य और अभव्य
भाव एक दूसरेके अत्यन्ताभावको धारण करनेवाले होनेसे एक ही जीवमें क्रमसे भी
उनका अस्तित्व माननेमें विरोध आता है । सिद्ध भी भव्य होता नहीं है, क्योंकि जिन
जीवोंके समस्त कर्मास्त्रव नष्ट होगये हैं उनके पुनः उन कर्मास्त्रवोंकी उत्पत्ति माननेमें
विरोध आता है । अतः भव्यत्व सादि नहीं हो सकता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि पर्यायार्थिक नयके अवलम्बनसे
जब तक सम्यक्त्व ग्रहण नहीं किया तब तक जीवका भव्यत्व अनादि-अनन्त रूप है,
क्योंकि, तब तक उसका संसार अन्तरहित है । किन्तु सम्यक्त्वके ग्रहण कर लेनेपर
अन्य ही भव्यभाव उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि, सम्यक्त्व उत्पन्न होजानेपर फिर
केवल अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र काल तक संसारमें स्थिति रहती है । इसी प्रकार एक
समय कम उपार्धपुद्गलपरिवर्तन संसारवाले, दो समय कम उपार्धपुद्गलपरिवर्तन संसार-
वाले आदि जीवोंके पृथक् पृथक् भव्यभावका कथन करना चाहिये । इस प्रकार यह सिद्ध
हो जाता है कि भव्य जीव सादि-सान्त होते हैं ।

जीव अभव्यसिद्धिक कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १८६ ॥

१ प्रतिषु 'उप्पज्जिय' इति पाठः ।

सुगमं ।

अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ १८७ ॥

अभवियभावो णाम वियंजणपज्जाओ, तेणेदस्स विणासेण होदव्वमण्णहा दव्वत्तप्पसंगादो त्ति? होदु वियंजणपज्जाओ, ण च वियंजणपज्जायस्स सव्वस्स विणासेण होदव्वमिदि णियमो अत्थि, एयंतवादप्पसंगादो । ण च ण विणस्सदि त्ति दव्वं होदि, उप्पाय-द्विदि-भंगसंगयस्स दव्वभावब्भुवगमादो ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? ॥ १८८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८९ ॥

कुदो? मिच्छादिद्विस्स बहुसो सम्मत्तपज्जाएण परिणमियस्स सम्मत्तं गंतूण जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गयस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण छावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जीव अनादि-अनन्त काल तक अभव्यसिद्धिक रहते हैं ॥ १८७ ॥

शंका—अभव्यभाव जीवकी एक व्यंजनपर्यायका नाम है, इसलिये उसका विनाश अवश्य होना चाहिये, नहीं तो अभव्यत्वके द्रव्य होनेका प्रसंग आजायगा ?

समाधान—अभव्यत्व जीवकी व्यंजनपर्याय भले ही हो, पर सभी व्यंजनपर्यायका अवश्य नाश होना चाहिये, ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेसे एकान्त-वादका प्रसंग आजायगा । ऐसा भी नहीं है कि जो वस्तु विनष्ट नहीं होती वह द्रव्य ही होना चाहिये, क्योंकि जिसमें उत्पाद, ध्रौव्य और व्यय पाये जाते हैं उसे द्रव्य रूपसे स्वीकार किया गया है ।

सम्यक्त्वमार्गणानुसार जीव सम्यग्दृष्टि कितने काल तक रहते हैं? ॥ १८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ १८९ ॥

क्योंकि, जिसने अनेक वार सम्यक्त्व पर्याय प्राप्त कर ली है ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वको जाकर कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर मिथ्यात्वको जानेपर सम्यग्दर्शनका अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो जाता है ।

अधिकसे अधिक सातिरेक छ्यासठ सागरोपम काल तक जीव सम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ १९० ॥

कुदो ? तिण्णि करणाणि कादूण पढमसम्मत्तं घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय वेदग-
सम्मत्तं पडिवज्जिय तत्थ तीहि पुव्वकोडीहि समहियवादालीससागरोवमाणि गमिय
खइयं पडुविय चउवीससागरोवमाउडुदिपसु देवेसुप्पज्जिय पुणो पुव्वकोडिआउडुदि-
मणुस्सेसुप्पज्जिय अवसाणे अबंधगत्तं गयस्स तदुवलंभादो ।

खइयसम्माइट्टी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १९१ ॥

सुगमं ।

जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९२ ॥

कुदो ? वेदगसम्मादिट्टिस्स दंसणमोहणीयं खविय खइयसम्मत्तं पडिवज्जिय
जहणकालेण अबंधगत्तं गयस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १९३ ॥

कुदो ? चउवीससंतकम्मियसम्माइडिदेवस्स णेरइयस्स वा पुव्वकोडाउअमणुस्सेसु-

क्योंकि, किसी 'जीवने तीनों' करण करके प्रथम सम्यक्त्व ग्रहण किया और
अन्तर्मुहूर्त काल रहकर वेदकसम्यक्त्व धारणकर लिया। वहां तीन कोटि अधिक
ब्यालीस सागरोपम काल व्यतीत करके क्षायिकसम्यक्त्व स्थापित किया और चौबीस
सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् पूर्वकोटि आयुस्थितिवाले
मनुष्योंमें उत्पन्न होकर आयुके अन्त समयमें अबन्धकभाव प्राप्त कर लिया। ऐसे जीवके
सम्यग्दर्शनका सातिरेक (चार पूर्वकोटि अधिक) छयासठ सागरोपमप्रमाण काल प्राप्त
हो जाता है।

जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १९१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ १९२ ॥

क्योंकि, वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके दर्शनमोहनायका क्षपण करके क्षायिकसम्य-
क्त्वको उत्पन्न कर जघन्य कालसे अबन्धकभावको प्राप्त होनेपर अन्तर्मुहूर्त काल पाया
जाता है।

अधिकसे अधिक सातिरेक तेत्तीस सागरोपमप्रमाण काल तक जीव क्षायिक-
सम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ १९३ ॥

क्योंकि, जब चौबीस कर्मोंकी सत्तावाला सम्यग्दृष्टि देव या नारकी पूर्वकोटि

पुण्यस्स गढभादिअट्टवस्साणमंतोमुहुत्तमहियाणं उवरि खइयं पट्टविय देसूणपुव्वकोडि-
मच्छिय तेत्तीसाउट्टिदिदेवेसुप्पज्जिय पुणो पुव्वकोडिआउट्टिदिमणुस्सेसुप्पज्जिय अंतो-
मुहुत्तावसेसे संसारे अबंधभावं गयस्स दांतोमुहुत्ताहियअट्टवस्साणदोपुव्वकोडीहि
साहियतेत्तीसागरोवमाणमुवलंभादो ।

वेदगसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ॥ १९४ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९५ ॥

मिच्छाइट्ठिस्स दिट्ठमग्गस्स सम्मत्तं घेत्तूण जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं
गयस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण छावट्टिसागरोवमाणि ॥ १९६ ॥

कुदो ? उवसमसम्मत्तादो वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय सेसथुंजमाणाउएणुणवीस-
सागरोवमाउट्टिदिएसु देवेसुववज्जिय तदो मणुस्सेसुववज्जिय पुणो मणुस्साउएणुणवावीस-

आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, गर्भसे आठ वर्ष व अन्तर्मुहूर्त अधिक हो जानेपर
क्षायिकसम्यक्त्वको स्थापित करता है और कुछ कम पूर्वकोटि तक रहकर तेतीस
सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर पुनः पूर्वकोटि आयुस्थितिवाले
मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त मात्र संसारकालके अवशेष रहनेपर अवबन्धकभावको
प्राप्त हो जाता है, तब उसके क्षायिकसम्यक्त्वका काल दो अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्ष
कम दो पूर्वकोटि सहित तेतीस सागरोपमप्रमाण पाया जाता है ।

जीव वेदकसम्यग्दृष्टि कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १९४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव वेदकसम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ १९५ ॥

क्योंकि, सन्मार्ग प्राप्त करलेनेवाले मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व ग्रहण करके कमसे
कम अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः मिथ्यात्वमें चले जानेपर वेदकसम्यक्त्वका अन्तर्मुहूर्त काल
प्राप्त हो जाता है ।

अधिकसे अधिक छयासठ सागरोपम काल तक जीव वेदकसम्यग्दृष्टि रहते हैं
॥ १९६ ॥

क्योंकि, एक जीव उपशमसम्यक्त्वसे वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर शेष
भुज्यमान आयुसे कम बीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । फिर वहांसे
मनुष्योंमें उत्पन्न होकर पुनः मनुष्यायुसे कम बावीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें

सागरोवमाउद्विदिएसु देवेसुप्वज्जिय पुणो मणुस्सगदिं गंतूण भुंजमाणमणुस्साउएण
दंसणमोहकखवणपेरंतंभुंजिस्समाणमणुसाउएण च ऊणचउवीससागरोवमाउद्विदिएसु
देवेसुप्वज्जिय मणुस्सगदिंमांगंतूण तत्थ वेदगसम्मत्तकालो. अंतोमुहुत्तमेत्तो अत्थि त्ति
दंसणमोहकखवणं पट्टविय कदकरणिज्जो होदूण कदकरणिज्जचरिममए द्विदस्स छावद्वि-
सागरोवममेत्तकालुवलंभादो ।

उवसमसम्मादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी केवचिरं कालादो होंति ?

॥ १९७ ॥

सुगमं ।

जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९८ ॥

कुदो ? मिच्छादिद्विस्स पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय छावलियावसेसे सासणं गदस्स
तदुवलंभादो । एवं सम्मामिच्छादिद्विस्स वि जहणणकालो वत्तव्वो । णवरि मिच्छत्तादो
वेदगसम्मत्तादो वा सम्मामिच्छत्तं गंतूण जहणणकालमच्छिय गुणंतरं गदो त्ति वत्तव्वं ।

उत्पन्न हुआ । वहाँसे पुनः मनुष्यगतिमें जाकर भुज्यमान मनुष्यायुसे तथा दर्शन-
मोहके क्षपण पर्यन्त आगे भोगी जानेवाली मनुष्यायुसे कम चौबीस सागरोपम
आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे पुनः मनुष्यगतिमें आकर वहाँ वेदक-
सम्यक्त्वकालके अन्तर्मुहूर्तमात्र रहनेपर दर्शनमोहके क्षपणको स्थापितकर कृतकरणीय
हो गया । ऐसे कृतकरणीयके अन्तिम समयमें स्थित जीवके वेदकसम्यक्त्वका छथासठ
सागरोपममात्र काल पाया जाता है ।

जीव उपशमसम्यग्दृष्टि व सम्यग्मिथ्यादृष्टि कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव उपशमसम्यग्दृष्टि व सम्यग्मिथ्यादृष्टि
रहते हैं ॥ १९८ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवके प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त कर प्रथमोपशमसम्यक्त्वके
कालमें छह आवली शेष रहनेपर सासन्न गुणस्थानमें जानेपर उपशमसम्यक्त्वका
अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टिका भी जघन्य काल कहना
चाहिये । केवल विशेषता यह है कि मिथ्यात्वसे या वेदकसम्यक्त्वसे सम्यग्मिथ्यात्वमें
जाकर व जघन्य काल वहाँ रहकर अन्य गुणस्थानमें जानेपर सम्यग्मिथ्यात्वका अन्त-
र्मुहूर्तमात्र जघन्य काल पाया जाता है, ऐसा कहना चाहिये ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९९ ॥

सुगममेदं ।

सासणसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २०० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एयसमओ ॥ २०१ ॥

उवसमसम्मत्तद्वाए एगसमयावसेसे सासणं गदस्स सासणगुणस्स एगसमय-
कालोवलंभादो । जेतिया उवसमसम्मत्तद्वा एगसमयमादिं कादूण जावुक्कस्सेण
छावलियाओ त्ति अवसेसा अत्थि तत्तिया चेव सासणगुणद्वावियप्पा होंति । उवसम-
सम्मत्तकालं संपुण्णमच्छिदो सासणगुणं ण पडिवज्जदित्ति कधं णव्वदे ? एदम्हादो चेव
सुत्तादो, आइरियपरंपरागदुव्वदेसादो च ।

उक्कस्सेण छावलियाओ ॥ २०२ ॥

सुगमं ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव उपशमसम्यग्दृष्टि व सम्यग्मिध्या-
दृष्टि रहते हैं ॥ १९९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जीव सासादनसम्यग्दृष्टि कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २०० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव सासादनसम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ २०१ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहनेपर सासादान गुणस्था-
नमें जानेवाले जीवके सासादन गुणस्थानका एक समय काल पाया जाता है । एक
समयसे प्रारम्भ कर अधिकसे अधिक छह आवलियों तक जितना उपशमसम्यक्त्वका
काल शेष रहता है, उतने ही सासादनगुणस्थानकालके विकल्प होते हैं ।

शंका—जो जीव उपशमसम्यक्त्वके संपूर्ण काल तक उपशमसम्यक्त्वमें रहा है
वह सासादन गुणस्थानमें नहीं जाता, यह कैसे जाना ?

समाधान—प्रस्तुत सूत्रसे ही तथा आचार्यपरम्परागत उपदेशसे भी पूर्वोक्त
बात जानी जाती है ।

अधिकसे अधिक छह आवली काल तक जीव सासादनसम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ २०२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मिच्छादिद्वी मदिअण्णाणीभंगो ॥ २०३ ॥

जहा मदिअण्णाणिसस अणादिअपज्जवसिद-अणादिसपज्जवसिद-सादिसपज्जवसिदवियप्पा बुत्ता तथा एदस्स वि वत्तव्वा । सादि-सपज्जवसिदअण्णाणस्स कालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण उवड्डुपोग्गलपरियड्डं जधा बुत्तं तथा मिच्छत्तस्स वि वत्तव्वं ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २०४ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ २०५ ॥

कुदो ? असण्णीहितो सण्णिअपज्जत्तएसुप्पज्जिय खुद्दाभवग्गहणमच्छिय असण्णित्तं गदस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ २०६ ॥

असण्णीहितो सण्णीसुप्पज्जिय सागरोवमसदपुधत्तं तत्थेव परिभमिय णिग्गयस्स तदुवलंभादो ।

मिथ्यादृष्टि जीवोंकी कालप्ररूपणा मतिअज्ञानी जीवोंके समान है ॥ २०३ ॥

जिस प्रकार मतिअज्ञानी जीवके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त, ये तीन विकल्प बतलाये गये हैं, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवके भी कहना चाहिये । जिस प्रकार सादि-सान्त अज्ञानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र बतलाया गया है, उसी प्रकार मिथ्यात्वका भी कहना चाहिये ।

संज्ञीमार्गणानुसार जीव कितने काल तक संज्ञी रहते हैं ? ॥ २०४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक जीव संज्ञी रहते हैं ॥ २०५ ॥

क्योंकि, असंज्ञी जीवोंमेंसे निकलकर संज्ञी अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल रहकर पुनः असंज्ञीभावको प्राप्त हुए जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक सागरोपमशतपृथक्त्वमात्र काल तक जीव संज्ञी रहते हैं ॥ २०६ ॥

क्योंकि, असंज्ञी जीवोंमेंसे निकलकर संज्ञियोंमें उत्पन्न हो वहीँपर सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक परिभ्रमण करके निकलनेवाले जीवके संज्ञित्वका सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

असण्णी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २०७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ २०८ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्ठं ॥ २०९ ॥

एदं पि सुगमं ।

आहाराणुवादेण आहारा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २१० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं तिसमयूणं ॥ २११ ॥

तिण्णि विग्गहे काऊण सुहुमेइंदिएसुप्पज्जिय चउत्थसमए आहारी होद्दण भुंज-
माणाउअं कदलीघादेण घादिय अवसाणे विग्गहं करिय णिग्गयस्स तिसमऊणखुदा-
भवग्गहणमेत्ताहारकालुवलंभादो ।

जीव कितने काल तक असंज्ञी रहते हैं ? ॥ २०७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक जीव असंज्ञी रहते हैं ? ॥ २०८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक जीव
असंज्ञी रहते हैं ॥ २०९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

आहारमार्गानुसार जीव आहारक कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २१० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम तीन समयसे हीन क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल तक जीव आहारक
रहते हैं ॥ २११ ॥

क्योंकि, तीन मोड़े लेकर सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें उत्पन्न हो चौथे समयमें
आहारक होकर भुज्यमान आयुको कदलीघातसे छिन्न करके अन्तमें विग्रह करके निक-
लनेवाले जीवके तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र आहारकाल पाया जाता है ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ
ओसपिणी उरत्सपिणीओ ॥ २१२ ॥

कुदो ? विग्गहं काऊण आहारी होदूण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमसंखेज्जा-
संखेज्जाओसपिणि-उरत्सपिणिकालमेत्तं परिभासिय कयविग्गहस्स तदुवलंभादो ।

अणाहारा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २१३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेणेगसमओ ॥ २१४ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तिण्णि समया ॥ २१५ ॥

समुग्घादगयसजोगिग्घि तिण्णिविग्गहकयजीवे वा तदुवलंभादो ।

अंतोमुहुत्तं ॥ २१६ ॥

अजोगिग्घि अणाहारिस्स अंतोमुहुत्तकालुवलंभादो । वंधगाणमेसो कालो कुदो,

अधिकसे अधिक अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात
अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल तक जीव आहारक रहते हैं ॥ २१२ ॥

क्योंकि, विग्रह करके आहारक हो, अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्याता-
संख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल मात्र परिभ्रमण कर विग्रह करनेवाले जीवके सूत्रक
काल पाया जाता है ।

जीव अनाहारक कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २१३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव अनाहारक रहते हैं ॥ २१४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक तीन समय तक जीव अनाहारक रहते हैं ॥ २१५ ॥

क्योंकि, समुद्घात करनेवाले सयोगिकेवली व तीन विग्रह करनेवाले जीवके
अनाहारत्वका तीन समयप्रमाण काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक भी जीव अनाहारक रहते हैं ॥ २१६ ॥

क्योंकि, अयोगिकेवलीके अनाहारकका अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

शंका—यह कालरूपणा बन्धक जीवोंकी अपेक्षा की गई है, किन्तु अयोगी

ण च अजोगी भयवंतो बंधओ, तत्थ आसवाभावादो । ण च अण्णत्थ अणाहारिस्स अंतोमुहुत्तमेत्तो कालो लब्भदि । तदो णेदं षडदि त्ति ? ण एस दोसो, अघाइचउक्ककम्म-योगगलक्खंधाणं लोगमेत्तजीवपदेसाणं च अण्णोण्णबंधमवेक्खिय अजोगीणं पि बंधगतत्तब्भुवगमादो । ण च 'मणुरसा अबंधा वि अत्थि' त्ति एदेण सुत्तेण सह विरोहो, जोग-कसायादीहिंतो जायमाणपच्चग्गबंधाभावं पडुच्च तत्थ तधोवदेसादो ।

एगर्जावेण कालो त्ति समत्तमणिओगहारं ।

भगवान् तो बन्धक नहीं होते, क्योंकि उनके कर्मोंके आस्रवका अभाव है । अन्यत्र कहीं अनाहारी जीवका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल पाया नहीं जाता । अतएव यह अनाहारीका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल घटित नहीं होता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि चार अघातिक कर्मोंके पुद्गल-स्कंधोंका और लोकप्रमाण जीवप्रदेशोंका परस्पर बन्धन देखते हुए अयोगी जिनोंके भी बन्धकभाव स्वीकार किया गया है । ऐसा माननेपर 'मनुष्य अबन्धक भी होते हैं' इस सूत्रसे विरोध भी नहीं आता, क्योंकि उक्त सूत्रमें योग और कषाय आदिसे उत्पन्न होनेवाले नवीन बन्धके अभावकी अपेक्षासे अयोगियोंके अबन्धक होनेका उपदेश किया गया है ।

एक जीवकी अपेक्षा काल नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

एगजीवेण अंतराणुगमे

एगजीवेण अंतराणुगमेण गदियाणुवादेण गिरयगदीए णेरइ-
याणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १ ॥

मूलोघविसयपुच्छा किण्ण कया ? ण, मूलोघपडिबद्धकालपरूवणाभावादो ।
किमिदि तस्स कालो ण वुत्तो ? ण, तस्साणुत्तसिद्धीदो । केवचिरमिदि वुत्ते एग-वे-तिण्णि
जाव अणंतमिदि अंतरपुच्छा कदा होदि । सेसं सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २ ॥

कुदो ? णेरइयस्स गिरयादो गिग्गयस्स तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा गळ्भोवक्कं-
तियपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वजहण्णाउअकालंभंतरे गिरयाउअं बंधिय कालं करिष

एक जीवकी अपेक्षा अन्तरानुगमसे गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकी जीवोंका
अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १ ॥

शंका—यहां मूलोघविषयक अर्थात् गुणस्थानोंकी अपेक्षा कालसम्बन्धी प्रश्न
क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं किया गया, क्योंकि मूलोघसम्बन्धी कालपरूपणा भी तो
नहीं की गयी ।

शंका—मूलोघसम्बन्धी काल क्यों नहीं बतलाया गया ?

समाधान—नहीं बतलाया गया, क्योंकि बिना बतलाये भी उसके ज्ञानकी
सिद्धि हो जाती है ।

‘कितने काल तक’ ऐसा कहनेपर क्या एक समय अन्तर होता है, क्या दो
समय, क्या तीन समय, इस प्रकार अनन्त समयों तककी अन्तरसम्बन्धी पृच्छा की
गयी है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक नरकगतिसे नारकी जीवोंका अन्तर होता
है ॥ २ ॥

क्योंकि, नरकसे निकलकर गर्भोपक्रान्तिक तिर्यच जीवोंमें अथवा मनुष्योंमें
उत्पन्न हो सबसे कम आयुके भीतर नरकायुको बांध, मरण कर पुनः नरकोंमें उत्पन्न

णेरइयस्स गिरयादो गिग्गंतूण अणप्पिदगदीसु आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-
पोग्गलपरियड्ढे परियट्ठिदूण पच्छा गिरएसुववण्णस्त बुत्तंतकवलंभादो ।

एवं सत्तसु पुटवीसु णेरइया ॥ ४ ॥

णेरइया इदि बुत्ते णेरइयाणं ति वेत्तव्वं । सत्तसु पुटवीसु णेरइयाणं तिरिक्ख-
मणुस्सगठभोवककंतिपज्जत्तएसुप्पज्जिय सव्वजहण्णसंतोसुहुत्तमच्छिय अप्पिदगिरएसु-
प्पण्णस्स अंतकाले सरिसो ति बुत्तं होदि ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खाणं इरं केवचिरं काज्जदो होदि ? ॥ ५ ॥
सुगमं ।

हुए नारकी जीवके नरकगतिसे अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक अंतर्मुहूर्तमात्र पुद्गलपरिवर्तनकाल अनन्त काल तक नरकगतिसे
नारकी जीवोंका अन्तर होता है ॥ ३ ॥

क्योंकि, नारकी जीवके नरकसे निकलकर अविवक्षित गतियोंमें आवलीके
असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण करके पश्चात् पुनः नरकोंमें उत्पन्न
होनेपर सूत्रोक्त अन्तरका प्रमाण पाया जाता है ।

इस प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी जीवोंका नरकगतिसे अन्तर होता
है ॥ ४ ॥

सूत्रमें जो 'णेरइया' अर्थात् 'नारकी' ऐसा प्रथमान्त पद है उससे 'णेरइयाणं'
अर्थात् 'नारकी जीवोंका' ऐसा सम्बन्धसूचक अर्थ ग्रहण करना चाहिये । सातों ही
पृथिवियोंमें नारकी जीवोंके गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त तिर्यचों व मनुष्योंमें उत्पन्न होकर
सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रहकर विवक्षित नरकोंमें उत्पन्न हुए जीवका अन्तरकाल
सदृश ही होता है, ऐसा प्रस्तुत सूत्रके द्वारा कहा गया है ।

तिर्यचगतिसे तिर्यच जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ६ ॥

तिरिक्खेहितो मणुस्सेसुप्पज्जिय घादखुदाभवग्गहणमेत्तकालमच्छिय पुणो
तिरिक्खेसुप्पणस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तां ॥ ७ ॥

तिरिक्खस्स तिरिक्खेहितो णिग्गयस्स सेसगदीसु सागरोवमसदपुधत्तादो उवरि
अवट्ठाणाभावादो ।

पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्ख-
जोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता मणुसगदीए मणुस्सा मणुस-
पज्जत्ता मणुस्सि मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि ? ॥ ८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ९ ॥

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक तिर्यच जीवोंका तिर्यचगतिसे अन्तर
होता है ॥ ६ ॥

क्योंकि, तिर्यच जीवोंमेंसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न हो कदलीघातयुक्त
क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक रहकर पुनः तिर्यचोंमें उत्पन्न हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण
अन्तर पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक तिर्यच जीवोंका तिर्यच-
गतिसे अन्तर पाया जाता है ॥ ७ ॥

क्योंकि, तिर्यच जीवके तिर्यचोंमेंसे निकलकर शेष गतियोंमें सागरोपमशत-
पृथक्त्व कालसे ऊपर टहरनेका अभाव है ।

तिर्यचगतिसे पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच
योनिमती, पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त, एवं मनुष्यगतिसे मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त,
मनुष्यनी तथा मनुष्य अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक उक्त तिर्यचोंका तिर्यचगतिसे तथा
मनुष्योंका मनुष्यगतिसे अन्तर होता है ॥ ९ ॥

कुदो ? अप्पिदगदीदो णिग्गतूण अणप्पिदगदीसुप्पज्जिय खुदाभवग्गहणमच्छिय पुणो अप्पिदगदिमागयस्स खुदाभवग्गहणमेत्तं तरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ॥ १० ॥

कुदो ? अप्पिदगदीदो णिग्गतूण एइंदिय-विगलंदियादिअणप्पिदगदीसु आवलि-याए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टे भमिय अप्पिदगदिमागदस्स तदुवलंभादो ।

देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ११-॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२ ॥

कुदो ? देवगदीदो आगंतूण तिरिक्ख-मणुस्सग-भोवक्कंतिपज्जत्तएसुप्पज्जिय पज्जत्तीओ समाणिय देवाउअं बंधिय देवेसुप्पणस्स अंतोमुहुत्तं तरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ॥ १३ ॥

क्योंकि, विवक्षित गतिसे निकलकर अविवक्षित गतियोंमें उत्पन्न हो व वहां क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल रहकर पुनः विवक्षित गतिमें आये हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहण-मात्र अन्तर पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक पूर्वोक्त तिर्यचोक्का तिर्यचगतिसे और मनुष्योंका मनुष्यगतिसे अन्तर होता है ॥ १० ॥

क्योंकि, विवक्षित गतिसे निकलकर एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय आदि अविवक्षित गतियोंमें आवलीके असंख्यातवै भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तन भ्रमण कर विवक्षित गतिमें आये हुए जीवके सूत्रोक्त प्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

देवगतिसे देवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक देवोंका देवगतिसे अन्तर होता है ॥ १२ ॥

क्योंकि, देवगतिसे आकर गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त तिर्यचों व मनुष्योंमें उत्पन्न होकर पर्याप्तियां पूर्ण कर देवायु बांध, पुनः देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके देवगतिसे अन्त-र्मुहूर्तमात्र अन्तर पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक देवगतिसे देवोंका अन्तर होता है ॥ १३ ॥

कुदो ? देवगदीदो ओयरिय सेसतिसु गदीसु आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-
पोग्गलपरियट्टे उक्कस्सेण परियट्टिट्ठण पुणो देवगदीए आगमणे विरोहाभावादो ।

भवणवासिय-वाणवेंतर--जोदिसिय--सोधंमीसाणकप्पवासियदेवा
देवगदिभंगो ॥ १४ ॥

जथा देवगदीए जहण्णेण अंतोमुहुत्तमुक्कस्सेण असंखेज्जपोग्गलपरियट्टमेत्तं
अंतरं वुत्तं तथा एदेसिं पि जहण्णुक्कस्संतराणि । देवा इदि वुत्ते देवाणमिदि घेत्तब्बं,
'आई-मज्झंतवण्णसरलोओ' ति एदेण लक्खणेण लुत्त-णं-सहादो ।

सणक्कुमार-माहिंदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १५ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण मुहुत्तपुधत्तं ॥ १६ ॥

क्योंकि, देवगतिसे उतरकर शेष तीन गतियोंमें अधिकसे अधिक आवलीके
असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर पुनः देवगतिमें आगमन करनेमें कोई
विरोध नहीं आता ।

भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी व सौधर्म-ईशान कल्पवासी देवोंका अन्तर
देवगतिके समान ही है ॥ १४ ॥

जिस प्रकार देवगतिसे कमसे कम अन्तर्मुहूर्तमात्र और अधिकसे अधिक
असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तरकाल कहा गया है, उसी प्रकार इन भवनवासी
आदि देवोंका जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिये । 'देवा' ऐसा प्रथमान्त पद
कहनेसे 'देवोंका' ऐसे षष्ठ्यन्त पदका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि "आदि, मध्य
व अन्त व्यंजन और स्वरका प्राकृतमें विकल्पसे लोप हो जाता है" इस नियमसे यहाँ
षष्ठी विभक्तिके सूचक 'णं' शब्दका लोप हो गया है ।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देवोंका देवगतिसे अन्तर कितने काल तक
होता है ? ॥ १५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम मुहूर्तपृथक्त्व काल तक सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देवोंका
देवगतिसे अन्तर होता है ॥ १६ ॥

कुदो ? सणक्कुमार-माहिंददेवाणं तिरिक्ख-मणुस्साउअं बंधमाणमाउअस्स जहण्णट्टिदीए सुहुत्तपुधत्तपमाणत्तादो । तिरिक्ख-मणुस्साउअं जहण्णेण सुहुत्तपुधत्तमेत्तं बंधिय तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा उप्पज्जिय परिणादत्तच्चएण पुणो सणक्कुमार-माहिंदेसु आउअं बंधिय सणक्कुमार-माहिंदेसुप्पण्णाणं जहण्णमंतरं होदि त्ति बुत्तं होदि ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १७ ॥

सुगमं ।

बम्हवम्हुत्तर-लान्तवकाविट्ठकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण दिवसपुधत्तं ॥ १९ ॥

कुदो ? एदेहि बज्झमाणआउअस्स दिवसपुधत्तादो हेट्ठा ट्टिदिवंधाभावादो ।

क्योंकि, तिर्यंच या मनुष्य आयुको बांधनेवाले सनत्कुमार और माहेन्द्र देवोंके तिर्यंच व मनुष्य भवसम्बन्धी जघन्य स्थितिका प्रमाण मुहूर्तपृथक्त्व पाया जाता है । इसी मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाण जघन्य तिर्यंच व मनुष्य आयुको बांध कर तिर्यंचोंमें व मनुष्योंमें उत्पन्न होकर परिणामोंके निमित्तसे पुनः सनत्कुमार-माहेन्द्र देवोंकी आयु बांधकर सनत्कुमार-माहेन्द्र देवोंमें उत्पन्न हुए जीवोंका मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाण जघन्य अन्तर होता है ऐसा सूत्र द्वारा बतलाया गया है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक सनत्कुमार और माहेन्द्र देवोंका देवगतिसे अन्तर होता है ॥ १७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर व लान्तव-कापिष्ठ कल्पवासी देवोंका देवगतिसे अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम दिवसपृथक्त्वमात्र ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर और लान्तव-कापिष्ठ कल्पवासी देवोंका अपनी देवगतिसे अन्तर होता है ॥ १९ ॥

क्योंकि, उक्त देवों द्वारा जो आगामी भवकी आयु बांधी जाती है उसका स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्वसे कम होता ही नहीं है ।

अणुवय-महव्वएहि विणा तिरिक्ख-मणुस्सा गढभादो अणिकखंता चैव कधं देवेषुप्पज्जंति ?
ण, परिणामपच्चएण तिरिक्ख-मणुस्सपज्जत्ताणं दिवसपुधत्तजीवियाणं तत्थुप्पत्तीए
विरोहाभावादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ २० ॥

सुगमं ।

सुक्कमहासुक्क-सदारसहस्सारकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि ? ॥ २१ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण पक्खपुधत्तं ॥ २२ ॥

कुदो ? एदेहि बज्झमाणआउअस्स पक्खपुधत्तादो हेट्ठा जहण्णट्ठिदिबंघाभावादो ।

शंका—दिवसपृथक्त्वकी आयुमें तो तिर्यंच व मनुष्य गर्भसे भी नहीं निकल पाते और इसलिये उनमें अणुव्रत व महाव्रत भी नहीं हो सकते। ऐसी अवस्थामें वे दिवसपृथक्त्वमात्रकी आयुके पश्चात् पुनः देवोंमें कैसे उत्पन्न हो सकते हैं ?

समाधान—यह शंका ठीक नहीं, क्योंकि परिणामोंके निमित्तसे दिवसपृथक्त्व-मात्र जीवित रहनेवाले तिर्यंच व मनुष्य पर्याप्तक जीवोंके देवोंमें उत्पन्न होनेमें कोई धिरोध नहीं आता ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर व लान्तव-कापिष्ठ देवोंका देवगतिसे अन्तर होता है ॥ २० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्रार कल्पवासी देवोंका देवगतिसे अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ २१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम पक्षपृथक्त्व काल तक शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्रार कल्पवासी देवोंका देवगतिसे अन्तर होता है ॥ २२ ॥

क्योंकि, उक्त देवों द्वारा बांधी जानेवाली आयुका जघन्य स्थितिबन्ध पक्ष-पृथक्त्वसे कम नहीं होता ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्ठं ॥ २३ ॥

सुगमं ।

आणदपाणद-आरणअच्चुदकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि ? ॥ २४ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण मासपुधत्तं ॥ २५ ॥

कुदो ? एदेहि बज्झमाणमणुस्साउअस्स मासपुधत्तादो हेट्ठा जहण्णाट्ठिदिबंधा-
भावादो । एदे मणुस्सोववाइणो मणुस्सा वि गब्भादिअट्ठवस्सेसु गदेसु अणुव्वय-महव्वयाणं
गाहिणो । ण च अणुव्वय-महव्वएहि विणा एदेसुप्पत्ती अत्थि, तहोवदेसाभावादो । तदो
ण मासपुधत्तं जुज्जदे, किंतु वासपुधत्तंतेरेण होदव्वमिदि ? एत्थ परिहारो वुच्चदे । तं

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक उक्त
देवोंका देवगतिसे अन्तर होता है ॥ २३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पवासी देवोंका देवगतिसे अन्तर कितने
काल तक होता है ? ॥ २४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम मासपृथक्त्व तक उक्त देवोंका देवगतिसे अन्तर होता है ॥ २५ ॥

क्योंकि, आनत, प्राणत, आरण व अच्युत कल्पवासी देवों द्वारा बांधी जाने-
वाली मनुष्यायुका स्थितिबन्ध कमसे कम मासपृथक्त्वसे नीचे होता ही नहीं है ।

शंका—जब आनत आदि चार कल्पवासी देव मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं तब
मनुष्य होकर भी वे गर्भसे लेकर आठ वर्ष व्यतीत हो जानेपर अणुव्रत व महाव्रतोंको
ग्रहण करते हैं । अणुव्रतोंको व महाव्रतोंको ग्रहण न करनेवाले मनुष्योंकी आनत आदि
देवोंमें उत्पत्ति ही नहीं होती, क्योंकि वैसा उपदेश नहीं पाया जाता । अतएव आनत
आदि चार देवोंका मासपृथक्त्व अन्तर कहना युक्त नहीं है, उनका अन्तर वर्षपृथक्त्व
होना चाहिये ?

समाधान—उक्त शंकाका परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है—अणुव्रत व

जहा- ण च अणुव्वद-महव्वदेहि संजुत्ता चेव तिरिक्ख-मणुस्सा आणद-पाणददेवेसुप्पजंति
त्ति णियमो अत्थि, तिरिक्खअसंजदसम्माइट्ठीणं छरज्जुपोसणसुत्तेण सह विरोहादो । ण च
आणद-पाणदअसंजदसम्माइट्ठीणो मणुस्साउअस्स जहण्णट्ठिदिं बंधमाणा वासपुधत्तादो
हेट्ठा बंधंति, महाबंधे जहण्णट्ठिदिबंधद्वाछेदे सम्मादिट्ठीणमाउअस्स वासपुधत्तमेत्त-
ट्ठिदिपरूवणादो । तदो आणद-पाणदमिच्छाइट्ठिस्स मणुस्साउअं मासपुधत्तमेत्तं बंधिय
पुणो मणुस्सेसुप्पज्जिय मासपुधत्तं जीविदूण पुणो सण्णिपंचिदियतिरिक्खसम्मुच्छिम-
पज्जत्तएसु अंतोमुहुत्ताउएसुव्वज्जिय पज्जत्तयदो होदूण संजमासंजमं पडिबज्जिय
आणदादिसु आउअं बंधिय उप्पणस्स जहण्णमंतरं होदि त्ति वत्तव्वं ।

उक्कस्समणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्ठं ॥ २६ ॥

सुगमं ।

णवगेवज्जविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

॥ २७ ॥

सुगमं ।

महाव्रतोंसे संयुक्त ही तिर्यंच व मनुष्य आनत-प्राणत देवोंमें उत्पन्न हों ऐसा नियम नहीं
है, क्योंकि ऐसा माननेपर तो तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका जो छह राजु स्पर्शन
बतलाने वाला सूत्र है उससे विरोध उत्पन्न हो जायगा । (देखो षट्खंडागम, जीवट्टाण,
स्पर्शनानुगम, सूत्र २८ व टीका, पुस्तक ४, पृ० २०७ आदि) । और आनत-प्राणत
कल्पवासी असंयतसम्यग्दृष्टि देव जब मनुष्यायुकी जघन्य स्थिति बांधते हैं तब वे
वर्षपृथक्त्वसे कमकी आयुस्थिति नहीं बांधते, क्योंकि महाबन्धमें जघन्य स्थितिबन्धके
कालविभागमें सम्यग्दृष्टि जीवोंकी आयुस्थितिका प्रमाण वर्षपृथक्त्वमात्र प्ररूपित किया
गया है । अतः आनत-प्राणत कल्पवासी मिथ्यादृष्टि देवके मासपृथक्त्वमात्र मनुष्यायु
बांधकर फिर मनुष्योंमें उत्पन्न हो मासपृथक्त्व जीवित रहकर पुनः अन्तर्मुहूर्तमात्र आयु-
वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच समूर्च्छन पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न होकर पर्याप्त हो संयमा-
संयम (अणुव्रत) ग्रहण करके आनतादि कल्पोंकी आयु बांधकर वहां उत्पन्न हुए
जीवके सूत्रोक्त मासपृथक्त्वप्रमाण जघन्य अन्तरकाल होता है, ऐसा कहना चाहिये ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुंद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल आनत-प्राणत
और आरण-अच्युत कल्पवासी देवोंका अन्तर होता है ॥ २६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नौ त्रैवेयक विमानवासी देवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ २७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जहण्णेण वासपुधत्तं ॥ २८ ॥

कुदो ? वासपुधत्तादो हेट्ठा आउअस्स जहण्णट्ठिदिबंधाभावादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्ठं ॥ २९ ॥

मिच्छादिट्ठीणमणंतसंसाराणमेत्थ संभवादो ।

अणुदिस जाव अवराइदविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि ? ॥ ३० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण वासपुधत्तं ॥ ३१ ॥

कुदो ? सम्मादिट्ठीणं वासपुधत्तादो हेट्ठा आउअस्स जहण्णट्ठिदिबंधाभावादो ।

उक्कस्सेण बे सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३२ ॥

कमसे कम वर्षपृथक्त्व काल तक नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवोंका अन्तर होता है ॥ २८ ॥

क्योंकि, नौ ग्रैवेयक विमानवासी देव वर्षपृथक्त्वसे नीचेकी जघन्य आयुस्थिति बांधते ही नहीं हैं !

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवोंका अन्तर होता है ॥ २९ ॥

क्योंकि, जिन्हें अभी अनन्त काल तक संसारमें परिभ्रमण करना शेष है, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी नौ ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न होना संभव है ।

अनुदिश आदि अपराजित पर्यन्त विमानवासी देवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम वर्षपृथक्त्व काल तक अनुदिश आदि अपराजित पर्यन्त विमानवासी देवोंका अन्तर होता है ॥ ३१ ॥

क्योंकि, सभ्यदृष्टि जीवोंके आयुका जघन्य स्थितिवंध भी वर्षपृथक्त्वसे नीचे नहीं होता ।

अधिकसे अधिक सातिरेक दो सागरोपमप्रमाण काल तक अनुदिशादि अपराजित पर्यन्त विमानवासी देवोंका अन्तर होता है ॥ ३२ ॥

कुदो ? अणुदिसादिदेवस्स पुव्वकोडाउअमणुस्सेसुप्पज्जिय पुव्वकोडिं जीविदूण सोहम्मसीसाणं गंतूण तत्थ अड्ढाइज्जसागरोवमाणि गमिय, पुणो पुव्वकोडाउअमणुस्से-सुप्पज्जिय संजमं धेत्तूण अप्पणो विमाणम्मि उप्पणस्स सादिरियवेसागरोवममेत्तं-तरुवलंभादो ।

सब्वट्टिसिद्धिविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

॥ ३३ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ ३४ ॥

कुदो ? सब्वट्टिसिद्धिदो मणुसगइमोइणस्स मोक्खं मोत्तूणणत्थ गमणाभावादो । 'णत्थि अंतरं णिरंतरं' इदि पुणरुत्तदोसप्पसंगादो दोण्णमेक्कदरस्स संगहो कायव्वो । ण एस दोसो, दो णए अवलंबिय ट्ठिददोण्हं पि सिस्साणमणुग्गहट्ठं परूवयंतस्स पुणरुत्त-

क्योंकि, अनुदिशादि देवके पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर एक पूर्वकोटि तक जी कर सौधर्म-ईशान स्वर्गको जाकर वहां अढ़ाई सागरोपम काल व्यतीत कर पुनः पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर संयमको ग्रहण कर अपने अपने विमानमें उत्पन्न होने पर उनका अन्तरकाल सातिरेक दो सागरोपम-प्रमाण प्राप्त हो जाता है ।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥३३॥

यह सूत्र सुगम है ।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंका अपनी गतिसे अन्तर होता ही नहीं, वह गति निरन्तर है ॥ ३४ ॥

क्योंकि, सर्वार्थसिद्धिसे मनुष्यगतिमें उतरनेवाले जीवका मोक्षके सिवाय अन्यत्र गमन होता ही नहीं है ।

शंका—'सर्वार्थसिद्धि विमानवासियोंका कोई अन्तरकाल नहीं होता, वह गति निरन्तर है' ऐसा कहनेमें पुनरुक्ति दोषका प्रसंग आता है, अतएव दो उक्तियोंमेंसे किसी एकका ही संग्रह करना चाहिये । अर्थात् या तो 'अन्तरकाल नहीं होता' इतना कहना चाहिये, या 'निरन्तर है' इतना ही कहना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दो नयोंका अवलम्बन करनेवाले दोनों प्रकारके शिष्योंके अनुग्रहके लिये उक्त प्रकारसे प्ररूपण करनेवाले सूत्रकारके पुनरुक्ति दोष उत्पन्न नहीं होता । 'अन्तर नहीं है' यह

दोसाभावादो । णत्थि अंतरमिदि वयणं पज्जवट्टियणयट्टिदसिस्साणमणुग्गहकारयं, विहिदो वदिरित्तपडिसेहे चेव वावदत्तादो । णिरंतरमिदि वयणं दव्वट्टियसिस्साणुगाहयं, पडिसेह-
वदिरित्तविहीए पदुप्पायणादो । सेसं सुगमं ।

इंदियाणुवादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥३५॥

एगवारपुच्छादो चेव सयलत्थपरूवणासंभवादो किमडुं पुणो पुणो पुच्छा कीरदे ?
ण इमाणि पुच्छासुत्ताणि, किंतु आइरियाणमासंक्रियवयणाणि उत्तरसुत्तुप्पत्तिणिमित्ताणि,
तदो ण दोसो त्ति ।

जहणणेण खुदाभवग्गहणं ॥ ३६ ॥

सुगमं ।

उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणव्भहियाणि
॥ ३७ ॥

वचन पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंका अनुग्रहकारी है, क्योंकि यह
वचन विधिसे रहित प्रतिषेधमें व्यापार करता है । 'निरंतर है' यह वचन द्रव्यार्थिक
शिष्योंका अनुग्राहक है, क्योंकि वह प्रतिषेधसे रहित विधिका प्रतिपादक है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इन्द्रियमार्गानुसार एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ?
॥ ३५ ॥

शंका—केवल एक वार प्रश्न करके समस्त अर्थका प्ररूपण किया जा सकता
था, फिर वार वार यह प्रश्न क्यों किया जाता है ?

समाधान—ये पृच्छासूत्र नहीं हैं, किन्तु आचार्योंके आशंकात्मक वचन हैं
जिनका कि निमित्त अगले सूत्रकी उत्पात्ति करना है । इसलिये यह वार वार प्रश्न करना
कोई दोष नहीं है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर होता
है ॥ ३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपमप्रमाण काल
तक एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर होता है ॥ ३७ ॥

कुदो ? एइंदिएहिंतो णिग्गयस्स तसकाइएसु चेव भमंतस्स पुच्चकोडिपुधत्त-
बभहियवेसागरोवमसहस्समेत्ततसट्टिदीदो उवरि तत्थ अवट्टाणाभावादो ।

बादरएइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

॥ ३८ ॥

सुगममेदमासंकासुत्तं ।

जहणणेण खुदाभवग्गहणं ॥ ३९ ॥

सुगमं ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ ४० ॥

कुदो ? बादरेइंदिएहिंतो णिग्गतूण सुहुमेइंदिएसु असंखेज्जलोगमेत्तकालादो
उवरि अवट्टाणाभावादो । होदु णाम एदमंतरं बादरेइंदियाणं, ण तेसिं पज्जत्ताणमपज्जत्ताणं
च, सुहुमेइंदिएसु अणप्पिदवादरेइंदिएसु च परियट्टंतस्स पुण्विल्लंतरादो अहमहल्लंतरु-

क्योंकि, एकेन्द्रिय जीवोंमेंसे निकल कर केवल त्रसकायिक जीवोंमें ही भ्रमण
करनेवाले जीवके पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपममात्र स्थितिसे ऊपर
त्रसकायिकोंमें रहनेका अभाव है ।

बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त व बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका
अपनी गतिसे अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ३८ ॥

यह आशंकासूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक उक्त एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर होता
है ॥ ३९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण काल तक उक्त एकेन्द्रिय जीवोंका
अन्तर होता है ॥ ४० ॥

क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय जीवोंमेंसे निकलकर सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें असंख्यात
लोकप्रमाण कालसे ऊपर रहना संभव नहीं है ।

शंका—यह असंख्यात लोकप्रमाण कालका अन्तर बादर एकेन्द्रिय (सामान्य)
जीवोंका भले ही हो पर यह अन्तरप्रमाण पृथक् पृथक् बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकों व
अपर्याप्तकोंका नहीं हो सकता, क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें तथा अविवाक्षित (पर्याप्त
या अपर्याप्त) बादर एकेन्द्रियोंमें जब जीव परिभ्रमण करता है, तब पूर्वोक्त अन्तरसे

वलंभादो । होदु णाम पुब्बिल्लंतरादो इमस्स अंतरस्स अइमहल्लत्तं, तो वि एदेसिमंतरकालो पुब्बिल्लंतरकालोव्व असंखेज्जलोगमेत्तो चेव, णाणंतो । कुदो ? अणंततरुवदेसाभावादो ।

सुहुमेइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

॥ ४१ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ४२ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्खस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ
ओसपिणी-उस्सपिणीओ ॥ ४३ ॥

कुदो ? सुहुमेइंदिएहितो णिग्गयस्स बादरेइंदिएसु चेव भमंतस्स बादरेइंदिय-

अधिक बड़ा अन्तरकाल प्राप्त हो सकता है ?

समाधान—पूर्वोक्त अन्तरसे यह पर्याप्तक व अपर्याप्तकोंका अलग अलग प्राप्त अन्तर अधिक बड़ा भले ही हो जावे, पर तो भी इन पर्याप्त व अपर्याप्त एकेन्द्रिय बादर जीवोंका अन्तर पूर्वोक्त अन्तरकालके समान असंख्यात लोकप्रमाण ही रहेगा, अनन्त नहीं हो सकता, क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय जीवोंके अनन्त कालप्रमाण अन्तरका उपदेश ही नहीं है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय व उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर होता है ॥ ४२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अव-सर्पिणी-उत्सर्पिणी काल तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय व उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर होता है ॥ ४३ ॥

क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रियोंसे निकलकर बादर एकेन्द्रियोंमें ही भ्रमण करनेवाले

ट्टिदीदो उवरि अवट्टाणाभावादो । तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं पि एदम्हादो अंतरादो
अहियमंतरं होदि, अणप्पिदसुहुमेइंदिएसु वि संचारोवलंभादो । किंतु तो वि अंगुलस्स
असंखेज्जदिभागमेत्तं चैव अंतरं होदि, अण्णोवएसाभावादो ।

**वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियाणं तस्सेव पज्जत्त-अपज्ज-
त्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ४४ ॥**

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ४५ ॥

सुगमं ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियट्टं ॥ ४६ ॥

कुदो ? अप्पिदइंदिएहितो^१ णिग्गयस्स अणप्पिदएइंदियादिसु आवलियाए असंखे-

जीवके बादर एकेन्द्रियकी स्थितिसे (जो कि उपर्युक्त प्रमाण है) ऊपर वहां रहनेका अभाव है । उक्त जीवोंके पर्याप्त व अपर्याप्तका (अलग अलग) अन्तर यद्यपि पूर्वोक्त प्रमाणसे अधिक होता है, क्योंकि, उन जीवोंका अविवाक्षित सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें भी संचार पाया जाता है । किन्तु फिर भी अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग ही होता है, क्योंकि इस प्रमाणसे अधिक प्रमाणका अन्य कोई उपदेश पाया नहीं जाता ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंका तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ४४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक उक्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका अन्तर होता है ॥ ४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक उक्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका अन्तर होता है ॥ ४६ ॥

क्योंकि, विवाक्षित इन्द्रियोंवाले जीवोंमेंसे निकल कर अविवाक्षित एकेन्द्रिय

१ प्रतिष्ठु ' अप्पिदेइंदिएहितो ' इति पाठः ।

ज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्ठाणि परियट्ठणे विरोहाभावादो ।

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-
बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥४७॥
सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ४८ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्ठं ॥ ४९ ॥

कुदो ? अप्पिदकायं मोत्तूण अणप्पिदेसु वणप्फदिकायादिसु आवलियाए असं-
खेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्ठाणि परियट्ठिट्ठं संभवोवलंभादो ।

वणप्फदिकाइयणिगोदजीवबादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं
केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५० ॥

आदि जीवोंमें आवलीके असंख्यातवें भाग पुद्गलपरिवर्तन भ्रमण करनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ॥ ४७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक पृथिवीकायिक आदि उक्त जीवोंका अन्तर होता है ॥ ४८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक उक्त पृथिवीकायिक आदि जीवोंका अन्तर होता है ॥ ४९ ॥

क्योंकि, विवक्षित कायको छोड़कर अविवक्षित वनस्पतिकाय आदि जीवोंमें आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन भ्रमण करना संभव है ।

वनस्पतिकायिक निगोद बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ५१ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ ५२ ॥

कुदो ? अप्पिदवणप्फदिकायादो णिग्गयस्स अणप्पिदपुढवीकायादिसु चैव हिंडंतेस्स असंखेज्जलोगं मोत्तूण अण्णस्स अंतरस्स असंभवादो । सेसं सुगमं ।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ५४ ॥

एदं पि सुगमं ।

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक उक्त वनस्पतिक्रायिक निगोद जीवोंका अन्तर होता है ॥ ५१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण काल तक उक्त वनस्पतिक्रायिक निगोद जीवोंका अन्तर होता है ॥ ५२ ॥

क्योंकि, विवक्षित वनस्पतिकायसे निकलकर अविवक्षित पृथिवीकायादिकोंमें ही भ्रमण करनेवाले जीवके असंख्यात लोकप्रमाण कालको छोड़कर अन्य प्रमाण अन्तर होना असंभव है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

बादर वनस्पतिक्रायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक बांदर वनस्पतिक्रायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंका अन्तर होता है ॥ ५४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्कस्सेण अट्टाइज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ५५ ॥

कुदो ? अप्पिदवणप्फदिकाइएहिंतो णिग्गयस्स अणप्पिदणिगोदजीवादिसु भमंतस्स अट्टाइज्जपोग्गलपरियट्टेहिंतो अहियअंतराणुवलंभादो ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५६ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ५७ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ५८ ॥

कुदो ? अप्पिदतसकाइएहिंतो णिग्गंतूण अणप्पिदवणप्फदिकाइयादिसु आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणमंतरसण्णियार्णमुवलंभादो ।

अधिकसे अधिक अट्टाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक-
शरीर पर्याप्त जीवोंका अन्तर होता है ॥ ५५ ॥

क्योंकि, विवक्षित वनस्पतिकायिक जीवोंमेंसे निकलकर अविवक्षित निगोद
आदि जीवोंमें भ्रमण करनेवाले जीवके अट्टाई पुद्गलपरिवर्तोंसे अधिक अन्तरकाल
नहीं पाया जा सकता ।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल
तक होता है ? ॥ ५६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक उक्त त्रसकायादि जीवोंका अन्तर होता है
॥ ५७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक त्रस-
कायादि उक्त जीवोंका अन्तर होता है ॥ ५८ ॥

क्योंकि, विवक्षित त्रसकायिक जीवोंमेंसे निकलकर अविवक्षित वनस्पति-
कायादि जीवोंमें आवलीके असंख्यातवै भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तोंका अन्तरकाल
पाया जाता है ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि ? ॥ ५९ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६० ॥

कुदो ? मणजोगादो कायजोगं वचिजोगं वा गंतूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय
पुणो मणजोगमागदस्स जहण्णेणंतोमुहुत्तंतरुवलंभादो । सेसच्चत्तारिमणजोगीणं पंचवचि-
जोगीणं च एवं चेव अंतरं परूत्रेयव्वं, भेदाभावादो । एत्थ एगसमओ किण्ण लब्भदे ?
ण, वाघादिदे सुदे वा मण-वचिजोगाणमणंतरसमए अणुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ६१ ॥

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंका अन्तर कितने
काल तक होता है ? ॥ ५९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंका
अन्तर होता है ॥ ६० ॥

क्योंकि, मनयोगसे काययोगमें अथवा वचनयोगमें जाकर सबसे कम अन्त-
र्मुहूर्तमात्र रहकर पुनः मनयोगमें आनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर
पाया जाता है ।

शेष चार मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंका भी इसी प्रकार अन्तर
प्ररूपित करना चाहिये, क्योंकि इस अपेक्षासे उन सबमें कोई अन्तर नहीं है ।

शंका—इन पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंका एक योगसे दूसरेमें
जाकर पुनः उसी योगमें लौटनेपर एक समयप्रमाण अन्तर क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि जब एक मनयोग या वचनयोगका
विघात हो जाता है, या विचक्षित योगवाले जीवका मरण हो जाता है, तब केवल एक
समयके अन्तरसे पुनः अनन्तर समयमें उसी मनयोग या वचनयोगकी प्राप्ति नहीं हो
सकती ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक पांच
मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंका अन्तर होता है ॥ ६१ ॥

कुदो ? मणजोगादो वचिजोगं गंतूण तत्थ सच्चुक्कस्समद्धमच्छिय पुणो काय-जोगं गंतूणं तत्थ वि सच्चिरं कालं गमिय एइंदिएसुप्पज्जिय आवलियाए असं-खेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टणाणि परियट्टिय पुणो मणजोगं गदस्स तदुवलंभादो । सेसच्चारिमणजोगीणं पंचवचिजोगीणं च एवं चेत्त अंतरं परूवेदव्वं, विसेसाभावादो ।

कायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ६२ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ६३ ॥

कुदो ? कायजोगादो मणजोगं वचिजोगं वा गंतूण एगसमयमच्छिय विदिय-समए मुदे वाघादिदे वा कायजोगं गदस्स एगसमयअंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६४ ॥

कुदो ? कायजोगादो मणजोगं वचिजोगं च परिवाडीए गंतूण दोसु वि सच्चु-क्कस्सकालमच्छिय पुणो कायजोगमागदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तंतरुवलंभादो ।

क्योंकि, मनयोगसे वचनयोगमें जाकर वहां अधिक काल तक रहकर पुनः काययोगमें जाकर और वहां भी सबसे अधिक काल व्यतीत करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर आबलीके असंख्यातवै भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर पुनः मन-योगमें आये हुए जीवके उक्त प्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है ।

शेष चार मनयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंका भी इसी प्रकार अन्तर प्ररूपित करना चाहिये, क्योंकि, इस अपेक्षासे उनमें कोई विशेषता नहीं है ।

काययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ६२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक काययोगी जीवोंका अन्तर होता है ॥ ६३ ॥

क्योंकि, काययोगसे मनयोगमें या वचनयोगमें जाकर एक समय रहकर दूसरे समयमें मरण करने या योगके व्याघातित होनेपर पुनः काययोगको प्राप्त हुए जीवके एक समयका जघन्य अन्तर पाया जाता है ।

काययोगी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है ॥ ६४ ॥

क्योंकि, काययोगसे मनयोग और वचनयोगमें क्रमशः जाकर और उन दोनों ही योगोंमें उनके सर्वोत्कृष्ट काल तक रहकर पुनः काययोगमें आये हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण काययोगका अन्तर प्राप्त होता है ।

ओरालियकायजोगी-ओरालियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि ? ॥ ६५ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ६६ ॥

कुदो ? ओरालियकायजोगादो मणजोगं वचिजोगं वा गंतूणं एगसमयमच्छिय
विदियसमए वाघादवसेण ओरालियकायजोगं गदस्स एगसमयअंतरुवलंभादो । ओरालिय-
मिस्सकायजोगिस्स अपज्जत्तभावेण मण-वचिजोगविरहियस्स कधमंतरस्स एगसमओ ?
ण, ओरालियमिस्सकायजोगादो एशविग्गहं करिय कम्मइयजोगम्मि एगसमयमच्छिय
विदियसमए ओरालियमिस्सं गदस्स एगसमयअंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ६७ ॥

औदारिककाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल
तक होता है ? ॥ ६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिककाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंका जघन्य अन्तर एक
समय होता है ॥ ६६ ॥

क्योंकि, औदारिककाययोगसे मनयोग या वचनयोगमें जाकर एक समय रहकर
दूसरे समयमें योगका व्याघात होनेसे औदारिककाययोगमें आये हुए जीवके औदारिक-
काययोगका एक समय अन्तर प्राप्त होता है ।

शंका—औदारिकमिश्रकाययोगी तो अपर्याप्त अवस्थामें होता है जब कि जीवके
मनयोग और वचनयोग होता ही नहीं है, अतएव औदारिकमिश्रकाययोगका एक
समय अन्तर किस प्रकार हो सकता है ?

समाधान—नहीं; हो सकता है, क्योंकि औदारिकमिश्रकाययोगसे एक विग्रह
करके कार्मिक योगमें एक समय रहकर दूसरे समयमें औदारिकमिश्रयोगमें आये हुए
जीवके औदारिकमिश्रकाययोगका एक समय अन्तर प्राप्त हो जाता है ।

औदारिककाययोगी व औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सातिरेक
तेतीस सागरोपमप्रमाण होता है ॥ ६७ ॥

कुदो ? ओरालियकायजोगादो चत्तारिमण-चत्तारिवचिजोगेसु परिणमिय कालं करिय तेत्तीसाउट्टिदिएसु देवेसुववज्जिय सगट्टिदिमच्छिय दो विग्गहे कादूण मणुस्सेसु-
 प्पज्जिय ओरालियमिस्सकायजोगेण दीहकालमच्छिय पुणो ओरालियकायजोगं गदस्स
 णवहि अंतोमुहुत्तेहि वेहि' समएहि सादिरेयतेत्तीससागरोवममेत्तंरुवलंभादो । एवमोरा-
 लियमिस्सकायजोगस्स वि अंतरं वत्तव्वं । णवरि अंतोमुहुत्तणपुव्वकोडीए सादिरेयाणि
 तेत्तीससागरोवमाणि अंतरं होदि, णेरइएहिंतो पुव्वकोडाउअमणुस्सेसुप्पज्जिय ओरालिय-
 मिस्सकायजोगस्स आदिं करिय सव्वलहुं पज्जत्तीओ समाणिय ओरालियकायजोगेणंतरिय
 पुव्वकोडिं देसूणं गमिय तेत्तीसाउट्टिदिदेवेसुप्पज्जिय पुणो विग्गहे कादूण ओरालिय-
 मिस्सकायजोगं गदस्स तदुवलंभादो ।

वेउव्वियकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ६८ ॥

सुगमं ।

क्योंकि, औदारिककाययोगसे चार मनयोगों व चार वचनयोगोंमें परिणमित हो मरण कर तेतीस सागरोपमप्रमाण आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर, वहां अपनी स्थितिप्रमाण रहकर, पुनः दो विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न हो औदारिकमिश्रकाय-योग सहित दीर्घ काल रहकर, पुनः औदारिककाययोगमें आये हुए जीवके नौ अन्त-सुहूर्तों व दो समयोंसे अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण औदारिककाययोगका अन्तर प्राप्त हो जाता है ।

इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगका भी अन्तर कहना चाहिये । केवल विशेषता यह है कि औदारिकमिश्रकाययोगका अन्तर अन्तसुहूर्त कम पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण होता है, क्योंकि, नारकी जीवोंमेंसे निकलकर, पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हो, औदारिकमिश्रकाययोगका प्रारंभ कर, कमसे कम कालमें पर्याप्तियोंको पूर्ण करके, औदारिककाययोगके द्वारा औदारिकमिश्रकाय-योगका अन्तर कर, कुछ कम पूर्वकोटि काल व्यतीत करके तेतीस सागरोपमकी आयु-वाले देवोंमें उत्पन्न हो, पुनः विग्रह करके औदारिकमिश्रकाययोगमें जानेवाले जीवके सूत्रोक्त कालप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

वैक्रियिककाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ६९ ॥

वेउव्वियकायजोगादो मणजोगं वचिजोगं वा गंतूण तत्थ एगसमयमच्छिय विदियसमए वाघादवसेण वेउव्वियकायजोगं गदस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगगलपरियट्टं ॥ ७० ॥

अंतरस्स पाहणियादो एगवयणं णवुंसयत्तं च जुज्जदे । सेसं सुगमं ।

वेउव्वियमिस्सकायजोणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ७१ ॥
सुगमं ।

जहण्णेण दसवाससहस्साणि सादिरैयाणि ॥ ७२ ॥

कुदो ? तिरिक्खेहिंतो मणुस्सेहिंतो वा देवेषु णेरहएसु वा उप्पज्जिय दीहकालेण छप्पज्जत्तीओ^१ समाणिय वेउव्वियकायजोगेण अंतरिय देमूणदसवाससहस्साणि अच्छिय तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा उप्पज्जिय सव्वजहण्णेण कालेण पुणो आगंतूण वेउव्वियमिस्सं

वैक्रियिककाययोगियोंका जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ६९ ॥

क्योंकि, वैक्रियिककाययोगसे मनयोग या वचनयोगमें जाकर वहां एक समय तक रहकर दूसरे समयमें उस योगका व्याघात होजानेके कारण वैक्रियिककाययोगमें जानेवाले जीवके एक समयप्रमाण वैक्रियिककाययोगका अन्तर पाया जाता है ।

वैक्रियिककाययोगियोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है ॥ ७० ॥

सूत्रमें जो अनन्तकाल व असंख्यातपुद्गलपरिवर्त इन दोनों शब्दोंमें एकवचन और नपुंसकलिङ्गका उपयोग किया गया है वह अन्तरकी प्रधानता बतलानेके लिये है और इसलिये उपयुक्त ही है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ७१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका जघन्य अन्तर कुछ अधिक दश हजार वर्ष होता है ॥ ७२ ॥

क्योंकि, तिर्यचोंसे अथवा मनुष्योंसे देवों या नारकियोंमें उत्पन्न होकर दीर्घ काल द्वारा छह पर्याप्तियां पूरी कर वैक्रियिककाययोगके द्वारा वैक्रियिकमिश्रकाययोगका अन्तर करके, कुछ कम दश हजार वर्ष तक वहीं रहकर, तिर्यचों अथवा मनुष्योंमें उत्पन्न हो, सबसे कम कालमें पुनः देव या नारक गतिमें आकर वैक्रियिकमिश्रयोगको प्राप्त

१ अ-आप्रलो; ' उप्पज्जत्तिओ ' ; काप्रतौ ' ओप्पज्जत्तीओ ' इति पाठः ।

गदस्स सादियेदसवस्ससहस्समेत्तंरुवलंभादो । कधमेदेसिं सादियेत्तं ? ण, वेउव्वियमि-
स्सद्दादो तिरिक्ख-मणुस्सपज्जत्ताणं गढभजाणं जहण्णाउवस्स बहुत्तुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्ठं ॥ ७३ ॥

कुदो ? वेउव्वियमिस्सकायजोगादो वेउव्वियकायजोगं गंतूणंतरिय असंखेज्ज-
पोग्गलपरियट्ठणाणि परियट्ठिय वेउव्वियमिस्सं गदस्स तदुवलंभादो ।

**आहारकायजोगि--आहारमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि ? ॥ ७४ ॥**

सुगमं ।

जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७५ ॥

कुदो ? आहारकायजोगादो अणजोगं गंतूण सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो

हुए जीवके सातिरेक दश हजार वर्षप्रमाण वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर
पाया जाता है ।

शंका—इन दश हजार वर्षोंके सातिरेकता कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वैक्रियिकमिश्रयोगके कालकी अपेक्षा तिर्यच व
मनुष्य पर्याप्त गर्भज जीवोंकी जघन्य आयु बहुत पायी जाती है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण
अनन्त काल है ॥ ७३ ॥

क्योंकि, वैक्रियिकमिश्रकाययोगसे वैक्रियिककाययोगमें जाकर, वैक्रियिकमिश्र-
काययोगका अन्तर प्रारंभ कर, असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर पुनः वैक्रियिक-
मिश्रकाययोगमें जानेवाले जीवके सूत्रोक्त प्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल
तक होता है ? ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्त-
मुहूर्त होता है ॥ ७५ ॥

क्योंकि, आहारककाययोगसे अन्य योगको जाकर सबसे कम अन्तमुहूर्त रहकर

आहारकायजोगं गदस्स अंतोमुहुत्तंतरुवलंभादो । एगसमओ किण्ण लब्भदे ? ण,
आहारकायजोगस्स वाघादाभावादो । एवमाहारमिस्सकायजोगस्स वि वत्तव्वं । णवरि
आहारसरीरमुट्ठाविय सव्वजहण्णेण कालेण पुणो वि उट्ठावैतस्स पढमसमए अंतरपरिसमत्ती
कायव्वा ।

उकस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्ठं देसूणं ॥ ७६ ॥

कुदो ? अणादियमिच्छादिट्ठिस्स अद्धपोग्गलपरियट्ठादिसमए उवसमसम्मत्तं संजमं
च जुगवं धेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय (१) अप्पमत्तो होदूण (२) आहारसरीरं बंधिय
(३) पडिभग्गो होदूण (४) आहारसरीरमुट्ठाविय अंतोमुहुत्तमच्छिय (५) आहारकाय-
जोगी होदूण आदिं करिय एगसमयमच्छिय कालं काऊण अंतरिय उवड्डुपोग्गलपरियट्ठं
भमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे अद्धमंतरं करिय (६) अंतोमुहुत्तमच्छिय (७) अबंधभावं

पुनः आहारककाययोगको प्राप्त हुए जीवके आहारककाययोगका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर
पाया जाता है ।

शंका — आहारकाययोगका एक समयमात्र अन्तर क्यों नहीं प्राप्त हो सकता ?

समाधान — नहीं हो सकता, क्योंकि, आहारकाययोगका व्याघात नहीं हो
सकता ।

इसी प्रकार आहारमिश्रकाययोगका अन्तर भी कहना चाहिये । केवल विशेषता
यह है कि आहारशरीरको उत्पन्न करके सबसे कम कालमें पुनः आहारशरीरको
उठानेके प्रथम समयमें अन्तरकी समाप्ति करदेना चाहिये ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ
कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है ॥ ७६ ॥

क्योंकि, एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण संसारशेष
रहनेके आदि समयमें उपशमसम्यक्त्व और संयम इन दोनोंको एक साथ ग्रहण किया
और अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) अप्रमत्त होकर (२) आहारशरीरका बंध करके (३) प्रतिभन्न
अर्थात् अप्रमत्तसे च्युत हो प्रमत्त होकर (४) आहारशरीरको उत्पन्न करके अन्तर्मुहूर्त
रहा (५) और आहारकाययोगी होकर उसका प्रारंभ करके व एक समय रहकर मर
गया । इस प्रकार आहारकाययोगका अन्तर प्रारंभ हुआ । पश्चात् वही जीव उपार्धपुद्गल-
परिवर्तन भ्रमण करके संसारके अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रहनेपर अन्तरकाल समाप्त कर
अर्थात् पुनः आहारशरीर उत्पन्न कर (६) अन्तर्मुहूर्त रहकर (७) अबंधकभावको प्राप्त

गयस्स जहाकमेण अट्टहि सत्तहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणअट्टपोग्गलपरियट्टमेत्तंरुवलंभादो ।
कम्मइयकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ७७ ॥
सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं तिसमऊणं ॥ ७८ ॥

तिण्णि विग्गहे काऊण खुदाभवग्गहणम्मि उप्पज्जिय पुणो विग्गहं काऊण
णिग्गयस्स तिसमऊणखुदाभवग्गहणमेत्तंरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ
ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ७९ ॥

कुदो ? कम्मइयकायजोगादो ओरालियमिस्सं वेउव्वियमिस्सं वा गंतूण असंखेज्जा-
संखेज्जाओसप्पिणी-उस्सप्पिणीपमाणमंगुलस्सं असंखेज्जदिभागमेत्तकालमच्छिय विग्गहं

होगया । ऐसे जीवके यथाक्रम आठ या सान अर्थात् आहारककाययोगका आठ और
आहारकमिश्रकाययोगका सात अन्तर्मुहूर्तसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तमान् अन्तरकाल पाया
जाता है ।

कार्मिककाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ७७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कार्मिककाययोगियोंका जघन्य अन्तर तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र होता
है ॥ ७८ ॥

क्योंकि, तीन विग्रह करके क्षुद्रभवग्रहणवाले जीवोंमें उत्पन्न हो पुनः विग्रह
करके निकलनेवाले जीवके तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र कार्मिककाययोगका
जघन्य अन्तर प्राप्त होता है ।

कार्मिककाययोगियोंका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असं-
ख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल तक होता है ॥ ७९ ॥

क्योंकि, कार्मिककाययोगसे औदारिकमिश्र अथवा वैक्रियिकमिश्र काययोगमें
जाकर असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाण अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र
काल तक रहकर पुनः विग्रहगतिको प्राप्त हुए जीवके कार्मिककाययोगका सूत्रोक्त अन्तर-

१ अत्रतौ ' ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ पमाणअंगुलस्स ' ; आप्रतौ ' ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीपमाणअंगु-
लस्स ' इति पाठः ।

गदस्स तदुवलंभादो ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥८०॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ८१ ॥

सुगमं ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ८२ ॥

कुदो ? इत्थिवेदादो णिग्गयस्स पुरिस-णवुंसयवेदेसु चेव भमंतस्स आवलियाए असंखेज्जदि भागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणमंतरसरूवेणुवलंभादो ।

पुरिसवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ८३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ८४ ॥

कुदो ? पुरिसवेदेणुवसमसेडिं चट्ठिय अवगदवेदो होदूण एगसमयमंतरिय

काल पाया जाता है ।

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ८० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

स्त्रीवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण काल होता है ॥ ८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

स्त्रीवेदी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है ॥ ८२ ॥

क्योंकि, स्त्रीवेदसे निकलकर पुरुषवेद या नपुंसकवेदमें ही भ्रमण करनेवाले जीवके आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तनरूप स्त्रीवेदका अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है ।

पुरुषवेदियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ८३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पुरुषवेदियोंका जघन्य अन्तर एक समय होता है ॥ ८४ ॥

क्योंकि, पुरुषवेद सहित उपशमश्रेणीको चढ़कर अपगतवेदी हो एक समय तक

विदियसमए कालं काऊण पुरिसवेदेसुप्पणस्स एगसमयमेत्तंरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियट्ठं ॥ ८५ ॥

सुगमं ।

णवुंसयवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ८६ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८७ ॥

सुदाभवग्गहणं किण्ण लब्भे ?)ण,) अपज्जत्तएसु सुदाभवग्गहणमेत्ताउट्ठिदिएसु
णवुंसयवेदं मोत्तूण इत्थि-पुरिसवेदाणमणुवलंभादो, पज्जत्तएसु वि अंतोमुहुत्तं मोत्तूण
सुदाभवग्गहणस्स अणुवलंभादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ८८ ॥

कुदो ? णवुंसयवेदादो णिग्गयस्स इत्थि-पुरिसवेदेसु चेव हिंडंतस्स सागरोवम-

पुरुषवेदका अन्तर करके दूसरे समयमें मरण कर पुरुषवेदी जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके
पुरुषवेदका एक समयमात्र अन्तर पाया जाता है ।

पुरुषवेदियोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल
है ॥ ८५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नपुंसकवेदियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ८६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नपुंसकवेदियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है ॥ ८७ ॥

शंका—नपुंसकवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण क्यों नहीं प्राप्त
हो सकता ?

समाधान—नहीं हो सकता, क्योंकि क्षुद्रभवग्रहणमात्र आयुवाले अपर्याप्तक
जीवोंमें नपुंसकवेदको छोड़ खी व पुरुषवेद नहीं पाया जाता, और पर्याप्तकोंमें अन्त-
र्मुहूर्तके सिवाय क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल नहीं पाया जाता ।

नपुंसकवेदियोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व होता है ॥ ८८ ॥

क्योंकि, नपुंसकवेदसे निकलकर खी और पुरुष वेदोंमें ही भ्रमण करनेवाले

सदपुधत्तादो उवरि तत्थावट्टाणाभावादो ।

अवगदवेदाणमंतरं केवचिरं कालदो होदि ? ॥ ८९ ॥

सुगमं ।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९० ॥

कुदो ? उवसमसेडीदो ओयरिय सच्चजहण्णमंतोमुहुत्तं सवेदी होदूणंतरिय पुणो उवसमसेडिं चडिय अवेदत्तं गयस्स तदुवलंभादो ।

उक्खस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ९१ ॥

कुदो ? अणादियमिच्छाइड्डिस्स तिण्णि वि करणाणि काऊण अद्धपोग्गलपरियट्ट-
स्सादिसमए सम्मत्तं संजमं च जुगवं घेतूण अंतोमुहुत्तमच्छिय उवसमसेडिं चडिय
अवगदवेदो होदूण हेट्टा ओयरिय सवेदो होदूण अंतरिय उवद्धुपोग्गलपरियट्टं भमिय पुणो
अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे उवसमसेडिं चडिय अवगदवेदो होदूण अंतरं समाणिय पुणो

जीवके सागरोपमशतपृथक्त्वसे ऊपर वहां रहना संभव नहीं है ।

अपगतवेदी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमकी अपेक्षा अपगतवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है ॥ ९० ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणीसे उतरकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्तमात्र सेवेदी होकर
अपगतवेदित्वका अन्तर कर पुनः उपशमश्रेणीको चढ़कर अपगतवेदभावको प्राप्त
होनेवाले जीवके अपगतवेदित्वका अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर पाया जाता है ।

उपशमकी अपेक्षा अपगतवेदी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरि-
वर्तनप्रमाण होता है ॥ ९१ ॥

क्योंकि, किसी अनादिमिथ्यादृष्टि जीवने तीनों करण करके अर्धपुद्गलपरिवर्तके
आदि समयमें सम्यक्त्व और संयमको एक साथ ग्रहण किया और अन्तर्मुहूर्त रहकर
उपशमश्रेणीको चढ़कर अपगतवेदी होगया । वहांसे फिर नीचे उतरकर सेवेदी हो
अपगतवेदका अन्तर प्रारंभ किया और उपाधपुद्गलपरिवर्तप्रमाण भ्रमण कर पुनः
संसारके अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रहनेपर उपशमश्रेणीको चढ़कर अपगतवेदी हो अन्तरको
समाप्त किया । पश्चात् फिर नीचे उतरकर क्षपकश्रेणीको चढ़कर अबन्धकभाव

ततो ओयरिय खवगसेडिं चडिय अबंधभावं गयस्स तदुवलंभादो ।

खवगं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ ९२ ॥

कुदो ? खवगाणमवगदवेदाणं पुणो वेदपरिणामाणुप्पत्तीदो ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई-माणकसाई-मायकसाई-लोभकसाई
णमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ९३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ९४ ॥

कुदो ? क्रोधेण अच्छिय माणादिगदविदियसमए वाघादेण, कालं कादूण
णेरइएसु उप्पादेण वा, आगदक्रोधोदयस्स एगसमयअंतरुवलंभादो । एवं चेव सेसकसा-
याणमेगसमयअंतरपरूवणा कायव्वा । णवरि वाघादे अंतरस्स एगसमओ णत्थि, वाघादे
क्रोधस्सेव उदयदंसणादो । किंतु मरणेण एगसमओ वत्तव्वो, मणुस्स-तिरिक्ख-देवेषुप्पण-
पढमसमए माण-माया-लोहाणं णियमेणुदयदंसणादो ।

प्राप्त किया । ऐसे जीवके अपगतवेदित्वका कुछ क्रम अर्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाण अन्तर-
काल प्राप्त हो जाता है ।

क्षपककी अपेक्षा अपगतवेदी जीवोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ९२ ॥

क्योंकि, क्षपकश्रेणी चढ़नेवालोंके एक वार अपगतवेदी होजानेपर पुनः वेद-
परिणामकी उत्पत्ति नहीं होती ।

कषायमार्गानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी
जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ९३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्रोधादि चार कषायी जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय होता है ॥ ९४ ॥

क्योंकि, क्रोधकषायमें रहकर मानादिकषायमें जानेके दूसरे ही समयमें
व्याघातसे अथवा मरणकर नारकी जीवोंमें उत्पत्ति होजानेसे क्रोधोदय सहित जीवके
क्रोधकषायका एक समयमात्र अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार शेष कषायोंके
भी अन्तरकी प्ररूपणा करना चाहिये । केवल विशेषता यह है कि मानादि कषायोंके
व्याघातके द्वारा एक समयप्रमाण अन्तरकाल नहीं होता, क्योंकि व्याघात होनेपर
क्रोधका ही उदय देखा जाता है । किन्तु मरणके द्वारा मानादिकषायोंका एक समय-
प्रमाण अन्तर कहना चाहिये, क्योंकि मनुष्य, तिर्यच व देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके प्रथम
समयमें क्रमशः मान, माया व लोभका नियमसे उदय देखा जाता है ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९५ ॥

अप्पिदकसायादो अणप्पिदकसायं गंतूणुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अप्पिदकसाय-
मागदस्स तदुवलंभादो ।

अकसाई अवगदवेदाण भंगो ॥ ९६ ॥

कुदो ? (उवसमं पडुच्च) जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण उवङ्कुपोग्गलपरियट्ठं;
खवगं पडुच्च णत्थि अंतरमिच्चेदेहि तत्तो भेदाभावादो ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी-सुदअण्णाणीणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि ? ॥ ९७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९८ ॥

कुदो ? मदि-सुदअण्णाणेहिंतो सम्मत्तं घेत्तूण सण्णाणेसु जहण्णकालमंतरिय पुणो

क्रोधादि चार कषायी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्तमात्र है ॥ ९५ ॥

क्योंकि, विवक्षित कषायसे अविवक्षित कषायमें जाकर अधिकसे अधिक अन्त-
र्मुहूर्तप्रमाण रहकर विवक्षित कषायमें आये हुए जीवके उस कषायका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण
अन्तरकाल प्राप्त होता है ।

अकषायी जीवोंका अन्तर अपगतवेदी जीवोंके समान होता है ॥ ९६ ॥

क्योंकि, (उपशमकी अपेक्षा) जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर
उपार्धपुद्गलपरिवर्त अकषायी जीवोंके भी होता है । क्षपककी अपेक्षा अन्तर नहीं होता,
निरन्तर है । इस प्रकार अकषायी और अपगतवेदी जीवोंकी अन्तर-प्ररूपणामें कोई
भेद नहीं है ।

ज्ञानमार्गानुसार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीवोंका अन्तर कितने काल
तक होता है ? ॥ ९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मतिअज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता
है ॥ ९८ ॥

क्योंकि, मतिअज्ञान व श्रुतअज्ञानसे सम्यक्त्व ग्रहणकर मतिज्ञान व श्रुत-
ज्ञानमें आकर कमसे कम कालका अन्तर देकर पुनः मतिअज्ञान व श्रुतअज्ञान भावमें गये

मदि-सुदअण्णाणी गदस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण वेछावट्टिसागरोवमाणि ॥ ९९ ॥

कुदो ? मदि-सुदअण्णाणिस्स सम्मत्तं घेत्तूण छावट्टिसागरोवमाणि देसूणाणि सण्णाणेषु अंतरिय पुणो सम्मामिच्छत्तं गंतूण मिस्सणाणेहि अंतरिय पुणो सम्मत्तं घेत्तूण छावट्टिसागरोवमाणि देसूणाणि भमिय मिच्छत्तं गदस्स तदुवलंभादो । कुदो देसूणत्तं ? उवसमसम्मत्तकालादो वेछावट्टिअभंत्तरमिच्छत्तकालस्स बहुत्तुवलंभादो । सम्मामिच्छा-इट्ठीणाणं मदि-सुदअण्णाणमिदि कट्टु केइमाइरिया सम्मामिच्छत्तेण णांतरावेत्ति । तण्ण घडदे, सम्मामिच्छत्तभावायत्तणाणस्स सम्मामिच्छत्तं व 'पत्तजच्चंतरस्स मदि-सुद-अण्णाणत्तविरोहादो ।

विभंगणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०० ॥

हुए जीवके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है ।

मतिअज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर दो छयासठ सागरोपम अर्थात् एक सौ बत्तीस सागरोपम काल होता है ॥ ९९ ॥

क्योंकि, किसी मति-श्रुतअज्ञानी जीवके सम्यक्त्व ग्रहण करके, कुछ कम छयासठ सागरोपम कालप्रमाण सम्यग्ज्ञानोंका अन्तर देकर, पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको जाकर मिथ्रज्ञानोंका अन्तर देकर पुनः सम्यक्त्व ग्रहण करके कुछ कम छयासठ सागरोपमप्रमाण परिभ्रमण कर मिथ्यात्वको जानेसे दो छयासठ सागरोपमप्रमाण मति-श्रुत अज्ञानोंका अन्तरकाल पाया जाता है ।

शंका—दो छयासठ सागरोपमोंमें जो कुछ कम काल बतलाया है वह क्यों ?

समाधान—क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वकालसे दो छयासठ सागरोपमोंके भीतर मिथ्यात्वका काल अधिक पाया जाता है । (देखो पु. ५, पृ. ६, अन्तरानुगम सूत्र ४ की टीका) ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिज्ञानको मति-श्रुत अज्ञान रूप मानकर कितने ही आचार्य उपर्युक्त अन्तर-प्ररूपणामें सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर नहीं दिलाते । पर यह बात घटित नहीं होती, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वभावके अधीन हुआ ज्ञान सम्यग्मिथ्यात्वके समान एक अन्य जातिका बन जाता है अतः उस ज्ञानको मति-श्रुत अज्ञान रूप माननेमें विरोध आता है ।

विभंगज्ञानियोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १०० ॥

१ काप्रती ' सम्मामिच्छत्तं पत्त- ' ; मप्रती ' सम्मामिच्छत्तं च पत्त- ' इति पाठः ।

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०१ ॥

कुदो ? देवस्स णेरइयस्स वा विभंगणाणिस्स दिट्ठमग्गस्स सम्मत्तं घेतूण ओहिणाणेण सव्वजहणमंतोमुहुत्तमच्छिय विभंगणाणं मिच्छत्तं च जुगवं पडिवण्णस्स जहण्णंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्ठं ॥ १०२ ॥

कुदो ? विभंगणाणादो मदिअण्णाणं गंतूणंतरिय आवलियाए असंखेज्जदिभाग-
मेत्तपोग्गलपरियट्ठे परियट्ठिदूण विभंगणाणं गदस्स तदुवलंभादो ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणीणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि ? ॥ १०३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

विभंगज्ञानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १०१ ॥

क्योंकि, एक विभंगज्ञानी देव या नारकी जीवके सन्मार्ग पाकर सम्यक्त्व ग्रहण कर अवधिज्ञान सहित कमसे कम अन्तर्मुहूर्त रहकर विभंगज्ञान और मिथ्यात्वको एक साथ प्राप्त होनेपर विभंगज्ञानका अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तर प्राप्त होता है ।

विभंगज्ञानियोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है ॥ १०२ ॥

क्योंकि, विभंगज्ञानसे मतिअज्ञानको जाकर अन्तर प्रारंभ कर आवलीके असंख्यातवै भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर विभंगज्ञानको प्राप्त होनेवाले जीवके विभंगज्ञानका सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १०३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आभिनिबोधिक आदि उक्त चार ज्ञानियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है

॥ १०४ ॥

कुदो ? मदि-सुद-ओहिणाणेषु द्विदेवस्स णेरइयस्स वा मिच्छत्तं गंतूण मदि-
सुद-विभंगअण्णाणेहि अंतरिय पुणो मदि-सुद-ओहिणाणमागदस्स जहण्णेणंतोमुहुत्ततरु-
वलंभादो । एवं मणपज्जवणाणस्स वि । णवरि मणपज्जवणाणी संजदो तण्णाणं विणासिय
अंतोमुहुत्तमच्छिय तस्सेव णाणस्स पुणो आणेदच्चो ।

उक्कस्सेण अद्वपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १०५ ॥

कुदो ? अणादियमिच्छाइट्टिस्स अद्वपोग्गलपरियट्टस्स पठमसमए उवसमसम्मत्तं
पडिवज्जिय तत्थेव देव-णेरइएसु विरोधाभावादो मदि-सुद-ओहिणाणाणि उप्पाइय छाव-
लियाओ उवसमसम्मत्तद्वा अत्थि त्ति सासणं गंतूणंतरिय' पुणो मिच्छत्तेण अद्वपोग्गल-
परियट्टं भमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारं सम्मत्तं पडिवज्जिय मदि-सुदणाणाणमंतरं समा-

क्योंकि, मति, श्रुत और अवधि ज्ञानोंमें स्थित किसी देव या नारकी जीवके
मिथ्यात्वको जाकर मति अज्ञान, श्रुतअज्ञान व विभंगज्ञानके द्वारा अन्तर करके पुनः
मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञानमें आनेपर उक्त ज्ञानोंका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य
अन्तर प्राप्त होता है ।

इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानीका भी जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है ।
केवल विशेषता यह है कि मनःपर्ययज्ञानी संयत जीव मनःपर्ययज्ञानको नष्ट करके
अन्तर्मुहूर्तकाल तक उस ज्ञानके विना रहकर फिर उसी ज्ञानमें लाया जाना चाहिये ।

आभिनिबोधिक आदि चार ज्ञानोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल-
परिवर्तनप्रमाण होता है ॥ १०५ ॥

क्योंकि, किसी अनादिमिथ्यादृष्टि जीवने अपने अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण
(संसार शेष रहनेके) प्रथम समयमें उपशमसम्यक्त्व ग्रहण किया और उसी अव-
स्थामें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञान उत्पन्न किये; क्यौंकि देव और नारकी जीवोंमें
उक्त अवस्थामें इनके उत्पन्न होनेमें कोई विरोध नहीं आता । फिर उपशमसम्यक्त्वके
कालमें छह आवली शेष रहनेपर वह जीव सासादनगुणस्थानमें गया और इस प्रकार
मतिज्ञान आदि तीनों ज्ञानोंका अन्तर प्रारंभ हो गया । फिर उसी जीवने मिथ्यात्व
सहित अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण भ्रमण कर संसारके अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रहनेपर
सम्यक्त्वको ग्रहण कर लिया और इस प्रकार मति-श्रुत ज्ञानोंका अन्तर समाप्त किया ।

१ वेइंदियाणं भंते किं नाणी अजाणी ? गोयमा ! णाणी वि अण्णाणि वि । जे णाणी ते नियमा दुनाणी ।
सं जहा— आभिणिबोहियनाणी सुयणाणी । जे अण्णाणी ते वि नियमा दुअजाणी । तं जहा— महअजाणी सुय-
अण्णाणी य । भगवती, ८, २. वेइंदियस्स दो णाणा कहं लप्पंति ? भण्णइ, सासायणं पडुच्च तस्सापज्जत्तयस्स
दो णाणा लप्पंति । प्रहापना टीका । सासणभावे णाणं । कर्मअंध ४, ४९.

णिय पुणो अंतोमुहुत्तं गंतूण ओहिणाणमुप्पाइय तत्थेव तदंतरं पि समाणिय अंतोमुहुत्तेण केवलणाणमुप्पाइय अवंधमावं गदस्स उवड्ढोपोग्गलपरियट्टंतरुवलंभादो ।

एवं मणपज्जवणाणस्स वि । णवरि उवसमसम्मत्तेण सह मणपज्जवणाणस्स विरोहादो पढमसम्मत्तद्धं वोलाविय मुहुत्तपुधत्ते गदे मणपज्जवणाणमादीए अंतरस्स अवसाणे च उप्पाएदच्चं ।

केवलणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०६ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ १०७ ॥

कुदो ? केवलणाणे समुप्पण्णे पुणो तस्स विणासाभावादो ।

संजमाणुवादेण संजद-सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-परिहार-सुद्धिसंजद-संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०८ ॥

सुगमं ।

पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत करके उसने अवधिज्ञान उत्पन्न कर लिया और उसी समय अवधिज्ञानका अन्तर समाप्त किया । फिर उसने अन्तर्मुहूर्तकालसे केवलज्ञान उत्पन्न कर अवन्धकभाव प्राप्त कर लिया । ऐसे जीवके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानका उपार्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानका भी उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण होता है । केवल विशेषता यह है कि उपशमसम्यक्त्वसे मनःपर्ययज्ञानका विरोध होनेके कारण प्रथमोपशमसम्यक्त्वका काल समाप्त कर मुहूर्तपृथक्त्व व्यतीत होजानेपर आदिमें व अन्तरके अन्तमें मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न कराना चाहिये ।

केवलज्ञानियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १०६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

केवलज्ञानियोंके ज्ञानका कभी अन्तर ही नहीं होता, वह ज्ञान निरन्तर होता है ॥ १०७ ॥

क्योंकि, केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर फिर उसका विनाश नहीं होता ।

संयममार्गणानुसार संयत, सामायिक व छेदोपस्थापन शुद्धिसंयत, परिहार-विशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०९ ॥

कुदो ? अप्पिदसंजमद्धिदिजीवमसंजमं' णेदूण पुणो अप्पिदसंजमस्स जहण्णकालेण णीदे जहण्णमंतरं होदि । णवरि सामाइयच्छेदोवट्ठावणसंजदो उवसमसेडिं चडिय सुहुम-संजम-जहाक्खादसंजमेसु अंतरिय पुणो हेट्ठा ओयरियस्स सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धि-संजमेसु पदिदस्स जहण्णमंतरं होदि । परिहारसुद्धिसंजमादो सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धि-संजमं णेदूण जहण्णेण अंतोमुहुत्तेण पुणो परिहारसुद्धिसंजममागदस्स जहण्णमंतरं होदि ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्ठं देसूणं ॥ ११० ॥

कुदो ? अणादियमिच्छाइड्डिस्स अद्धपोग्गलपरियट्ठस्स आदिसमए पढमसम्मत्तं संजमं च जुगवं धेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूणंतरिय उवड्ढुपोग्गलपरियट्ठं भमिय पुणो अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे संजमं पडिवज्जिय अंतरं समाणिय अंतोमुहुत्त-मच्छिय अबंधगतं गदस्स उवड्ढुपोग्गलपरियट्ठमेत्तंतंरुवलंभादो । एवं सामाइय-छेदोवट्ठा-

संयत आदि उक्त संयमी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है ॥१०९॥

क्योंकि, विवक्षित संयममें स्थित जीवको असंयममें लेजाकर कमसे कम कालमें पुनः विवक्षित संयममें लानेपर उस संयमका उक्त जघन्य अन्तर प्राप्त होता है । केवल विशेषता यह है कि सामायिक व छेदोपस्थापन शुद्धिसंयत जीवके उपशम-श्रेणीको चढ़कर सूक्ष्मसाम्पराय व यथाख्यात संयमोंके द्वारा अन्तर देकर पुनः श्रेणीसे नीचे उतरनेपर सामायिक व छेदोपस्थान शुद्धिसंयमोंमें आनेपर उन दोनों संयमोंका जघन्य अन्तर होता है । तथा परिहारशुद्धिसंयमसे सामायिक व छेदोपस्थापन शुद्धिसंयममें जाकर अन्तर्मुहूर्त कालसे पुनः परिहारशुद्धिसंयममें आये हुए जीवके परिहारशुद्धिसंयमका जघन्य अन्तर होता है ।

संयत आदि उक्त संयमी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण होता है ॥ ११० ॥

क्योंकि, किसी अनादिमिथ्यादृष्टि जीवके अर्धपुद्गलपरिवर्तमात्र संसार शेष रहनेके आदि समयमें प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयम दोनोंको एक साथ ग्रहण कर अन्तर्मुहूर्त रहकर मिथ्यात्वको जाकर अन्तर प्रारंभ करके उपार्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाण भ्रमण कर पुनः अन्तर्मुहूर्तमात्र संसार शेष रहनेपर संयम ग्रहण कर व अन्तरकाल समाप्त कर अन्तर्मुहूर्त तक रह अवन्धकभावको प्राप्त होनेपर उक्त संयमोंका उपार्ध-पुद्गलपरिवर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

इसी प्रकार सामायिक व छेदोपस्थापन शुद्धिसंयतोंका अन्तर कहना चाहिये,

१ अत्रतौ ' -जीवसंजमं ' इति पाठः ।

वणसुद्धिसंजदाणं, भेदाभावादो । एवं परिहारसुद्धिसंजदस्स वि । णवरि अणा-
दियमिच्छादिट्ठी अद्धपोगगलपरियट्ठस्स आदिसमए उवसमसम्मत्तं संजमं च जुगवं घेत्तूण
वासपुधत्तमच्छिय पच्छा परिहारसुद्धिसंजमं गंतूण मिच्छत्तं पुणो गमिय अंतरावेदव्वो,
संजमग्गहणपढमसमयादो वासपुधत्तेण विणा परिहारसुद्धिसंजमग्गहणाभावादो । अवसाणे
वि परिहारसुद्धिसंजमं गेण्हाविय^१ पच्छा सामाइयच्छेदोवद्धावण-सुहुम-जहाक्खादसंजमाणं
णेदूण अबंधगो कायव्वो । एवं संजदासंजदस्स वि । णवरि अवसाणे तिण्णि वि करणाणि
काउणुवसमसम्मत्तं संजमासंजमं च गहिदपढमसमए अंतरं समाणिय अंतोमुहुत्तमच्छिय
संजमं घेत्तूण अबंधगत्तं गदो त्ति वत्तव्वं ।

**सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजद-जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणमंतरं
केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १११ ॥**

सुगमं ।

क्योंकि, उनके पूर्वोक्त संयतोंके अन्तरसे कोई भेद नहीं होता ।

इसी प्रकार परिहारशुद्धिसंयतका भी अन्तर होता है । केवल विशेषता यह है कि अनादिमिथ्यादृष्टि जीवके अर्धपुद्गलपरिवर्तके आदि समयमें उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ ग्रहण कर वर्षपृथक्त्व रहकर पश्चात् परिहारशुद्धिसंयमको प्राप्त कर पुनः मिथ्यात्वमें जाकर अन्तर उत्पन्न करना चाहिये, क्योंकि संयम ग्रहण करनेके पश्चात् वर्षपृथक्त्वके विना परिहारशुद्धिसंयम ग्रहण नहीं किया जा सकता । अन्तरके समाप्तिकालमें भी परिहारशुद्धिसंयमको ग्रहण कराकर पश्चात् सामायिक व छेदोपस्थान, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात संयमोंमें लेजाकर अबन्धकभाव उत्पन्न करना चाहिये ।

इसी प्रकार संयतासंयत जीवका भी अन्तर उत्पन्न करना चाहिये । केवल विशेषता यह है कि अन्तमें तीनों करण करके उपशमसम्यक्त्व व संयमासंयमको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही अन्तरकाल समाप्त कर अन्तर्मुहूर्त रहकर संयम ग्रहण कर अबन्धकभावको प्राप्त हुआ, ऐसा कहना चाहिये ।

सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतों और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११२ ॥

कुदो ? चडमाणस्स सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदस्स उवसंतकसाओ होदूण जहाक्खादेणंतरिय पुणो सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदे पदिदस्स तदुवलंभादो । जहाक्खादसंजमादो हेड्डा पदिय जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो कमेणुवरि चडिय उवसंतकसाओ होदूण जहाक्खादसंजमं गदस्स जहण्णंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ११३ ॥

कुदो ? अणादियमिच्छाइट्टिस्स तिण्णि वि करणाणि कादूण अद्धपोग्गलपरियट्टस्स आदिसमए पढमसम्मत्तं संजमं च जुगवं घेत्तूण अंतोमुहुत्तेण सव्वजहण्णेण उवसमसेडिं चडिय सुहुमसांपराइओ होदूण तत्थ जहण्णंतोमुहुत्तमच्छिय उवसंतकसाओ होदूण सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदो पुणो होदूण तस्स पढमसमए जहाक्खादसुद्धिसंजमंतरस्सादिं करिय पुणो अंतोमुहुत्तेण अणियट्टिगुणट्टाणे णिवदिय सामाइय-छेदोवट्टावणं पदिदपढमसमए सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजमंतरस्स आदिं करिय कमेण हेड्डा ओयरिय

उपशमकी अपेक्षा सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात शुद्धिसंयतोंका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है ॥ ११२ ॥

क्योंकि, श्रेणी चढ़ते हुए सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतके उपशान्तकषाय होकर यथाख्यातसंयमके द्वारा सूक्ष्मसाम्परायसंयमका अन्तर कर पुनः गिरकर सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयममें आनेपर अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तरकाल पाया जाता है । यथाख्यातसंयमसे नीचे गिरकर कमसे कम अन्तर्मुहूर्तमात्र रहकर पुनः क्रमसे ऊपर चढ़कर उपशान्तकषाय होकर यथाख्यातसंयम ग्रहण करनेवाले जीवके यथाख्यातसंयमका अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तर पाया जाता है ।

सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात शुद्धिसंयतोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ ११३ ॥

क्योंकि, कोई अनादिमिथ्यादृष्टि जीव तीनों ही करण करके अर्धपुद्गलपरिवर्तके आदि समयमें प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ ग्रहण कर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त कालसे उपशमश्रेणीको चढ़कर सूक्ष्मसाम्परायिक हुआ, और वहां कमसे कम अन्तर्मुहूर्तमात्र रहकर उपशान्तकषाय होगया । पश्चात् पुनः सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत होकर उसके प्रथम समयमें ही यथाख्यातशुद्धिसंयमका अन्तर प्रारंभ किया । पुनः अन्तर्मुहूर्त कालसे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें गिरकर सामायिक व छेदोपस्थापन शुद्धिसंयममें गिरनेके प्रथम समयमें सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयमका अन्तर प्रारंभ किया । फिर क्रमसे नीचे उतरकर उपार्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाण भ्रमण कर अन्तमें

उवङ्कुपोग्गलपरियट्ठं भमिय अवसाणे सम्मत्तं संजमं च घेत्तूणुवससेडिं चडिय सुहुमसांप-
राइओ उवसंतकसाओ च होदूण सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदो पुणो होदूण क्रमेण अंतराणि
समाणिय हेट्ठा ओयरिय पुणो खवगसेडिं चडिय अबंधगत्तं गदस्स उवङ्कुपोग्गलपरियट्ठं-
तरस्सुवलंभादो । खवगसेडीए दोणहमंतराणं परिसमत्ती किण्ण कदा ? ण, उवसामगेहि
एत्थ अहियारादो ।

खवगं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ ११४ ॥

कुदो ? खवगाणं पुणो आगमणाभावादो ।

असंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ११५ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११६ ॥

सम्यक्त्व और संयमको एक साथ ग्रहण कर उपशमश्रेणीपर चढ़ा तथा सूक्ष्मसाम्प-
रायिक और उपशान्तकषाय होकर पुनः सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत होकर क्रमसे दोनों
अन्तरकालोंको समाप्त कर नीचे उतरकर पुनः क्षपकश्रेणीपर चढ़ा और अबन्धक-
भावको प्राप्त होगया । ऐसे जीवके सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात शुद्धिसंयमका
उपार्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

शंका — क्षपकश्रेणीमें जघन्य और उत्कृष्ट इन दोनों अन्तरोंकी परिसमाप्ति क्यों
नहीं की ?

समाधान—नहीं की, क्योंकि यहां तो केवल उपशामकोंका अधिकार है,
क्षपकोंका नहीं ।

क्षपककी अपेक्षा सूक्ष्मसाम्परायिक और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंका अन्तर
नहीं होता, निरन्तर है ॥ ११४ ॥

क्योंकि, क्षपक जीवोंका क्षीणकषाय गुणस्थानसे लौटकर पुनः सूक्ष्मसाम्पराय
गुणस्थानमें आनेका अभाव है ।

असंयतोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ११५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंयतोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र है ॥ ११६ ॥

कुदो ? असंजदस्स संजमं घेत्तूण जहणमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो असंजमं गदस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ ११७ ॥

कुदो ? सण्णिपंचिदियसम्मच्छिमपज्जत्तयस्स छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स विस्समिय विसुद्धो होदूण संजमासंजमं घेत्तूणंतरिय देसूणपुव्वकोडिं जीविय कालं काऊण देवेसुप्पण्णपढमसमए समाणिदंतरस्स अंतोमुहुत्तूणपुव्वकोडिमेत्तंरुवलंभादो ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?
॥ ११८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ ११९ ॥

कुदो ? जो जीवो चक्खुदंसणी एइंदिय-वेइंदिय-तेइंदियलद्धिअपज्जत्तएसु खुदा-भवग्गहणमेत्ताउट्ठिदिएसु अण्णदरेसु अचक्खुदंसणी होदूणुप्पाज्जिय खुदाभवग्गहणमंतरिय पुणो चउरिंदियादिसु चक्खुदंसणी होदूणुप्पणो तस्स खुदाभवग्गहणमेत्तंरुवलंभादो ।

क्योंकि, असंयत जीवके संयम ग्रहण कर कमसे कम अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर पुनः असंयममें जानेपर अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर प्राप्त होता है ।

असंयतोका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि होता है ॥ ११७ ॥

क्योंकि, किसी संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्छिम पर्याप्त जीवने छहों पर्याप्तियोंसे पूर्ण होकर विश्राम ले विशुद्ध हो संयमासंयम ग्रहणकर असंयमका अन्तर प्रारंभ किया और कुछ कम पूर्वकोटि काल जीकर मरणकर देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें अन्तर समाप्त किया अर्थात् असंयमभाव ग्रहण किया । ऐसे जीवके असंयमका अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटिमात्र अन्तरकाल पाया जाता है । (देखो पु. ४, कालानुगम सूत्र १८) ।

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ?
॥ ११८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चक्षुदर्शनी जीवोंका जघन्य अन्तरकाल क्षुद्रभवग्रहणमात्र होता है ॥ ११९ ॥

क्योंकि, जो चक्षुदर्शनी जीव क्षुद्रभवग्रहणमात्र आयुस्थितिवाले किसी भी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय व त्रीन्द्रिय लब्धपर्याप्तिकोमें अचक्षुदर्शनी होकर उत्पन्न होता है और क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल चक्षुदर्शनका अन्तर कर पुनः चतुरिन्द्रियादिक जीवोंमें चक्षुदर्शनी होकर उत्पन्न होता है उस जीवके चक्षुदर्शनका क्षुद्रभवग्रहणमात्र अन्तरकाल पाया जाता है ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १२० ॥

कुदो ? चक्खुदंसणीहिंतो णिप्पिडिय अचक्खुदंसणीसु समुप्पज्जिय अंतरिदूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टे गमियं पुणो चक्खुदंसणीसुप्पणस्स तदुवलंभादो ।

अचक्खुदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १२१ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ १२२ ॥

केवलदंसणिस्स पुणो^१ अचक्खुदंसणुप्पत्तीए अभावादो ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ १२३ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तमुक्कस्सेण उवड्डुपोग्गलपरियट्टमिच्चेदेहि दोण्हं भेदाभावादो ।

चक्षुदर्शनी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल होता है ॥ १२० ॥

क्योंकि, चक्षुदर्शनी जीवोंमेंसे निकलकर अचक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न हो अन्तर प्रारम्भ कर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंको विताकर पुनः चक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न हुए जीवके चक्षुदर्शनका सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

अचक्षुदर्शनी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अचक्षुदर्शनी जीवोंका अन्तर नहीं होता, वे निरन्तर होते हैं ॥ १२२ ॥

क्योंकि, अचक्षुदर्शनका अन्तर केवलदर्शन उत्पन्न होनेपर ही हो सकता है; पर एक वार जो जीव केवलदर्शनी हो गया उसके पुनः अचक्षुदर्शनकी उत्पत्ति नहीं हो सकती ।

अवधिदर्शनी जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा अवधिज्ञानी जीवोंके समान है ॥ १२३ ॥

क्योंकि, अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंके जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तमात्र और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाणमें कोई भेद नहीं है ।

१ प्रतिषु 'केवलदंसणिस्स णो' इति पाठः ।

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १२४ ॥

अंतराभावं पडि दोण्हं भेदाभावादो ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणमंतरं
केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १२५ ॥

सुगमं ।

जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२६ ॥

कुदो ? किण्हलेस्सियस्स णीललेस्सं, णीललेस्सियस्स काउलेस्सं, काउलेस्सियस्स
तेउलेस्सं गंतूण अप्पणो लेस्साए जहणकालेणागदस्स अंतोमुहुत्तं रुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १२७ ॥

कुदो ? पुच्चकोडाउओ मंगुस्सो गब्भादिअट्टुवस्साणमब्भंतरे छअंतोमुहुत्तमत्थि
त्ति किण्हलेस्साए परिणमिय आदिं करिय पुणो णील-काउ-तेउ-पम्म-सुक्कलेस्सासु

केवलदर्शनी जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा केवलज्ञानी जीवोंके समान है ॥ १२४ ॥

क्योंकि, इन दोनोंमें अन्तरका अभाव होता है, और इसकी अपेक्षा दोनोंमें
कोई भेद नहीं है ।

लेश्यामार्गणानुसार कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीवोंका
अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १२५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त
होता है ॥ १२६ ॥

क्योंकि, कृष्णलेश्यावाले जीवके नीललेश्यामें, नीललेश्यावाले जीवके कापोत-
लेश्यामें व कापोतलेश्यावाले जीवके तेजोलेश्यामें जाकर अपनी पूर्व लेश्यामें जघन्य
कालके द्वारा पुनः वापिस आनेसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तेतीस
सागरोपमप्रमाण होता है ॥ १२७ ॥

क्योंकि, एक पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य गर्भसे आदि लेकर आठ वर्षके
भीतर छह अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर कृष्णलेश्या रूप परिणामको प्राप्त हुआ । इस प्रकार
कृष्णलेश्याका प्रारंभ कर पुनः नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याओंमें परिपाटी-

१ कृष्ण-णील-कपोतलेश्यानामेकत्र अंतरं जघन्येनान्तर्मुहूर्तः, उत्कृष्टेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि साधिकानि ।
त. रा. ४, २२, १०.

परिवाडीए अंतरिय संजमं घेत्तूण तिसु सुहलेस्सासु देसूणपुव्वकोडिमच्छिय पुणो तेत्तीससागरोवमाउट्टिदिएसु देवेसुप्पज्जिय तत्तो आगंतूण मणुस्सेसुप्पज्जिय सुक्क-पम्म-तेउ-काउ-णीललेस्साओ कमेण परिणामिय किण्णलेस्साए परिणामयस्स दसअंतोमुहुत्तूण-अट्टवस्सेहि उणियाए पुव्वकोडियाए सादिरेयाणं तेत्तीससागरोवमाणं अंतरत्तेणुवलंभादो । एवं चेव णील काउलेस्साणं पि वत्तव्वं । णवरि अट्ट-अंतोमुहुत्तूणट्टवस्सेहि उणियाए पुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेत्तीससागरोवमाणि त्ति वत्तव्वं ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १२८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२९ ॥

क्रमसे जाकर अन्तर करता हुआ, संयम ग्रहण कर तीन शुभ लेश्याओंमें कुछ कम पूर्वकोटि कालप्रमाण रहा और फिर तेतीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । फिर वहांसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर शुक्ल, पद्म, तेज, कापोत और नील-लेश्या रूप क्रमसे परिणमित हुआ और अन्तमें कृष्णलेश्यामें आगया । ऐसे जीवके दश अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षसे हीन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण कृष्णलेश्याका अन्तरकाल प्राप्त होता है । इसी प्रकार नीललेश्या और कापोतलेश्याके उत्कृष्ट अन्तरकालका प्ररूपण करना चाहिये । विशेषता केवल इतनी है कि नीललेश्याका अन्तर कहते समय आठ और कापोत लेश्याका अन्तर कहते समय छह अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षसे हीन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण अन्तरकाल बतलाना चाहिये ।

तेजलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्यावाले जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १२८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तेज, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है ॥ १२९ ॥

१ अ-आप्रत्योः 'अंतोमुहुत्तेऊण' इति पाठः ।

२ तेजःपद्मशुक्ललेश्यानामेकशः अंतरं जघन्येनांतर्मुहूर्तः, उत्कर्षेणामंतः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । त. रा. ४, २२, १०, तेउतियाणं एवं णवरि य उक्कस्सबिरहकालो दु । पोग्गलवरिवट्टा हु असंखेज्जा होति णियमेण ॥ गो. जी. ५५३.

कुदो ? तेउ-पम्म-सुककलेस्साहितो अविरोद्धमण्णलेस्सं गंतूण जहण्णकालेण पडिणियत्तिय अप्पप्पणो लेस्साणमागदस्स जहण्णंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्ठं ॥ १३० ॥

कुदो ? अप्पिदलेस्सादो अविरोद्धाणप्पिदलेस्साणं गंतूण अंतरियावलियाए असं-खेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्ठेसु किण्ण-णील-काउलेस्साहि अदिक्कंतेसु अप्पिदलेस्स-मागदस्स सुत्तुक्कस्संतरुवलंभादो ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३१ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ १३२ ॥

कुदो ? भवियाणमभवियाणं च अण्णोण्णसरूवेण परिणमाभावादो ।

क्योंकि, तेज, पद्म व शुक्ल लेश्यासे अपनी अविरोधी अन्य लेश्यामें जाकर व अघन्य कालसे लौटकर पुनः अपनी अपनी पूर्व लेश्यामें आनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्तमात्र अघन्य अन्तरकाल पाया जाता है ।

तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल होता है ॥ १३० ॥

क्योंकि, विवक्षित लेश्यासे अविरोद्ध अविवक्षित लेश्याओंको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ । पुनः आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंके कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओंके साथ वीतनेपर विवक्षित लेश्याको प्राप्त हुए जीवके उक्त लेश्याओंका सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है ।

भव्यमार्गणानुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर नहीं होता, वे निरन्तर हैं ॥ १३२ ॥

क्योंकि, भव्य और अभव्य जीवोंका अन्योन्यस्वरूपसे परिणमनका अभाव है, अर्थात् भव्य कभी अभव्य नहीं हो सकता और अभव्य कभी भव्य नहीं हो सकता ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्टि-वेदगसम्माइट्टि-उवसमसम्माइट्टि-
सम्मामिच्छाइट्टीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेणंतोमुहुत्तं ॥ १३४ ॥

कुदो ? सम्माइट्टिस्स मिच्छत्तं गंतूण जहण्णेण कालेण पुणो सम्मतमागदस्स जहण्णंतरुवलंभादो । एवं वेदगसम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं, विसेसाभावादो । एवं उवसम-सम्माइट्टिस्स वि । णवरि उवसमसेडीदो ओदिणस्स आदिं करिय वेदगसम्मत्तेण जहण्णद्धमंतरिय पुणो उवसमसेडिं समारुहणद्धं दंसणमोहणीयमुवसमिय उवसमसम्मत्तं गयस्स जहण्णमंतरं वत्तव्वं ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १३५ ॥

कुदो ? अणादियमिच्छादिट्टिस्स अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए सम्मतं घेतूण अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूणुवद्धपोग्गलपरियट्टमंतरिय अवसाणे सम्मतं संजमं च

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्तमात्र है ॥ १३४ ॥

क्योंकि, सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर जघन्य कालसे पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त होनेपर उक्त जघन्य अन्तर प्राप्त होता है । इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिये, क्योंकि, उसमें विशेषताका अभाव है । इसी प्रकार ही उपशमसम्यग्दृष्टिका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिये । परन्तु विशेषता यह है कि उपशमश्रेणीसे उतरे हुए जीवको आदि करके वेदकसम्यक्त्वसे जघन्य काल तक अन्तर करके पुनः उपशमश्रेणीपर चढ़नेके लिये दर्शनमोहनीयको उपशान्त करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए जीवके वह जघन्य अन्तर कहना चाहिये ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ १३५ ॥

क्योंकि, अनादिमिथ्यादृष्टिके अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको ग्रहण कर और उसके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर उपार्ध अर्थात् कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तरको प्राप्त हो अन्तमें सम्यक्त्व एवं संयमको

जुगवं घेत्तूणंतरं समाणिय अंतोमुहुत्तेण अबंधगतं गदस्स उवड्डुपोग्गलपरियट्टंतरुवलं-
भादो । एवं वेदगसम्माइट्टिस्स वि वत्तव्वं । णवरि अणादियमिच्छादिट्ठी उवसमसम्मत्तं
घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वेदगसम्मत्तं घेत्तूण तत्थ वि अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो
मिच्छत्तेण अंतरिदो त्ति वत्तव्वं । अवसाणे वि उवसमसम्मत्तादो वेदगसम्मत्तं पडिवण्ण-
पढमसमए अंतरं समाणदेव्वं । एवमुवसमसम्माइट्टिस्स वि वत्तव्वं, सामणसम्माइट्ठी-
हितो भेदाभावादो । एवं सम्मामिच्छाइट्टिस्स वि । णवरि उवसमसम्मादिट्ठी सम्मा-
मिच्छत्तं णेदूण मिच्छत्तं गमिय अंतरावेदव्वो । अवसाणे वि उवसमसम्मत्तादो सम्मा-
मिच्छत्तंगदपढमसमए अंतरं समाणिय अंतोमुहुत्तमच्छिय अबंधभावं णेयव्वो ।

खइयसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३६ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ १३७ ॥

खइयसम्माइट्ठीणं सम्मत्तरगमणाभावादो ।

सासणसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३८ ॥

एक साथ ग्रहण कर अन्तरको समाप्त करते हुए अन्तर्मुहूर्तसे अबन्धकत्वको प्राप्त होने पर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र अन्तर प्राप्त होता है । इसी प्रकार वेदक-सम्यग्दृष्टिका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिये । विशेष इतना है कि अनादिमिथ्यादृष्टि उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर और उसके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः वेदकसम्यक्त्वको ग्रहणकर और वहां भी अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः मिथ्यात्वसे अन्तरित होता है, इस प्रकार कहना चाहिये । अन्तमें भी उपशमसम्यक्त्वसे वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अन्तरको समाप्त करना चाहिये । इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टिका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिये, क्योंकि, सामान्य सम्यग्दृष्टियोंसे उसके कोई भेद नहीं है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टिका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिये । विशेष इतना है कि उपशमसम्यग्दृष्टिको सम्यग्मिथ्यात्वमें लेजाकर पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त कराकर अन्तर कराना चाहिये । अन्तमें भी उपशमसम्यक्त्वसे सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अन्तरको समाप्त कर और अन्तर्मुहूर्त रहकर अबन्धकताको प्राप्त कराना चाहिये ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर नहीं होता, वे निरन्तर हैं ॥ १३७ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि अन्य सम्यक्त्वको प्राप्त नहीं होते ।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १३८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३९ ॥

कुदो ? पढमसम्मत्तं घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय सासणगुणं गंतूणादिं करिय मिच्छत्तं गंतूणंतरिय सव्वजहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुव्वेलणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पढमसम्मत्तपाओग्गसागरोवमपुधत्तमेत्तद्धिसंतकम्मं ठविय तिण्णि वि करणाणि काऊण पुणो पढमसम्मत्तं घेत्तूण छावलियावसेसाए उवसमसम्मत्त-द्वाए सासणं गदस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तंतरुवलंभादो । उवसमसेडीदो ओयरिय सासणं गंतूण अंतोमुहुत्तेण पुणो वि उवसमसेडिं चडिय ओदरिदूण सासणं गदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तमंतरं उवलंभदे, एदमेत्थ किण्ण परुविदं ? ण च उवसमसेडीदो ओदिण्णउवसमसम्माइड्डीणो सासणं (ण) गच्छंति त्ति णियमो अत्थि, 'आसाणं पि गच्छेज्ज' इदि कसायपाहुडे चुणिसुत्तदंसणादो । एत्थ परिहारो उच्चदे-उवसमसेडीदो ओदिण्ण-उवसमसम्माइड्डी दोवारमेक्को ण सासणगुणं पडिवज्जदि त्ति । तम्हि भवे सासणं

यह सूत्र सुगम है ।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर जघन्यसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ १३९ ॥

क्योंकि, प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहणकर और अन्तर्मुहूर्त रहकर सासादनगुण-स्थानको प्राप्त हो आदि करके, पुनः मिथ्यात्वमें जाकर अन्तरको प्राप्त हो सर्वजघन्य पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उद्वेलनकालसे सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके प्रथमसम्यक्त्वके योग्य सागरोपमपृथक्त्वमात्र स्थितिसत्वको स्थापित कर तीनों ही करणोंको करके पुनः प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहणकर उपशमसम्यक्त्वकालमें छह आवलियोंके शेष रहनेपर सासादनको प्राप्त हुए जीवके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र जघन्य अन्तर प्राप्त होता है ।

शंका—उपशमश्रेणीसे उतरकर सासादनको प्राप्त हो अन्तर्मुहूर्तसे फिर भी उपशमश्रेणीपर चढ़कर व उतरकर सासादनको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर प्राप्त होता है, उसका यहां निरूपण क्यों नहीं किया? उपशमश्रेणीसे उतरे हुए उपशम-सम्यग्दृष्टि सासादनको नहीं प्राप्त होते ऐसा कोई नियम भी नहीं है, क्योंकि, 'सासादनको भी प्राप्त होता है' इस प्रकार कषायप्राभृतमें चूर्णिसूत्र देखा जाता है ।

समाधान—यहां उक्त शंकाका परिहार कहते हैं—उपशमश्रेणीसे उतरा हुआ उपशमसम्यग्दृष्टि एक ही जीव दो बार सासादनगुणस्थानको प्राप्त नहीं होता । उसी

पडिवज्जिय उवसमसेडिमारुहिय तत्तो ओदिण्णो वि ण सासणं पडिवज्जदि त्ति अहि-
प्पाओ एदस्स सुत्तस्स । तेणंतोमुहुत्तमेत्तं जहण्णंतरं णोवल्लभदे ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १४० ॥

कुदो ? अणादियमिच्छाइडिस्स अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए गहिदसम्मत्तस्स
सासणं गंतूण उवड्ढुपोग्गलपरियट्टं भमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे पढमसम्मत्तं घेत्तूण
एगसमयं सासणो होदूण अंतरं समाणिय पुणो मिच्छत्तं सम्मत्तं च कमेण गंतूण
अबंधभावं गदस्स उवड्ढुपोग्गलपरियट्टंतरुवल्लभादो ।

मिच्छाइट्ठी मदिअण्णाणिभंगो ॥ १४१ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वेछावड्ढिभागरोवमाणि देसूणाणि, इच्चेदेहि
जहण्णुक्कस्संतरेहि दोण्हमभेदादो ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

॥ १४२ ॥

सुगमं ।

भवमें सासादनको प्राप्त कर उपशमश्रेणीपर आरूढ़ हो उससे उतरा हुआ भी जीव
सासादनको प्राप्त नहीं होता, यह इस सूत्रका अभिप्राय है । इस कारण अन्तर्मुहूर्तमात्र
जघन्य अन्तर प्राप्त नहीं होता ।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है
॥ १४० ॥

क्योंकि, अनादिमिथ्यादृष्टिके अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको
ग्रहणकर सासादनको प्राप्त हो कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण भ्रमणकर संसारके
अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर प्रथमसम्यक्त्वको ग्रहणकर एक समय सासादन रहकर
अन्तरको समाप्त कर पुनः क्रमसे मिथ्यात्व और सम्यक्त्वको प्राप्त हो अबन्धकभावको
प्राप्त होनेपर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तर प्राप्त होता है ।

मिथ्यादृष्टिका अन्तर मति-अज्ञानीके समान है ॥ १४१ ॥

क्योंकि, जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम दो छयासठ सागरोपम
इन जघन्य व उत्कृष्ट अन्तरोंसे दोनोंके कोई भेद नहीं है ।

संज्ञिमार्गणाके अनुसार संज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १४२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४३ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्ठं ॥ १४४ ॥

सण्णीहिंतो असण्णीणं गंतूण असण्णिट्ठिदिमच्छिय सण्णीसुप्पणस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्ठंतरुवलंभादो ।

असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १४५ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४६ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १४७ ॥

असण्णीहिंतो सण्णीणं गंतूण सण्णिट्ठिदिं भमियं असण्णीसुप्पणस्स सागरोवमसदपुधत्तमेत्तरुवलंभादो ।

संज्ञी जीवोंका अन्तर जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

संज्ञी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्येय पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है ॥ १४४ ॥

क्योंकि, संज्ञियोंसे असंज्ञियोंमें जाकर और वहां असंज्ञीकी स्थितिप्रमाण रहकर संज्ञियोंमें उत्पन्न हुए जीवके आवलीके असंख्यातवै भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तर प्राप्त होता है ।

असंज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी जीवोंका अन्तर जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

असंज्ञी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण है ॥ १४७ ॥

क्योंकि, असंज्ञियोंसे संज्ञियोंमें जाकर और वहां संज्ञीकी स्थितिप्रमाण भ्रमण कर असंज्ञियोंमें उत्पन्न हुए जीवके सागरोपमशतपृथक्त्वमात्र अन्तर प्राप्त होता है ।

आहाराणुवादेण आहाराणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

॥ १४८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ १४९ ॥

एगविग्गहं काऊण गहिदसरीरम्मि तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तिण्णिसमयं ॥ १५० ॥

तिण्णि विग्गहे काऊण गहिदसरीरम्मि तिसमयंतरुवलंभादो ।

अणाहारा कम्मइयकायजोगिभंगो ॥ १५१ ॥

जहण्णेण तिसमऊणखुदाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असं-
खेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ, इच्चेदेहि जहण्णुक्कस्संतरेहि दोण्हमभेदा ।

एवमेगजीवेण अंतरं समत्तं ।

आहारमार्गणानुसार आहारक जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ?

॥ १४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक जीवोंका अन्तर जघन्यसे एक समयमात्र होता है ॥ १४९ ॥

क्योंकि, एक विग्रह करके शरीरके ग्रहण करलेनेपर उक्त एक समयमात्र अन्तर प्राप्त होता है ।

आहारक जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर तीन समयप्रमाण है ॥ १५० ॥

क्योंकि, तीन विग्रह करके शरीरके ग्रहण करलेनेपर तीन समय अन्तर प्राप्त होता है ।

अनाहारक जीवोंका अन्तर कर्मणकाययोगियोंके समान है ॥ १५१ ॥

क्योंकि, जघन्यसे तीन समय कम धुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी, इन जघन्य व उत्कृष्ट अन्तरोंसे दोनोंके कोई भेद नहीं है ।

इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा अन्तर समाप्त हुआ ।

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए
णेरइया णियमा अत्थि ॥ १ ॥

विचयो विचारणा । केसिं ? अत्थि णत्थि त्ति भंगाणं । कुदोवगम्मदे ? 'णेरइया
णियमा अत्थि ' त्ति सुत्तणिदेसादो । ण बंधगाहियारे एदस्संतब्भावो, सव्वद्धं णियमेण
पुणो अणियमेण च मग्गणाणं मग्गणविसेसाणं च अत्थित्तपरूवणाए एदिस्से सामण्ण-
त्थित्तपरूवणम्मि अंतब्भावविरोहादो ।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ २ ॥

कुदो ? णियमा अत्थित्तणेण भेदाभावादो । सामण्णपरूवणादो चेव विसेसपरूव-
णाए सिद्धाए किमद्धं पुणो परूवणा कीरदे ? ण, सत्तण्हं पुढवीणं णियमेणत्थित्ताभावे वि
सामण्णेण णियमा अत्थित्तस्स विरोहाभावादो ।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकी
जीव नियमसे हैं ॥ १ ॥

‘ विचय ’ शब्दका अर्थ यहां अस्ति-नास्ति भंगोंका विचार करना है ।

शंका—यह कहाँसे जाना जाता है ?

समाधान—यह ‘ नारकी जीव नियमसे हैं ’ इस सूत्रके निर्देशसे जाना जाता है ।

इसका बन्धकाधिकारमें अन्तर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि, यहां जो सर्व काल
नियमसे व अनियमसे मार्गणा एवं मार्गणाविशेषोंकी अस्तित्वप्ररूपणा है उसका सामान्य
अस्तित्वप्ररूपणामें अन्तर्भाव होनेका विरोध है ।

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव नियमसे हैं ॥ २ ॥

क्योंकि, सातों पृथिवियोंमें नारकियोंके नियमित अस्तित्वसे कोई भेद नहीं हैं ।

शंका—सामान्यप्ररूपणासे ही विशेषप्ररूपणाके सिद्ध होनेपर पुनः प्ररूपणा
किसलिये की जाती है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि सात पृथिवियोंके नियमसे अस्तित्वके अभावमें भी
सामान्यरूपसे नियमतः अस्तित्वके होनेमें कोई विरोध नहीं है । अर्थात् यदि कदाचित्
किसी पृथिवीविशेषमें सदैव नियमसे नारकी जीवोंका अस्तित्व न भी होता तो भी
सामान्यसे अन्य पृथिवियोंकी अपेक्षा अस्तित्वका विधान हो सकता था ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्ख-
पज्जत्ता' पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता मणुस-
गदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसणीओ णियमा अत्थि ॥ ३ ॥

कुदो ? तीदाणागद-वड्डमाणकालेसु एदासिं मग्गणाणं मग्गणविसेसाणं च
गंगापवाहस्सेव वोच्छेदाभावादो ।

मणुसअपज्जत्ता सिया अत्थि सिया णत्थि ॥ ४ ॥

मणुसअपज्जत्ताणं कयावि अत्थित्तं होदि कयावि ण होदि । कुदो ? सहावदो ।
को सहावो णाम ? अब्भंतरभावो' ।

देवगदीए देवा णियमा अत्थि ॥ ५ ॥

कुदो ? तिसु वि कालेसु देवाणं विरहाभावादो ।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सब्बट्टिसिद्धिविमाणवासियदेवेसु
॥ ६ ॥

तिर्यचगतिये तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच
योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त, तथा मनुष्यगतिये मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त
और मनुष्यनी नियमसे हैं ॥ ३ ॥

क्योंकि अतीत, अनागत व वर्तमान कालोंमें इन मार्गणाओं व मार्गणाविशेषोंका
गंगाप्रवाहके समान व्युच्छेद नहीं होता ।

मनुष्य अपर्याप्त कदाचित् हैं भी, और कदाचित् नहीं भी हैं ॥ ४ ॥

क्योंकि, मनुष्य अपर्याप्तोंका कदाचित् अस्तित्व होता है और कदाचित् नहीं
होता, क्योंकि ऐसा स्वभाव ही है ।

शंका—स्वभाव किसे कहते हैं ?

समाधान—आभ्यन्तरभावको स्वभाव कहते हैं । अर्थात् वस्तु या वस्तुस्थितिकी
उस व्यवस्थाको उसका स्वभाव कहते हैं जो उसका भीतरी गुण है और बाह्य परिस्थिति-
पर अवलम्बित नहीं है ।

देवगतिये देव नियमसे हैं ॥ ५ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें देवोंके विरहका अभाव है ।

इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविमानवासियों तक देव नियमसे
हैं ॥ ६ ॥

१ प्रतिपु ' -पज्जत्ताणं ' इति पाठः ।

२ प्रतिपु ' अब्भन्ताभावो ' इति पाठः ।

कुदो ? सच्चकालेसु अत्थित्तणेण तेहिमेदेसिं भेदाभावादो ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता
णियमा अत्थि ॥ ७ ॥

कुदो ? एदेसिं पवाहस्स तिसु वि कालेसु वोच्छेदाभावादो ।

वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा
अत्थि ॥ ८ ॥

सुगमं ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया
वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता
वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइया
तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ॥ ९ ॥

एदासिं मग्गणाणं मग्गणविसेसाणं च पवाहस्स वोच्छेदाभावादो ।

क्योंकि, सर्व कालोंमें अस्तित्वकी अपेक्षा इनका सामान्य देवोंसे कोई भेद
नहीं है ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त जीव नियमसे
हैं ॥ ७ ॥

क्योंकि, इनके प्रवाहका तीनों ही कालोंमें व्युच्छेद नहीं होता ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त नियमसे
हैं ॥ ८ ॥

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वन-
स्पतिकायिक निगोदजीव बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त, तथा बादर वनस्पतिकायिक-
प्रत्येकशरीर पर्याप्त अपर्याप्त, एवं त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त अपर्याप्त जीव
नियमसे हैं ॥ ९ ॥

क्योंकि, इन मार्गणाओं व मार्गणाविशेषोंके प्रवाहका व्युच्छेद नहीं होता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी णियमा अत्थि ॥ १० ॥

सुगमं ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहारकायजोगी आहारमिस्सकायजोगी सिया अत्थि सिया णत्थि ॥ ११ ॥

कुदो ? सांतरसहावादो । ण च सहावो परपज्जणुजोगारुहो, अइप्पसंगादो ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा णियमा अत्थि ॥ १२ ॥

गंगापवाहस्सेव विच्छेदाभावादो ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई णियमा अत्थि ॥ १३ ॥

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और कर्मणकाययोगी नियमसे हैं ॥ १० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी कदाचित् हैं भी, कदाचित् नहीं भी हैं ॥ ११ ॥

क्योंकि, इनका सान्तर स्वभाव है । और स्वभाव दूसरोंके प्रश्नके योग्य नहीं होता, क्योंकि, ऐसा होनेसे अतिप्रसंग दोष आता है ।

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अपगतवेदी जीव नियमसे हैं ॥ १२ ॥

क्योंकि, गंगाप्रवाहके समान इनका विच्छेद नहीं होता ।

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी जीव नियमसे हैं ॥ १३ ॥

सुगमं ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी
आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणी केवलणाणी णियमा अत्थि
॥ १४ ॥

णाणिणो इदि बहुवयणणिदेसो किण्ण कओ ? ण, इकारांतपुरिस-णवुंसयलिंग-
सदेहिंतो उप्पण्णपट्ठमावहुवयणस्स विहासाए लोबुवलंभादो' । जहा- पव्वए अग्गी जलंति,
मत्ता हत्थी एंति त्ति । सेसं सुगमं ।

संजमाणुवादेण सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धि-
संजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा णियमा
अत्थि ॥ १५ ॥

सुगमं ।

यह सूत्र सुगम है ।

ज्ञानमार्गणानुसार मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी,
श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी नियमसे हैं ॥ १४ ॥

शंका—सूत्रमें 'णाणिणो' ऐसा बहुवचननिर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इकारान्त पुल्लिंग और नपुंसकलिंग शब्दोंसे उत्पन्न
प्रथमावहुवचनका विकल्पसे लोप पाया जाता है । जैसे— पव्वए अग्गी जलंति (पर्वतपर
अग्नि जलती हैं) , मत्ता हत्थी एंति (मत्त हाथी आते हैं) । यहां 'अग्गी' और 'हत्थी'
पदोंमें प्रथमावहुवचनका लोप होगया है । शेष सूत्र सुगम है ।

संयममार्गणानुसार सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, यथा-
ख्यातविहारशुद्धिसंयत, संयतासंयत और असंयत जीव नियमसे हैं ॥ १५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ अप्रती 'विहासालोगोवलंभादो'; आ-काप्रत्योः 'विहासालोगोबुवलंभादो'; मप्रती 'विहासाए लोबु-
लंभादो' इति पाठः ।

सुहुमसांपराइयसंजदा सिया अत्थि सिया णत्थि ॥ १६ ॥

एदं पि सुगमं ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवल-
दंसणी णियमा अत्थि ॥ १७ ॥

एदं पि सुगमं ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउ-
लेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया णियमा अत्थि ॥ १८ ॥

सुगमं ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया णियमा अत्थि
॥ १९ ॥

सिद्धिपुरंस्कदा भविया णाम, तच्चिवरीया अभविया णाम । सिद्धा पुण ण
भविया ण च अभविया, तच्चिवरीयसरूवत्तादो । तहा ते वि णियमा अत्थि त्ति किण्ण

सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत कदाचित् हैं भी और कदाचित् नहीं भी हैं ॥ १६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी
नियमसे हैं ॥ १७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

लेश्यामार्गणानुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, तेजो-
लेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले नियमसे हैं ॥ १८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यमार्गणानुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक नियमसे हैं ॥ १९ ॥

सिद्धिपुरस्कृत अर्थात् मुक्तिगामी जीवोंको भव्य और इनसे विपरीत जीवोंको
अभव्य कहते हैं । सिद्ध जीव न तो भव्य ही हैं और न अभव्य भी हैं, क्योंकि, उनके
स्वरूप भव्य और अभव्य दोनोंसे विपरीत है ।

शंका—भव्य व अभव्योंके समान 'सिद्ध भी नियमसे हैं' इस प्रकार क्यों

वुत्तं ? ण, बंधयाहियारे सिद्धाणमबंधयाणं संभवाभावादो । सेसं सुगमं ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी वेदगसम्माइट्ठी (खइयसम्माइट्ठी)
मिच्छाइट्ठी णियमा अत्थि ॥ २० ॥

सुगमं ।

उवसमसम्माइट्ठी (सासण-) सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी सिया
अत्थि, सिया णत्थि ॥ २१ ॥

कुदो ? एदेसिं तिण्हं मग्गणावयणाणं सांतरसरूवत्तदंसणादो ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी असण्णी णियमा अत्थि ॥ २२ ॥

सुगमं ।

आहाराणुवादेण आहारा अणाहारा णियमा अत्थि ॥ २३ ॥

एदं पि सुगमं ।

एवं पाणाजीवैहि भंगविचयानुगमे समत्तो ।

नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बंधकाधिकारमें अबंधक सिद्धोंकी संभावनाका अभाव
है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सम्यक्त्वमार्गणानुसार सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और
मिथ्यादृष्टि नियमसे हैं ॥ २० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्याग्मिथ्यादृष्टि कदाचित् हैं भी
और कदाचित् नहीं भी ॥ २१ ॥

क्योंकि, इन तीन मार्गणाप्रभेदोंका सान्तर स्वरूप देखा जाता है ।

संज्ञिमार्गणानुसार संज्ञी और असंज्ञी जीव नियमसे हैं ॥ २२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारमार्गणानुसार आहारक और अनाहारक जीव नियमसे हैं ॥ २३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमे समाप्त हुआ ।

द्वयपमाणाणुगमो

द्वयपमाणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया द्वय-
पमाणेण केवडिया ? ॥ १ ॥

एदाओ मग्गणाओ सव्वकालमत्थि एदाओ च सव्वकालं णत्थि त्ति णाणाजीव-
भंगविचयाणुगमेण जाणाविय संपहि तासु मग्गणासु द्विदजीवाणं पमाणपरूवणट्ठं
दव्वाणिओगहारमागदं । णिरयगदिवयणेण सेसगदीणं पडिसेहो कओ । णेरइया त्ति
वयणेण णिरयगइसंबद्धणेरइयवदिरित्तदव्वादीणं पडिसेहो कओ । द्वयपमाणेण त्ति वयणेण
खेत्तपमाणादीणं पडिसेहो कओ । केवडिया इदि आसंका आइरियस्स ।

असंखेज्जा ॥ २ ॥

संखेज्जाणंताणं पडिसेहट्ठमसंखेज्जवयणं । एदं पि तिविहं असंखेज्जं । तत्थ
एदमिह असंखेज्जे णेरइयरासी ठिदो त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उत्सप्पिणीहि' अवहिरंति
कालेण ॥ ३ ॥

द्रव्यप्रमाणानुगमसे गतिमार्गणानुसार नरकगतिकी अपेक्षा नारकी जीव द्रव्य-
प्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १ ॥

‘ये मार्गणायें सर्वकाल हैं और ये मार्गणायें सर्वकाल नहीं है’ इस प्रकार
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे जतलाकर अब उन मार्गणाओंमें स्थित जीवोंके
प्रमाणके निरूपणार्थ द्रव्यानुयोगद्वार प्राप्त होता है । नरकगतिके वचनसे शेष गतियोंका
प्रतिषेध किया है । ‘नारकी’ इस वचनसे नरकगतिके सम्बद्ध नारकियोंके अतिरिक्त अन्य
द्रव्यादिकोंका प्रतिषेध किया है । ‘द्रव्यप्रमाणसे’ इस प्रकारके वचनसे क्षेत्रप्रमाणादिकोंका
प्रतिषेध किया है । ‘कितने हैं’ इस प्रकार यह आचार्यकी आशंका है ।

नारकी जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ २ ॥

संख्यात व अनन्तके प्रतिषेधके लिये ‘असंख्यात’ वचन है । यह असंख्यात
भी तीन प्रकार है । उनमेंसे इस असंख्यातमें नारकराशि स्थित है, इस बातके ज्ञापनार्थ
उत्तरसूत्र कहते हैं —

कालकी अपेक्षा नारकी जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणि-
बोंसे अपहृत होते हैं ॥ ३ ॥

१ अ-काप्रबो: ‘ओसप्पिणि-उत्सप्पिणी’ इति पाठः ।

असंखेज्जासंखेज्जाहि त्ति वयणेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो, असंखे-
ज्जासंखेज्जस्सेव उवलद्धी जादो, 'असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि
समयभावसलागभूदाहि णेरइया अवहिरंति' त्ति वयणादो । तं पि असंखेज्जासंखेज्जयं
जहण्णमुक्कस्सं तव्वदिरिच्चमिदि त्तिविहं । तत्थ एदम्हि असंखेज्जासंखेज्जे णेरइयां
अवट्ठिदा त्ति जाणावणट्ठं खेत्तपरूवणमागदं—

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ ॥ ४ ॥

'असंखेज्जाओ सेडीओ' त्ति सुत्तेण जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जपडिसेहो कदो, तत्थ
असंखेज्जाणं सेडीणमभावादो । उक्कस्स-मज्झिमअसंखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो ण होदि,
तत्थ असंखेज्जाणं सेडीणं संभवादो । एदेसु दोसु असंखेज्जासंखेज्जेसु णेरइया कम्हि
अवट्ठिदा त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमागदं—

पदरस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५ ॥

एदेण सुत्तेण उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो, पदरस्सासंखेज्जदि-
भागस्स उक्कस्सासंखेज्जासंखेज्जत्तविरोहादो । तं पि मज्झिममसंखेज्जासंखेज्जयमणेय-

'असंख्यातासंख्यात' इस वचनसे परीतासंख्यात और युक्तासंख्यातका प्रतिषेध
किया जिससे केवल असंख्यातासंख्यातकी ही प्राप्ति हुई, क्योंकि, 'समयभावशालाकाभूत
असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे नारकी जीव अपहृत होते हैं' ऐसा
वचन है । वह असंख्यातासंख्यात भी जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन
प्रकार है । उनमेंसे इस असंख्यातासंख्यातमें नारकी जीव अवस्थित हैं इसके ज्ञाप-
नार्थ क्षेत्रप्ररूपणा प्राप्त होती है ।

क्षेत्रकी अपेक्षा नारकी जीव असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण हैं ॥ ४ ॥

'असंख्यात जगश्रेणियां' इस प्रकारके सूत्रसे जघन्य असंख्यातासंख्यातका
प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, जन्घय असंख्यातासंख्यातमें असंख्यात जगश्रेणियोंका
अभाव है । परन्तु इससे उत्कृष्ट और मध्यम असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध नहीं होता,
क्योंकि, उनमें असंख्यात जगश्रेणियां संभव हैं । अतः इन दो असंख्यातासंख्यातोंमेंसे
नारकी जीव कौनसे असंख्यातासंख्यातमें अवस्थित हैं, इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र प्राप्त
होता है—

उक्त नारकी जीव जगप्रतरके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण
हैं ॥ ५ ॥

इस सूत्रसे उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, जग-
प्रतरके असंख्यातवें भागका उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातत्वसे विरोध है । वह मध्यम अस्-

पयारमिदि तण्णिणयट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलवग्गमूलं विदियवग्गमूलगुणि-
देण ॥ ६ ॥

सूचिअंगुलपढमवग्गमूले सूचिअंगुलस्स विदियवग्गमूलेण गुणिदे तासिं सेडीणं विक्खंभसूची होदि । गुणिदेणेत्ति णेदं तदियाए एगवयणं, किंतु सत्तमीए एगवयणेण पढमाए एगवयणेण' वा होदव्वमण्णहा सुत्तट्टसंबंधाभावादो । एत्थ सामण्णणेरइयाणं वुत्त-विक्खंभसूची चेव णेरइयमिच्छाइट्ठीणं जीवट्टाणे परूविदा, कधं तेणेदं ण विरुज्झदे ? ण विरुज्झदे, आलावभेदाभावादो । अत्थदो पुण भेदो अत्थि चेव, सामण्ण-विसेसविक्खंभ-सूचीणं समाणत्तविरोहादो । मिच्छाइट्ठिविक्खंभसूची संपुण्णघणंगुलविदियवग्गमूलमेत्ता किण्ण घेप्पदे ? ण, सामण्णणेरइयाणं परूविदघणंगुलविदियवग्गमूलविक्खंभसूचिणा एदेण खुदाबंधसुत्तेण सह विरोहादो । ण तं पि सुत्तमिदि पच्चवट्टादुं जुत्तं, खुदाबंधुव-

ख्यातासंख्यात भी अनेक प्रकार है, अतः उसके निर्णयार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं—

उन जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची सूच्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलसे गुणित उसीके प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ॥ ६ ॥

सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलको सूच्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलसे गुणित करनेपर उन जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची होती है । यहां सूत्रमें 'गुणिदेण' यह पद तृतीयाका एकवचन नहीं है, किन्तु सप्तमीका एक वचन या प्रथमाका एक वचन होना चाहिये; अन्यथा सूत्रके अर्थका सम्बन्ध नहीं बैठता ।

शंका—यहां जो सामान्य नारकियोंकी विष्कम्भसूची कही गई है वही जीव-स्थानमें नारकी मिथ्यादृष्टियोंकी कही गई है, उसके साथ यह विरोधको कैसे न प्राप्त होगा ?

समाधान—जीवस्थानसे इस कथनका कोई विरोध न होगा, क्योंकि यहां आलापभेदका अभाव है ! परमार्थसे तो भेद है ही, क्योंकि, सामान्य व विशेष विष्कम्भ-सूचियोंमें समानताका विरोध है ।

शंका—मिथ्यादृष्टियोंकी विष्कम्भसूची सम्पूर्ण घनांगुलके द्वितीय वर्गमूल-प्रमाण क्यों नहीं ग्रहण करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वैसा माननेपर उसका सामान्य नारकियोंकी घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलमात्र विष्कम्भसूचीको प्ररूपित करनेवाले इस धुद्रबन्धसूत्रके साथ बिरोध होगा । वह भी तो सूत्र है इस प्रकार विरोध उत्पन्न करना भी उचित नहीं है,

संघारस्स तस्स एदम्हादो पहाणत्ताभावादो । तम्हा एत्थतणविकखंभसूची संपुण्णघणंगुल-
विदियवग्गमूलमेत्ता, मिच्छाइट्ठिविकखंभसूची पुण किंचूणघणंगुलविदियवग्गमूलमेत्ता त्ति
धेत्तव्वं । एत्थ विकखंभसूची-अवहारकालदव्वाणं खंडिद-भाजिद-विरलिद-अवहिद-पमाण-
कारण-णिरुत्ति-वियप्पेहि परूवणा कायव्वा ।

एवं पठमाए पुठवीए णेरइया ॥ ७ ॥

सामण्णणेरइयाणं पमाणं कथं पठमाए पुठवीए णेरइयाणं होदि ? ण, दोणहमालावाणं
भेदाभावादो । अत्थदो पुण अत्थि भेदो, अण्णहा लुण्णं पुठवीणं णेरइयाणमभावप्प-
संगादो । तम्हा पुव्विल्लविकखंभसूची एगरूवस्स असंखेज्जदिभागेणूणा पठमपुठविणेर-
इयाणं विकखंभसूची होदि । सेसं जाणिदूण वत्तव्वं ।

**विदियाए जाव सत्तमाए पुठवीए णेरइया द्ववपमाणेण केव-
डिया ? ॥ ८ ॥**

एदमासंकासुत्तं संखेज्जासंखेज्जाणंतसंखाणमवेक्खदे । एत्थ तिसु वि संखासु

क्योंकि, शुद्धबन्धके उपसंहारभूत उस सूत्रके इस सूत्रकी अपेक्षा प्रधानताका अभाव है ।
इसलिये यहांकी विष्कम्भसूची सम्पूर्ण घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलमात्र और मिथ्यादृष्टि-
योंकी विष्कम्भसूची कुछ कम घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलमात्र है, ऐसा ग्रहण करना
चाहिये । यहांपर विष्कम्भसूची व अवहारकाल द्रव्योंका खण्डित, भाजित, विरलित,
अपहृत, प्रमाण, कारण, निरुक्ति और विकल्प, इनके द्वारा प्ररूपण करना चाहिये ।
(देखिये जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, सूत्र १७ की टीका) ।

सामान्य नारकियोंके समान ही प्रथम पृथिवीके नारकियोंका द्रव्य-
प्रमाण है ॥ ७ ॥

शंका—सामान्य नारकियोंका प्रमाण प्रथम पृथिवीके नारकियोंका कैसे हो
सकता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दोनों आलापोंमें कोई भेद नहीं है । परन्तु परमार्थसे
भेद है ही, अन्यथा छह पृथिवियोंके नारकियोंके अभावका प्रसंग होगा । इस
कारण पूर्व विष्कम्भसूची एक रूपके असंख्यातवै भागसे हीन होकर प्रथम पृथिवीके
नारकियोंकी विष्कम्भसूची होती है । शेष जानकर कहना चाहिये ।

द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकी द्रव्य-
प्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ८ ॥

यह आशंकासूत्र संख्यात, असंख्यात और अनन्त संख्याकी अपेक्षा रखता है ।

एदीए संखाए बिदियादिछप्पुढविणेरइया अवट्टिदा त्ति जाणावणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि । अधवा, बिदियादिछप्पुढविणेरइया णाणंता, ओघणेरइयाणमणंतसंखाभावादो । तदो दोणं संखाणं मज्जे एदीए संखाए छप्पुढविणेरइया अवट्टिदा त्ति जाणावणट्टमुत्तरसुत्तमागदं—

असंखेज्जा ॥ ९ ॥

असंखेज्जवयणेण संखेज्जस्स पडिसेहो कदो । असंखेज्जं पि परित्त-जुत्त-असं-खेज्जासंखेज्जभेएण तिविहं । एत्थ एदम्हि असंखेज्जे छप्पुढविदव्वमवट्टिमिदि जाणा-वणट्टं कालपमाणपरूवणसुत्तमागदं—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ १० ॥

एदेण असंखेज्जासंखेज्जवयणेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । एदं पि असंखेज्जासंखेज्जं जहण्णुक्कस्स-तव्वदिस्सिभेएण तिविहं । एत्थ एदम्हि संखाविसेसे छप्पुढविदव्वं होदि त्ति जाणावणट्टमुत्तरं खेत्तपमाणपरूवणसुत्तमागदं—

इन तीनों ही संख्याओंमेंसे इस संख्यामें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके नारकी अवस्थित हैं, इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं। अथवा, द्वितीयादि छह पृथिवियोंके नारकी अनन्त नहीं हैं, क्योंकि, सामान्य नारकियोंके अनन्त संख्याका अभाव है। इसलिये दो संख्याओंके मध्यमें इस संख्यामें छह पृथिवियोंके नारकी अवस्थित हैं, इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र प्राप्त होता है—

द्वितीयादि छह पृथिवियोंके नारकी द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ९ ॥

‘असंख्यात’ इस वचनसे संख्यातका प्रतिषेध किया गया है। असंख्यात भी परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकार है। उनमेंसे इस असंख्यातराशिमें छह पृथिवियोंके द्रव्यका अवस्थान है, इसके ज्ञापनार्थ काल-प्रमाणकी प्ररूपणा करनेवाला सूत्र प्राप्त होता है—

द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकी कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ १० ॥

इस ‘असंख्यातासंख्यात’ वचनसे परीतासंख्यात और युक्तासंख्यातका प्रति-षेध किया गया है। यह असंख्यातासंख्यात भी जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है। उनमेंसे इस संख्याविशेषमें छह पृथिवियोंका द्रव्य है, इसके ज्ञापनार्थ अगला क्षेत्रप्रमाणप्ररूपणासूत्र प्राप्त होता है—

खेत्तेण सेडीए असंखेज्जदिभागो ॥ ११ ॥

एदेण जगसेडीदो उवरिमवियप्पाणं पडिसेहो कदो । अवसेसदोसंखाणं मज्झे एदीए संखाए द्विदमिदि जाणावणड्ढमुत्तरसुत्तं भणदि—

तिस्से सेडीए आयामो असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ ॥१२॥

एदेण सूचिअंगुलादिहेट्टिमवियप्पाणं पडिसेहो कदो, सूचिअंगुलादिहेट्टिमसंखाए असंखेज्जजोयणत्ताभावादो । तं पि तव्वदिरित्तअसंखेज्जासंखेज्जमसंखेज्जजोयणकोडिमेत्तं होदूण अणेयवियप्पं । तण्णिण्यकरणड्ढमुत्तरसुत्तं भणदि—

पढमादियाणं सेडिवग्गमूलाणं संखेज्जाणमण्णोण्णवभासो ॥१३॥

सेडिपढमवग्गमूलमादिं कादूण जाव बारसम-दसम-अड्डम-छट्ट-तदिय-बिदियवग्ग-मूलो त्ति पुध पुध गुणगारगुणिज्जमाणं कमेणावड्ढिदछण्हं वग्गपत्तीणमण्णोण्णवभासे कदे

क्षेत्रकी अपेक्षा द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकी जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ ११ ॥

इस सूत्रके द्वारा जगश्रेणीसे उपरिम विकल्पोंका प्रतिषेध किया गया है । अवशेष दो संख्याओंके मध्यमें इस संख्यामें उक्त द्रव्य स्थित है, इसके ज्ञापनार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं—

जगश्रेणीके असंख्यातवें भागकी उस श्रेणीका आयाम असंख्यात योजनकोटि है ॥ १२ ॥

इस सूत्रके द्वारा सूच्यंगुलादि अधस्तन विकल्पोंका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, सूच्यंगुलादिरूप अधस्तन संख्यामें असंख्यात योजनत्वका अभाव है । वह तद्व्यतिरिक्त असंख्यातासंख्यात असंख्यात योजनकोटिप्रमाण होकर अनेक विकल्परूप है । उसका निर्णय करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त असंख्यात कोटि योजनोंका प्रमाण प्रथमादिक संख्यात जगश्रेणीवर्ग-मूलोंके परस्पर गुणनफल रूप है ॥ १३ ॥

जगश्रेणीके प्रथम वर्गमूलको आदि करके उसके बारहवें, दशवें, आठवें, छठे, तीसरे और दूसरे वर्गमूल तक पृथक् पृथक् गुणकार व गुण्य क्रमसे अवस्थित छह वर्ग-

जहाकमेण विदिय-तदिय-चउत्थ-पंचम छट्ट-सत्तमपुढविदव्वपमाणं होदि । कधमेत्तियाणं चेव सेडिवग्गमूलाणमण्णोण्णभासादो एदिस्से एदिस्से पुढवीए दव्वं होदि त्ति णव्वदे ? ण, आइरियपरंपरागदअविरुद्धोपदेशेण तदवगमादो । उत्तं च—

बारस दस अट्टेव य मूला छ त्तिग दुगं च णिरएसु ।

एक्कारस णव सत्त य पण य चउक्कं च देवेसु ॥ १ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १४ ॥

एदमासंकासुत्तं संखेज्जासंखेज्जाणंताणि अवेक्खदे ।

अणंता ॥ १५ ॥

एदेण संखेज्ज-असंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । तं च अणंतं परित्त-जुत्त-अणंता-णंतमेएण तिवियप्पं' । तत्थ एदम्हि अणंते तिरिक्खा द्विदा त्ति जाणावणड्डमुवरिल्लसुत्त-मागदं—

राशियोंका परस्पर गुणा करनेपर यथाक्रमसे द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और सप्तम पृथिवीके द्रव्यका प्रमाण होता है ।

शंका— इतने ही जगश्रेणीवर्गमूलोंके परस्पर गुणनसे इस इस पृथिवीका द्रव्य होता है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, आचार्यपरम्परागत अविरुद्ध उपदेशसे उसका ज्ञान प्राप्त है । कहा भी है—

नरकोंमें द्वितीयादि पृथिवियोंका द्रव्यप्रमाण लानेके लिये जगश्रेणीका बारहवां, दशवां, आठवां, छठा, तीसरा और दूसरा वर्गमूल अवहारकाल है । तथा देवोंमें सानत्कुमारादि पांच कल्पयुगलोंका द्रव्यप्रमाण लानेके लिये जगश्रेणीका ग्यारहवां, नौवां, सातवां, पांचवां और चौथा वर्गमूल अवहारकाल है ॥ १ ॥

तिर्यचगतिमें तिर्यच जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १४ ॥

यह आशंकासूत्र संख्यात, असंख्यात और अनन्तकी अपेक्षा रखता है ।

तिर्यचगतिमें तिर्यच जीव द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १५ ॥

इस सूत्रसे संख्यात और असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । वह अनन्त भी परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्तके भेदसे तीन प्रकार है । उनमेंसे इस अनन्तमें तिर्यच जीव स्थित हैं इसके ज्ञापनार्थ उपरिम सूत्र प्राप्त होता है—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण

॥ १६ ॥

किमट्टमणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि तिरिक्खा ण अवहिरिज्जंति ? अतीदकालगगहणादो । अवहरिदे संते को दोसो ? ण, भव्वजीवाणं सव्वेसिं^१ वोच्छेद-प्पसंगादो । एदेण परित्त-जुत्ताणंताणं पडिसेहो कदो । अणंताणंतं पि जहण्णुक्कस्स-तव्वदिदरित्तभेएण तिविहं होदि । तत्थ एदमिह अणंताणंते तिरिक्खा ट्टिदा त्ति जाणावणट्ट-मुवरिहिसुत्तमागदं—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ १७ ॥

एदेण जहण्णअणंताणंतस्स पडिसेहो कदो । कुदो ? तत्थ अणंताणंतलोगाणम-भावादो । एदं पि कधं णव्वदे ? लोगेण जहण्णे अणंताणंते भागे हिदे लद्धमि अणंता-

तिर्यंच जीव कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते हैं ॥ १६ ॥

शंका—तिर्यंच जीव अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे क्यों नहीं अपहृत होते ?

समाधान—क्योंकि, यहाँ केवल अतीत कालका ग्रहण किया गया है । (देखो जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, पृ. २९) ।

शंका—अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे इनके अपहृत होनेपर कौनसा दोष उत्पन्न होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ऐसा होनेपर सब भव्य जीवोंके व्युच्छेदका प्रसंग आता है ।

इस सूत्रके द्वारा परीतानन्त और युक्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है । अनन्तानन्त भी जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है । उनमेंसे इस अनन्तानन्तमें तिर्यंच जीव स्थित हैं, इसके ज्ञापनार्थ उपरिम सूत्र प्राप्त होता है—

तिर्यंच जीव क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं ॥ १७ ॥

इस सूत्रके द्वारा जघन्य अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, जघन्य अनन्तानन्तमें अनन्तानन्त लोकोंका अभाव है ।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि, लोकका जघन्य अनन्तानन्तमें भाग देनेपर लब्ध राशिमैं

१ प्रतिशु ' संखेसि ' इति पाठः ।

णंतसंखाभावादो । उक्कस्साणंताणंतस्स वि पडिसेहो कदो, अणंताणंताणि सव्वपज्जयपढम-
वग्गमूलाणि त्ति अभणिदूण अणंताणंता लोगा त्ति णिहेसादो ।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजो-
णिणी-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १८ ॥

एदमासंकासुत्तं संखेज्जासंखेज्ज-अणंताणि अवेक्खदे^१ ।

असंखेज्जा ॥ १९ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो, असंखेज्जम्मि तदुभयसंभवविरोहादो ।
तं पि असंखेज्जं परित्त-जुत्त-असंखेज्जासंखेज्जभेएण तिविहं । तत्थ इमम्मि असंखेज्जे
एदेसिमवट्ठाणमिदि जाणावणद्वमुत्तरसुत्तं भणदि —

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति
कालेण ॥ २० ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो, तत्थ असंखेज्जासंखेज्जाणं^२

अनन्तानन्त संख्याका अभाव है ।

उत्कृष्ट अनन्तानन्तका भी प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, 'अनन्तानन्त सर्व
पर्यायोंके प्रथम वर्गमूल' ऐसा न कहकर 'अनन्तानन्त लोक' ऐसा निर्देश किया है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती और
पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १८ ॥

यह आशंकासूत्र संख्यात, असंख्यात और अनन्तकी अपेक्षा करता है ।

उपर्युक्त तिर्यच द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ १९ ॥

इसके द्वारा संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, असंख्यातमें
संख्यात व अनन्त इन दोनोंकी संभावनाका विरोध है। वह असंख्यात भी परीतासंख्यात,
युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकार है । उनमेंसे इस असंख्यातमें
उक्त जीवोंका अवस्थान है, इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उक्त चारों तिर्यच जीव कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और
उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ २० ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतासंख्यात और युक्तासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है,

१ प्रतिषु 'अवेक्खदे' इति पाठः ।

२ अ-आप्रसोः 'असंखेज्जसंखेज्जाणं' इति पाठः ।

ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । एदेण चैव जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स वि पडिसेट्ठो कदो । कुदो ? तत्थ वि असंखेज्जासंखेज्जाणं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । अव-
सेसेसु दोसु असंखेज्जासंखेज्जेसु कम्मि असंखेज्जासंखेज्जे इमं होदि त्ति जाणावणट्ठ-
मुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिदिय-
तिरिक्खजोणिणि-पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि देवअव-
हारकालादो असंखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणहीणेण कालेण
संखेज्जगुणेण कालेण असंखेज्जगुणहीणेण कालेण ॥ २१ ॥

बेहपपणंगुलसदवगगपमाणदेवअवहारकालमावलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडिदे
पंचिदियतिरिक्खाणं अवहारकालो होदि । तम्मिह चैव देवअवहारकाले तप्पाओग्गसंखेज्ज-
रूवेहि भागे हिदे पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागो आगच्छदि । सो पंचिदियतिरिक्ख-
पज्जत्ताणमवहारकालो होदि । देवावहारकाले संखेज्जरूवेहि गुणिदे पंचिदियतिरिक्ख-
जोणिणीणमवहारकालो होदि । देवअवहारकाले आवलियाए असंखेज्जदिभाएण भागे

क्योंकि, उन दोनोंमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है ।
इसीसे ही जघन्य असंख्यातासंख्यातका भी प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, जघन्य
असंख्यातासंख्यातमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है । अवशेष
दो असंख्यातासंख्यातोंमेंसे किस असंख्यातासंख्यातमें उक्त तिर्यच जीव हैं, इसके
ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रक्री अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच
योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीवोंके द्वारा क्रमशः देवअवहारकालसे
असंख्यातगुणे हीन कालसे, संख्यातगुणे हीन कालसे, संख्यातगुणे कालसे और असं-
ख्यातगुणे हीन कालसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ २१ ॥

दो सौ छप्पन सूच्यंगुलके वर्गप्रमाण देवअवहारकालको आवलीके असंख्यातवें
भागसे खंडित करनेपर पंचेन्द्रिय तिर्यचोंका अवहारकाल होता है । उसी देवअवहार-
कालको तत्प्रायोग्य संख्यात रूपोंसे भाजित करनेपर प्रतरांगुलका संख्यातवां भाग
आता है । वह पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त जीवोंका अवहारकाल होता है । देवअवहार-
कालको संख्यात रूपोंसे गुणित करनेपर पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंका अवहार-
काल होता है । देवअवहारकालमें आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर प्रतरां-

हिदे पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागो आगच्छदि । सो पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ताणमवहारकालो होदि । एदे अवहारकाले जहाकमेण सलागभूदे डुविय पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिदियतिरिक्खजोणिणी-पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तपमाणेण जगपदरे अवहिरिज्जमाणे सलागाओ जगपदरं च जुगवं समप्पंति । तत्थ एगवारमवहिरिदपमाणं जहाकमेण पंचिदियतिरिक्खा पंचिदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिदियतिरिक्ख-जोणिणीओ पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ता' च होंति च्चि वुत्तं होदि । एदेण एदेसि जगपदरस्स असंखेज्जदिभागत्तरूवएण सुत्तेण उक्कस्सासंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो । ण च तत्त्वदिरित्तस्स असंखेज्जासंखेज्जस्स सव्वस्स गहणं, तत्थतणसव्ववियप्पाणं पडिसेहं काऊण तत्थेक्कवियप्पस्सेव णिण्णयसरूवेण परूविदत्तादो ।

मणुसगदीए मणुस्सा मणुसअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?

॥ २२ ॥

एदमासंकासुत्तं संखेज्जासंखेज्ज-अणंतावेक्खं । सेसं सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ २३ ॥

गुलका असंख्यातवां भाग आता है । वह पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवोंका अवहारकाल होता है । इन अवहारकालोंको यथाक्रमसे शलाकाभूत स्थापित कर पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके प्रमाणसे जगप्रतरके अपहृत करनेपर शलाकायें और जगप्रतर एक साथ समाप्त होते हैं । उनमें एक वार अपहृत प्रमाण यथाक्रमसे पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव होते हैं, यह उक्त कथनका अभिप्राय है । इन जीवोंके जगप्रतरके असंख्यातवें भागत्वका प्ररूपण करनेवाले इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । और तद्ध्यतिरिक्त असंख्यातासंख्यातका भी सबका ग्रहण नहीं होता, क्योंकि, उसके सब विकल्पोंका प्रतिषेध करके उनमेंसे एक विकल्पका ही निर्णयस्वरूपसे निरूपण किया गया है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य और मनुष्य अपर्याप्त द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ २२ ॥

यह आशंकासूत्र संख्यात, असंख्यात व अनन्तकी अपेक्षा रखता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

मनुष्य और मनुष्य अपर्याप्त द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ २३ ॥

१ प्रतिष्ठा ' -तिरिक्खा अपज्जत्ता ' इति पाठः ।

एदेण वयणेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो, पडिवक्खणिराकरणेण सवक्ख'-
पदुप्पायणादो । तं पि असंखेज्जं तिवियप्पमिदि कट्टु इदमिदि णिण्णओ गत्थि । इदं चैव
होदि त्ति णिण्णयउप्पायणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति
कालेण ॥ २४ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो, पडिवक्खणिसेहं काऊण असंखेज्जा-
संखेज्जवयणस्स सवक्खंपदुप्पायणादो । तं पि जहण्णुक्कस्स-तत्त्वदिरित्तभेएण तिविह-
मिदि कट्टु ण तत्थ णिच्छओ अत्थि । तत्थ णिच्छउप्पायणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण सेडीए असंखेज्जदिभागो ॥ २५ ॥

एदेण उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो, सेडीए असंखेज्जदिभागस्स

इस वचनसे संख्यात व असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, प्रति-
पक्षका निराकरण करनेसे अपने पक्षका प्रतिपादन होता है। वह असंख्यात भी तीन
प्रकार है, ऐसा करके उनमेंसे 'यह असंख्यात है' इस प्रकार निर्णय नहीं हैं, अतः 'यही
असंख्यात है' इसका निर्णय उत्पन्न करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

मनुष्य और मनुष्य अपर्याप्तक कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-
उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ २४ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतासंख्यात और युक्तासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है,
क्योंकि, प्रतिपक्षका निषेध करके असंख्यातासंख्यात वचनको स्वपक्ष निरूपण करना
है। वह असंख्यातासंख्यात भी जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार
है, ऐसा करके उनमें विशेष निश्चय नहीं है। अतः उक्त तीन भेदोंमेंसे विशेषके
निश्चयोत्पादनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा मनुष्य व मनुष्य अपर्याप्त जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण
हैं ॥ २५ ॥

इसके द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि,

१ प्रतिष्ठु ' सवक्ख ' इति पाठः ।

२ अप्रतौ ' वि ' इति पाठः ।

रूवृणपरिचानंतत्तविरोहादो' । सेसेसु दोसु एक्कस्स अवणयणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

तिस्से सेडीए आयामो असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ ॥२६॥

एदेण जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो । कुदो ? तत्थ असंखेज्जाणं जोयणकोडीणमभावादो । असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ वि अणेयवियप्पाओ त्ति काऊण णिच्छयाभावादो तत्थ सुट्ठु णिच्छवुप्पायणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

**मणुस-मणुसअपज्जत्तएहि रूवं रूवापक्खित्तएहि सेडी अवहि-
रदि अंगुलवग्गमूलं तदियवग्गमूलगुणिदेण ॥ २७ ॥**

सूचिअंगुलपढमवग्गमूलं तस्सेव तदियवग्गमूलेण गुणिय सलागभूदं ठविय रूवाहियमणुस्सरासिपमाणेण सेडि अवहिरिज्जदि । किमट्ठं रूवस्स पक्खेवो कीरदे ? कदजुम्माए सेडीए तेजोमणुस्सरासिभिह अवहिरिज्जमाणे अवहारसलागमेत्तरूवाण-

जगश्रेणीके एक कम परीतानन्तपनेका विरोध है । अब शेष दो असंख्यातासंख्यातोंमेंसे एकका निषेध करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

उस जगश्रेणीके असंख्यातवें भागकी श्रेणी अर्थात् पंक्तिका आयाम असंख्यात योजनकोटि है ॥ २६ ॥

इसके द्वारा जघन्य असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, उसमें असंख्यात योजनकोटियोंका अभाव है । असंख्यात योजनकोटियोंके भी अनेक विकल्परूप होनेसे निश्चयका अभाव है, अतः उनमें भले प्रकार निश्चयोत्पादनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलको उसके ही तृतीय वर्गमूलसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उसे शलाकारूपसे स्थापित कर रूपाधिक मनुष्यों और रूपाधिक मनुष्य अपर्याप्तों द्वारा जगश्रेणी अपहृत होती है ॥ २७ ॥

सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलको उसके तृतीय वर्गमूलसे गुणित करके लब्ध राशिको शलाकारूप स्थापित कर रूपाधिक मनुष्यप्रमाणसे जगश्रेणी अपहृत होती है ।

शंका—रूपका प्रक्षेप किसलिये किया जाता है ?

समाधान—चूंकि जगश्रेणी कृतयुग्म राशिरूप है । अतएव उसमेंसे तेजोज-राशिरूप मनुष्यराशिके अपहृत करनेपर अवहारशलाकामात्र शेष रहे रूपोंको घटानेके

मुच्चरंताणमवणयण्डं । तं चेव सलागरासिं ठविय रूवाहियमणुस्सपज्जत्तम्भहियमणुस-
अपज्जत्तरासिणा अवहिरदि । किमडं रूवाहियमणुस्सपज्जत्तरासी पक्खिप्पदे ? मणुस-
अपज्जत्तरासिपमाणेण^१ जगसेडीए अवहिरिज्जमाणाए सलागरासिमेत्तरूवाहियमणुसपज्जत्त-
रासिस्स उच्चरंतस्स अवणयण्डं ।

मणुस्सपज्जत्ता मणुसिणीओ द्वयपमाणेण केवडिया ? ॥२८॥

सुगमं ।

कोडाकोडाकोडीए उवरिं कोडाकोडाकोडाकोडीए हेट्टदो छण्हं
वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्टदो ॥ २९ ॥

एवं सामण्येण जदि वि सुत्ते वुत्तं तो वि आइरियपरंपरागदेण गुरुवदेसेण अवि-
रुद्धेण पंचमवग्गस्स घणमेत्तो^२ मणुसपज्जत्तरासी होदि त्ति घेत्तव्वो । तस्स पमाणमेदं-
७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ । एत्थ गाहा—

लिये उसमें रूपका प्रक्षेप किया जाता है। (इन राशियोंके लिये देखो पुस्तक ३, पृ. २४९)।

उपर्युक्त शलाकाराशिको ही स्थापित कर रूपाधिक मनुष्य पर्याप्त राशिसे अधिक मनुष्य अपर्याप्त राशिसे जगश्रेणी अपहत होती है ।

शंका—रूपाधिक मनुष्य पर्याप्त राशिका प्रक्षेप किस लिये किया जाता है ?

समाधान—मनुष्य अपर्याप्त राशिप्रमाणसे जगश्रेणीके अपहत करनेपर शलाका-
राशिमात्र शेष रूपाधिक मनुष्यराशिको घटानेके लिये उक्त राशिका प्रक्षेप किया जाता है ।

मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियां द्रव्यप्रमाणसे कितनी हैं ? ॥ २८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कोडाकोडाकोडीके ऊपर और कोडाकोडाकोडाकोडीके नीचे छह वर्गोंके ऊपर व
सात वर्गोंके नीचे अर्थात् छठे और सातवें वर्गके बीचकी संख्याप्रमाण मनुष्यपर्याप्त व
मनुष्यनियां हैं ॥ २९ ॥

यद्यपि इस प्रकार सूत्रमें सामान्यरूपसे ही कहा है, तथापि आचार्यपरम्परागत
अविरुद्ध गुरुपदेशसे पंचम वर्गके घनप्रमाण मनुष्य पर्याप्त राशि है, इस प्रकार ग्रहण
करना चाहिये । उसका प्रमाण यह है— ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ ।
यहां गाथा—

१ अ-आप्रत्योः 'रासिमाणेण' इति पाठः ।

२ प्रतिष्ठु 'पुणमेत्तो' इति पाठः ।

तललीनमधुगविमलं धूमसिलागाविचारभयमेरू ।

तटहरिखझसा^१ होंति हु माणुसपज्जत्तसंखंका^२ ॥ २ ॥

एसो उवदेसो कोडाकोडाकोडाकोडिए हेट्टदो त्ति सुत्तेण कथं ण विरुज्झदे ?
ण, एगकोडाकोडाकोडाकोडिमादिं कादूण जाव रूवूणदसकोडाकोडाकोडाकोडि त्ति एदं
सन्वं पि कोडाकोडाकोडाकोडि त्ति गहणादो । ण च एदस्स ट्ठाणस्सुक्कस्सं वोलेदूण
मणुसपज्जत्तरासी ट्ठिदा, अट्टण्हं कोडाकोडाकोडाकोडीणं हेट्टदो तस्स अवट्टाणदंसणादो ।

तकारादि अक्षरोंसे सूचित क्रमशः छह, तीन, तीन, शून्य, पांच, नौ, तीन
चार, पांच, तीन, नौ, पांच, सात, तीन, तीन, चार, छह, दो, चार, एक, पांच, दो,
छह, एक, आठ, दो, दो, नौ, और सात, ये मनुष्य पर्याप्त राशिकी संख्याके अंक हैं ॥२॥

विशेषार्थ—किस अक्षरसे किस अंकका बोध होता है, इसके परिज्ञानार्थ
गोम्मटसार (जीवकाण्ड) में आई हुई इसी गाथाकी (१५८) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका
हिन्दी टीकामें निम्न गाथा उद्धृत की है—

कटपयपुरस्थवर्णैर्नवनवपंचाष्टकल्पितैः क्रमशः ।

स्वरजनशून्यं संख्या मात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यम् ॥

अर्थात् क-ख इत्यादि नौ अक्षरोंसे क्रमशः एक-दो आदि नौ संख्या तक ग्रहण
करना चाहिये । जैसे— क ख ग घ ङ च इत्यादि । इसी प्रकार ट-ठ इत्यादिसे भी एक-
१ २ ३ ४ ५ ६
दो क्रमसे नौ तक, प से म तक पांच अक्षरोंसे पांच तक, और य से ह तक आठ अक्षरोंसे
क्रमशः एक-दो आदि आठ तक अंकोंका ग्रहण करना चाहिये । स्वर, अ और न शून्यके
सूचक हैं । मात्रा और उपरिम अक्षरको छोड़ना चाहिये, अर्थात् उससे किसी अंकका
बोध नहीं होता ।

शंका—यह उपदेश ' कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ीसे नीचे ' इस सूत्रसे कैसे विरोधको
न प्राप्त होगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एक कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ीको आदि करके एक कम
दश कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ी तक इस सबको भी कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ीरूपसे ग्रहण किया
गया है । और इस स्थानके उत्कर्षका उलंघन कर मनुष्य पर्याप्त राशि स्थित नहीं है,
क्योंकि, उसका अवस्थान आठ कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ीके नीचे देखा जाता है ।

१ प्रतिपु ' तललीण- ' इति पाठः ।

२ प्रतिपु ' खजसा ' इति पाठः ।

३ गो जी. १५८.

एदस्स तिण्णि चटुब्भागा मणुसिणीओ, एगो' चटुब्भागो पुरिस-णवुंसयरासी होदि । सहीणबुद्धीए पुण जोइज्जमाणे एदेण सुत्तेण सह वक्खाणाइरिएहि परूविदमणुसपज्जत्तरासिपमाणं णियमेण विरुज्जेदे, कोडाकोडाकोडाकोडीए हेट्टुदो त्ति सुत्तम्मि एगवयण-णिदेसादो । ण च ट्ठाणसण्णा संखेज्जे वट्टुदे जेण णवण्हं कोडाकोडाकोडाकोडीणं कोडाकोडाकोडाकोडित्तं होज्ज, विरोहादो । किं च ण वक्खाणाइरियपरूविदं मणुस्सपज्जत्तरासिपमाणं होदि, मणुसखेत्तम्मि तस्स वत्तीए' अभावादो, एदम्हादो सत्तगुणसव्वट्टु-सिद्धिविमाणवासियदेवाणं पि जोयणलक्खम्मि अवट्टाणाभावादो च । सेसं सुगमं ।

देवगदीए देवा द्व्यपमाणेण केवडिया ? ॥ ३० ॥

एदमासंकासुत्तं संखेज्जासंखेज्जाणंतालंघणं ।

असंखेज्जा ॥ ३१ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो,

पर्याप्त मनुष्य राशिके चार भागोंमेंसे तीन भागप्रमाण मनुष्यनियां हैं और एक चतुर्थांश पुरुष व नपुंसक राशि है । किन्तु स्वाधीन बुद्धिसे देखनेपर अर्थात् स्वतंत्रतासे विचार करनेपर इस सूत्रके साथ व्याख्यानाचार्यों द्वारा निरूपित मनुष्य पर्याप्त राशिका प्रमाण नियमसे विरोधको प्राप्त होता है, क्योंकि, 'कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ीके नीचे' इस प्रकार सूत्रमें एक वचनका निर्देश किया गया है । और स्थानसंज्ञा संख्यातमें है नहीं, जिससे नौ कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ियोंको (एकत्वरूपसे) कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ीपना हो सके, क्योंकि, ऐसा माननेमें विरोध है । इसके अतिरिक्त व्याख्यानाचार्यों द्वारा प्ररूपित मनुष्य पर्याप्त राशिका प्रमाण बनता भी नहीं है, क्योंकि, इस प्रकार मनुष्यक्षेत्रमें उक्त मनुष्यराशिकी स्थिति नहीं हो सकती, तथा इससे (मनुष्यनीराशिसे) सातगुणे सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंका भी एक लाख योजनमें अवस्थान नहीं बन सकता । (विशेष जाननेके लिये देखो पुस्तक ३, पृ. २५८ का विशेषार्थ) । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

देवगतिमें देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ३० ॥

यह आशंकासूत्र संख्यात, असंख्यात व अनन्तका अवलम्बन करनेवाला है ।

देवगतिमें देव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ३१ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि—

१ प्रतिषु ' एदो ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' तत्तीए ' इति पाठः ।

निरस्यति परस्यार्थं स्वार्थं कथयति श्रुतिः ।

तमो विधुन्वती भास्यं यथा भासयति प्रभा ॥ ३ ॥

इदि वयणादो । तं पि- असंखेज्जं परित्त-जुत्त-असंखेज्जासंखेज्जभेएण तिविहं ।
तत्थ एदमिह असंखेज्जे देवाणमवट्ठाणमिदि जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति
कालेण ॥ ३२ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । पदरावलियाए असंखेज्जासंखेज्जा-
णमोसप्पिणि-उस्सप्पिणीण सव्भावादो' जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स वि पडिसेहो कदो ।
इदरेसु दोसु एककस्स ग्गहणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण पदरस्स वेछप्पणंगुलसदवग्गपडिभाएण ॥ ३३ ॥

वेछप्पणंगुलसदवग्गो पंचसट्ठिसहस्स-पंचसद-छत्तीसपदरंगुलाणि । जगपदरस्स
एदेण पडिभाएण देवरासी होदि । एदेण वयणेण उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहं

जिस प्रकार प्रभा अंधकारको नष्ट करती हुई प्रकाशनीय पदार्थका प्रकाशन करती है, उसी प्रकार श्रुति परके अभीष्टका निराकरण करती है और अपने अभीष्ट अर्थको कहती है ॥ ३ ॥

इस प्रकारका वचन है । वह असंख्यात भी परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकार है । अतः उनमेंसे इस असंख्यातमें देवोंका अवस्थान है ऐंसा जतलानेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

देव कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ३२ ॥

इस सूत्र द्वारा परीतासंख्यात और युक्तासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । प्रतरावलीमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका सद्भाव होनेसे जघन्य असंख्यातासंख्यातका भी प्रतिषेध किया गया है । अब अन्य दो असंख्यातासंख्यातोंमेंसे एकके ग्रहण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा देवोंका प्रमाण जगप्रतरके दो सौ छप्पन अंगुलोंके वर्गरूप प्रतिभागसे प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

दो सौ छप्पन अंगुलोंका वर्ग पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस प्रतरांगुलप्रमाण होता है । इस जगप्रतरके प्रतिभागसे देवराशि होती है । अर्थात् दो सौ छप्पन सूच्यंगुलोंके वर्गका जगप्रतरमें भाग देनेपर जो लब्ध हो उतना देवराशिका प्रमाण है । इस वचनसे उत्कृष्ट

१ प्रतिषु 'उत्सर्पिणीणमभावादो' इति पाठः ।

काऊण विसिद्धस्स अजहण्णाणुक्कस्सस्स परूवणा कदा ।

भवनवासियदेवा द्व्यपमाणेण केवडिया ? ॥ ३४ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ ३५ ॥

पडिवक्खपडिसेहं काऊण सपक्खपटुप्पायणादो एदेण सुत्तेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो । तं पि असंखेज्जं परित्त-जुत्त-असंखेज्जासंखेज्जभेएण तिविहं होदि । तत्थ वि अणप्पिदस्स पडिसेहद्वमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ३६ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जं पि पडिसिद्धं, तत्थ असंखेज्जासंखेज्जओसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । संपहि अवसेसेसु दोसु अणप्पिदपडिसेहद्वमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ ॥ ३७ ॥

असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध करके शेष रहे अजघन्यानुत्कृष्टकी प्ररूपणा की है ।

भवनवासी देव द्व्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भवनवासी देव द्व्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ३५ ॥

प्रतिपक्षका निषेधकर स्वपक्षका प्रतिपादन करनेसे इस सूत्रके द्वारा संख्यात और अनन्तका प्रतिषेध किया गया है । वह असंख्यात भी परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकार है । उनमेंसे भी अविवक्षित असंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

कालकी अपेक्षा भवनवासी देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ३६ ॥

इसके द्वारा परीतासंख्यात और युक्तासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । इसके साथ जघन्य असंख्यातासंख्यातका भी प्रतिषेध कर दिया है, क्योंकि, उसमें असंख्याता-संख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है । अब अवशेष दो असंख्यातासंख्यातोंमेंसे अविवक्षितके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा भवनवासी देव असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण हैं ॥ ३७ ॥

एदेण सुत्तेण उक्कस्स असंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो, लोगाणमणिद्देसादो^१ ।
असंखेज्जाओ सेडीओ वि अणेयभेयभिण्णाओ, तण्णिण्णयउप्पायणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

पदरस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३८ ॥

एदेण जगपदरस्स दुभाग-तिभागादीणं पडिसेहो कदो । जगपदरस्स असंखेज्ज-
दिभागो वि अणेयभेयभिण्णाओ त्ति तत्थ णिच्छयजणणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलं अंगुलवग्गमूल-
गुणिदेण ॥ ३९ ॥

सूचिअंगुलं तस्सेव पढमवग्गमूलेण गुणिदं सेडीणं विक्खंभसूची होदि ।
सेसं सुगमं ।

वाणवेंतरदेवा द्रव्यप्रमाणेण केवडिया ? ॥ ४० ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ ४१ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, यहाँ लोकोंका निर्देश नहीं है । असंख्यात जगश्रेणियां भी अनेक भेदोंसे भिन्न हैं, अतः उनके निर्णयोत्पादनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त असंख्यात जगश्रेणियां जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण ग्रहण करना चाहिये ॥ ३८ ॥

इससे जगप्रतरके द्वितीय तृतीय भागादिकोंका प्रतिषेध किया गया है । जग-
प्रतरका असंख्यातवां भाग भी अनेक भेदोंसे भिन्न है, अतः उनमें निश्चयजननार्थ उत्तर
सूत्र कहते हैं—

उन असंख्यात जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची सूच्यंगुलको सूच्यंगुलके ही वर्ग-
मूलसे गुणित करनेपर जो लब्ध हो उतनी है ॥ ३९ ॥

सूच्यंगुलको उसके ही प्रथम वर्गमूलसे गुणित करनेपर उन असंख्यात
जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची होती है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वानव्यन्तर देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ४० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वानव्यन्तर देव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ४१ ॥

१ प्रतिष्ठा 'दोगामणिद्देसादो' इति पाठः ।

एदेण संखेज्जाणंताणं^१ पडिसेहो कदो । असंखेज्जं पि परित्त-जुत्त-असंखेज्जा-
संखेज्जभेएण तिविहं । तत्थ अणप्पिदपडिसेहड्डमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति
कालेण ॥ ४२ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो, तत्थ
असंखेज्जासंखेज्जाणमोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । इदरेसु दोसु अणप्पिदपडिसेहड्ड-
मुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण पदरस्स संखेज्जजोयणसदवग्गपडिभाएण ॥ ४३ ॥

तप्पाओग्गसंखेज्जजोयणसदं वग्गिय तेण जगपदरे ओवड्ढिदे वाणवेंतरदेवाणं
पमाणं होदि । सेसं सुगमं ।

जोदिसिया देवा देवगदिभंगो ॥ ४४ ॥

इसके द्वारा संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है । असंख्यात भी परीता-
संख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकार है । उनमें अविचक्षित
असंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

कालकी अपेक्षा वानव्यन्तर देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे
अपहृत होते हैं ॥ ४२ ॥

इस सूत्र द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जघन्य असंख्यातासंख्यातका
भी प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, उनमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका
अभाव है । अब इतर दो असंख्यातासंख्यातोंमें अविचक्षितके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र
कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा वानव्यन्तर देवोंका प्रमाण जगप्रतरके संख्यात सौ योजनोंके
वर्गरूप प्रतिभागसे प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥

तत्प्रायोग्य संख्यात सौ योजनोंका वर्ग करके उससे जगप्रतरके अपवर्तित
करनेपर वानव्यन्तर देवोंका प्रमाण होता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

ज्योतिषी देवोंका प्रमाण देवगतिके समान है ॥ ४४ ॥

१ प्रतिष्ठा 'असंखेज्जाणंताणं' इति पाठः ।

कुदो ? पदरस्स बेछप्पणंगुलसद्वग्गपडिभागत्तणेण तदो विसेसाभावादो । णवरि अत्थदो विसेसो अत्थि, सो जाणिय वत्तव्वो ।

सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ४५ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ ४६ ॥

एदेण संखेज्जस्स पडिसेहो कदो । अणंतस्स पुण पडिसेहो देवोघपरूवणादो चैव सिद्धो । असंखेज्जं पि पुव्वुत्तक्रमेण तिविहं । तत्थेकस्सेव गहणेद्वुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ४७ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहणअसंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो, तत्थ असंखेज्जासंखेज्जाणमोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । अवसेसेसु दोसु एकस्सेव गहणेद्वुत्तरसुत्तं भणदि—

क्योंकि, जगप्रतरके दो सौ छप्पन अंगुल्लोंके वर्गरूप प्रतिभागपनेकी अपेक्षा सामान्य देवराशिसे ज्योतिषी देवराशिमें कोई विशेषता नहीं है । परन्तु अर्थसे विशेषता है, उसे जानकर कहना चाहिये । (देखिये जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, पृ. २६८ का विशेषार्थ) ।

सौधर्म व ईशान कल्पवासी देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सौधर्म व ईशान कल्पवासी देव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ४६ ॥

इस सूत्र द्वारा संख्यातका प्रतिषेध किया गया है । अनन्तका प्रतिषेध देवोंकी ओघप्ररूपणासे ही सिद्ध है । असंख्यात भी पूर्वोक्त क्रमसे तीन प्रकार है । उनमेंसे एकके ही ग्रहण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

सौधर्म-ईशान कल्पवासी देव कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ४७ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जघन्य असंख्यातासंख्यातका भी प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, उनमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है । अवशेष दो असंख्यातासंख्यातोंमें एकके ही ग्रहण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

खत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ ॥ ४८ ॥

एदेण उक्कस्स असंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो, लोगादिणिहिसाणमभावादो ।
असंखेज्जाओ सेडीओ अणेयवियप्पाओ । तासिं णिण्णयट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

पदरस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४९ ॥

एदेण जगपदरस्स दुभाग-तिभागादिपडिसेहो कदो । पदरस्स असंखेज्जदिभागो
वि अणेयवियप्पो त्ति जादसंदेहविणासणट्ठं उत्तरसुत्तं भणदि—

तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलस्स वग्गमूलं विदियं तदिय- वग्गमूलगुणिदेण ॥ ५० ॥

सूचिअंगुलविदियवग्गमूलं तस्सेव तदियवग्गमूलगुणिदं सेडीणं विक्खंभस्स सूची
होदि । घनांगुलतदियवग्गमूलमेत्तसेडीओ सोधम्मिसाणकप्पेसु देवा होंति त्ति वुत्तं होदि ।

सणक्कुमार जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा सत्तमपुठवी- भंगो ॥ ५१ ॥

उपर्युक्त देव क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण हैं ॥ ४८ ॥

इसके द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, यहाँ
लोकादिकोंके निर्देशका अभाव है । असंख्यात जगश्रेणियां अनेक विकल्परूप हैं । उनके
निर्णयार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

ये असंख्यात जगश्रेणियां जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ ४९ ॥

इस सूत्र द्वारा जगप्रतरके द्वितीय-तृतीय भागादिकोंका प्रतिषेध किया गया है ।
जगप्रतरका असंख्यातवां भाग भी अनेक विकल्परूप है, इस कारण उत्पन्न हुए सन्देहके
विनाशनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उन असंख्यात जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची सूच्यंगुलके तृतीय वर्गमूलसे
गुणित सूच्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलप्रमाण है ॥ ५० ॥

सूच्यंगुलका द्वितीय वर्गमूल उसीके तृतीय वर्गमूलसे गुणित होकर असंख्यात
जगश्रेणियोंके विष्कम्भकी सूची होता है । घनांगुलके तृतीय वर्गमूलमात्र जगश्रेणीप्रमाण
सौधर्म-ईशान कल्पोंमें देव हैं, यह उक्त कथनका फलितार्थ है ।

सनत्कुमारसे लेकर शतार-सहस्सार कल्प तकके कल्पवासी देवोंका प्रमाण सप्तम
पृथिवीके समान है ॥ ५१ ॥

कुदो ? सेडीए असंखेज्जभागत्तणेण एदेसिं तत्तो भेदाभावादो । विसेसदो पुण भेदो अत्थि, सेडीए एकारस-णवम-सत्तम-पंचम-चउत्थवग्गमूलानं जहाकमेण सेडीभाग-हाराणमेत्थुवलंभादो । एदे भागहारा एत्थ होंति त्ति कञ्चं णव्वदे ? आइरियपरंपरागद-अविरुद्धवदेसादो ।

आणद जाव अवराइदविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केव-डिया ? ॥ ५२ ॥

सुगमं ।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५३ ॥

एदेण संखेज्जस्स पडिसेहो कदो । पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो वि अणेयपयारो, तण्णिण्णयट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ ५४ ॥

एदेहि पुव्वुत्तेदेवेहि पलिदोवमे अवहिरिज्जमाणे अंतोमुहुत्तेण पलिदोवममवहिरदि ।

क्योंकि, इनके जगश्रेणीके असंख्यातवें भागत्वकी अपेक्षा सप्तम पृथिवीके नारकियोंसे कोई भेद नहीं है । परन्तु विशेषकी अपेक्षा भेद है, क्योंकि, यहां यथाक्रमसे ग्यारहवां, नौवां, सातवां, पांचवां और चौथा, इन जगश्रेणीके वर्गमूलोंकी श्रेणीभागहार-रूपसे उपलब्धि है ।

शंका—ये भागहार यहां हैं, ग्रह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह आचार्यपरम्परागत अविरुद्ध उपदेशसे जाना जाता है ।

आनतसे लेकर अपराजित विमान तकके विमानवासी देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ५२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त देव द्रव्यप्रमाणसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हैं ॥ ५३ ॥

इस सूत्र द्वारा संख्यातका प्रतिषेध किया है । पल्योपमका असंख्यातवां भाग भी अनेक प्रकार है, उसके निर्णयार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

इन देवोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ ५४ ॥

इन पूर्वोक्त देवों द्वारा पल्योपमके अपहृत करनेपर अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत

एत्थ अंतोमुहुत्तपमाणमावल्याए असंखेज्जदिभागो । संखेज्जावल्यासु संखेज्जाणं जीवाणमुवक्कमे संते कथं पलिदोवमस्स आवल्याए असंखेज्जदिभागो भागहारो होदि ? ण एत्थ आवल्याए असंखेज्जदिभागो संखेज्जावल्याओ वा अंतोमुहुत्तं, किंतु असंखेज्जावल्याओ एत्थ अंतोमुहुत्तमिदि घेत्तव्वाओ । कधमसंखेज्जावल्याणमंतो-मुहुत्तत्तं ? ण, कज्जे कारणोवयारेण तासिं तदविरोहादो ।

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा द्व्यपमाणेण केवडिया ? ॥ ५५ ॥
सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ ५६ ॥

एदं पि सुगमं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया वादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता
द्व्यपमाणेण केवडिया ? ॥ ५७ ॥

होता है । यहां अन्तर्मुहूर्तका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग है ।

शंका—संख्यात आवलियोंमें संख्यात जीवोंका उपक्रम होनेपर आवलीका असंख्यातवां भाग पद्योपमका भागहार कैसे हो सकता है ?

समाधान—यहां आवलीका असंख्यातवां भाग अथवा संख्यात आवलियां अन्तर्मुहूर्त नहीं है, किन्तु यहां असंख्यात आवलियां अन्तर्मुहूर्त हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिये । (देखो जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, पृ. २८५) ।

शंका — असंख्यात आवलियोंके अन्तर्मुहूर्तपना कैसे बन सकता ?

समाधान—कार्यमें कारणका उपचार करनेसे असंख्यात आवलियोंके अन्तर्मुहूर्तपनेका कोई विरोध नहीं है ।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ५६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ५७ ॥

एदमासंकासुत्तं संखेज्जासंखेज्जाणंतालंबणं । सेसं सुगमं ।

अणंता ॥ ५८ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । तं पि अणंतं परित्त-जुत्ताणंताणंत-
भेएण तिविहं । तत्थेक्कस्सेव गहणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण
॥ ५९ ॥

एदेण जहण्णअणंताणंतस्स पडिसेहो कदो, अदीदकालादो अणंतगुणस्स जहण्ण-
अणंताणंतच्चिरोहादो । अजहण्णअणुक्कस्स-उक्कस्सअणंताणंताणं दोण्हं पि गहणप्पसंगे
तत्थेक्कस्सेव गहणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ६० ॥

एदेण उक्कस्सअणंताणंतस्स पडिसेहो कदो, अणंताणंतसव्वपज्जयपटमवग्गमूलस्स

यह आशंकासूत्र संख्यात, असंख्यात और अनन्तका आलम्बन करनेवाला है ।
शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उपर्युक्त प्रत्येक एकेन्द्रिय जीव अनन्त हैं ? ॥ ५८ ॥

इस सूत्र द्वारा संख्यात और असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । वह अनन्त
भी परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्तके भेदसे तीन प्रकार है । उनमेंसे एकके ही
ग्रहणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त जीव कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत
नहीं होते हैं ॥ ५९ ॥

इस सूत्र द्वारा जघन्य अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, अतीत-
कालसे अनन्तगुणे कालको जघन्य अनन्तानन्तत्वका विरोध है । अजघन्यानुत्कृष्ट और
उत्कृष्ट अनन्तानन्त इन दोनोंके भी ग्रहणका प्रसंग होनेपर उनमेंसे एकके ही ग्रहणार्थ
उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा उक्त नौ प्रकारके एकेन्द्रिय जीव अनन्तानन्त लोकप्रमाण
हैं ॥ ६० ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि,
अनन्तानन्त सर्व पर्यायोंके प्रथम वर्गमूलस्वरूप उत्कृष्ट अनन्तानन्तको अनन्तानन्त

उक्कस्सअणंताणंतस्स अणंताणंतलोगत्तविरोहादो । सेसं जीवट्ठाणभंगो ।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता
द्वयपमाणेण केवडिया ? ॥ ६१ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ ६२ ॥

एदेण संखेज्जाणंतपडिसेहो कदो । तं पि असंखेज्जं परित्त-जुत्त-असंखेज्जा-
संखेज्जभेएण तिविहं । तत्थ दोण्हमवणयणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति
कालेण ॥ ६३ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो,
एदेसु तिसु असंखेज्जासंखेज्जओसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमत्थित्तविरोहादो । अजहण्णु-
क्कस्सुक्कस्सअसंखेज्जाणं दोण्हं पि गहणप्पसंगे तत्थेक्कस्स अवणयणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

लोकत्वका विरोध है । शेष प्ररूपणा जीवस्थानके समान है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और उन्हींके पर्याप्त व अपर्याप्त
जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त द्वीन्द्रियादिक जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ६२ ॥

इसके द्वारा संख्यात और अनन्तका प्रतिषेध किया गया है । वह असंख्यात
भी परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकार है ।
उनमेंसे दोका निराकरण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त द्वीन्द्रियादिक जीव कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-
उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ६३ ॥

इस सूत्र द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जघन्य असंख्यातासंख्यातका
प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, इन तीनोंमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-
उत्सर्पिणियोंके अस्तित्वका विरोध है ! अजघन्यानुत्कृष्ट और उत्कृष्ट दोनों ही असं-
ख्यातासंख्यातोंके ग्रहणका प्रसंग होनेपर उनमेंसे एकके निषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

खेत्तेण बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय तस्सेव पज्जत्त-
अपज्जत्तेहि पदरं अवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडि-
भाएण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स असंखे-
ज्जदिभागवग्गपडिभाएण ॥ ६४ ॥

एदेण उक्कस्स असंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो, रूवूणजहण्णपरित्ताणंतस्स
पदरस्स असंखेज्जदिभागत्तविरोहादो । सूचिअंगुले आवलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे
हिदे लद्धं वग्गिदे बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियाणमवहारकालो होदि । तम्हि
चेव विसेसाहिए कदे एदेसिमपज्जत्ताणमवहारकालो होदि । सूचिअंगुलस्स संखेज्जदिभागे
वग्गिदे एदेसिं पज्जत्ताणमवहारकालो होदि । सेसं जीवट्ठाणम्मि वुत्तविहाणं
णाऊण वत्तव्वं ।

कायाणुवादेण पुठविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-
बादरपुठविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-
बादरवणफदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सुहुमपुठविकाइय-

क्षेत्रकी अपेक्षा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय तथा उन्हींके
पर्याप्त एवं अपर्याप्त जीवों द्वारा सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे,
सूच्यंगुलके संख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे और सूच्यंगुलके असंख्यातवें
भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ६४ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि,
एक कम जघन्य परीतानन्तको जगप्रतरके असंख्यातवें भागपनेका विरोध है । सूच्यं-
गुलमें आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो लब्ध हो उसका वर्ग करनेपर
द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंका अवहारकाल होता है । इसीको
विशेष अधिक करनेपर इन्हींके अपर्याप्त जीवोंका अवहारकाल होता है । सूच्यंगुलके
संख्यातवें भागका वर्ग करनेपर इन्हींके पर्याप्त जीवोंका अवहारकाल होता है । शेष
जीवस्थानमें कहे हुए विधानको जानकर कहना चाहिये । (देखो पुस्तक ३, पृ. ३१३
आदि) ।

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक,
बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक, बादर
बनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और इन्हींके अपर्याप्त, तथा सूक्ष्म पृथिवीकायिक,

सुहुमआउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता
अपज्जत्ता द्व्यपमाणेण केवडिया ? ॥ ६५ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा लोगा ॥ ६६ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णुक्कस्स असंखेज्जासंखेज्जाणं
च पडिमेहो कदो । सेसं सुगमं ।

वादरपुढविकाइय-वादरआउकाइय-वादरवणप्फदिकाइयपत्तेय-
सरीरपज्जत्ता द्व्यपमाणेण केवडिया ? ॥ ६७ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ ६८ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो । तं पि असंखेज्जं तिविहं । तत्थेक्कस्सेव
गहण्णुत्तरसुत्तं भणदि—

सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं चार सूक्ष्मोंके
पर्याप्त व अपर्याप्त, ये प्रत्येक जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंमें प्रत्येक जीवराशि असंख्यात लोकप्रमाण है ॥ ६६ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात, अनन्त, परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात, जघन्य असं-
ख्यातासंख्यात और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । शेष सूत्रार्थ
सुगम है ।

बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक-
शरीर पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ६८ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है । वह असंख्यात
भी तीन प्रकार है । उनमें एकके ही ग्रहणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसपिणि-उस्सपिणीहि अवहिरंति कालेण
॥ ६९ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो, तेमु
असंखेज्जासंखेज्जोसपिणी-उस्सपिणीणमभावादो^१ । उक्कस्सासंखेज्जासंखेज्जपडिसेहद्ध-
मुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-
पत्तेयसरीरपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्ग-
पडिभाएण ॥ ७० ॥

एत्थ सूचिअंगुलस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो होदि ।
सेसं सुगमं ।

बादरतेउपज्जत्ता दब्बपमाणेण केवडिया ? ॥ ७१ ॥

सुगमं ।

उक्त जीव कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत
होते हैं ॥ ६९ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जघन्य असंख्यातासंख्यातका
प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, उनमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका
अभाव है । उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पति-
कायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवों द्वारा सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गरूप प्रति-
भागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ७० ॥

यहां पल्योपमका असंख्यातवां भाग सूच्यंगुलका भागहार है । शेष सूत्रार्थ
सुगम है ।

बादर तेजकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ॥ ७१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ प्रतिष्ठु ' -संखेज्जोसपिणीणमभावादो ' इति पाठः ।

असंखेज्जा ॥ ७२ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो । असंखेज्जं पि तिविहं परित्त-जुत्त-
असंखेज्जासंखेज्जमेएण । तत्थ परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जंहुण्णुककस्सासंखेज्जासंखेज्जाणं
च पडिसेहद्वमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जावलियवग्गो आवलियघणस्स अंतो ॥ ७३ ॥

असंखेज्जावलियवग्गो त्ति वुत्ते पदरावलियप्पहुडिउवरिमवग्गाणं गहणं पत्ते
तण्णिवारणद्वमावलियघणस्स अंतो इदि वुत्तं । सेसं सुगमं ।

बादरवाउपज्जत्ता द्वयप्रमाणेण केवडिया ? ॥ ७४ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ ७५ ॥

संखेज्जाणंताणं पडिसेहो एदेण कदो । तिविहेसु असंखेज्जेसु एदमिह असंखेज्जे

बादर तेजकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ७२ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है । असंख्यात भी परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकार है । उनमें परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात, जघन्य असंख्यातासंख्यात और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उक्त असंख्यातका प्रमाण असंख्यात आवलियोंके वर्गरूप है जो आवलीके घनके भीतर आता है ॥ ७३ ॥

‘उक्त असंख्यातका प्रमाण असंख्यात आवलियोंके वर्गरूप है’ ऐसा कहनेपर प्रतरावली आदि उपरिम वर्गोंके ग्रहणके प्राप्त होनेपर उनके निवारणार्थ ‘आवलीके घनके भीतर है’ ऐसा कहा गया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ७५ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया है । तीन प्रकारके असं-

बादरवाउपज्जत्तरासी द्विदो त्ति जाणावणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति
कालेण ॥ ७६ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो, तेसु
असंखेज्जासंखेज्जाणमोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । अजहण्णुककस्स-उक्कस्सअसं-
खेज्जासंखेजाण गहणप्पसंगे उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण असंखेज्जाणि पदराणि ॥ ७७ ॥

एदेण अजहण्णुककस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स सिद्धी कदा । असंखेज्जाणि जगपद-
राणि अणेयविहाणि त्ति तण्णिण्णयट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ७८ ॥

घणलोगे तप्पाओग्गसंखेज्जरूवे हिदे बादरवाउकाइयपज्जत्तरासी होदि ।
सेसं सुगमं ।

ख्यातोंमेंसे इस असंख्यातमें बादर वायुकायिक पर्याप्त राशि स्थित है इसके ज्ञापनार्थ
उत्तर सूत्र कहते हैं—

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-
उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ७६ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जघन्य असंख्यातासंख्यातका
प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, उनमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका
अभाव है । अजघन्यानुत्कृष्ट और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातोंके ग्रहणका प्रसंग होनेपर
उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात जगप्रतरप्रमाण
हैं ॥ ७७ ॥

इस सूत्रके द्वारा अजघन्यानुत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातकी सिद्धि की गई है ।
असंख्यात जगप्रतर अनेक प्रकार हैं, इस कारण उनके निर्णयार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उन असंख्यात जगप्रतरोंका प्रमाण लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ७८ ॥

घनलोकमें तत्प्रायोग्य संख्यात रूपोंका भाग देनेपर बादर वायुकायिक पर्याप्त
राशि होती है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता
द्ववपमाणेण केवडिया ? ॥ ७९ ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ ८० ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । अणंतं पि तिविहं । तत्थ एदमिह
अणंते एदेसिमवट्ठाणमिदि जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण
॥ ८१ ॥

एदेण परित्त-जुत्ताणंताणं जहण्णअणंताणंतस्स य पडिसेहो कदो । एदेसि अणं-
ताणंताणमोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । अजहण्णक्कस्सअणंताणंतस्स गहणट्ठमुत्तर-
सुत्तं भणदि—

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक बादर जीव, वनस्पति-
कायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक बादर
अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त
जीव, निगोद बादर जीव, निगोद सूक्ष्म जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद
बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीव,
ये प्रत्येक द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ७९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त प्रत्येक जीवराशि द्रव्यप्रमाणसे अनन्त है ॥ ८० ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । अनन्त भी
तीन प्रकार है । उनमेंसे इस अनन्तमें इनका अवस्थान है, इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र
कहते हैं—

उपर्युक्त प्रत्येक जीवराशि कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे
अपहृत नहीं होती है ॥ ८१ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतानन्त, युक्तानन्त, और जघन्य अनन्तानन्तका निषेध
किया है, क्योंकि, इनके अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है । अजघ-
न्योत्कृष्ट अनन्तानन्तके ग्रहणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ८२ ॥

एदेण उक्कस्सअणंताणंतस्स पडिसेहो कदो । सेसं सुगमं ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-
अपज्जत्ताणं भंगो ॥ ८३ ॥

तसकाइयाणं पंचिंदियभंगो, तसकाइयपज्जत्ताणं पंचिंदियपज्जत्ताणं भंगो, तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्ताणं भंगो । कुदो ? समाणाणं जहासंखाए संबंधादो । आवलियाए असंखेज्जदिभागेण संखेज्जदिरूवेहि आवलियाए असंखेज्जदिभागेण च पुध पुध ओवड्ढिदपदरंगुलेहि जगपदरम्मि भागे हिदे पंचिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्त-पंचिंदियअपज्जत्ताणं रासीओ होंति ति वुत्तं होदि । सेसं जहा जीवट्ठाणे वुत्तं तहा वत्तव्वं ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी तिण्णिवचिजोगी दब्बपमाणेण
केवडिया ? ॥ ८४ ॥

सुगमं ।

उपर्युक्त प्रत्येक जीवराशि क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण है ॥ ८२ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीवोंका प्रमाण क्रमशः पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान है ॥ ८३ ॥

त्रसकायिकोंका प्रमाण पंचेन्द्रियोंके समान, त्रसकायिक पर्याप्तोंका प्रमाण पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंके समान, और त्रसकायिक अपर्याप्तोंका प्रमाण पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है, क्योंकि समान पदोंका सम्बन्ध संख्याके अनुसार होता है । आवलीके असंख्यातवें भागसे, संख्यात रूपोंसे और आवलीके असंख्यातवें भागसे पृथक् पृथक् अपवर्तित प्रतरांगुलोंका जगप्रतरमें भाग देनेपर क्रमशः पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंकी राशियां होती हैं, यह उक्त कथनका अभिप्राय है । शेष जैसे जीवस्थानमें कहा है वैसे यहां भी कहना चाहिये ।

योगमार्गानुसार पांच मनोयोगी और सत्य, असत्य व उभय ये तीन वचनयोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ८४ ॥

बह सूत्र सुगम है ।

देवाणं संखेज्जदिभागो ॥ ८५ ॥

देवाणमवहारकाले वेछप्पणंगुलसदवग्गे तप्पाओग्गसंखेज्जरूवेहि गुणिदे एदेसि-
मवहारकाला होंति । एदेहि जगपदरम्हि भागे हिदे पुव्वुत्तद्वरासीओ होंति । सेसं सुगमं ।

वचिजोगी-असच्चमोसवचिजोगी द्व्यपमाणेण केवडिया ?
॥ ८६ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ ८७ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो । कुदो ? उभयसत्तिसंजुत्तत्तादो । असंखेज्जं
पि तिविहं । तत्थेदम्हि एदेसिमवट्ठाणमिदि जाणावणद्वमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति
कालेण ॥ ८८ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं' जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो,

पांच मनोयोगी और तीन वचनयोगी द्रव्यप्रमाणसे देवोंके संख्यातर्वे भाग-
प्रमाण हैं ॥ ८५ ॥

दो सौ छप्पन सूर्यगुलोंके वर्गरूप देवोंके अवहारकालको तत्प्रायोग्य संख्यात
रूपोंसे गुणित करनेपर इनके अवहारकाल होते हैं । इनसे जगप्रतरके भाजित करनेपर
पूर्वोक्त आठ राशियां होती हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वचनयोगी और असत्यमृषा अर्थात् अनुभय वचनयोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने
हैं ? ॥ ८६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ८७ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, वह सूत्र
संख्यात व अनन्तके प्रतिषेध तथा असंख्यातके विधानरूप उभय शक्तिसे संयुक्त है ।
असंख्यात भी तीन प्रकार है । उनमेंसे इस असंख्यातमें इनका अवस्थान है, इसके
ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात
अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ८८ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जघन्य असंख्यातासंख्यातका

एदेसु असंखेज्जासंखेज्जाणं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । सेसदोअसंखेजासंखेजेसु
एक्कस्सावहारणडुमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीहि पदरमवहिरदि
अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण ॥ ८९ ॥

एदेण उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो, तस्स पदरस्स असंखेज्ज-
दिभागत्तविरोहादो । संखेज्जरूवेहि ओवड्ढिदपदरंगुलेण जगपदरे भागे हिदे दो वि
रासीओ आगच्छंति । सेसं सुगमं ।

कायजोगि-ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्म-
इयकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ९० ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ ९१ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । अणंतं पि तिविहं । तत्थ एदमिह
अणंते एदाओ रासीओ ढ्ढिदाओ त्ति जाणावणडुमुत्तरसुत्तं भणदि—

प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, इनमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका
अभाव है । शेष दो असंख्यातासंख्यातोंमेंसे एकके अवधारणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगियों द्वारा सूच्यंगुलके
संख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ८९ ॥

इस सूत्रके द्वारा उच्छृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि,
उसको जगप्रतरके असंख्यातवें भागपनेका विरोध है । संख्यात रूपोंसे अपवर्तित प्रतरां-
गुलका जगप्रतरमें भाग देनेपर दोनों ही राशियां आती हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी और कर्मणकाययोगी
द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ ९१ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । अनन्त भी
तीन प्रकार है । उनमेंसे इस अनन्तमें ये जीवराशियां स्थित हैं, इसके ज्ञापनार्थ उत्तर
सूत्र कहते हैं—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण

॥ ९२ ॥

एदेण परिच्छ-जुत्ताणंताणं' जहण्णअणंताणंतस्स य पडिसेहो कदो, तेसु अणंताणं-
ताणमोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । संपहि दोसु अणंताणंतसु एकस्स पडिसेहड्ड-
मुत्तगसुत्तं भणदि—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ९३ ॥

एदेण उक्कस्साणंताणंतस्स पडिसेहो कदो, लोगवयणणहाणुववत्तीदो । सेसं सुगमं ।

वेउव्वियकायजोगी द्व्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ९४ ॥

सुगमं ।

देवाणं संखेज्जदिभागूणो ॥ ९५ ॥

देवेषु पंचमण-पंचवच्चि-वेउव्वियमिस्सकायजोगिरासीओ देवाणं संखेज्जदि-
भागमेत्ताओ देवरासीदो अवणिदे अवसेसं वेउव्वियकायजोगिपमाणं होदि ।

उपर्युक्त जीव कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते हैं ॥ ९२ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतानन्त, युक्तानन्त और जघन्य अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, उनमें अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है । अब दो अनन्तानन्तोंमेंसे एकके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त जीव क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं ॥ ९३ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, अन्यथा लोकनिर्देशकी उपपत्ति नहीं बनती । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वैक्रियिककाययोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ९४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिककाययोगी देवोंके संख्यातर्वे भागसे कम है ॥ ९५ ॥

देवोंमें पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, इन देवोंके संख्यातर्वे भागमात्र राशियोंको देवराशिमेंसे घटा देनेपर अवशेष वैक्रियिककाययोगियोंका प्रमाण होता है ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ९६ ॥

सुगमं ।

देवाणं संखेज्जदिभागो ॥ ९७ ॥

देवरासिं संखेज्जवाससहस्सुवकमणकालमंचिदसंखेज्जखंडे कदे एगखंडं वेउव्विय-
मिस्सरासिपमाणं होदि ।

आहारकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ९८ ॥

सुगमं ।

चदुवण्णं ॥ ९९ ॥

एदं पि सुगमं ।

आहारमिस्सकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १०० ॥

सुगमं ।

संखेज्जा ॥ १०१ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ९६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे देवोंके संख्यातत्रे भागमात्र हैं ॥ ९७ ॥

संख्यात वर्षसहस्रमें होनेवाले उपक्रमणकालोंमें संचित देवराशिके संख्यात
खण्ड करनेपर उनमेंसे एक खण्ड वैक्रियिकमिश्रकाययोगी राशिका प्रमाण होता है ।
(देखो जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, पृ. ४०० का विशेषार्थ) ।

आहारकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ९८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारककाययोगी द्रव्यप्रमाणसे चौवन हैं ॥ ९९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

आहारकमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १०० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारकमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे संख्यात हैं ॥ १०१ ॥

संखेज्जा त्ति वयणेण असंखेज्जाणंताणं पडिसेहो क्कदा । संखेज्जं जदि वि अणयपयारं तो वि चदुवण्णब्भंतरे चैव ते होंति, णो बहिद्धा, आहारमिस्सकालम्मि त्तिजोगावरुद्धपज्जत्ताहारसरीरकालादो संखेज्जगुणहीणम्मि संचिदाणं जीवाणं चदुवण्ण-संखाविरोहादो । आइरियपरंपरागदउव्वदेसेण पुण सत्तावीस जीवा होंति ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा द्व्यपमाणेण केवडिया ? ॥ १०२ ॥

सुगमं ।

देवीहि सादिरेयं ॥ १०३ ॥

देवरासिं तेत्तीसखंडाणि काऊणेगखंडमवणिदे देवीणं पमाणं होदि । पुणो तत्थ निरिक्ख-मणुस्साण इत्थिवेदरासिं पक्खित्ते सन्निवत्थिवेदरासी होदि त्ति देवीहि सादिरेय-मिदि वुत्तं ।

पुरिसवेदा द्व्यपमाणेण केवडिया ? ॥ १०४ ॥

सुगमं ।

‘संख्यात हैं’ इस वचनसे असंख्यात और अनन्तका प्रतिषेध किया है । यद्यपि संख्यात भी अनेक प्रकार है तथापि वे चौवनके भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं, क्योंकि तीन षोर्गोंसे अवरुद्ध पर्याप्त आहारक शरीरकालसे संख्यातगुणे हीन आहारमिश्रकालमें संचित जीवोंके चौवन संख्याका विरोध है । किन्तु आचार्यपरम्परागत उपदेशसे सत्ता-ईस जीव होते हैं । (देखो जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, सूत्र १२० की टीका) ।

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १०२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

स्त्रीवेदी द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा देवियोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १०३ ॥

देवराशिके तेत्तीस खण्ड करके उनमेंसे एक खण्डके कम कर देनेपर देवियोंका प्रमाण होता है । पुनः उसमें तिर्यंच व मनुष्य सम्बन्धी स्त्रीवेदराशिको जोड़ देनेपर सर्व स्त्रीवेदराशि होती है, इसीलिये ‘स्त्रीवेदी देवियोंसे कुछ अधिक हैं’ ऐसा कहा है ।

पुरुषवेदी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १०४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

देवेहि सादिरेयं ॥ १०५ ॥

देवरासिं तेत्तीसखंडाणि काद्रूण तत्थेगखंडं देवाणं पुरिमवेदपमाणं । पुणो तत्थ
तिरिक्ख-मणुस्सपुरिसवेदरासिभिह पक्खित्ते सव्वपुरिसवेदपमाणं होदि त्ति देवेहि सादि-
रेयपमाणं होदि त्ति वुत्तं ।

णवुंसयवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १०६ ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ १०७ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । तिबिहे अणंते दोण्हमणंताणं पडिसेहद्ध-
मुत्तरसुत्तं भणदि —

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण
॥ १०८ ॥

एदेण परित्त-जुत्ताणंताणं जहण्णअणंताणंतस्स य पडिसेहो कदो, एदेसु अणंताणं-

पुरुषवेदी द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १०५ ॥

देवराशिके तेत्तीस खण्ड करके उनमेंसे एक खण्ड देवोंमें पुरुषवेदियोंका प्रमाण
है। पुनः उसमें तिर्यंच व मनुष्य सम्बन्धी पुरुषवेदराशिको जोड़ देनेपर सर्व पुरुष-
वेदियोंका प्रमाण होता है, इसी कारण ' पुरुषवेदियोंका प्रमाण देवोंसे कुछ अधिक है '
ऐसा कहा है ।

नपुंसकवेदी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १०६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नपुंसकवेदी द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १०७ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है। अब तीन
प्रकारके अनन्तमेंसे दो अनन्तोंके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

नपुंसकवेदी कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत
नहीं होते हैं ॥ १०८ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतानन्त, युक्तानन्त और जघन्य अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया

ताणमोसपिणि-उस्मपिणीणमभावादो । दोसु अणंताणंतेसु एककस्सावहारणद्वुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ १०९ ॥

एदेण उक्कस्साणंताणंतस्स पडिसेहो कदो । कुदो ? लोमणिद्देमण्णहाणुववत्तीदो ।

अवगदवेदा द्व्यपमाणेण केवडिया ? ॥ ११० ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ १११ ॥

एदेण संखेज्जामंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । तिविहे अणंते कम्हि अवगदवेदाणं पमाणं होदि ? अणंताणंते । कुदो ? अदीदकालस्स उक्कस्सजुत्ताणंते जहण्णमणंताणंते च उल्लंघिय अजहण्णाणुक्कस्साणंताणंताम्मि अवट्टिदस्स असंखेज्जदिभागभूदअवगदवेदराशी अणंताणंते होदि त्ति अविस्सुद्धाइरियउवदेसादो । सेसं सुगमं ।

गया है, क्योंकि, इनमें अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है । शेष दो अनन्तानन्तोंमेंसे एकके अवधारणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

नपुंसकवेदी क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं ॥ १०९ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, अन्यथा लोकनिर्देशकी उपपत्ति नहीं बनती ।

अपगतवेदी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ११० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपगतवेदी द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १११ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है ।

शंका—तीन प्रकारके अनन्तमेंसे कौनसे अनन्तमें अपगतवेदियोंका प्रमाण है ?

समाधान—अपगतवेदियोंका प्रमाण अनन्तानन्त संख्यामें है, क्योंकि, उत्कृष्ट युक्तानन्त और जघन्य अनन्तानन्तको लांघकर अजघन्यानुत्कृष्ट अनन्तानन्तमें अवस्थित अतीत कालके असंख्यातवै भागभूत अपगतवेदराशी अनन्तानन्त है, ऐसा अविस्सुद्ध अर्थात् एक मनसे आचार्योंका उपदेश है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई
द्व्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ११२ ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ ११३ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । तिविहे अणंते एककस्सावहारणडु-
मुत्तरमुत्तं भणदि—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण
॥ ११४ ॥

एदेण परित्त-जुत्ताणंताणं जहण्णअणंताणंतस्स य पडिसेहो कदो, एदेसु अणंताणं-
तोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । दोसु अणंताणंतेसु एककस्सावहारणडुमुत्तरमुत्तं भणदि—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ११५ ॥

एदेण बुक्कस्सअणंताणंतस्स पडिसेहो कदो, लोगणिदेसण्णहाणुववत्तीदो ।
सेसं सुगमं ।

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभ-
कषायी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ११२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त चारों कषायवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ ११३ ॥

इस सूत्र द्वारा संख्यात व असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । अब तीन
प्रकारके अनन्तमेंसे एकके अवधारणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त चारों कषायवाले जीव कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी
और उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते हैं ॥ ११४ ॥

इस सूत्र द्वारा परीतानन्त, युक्तानन्त, और जघन्य अनन्तानन्तका प्रतिषेध
किया गया है, क्योंकि, इनमें अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है । अब
दो अनन्तानन्तोंमेंसे एकके अवधारणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उक्त चारों कषायवाले जीव क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण
हैं ॥ ११५ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, अन्यथा
लोकनिर्देशकी उपपत्ति नहीं बनती । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

अकसाई द्रव्यप्रमाणेण केवडिया ? ॥ ११६ ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ ११७ ॥

एदेण संखेज्जामंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । णवविधेषु अणंतेसु कम्मिह अकसाइ-
रासी होदि ? अजहण्णाणुक्कस्सअणंताणंते । कुदो ? जम्मिह जम्मिह अणंताणंतयं माग्गिज्जदि
तम्मिह तम्मिह अजहण्णाणुक्कस्समणंताणंतयं घेत्तव्वं इदि परियम्मवयणादो । जदि अणंता-
णंतयस्स गहणं तो 'अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि णावहिरंति कालेणेत्ति' क्किण्ण
वुच्चदे ? ण, अदीदकालादो अमंखेज्जगुणहीणाणभणवहरणविरोहादो । अणंताणंताओ
ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ त्ति क्किण्ण वुच्चदे ? ण, ओसप्पिणि-उस्सप्पिणिप्रमाणेण
कीरमाणे अणंताणंताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ होंति त्ति जुत्तिमिद्वत्तादो ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी णवुंसयभंगो ॥ ११८ ॥

अकपायी जीव द्रव्यप्रमाणमे कितने हैं ? ॥ ११६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकपायी जीव द्रव्यप्रमाणमे अनन्त हैं ॥ ११७ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है ।

शंका — नौ प्रकारके अनन्तोंमें किस अनन्तमें अकपायी जीवराशि है ?

समाधान — अजघन्यानुत्कृष्ट अनन्तानन्तमें अकपायी जीवराशि है, क्योंकि, 'जहां
जहां अनन्तानन्तकी खोज करना हो वहां वहां अजघन्यानुत्कृष्ट अनन्तानन्तको ग्रहण
करना चाहिये' ऐसा परिकर्मका वचन है ।

शंका — यदि अनन्तानन्तका ग्रहण करना है तो 'कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त
अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे नहीं अपहृत होते हैं' ऐसा क्यों नहीं कहते ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, अतीत कालसे असंख्यातगुणे हीन अकपायी जीवोंके
अपहृत न होनेका विरोध है ।

शंका — तो फिर अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाण हैं, ऐसा क्यों
नहीं कहते ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, उनके अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाणसे करनेपर
अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियां होती हैं, यह युक्तिसे ही सिद्ध है ।

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानियोंका प्रमाण नपुंसक-
वेदियोंके समान है ॥ ११८ ॥

जधा णुंसयवेदस्स पमाणपरूवणा कदा तथा कादव्वा, विसेसाभावादो ।

विभंगणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ११९ ॥

सुगमं ।

देवेहि सादिरेयं ॥ १२० ॥

बेळप्पणंगुलसदवग्गेण सादिरेगेण जगपदरम्मि भागे हिदे देवविभंगणाणिपमाणं होदि । पुणो एत्थ तिगदिविभंगणाणिपमाणे पक्खित्ते सव्वविभंगणाणिपमाणं होदि त्ति देवेहि सादिरेयमिदि पमाणपरूवणं कदं । सेसं सुगमं ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ?
॥ १२१ ॥

सुगमं ।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १२२ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो, परित्त-जुत्तासंखेज्जाणमुक्कस्स असंखेज्जा-

जिस प्रकार नपुंसकवेदियोंकी प्रमाणप्ररूपणा की है उसी प्रकार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानियोंके प्रमाणकी प्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

विभंगज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ११९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

विभंगज्ञानी द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १२० ॥

साधिक दौसौ छप्पन अंगुलोंके वर्गका जगप्रतरमें भाग देनेपर देव विभंग-ज्ञानियोंका प्रमाण होता है । पुनः इसमें तीन गतियोंके विभंगज्ञानियोंका प्रमाण जोड़नेपर समस्त विभंगज्ञानियोंका प्रमाण होता है, इसी कारण 'विभंगज्ञानी देवोंसे कुछ अधिक हैं' इस प्रकार उनकी प्रमाणप्ररूपणा की गयी है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अबधिज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त तीन ज्ञानवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे पह्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ १२२ ॥

इस सूत्रसे संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है, साथ ही परीतासं-

संखेज्जस्स वि । जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जपडिसेहड्डमुत्तरसुत्तं भणदि—

एदेहि पल्लिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ १२३ ॥

एत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागो अंतोमुहुत्तमिदि वेत्तव्वो । कुदो ?
आइरियपरंपरागदुवदेसादो ।

मणपज्जवणाणी दव्वप्रमाणेण केवडिया ? ॥ १२४ ॥

सुगमं ।

संखेज्जा ॥ १२५ ॥

एदेण असंखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो । सेसं सुगमं ।

केवलणाणी दव्वप्रमाणेण केवडिया ? ॥ १२६ ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ १२७ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । सेसं सुगमं ।

ख्यात, युक्तासंख्यात और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका भी प्रतिषेध किया गया है ।
जघन्य असंख्यातासंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उक्त तीन ज्ञानवाले जीवों द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पत्योपम अपहृत होता है ॥ १२३ ॥

यहां आवलीका असंख्यातवां भाग अन्तर्मुहूर्त है, इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये,
क्योंकि ऐसा आचार्यपरम्परागत उपदेश है ।

मनःपर्ययज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १२४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मनःपर्ययज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे संख्यात हैं ॥ १२५ ॥

इस सूत्रके द्वारा असंख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है । शेष सूत्रार्थ
सुगम है ।

केवलज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १२६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

केवलज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १२७ ॥

इस सूत्र द्वारा संख्यात और असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । शेष सूत्रार्थ
सुगम है ।

संजमाणुवादेण संजदा सामाह्यच्छेदोवद्वावणसुद्धिसंजदा दव्व-
पमाणेण केवडिया ? ॥ १२८ ॥

सुगमं ।

कोडिपुधत्तं ॥ १२९ ॥

एदं पि सुगमं ।

परिहारसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १३० ॥

सुगमं ।

सहस्सपुधत्तं ॥ १३१ ॥

एदस्स परूवणाए जीवद्वाणभंगो ।

सुहुमसांपराह्यसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १३२ ॥

सुगमं ।

सदपुधत्तं ॥ १३३ ॥

संयममार्गणाके अनुसार संयत और सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत द्रव्य-
प्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १२८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयत और सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे कोटिपृथक्त्वप्रमाण
हैं ॥ १२९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे सहस्रपृथक्त्वप्रमाण हैं ॥ १३१ ॥

इसकी प्ररूपणा जीवस्थानके समान है । (देखो जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम,
सूत्र १५० की टीका) ।

सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे शतपृथक्त्वप्रमाण हैं ॥ १३३ ॥

एदं पि सुगमं ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा द्वयप्रमाणेण केवडिया ? ॥ १३४ ॥

सुगमं ।

सदसहस्सपुधत्तं ॥ १३५ ॥

एदस्स परूवणाए जीवट्ठाणभंगो ।

संजदासंजदा द्वयप्रमाणेण केवडिया ? ॥ १३६ ॥

सुगमं ।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३७ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणमुक्कस्स असंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो, एदेसिं पडिवक्खसंखाणिदेसादो । जहण्ण असंखेज्जासंखेज्जाओ हेट्ठिमसंखेज्जाणं पडिसेहट्ठ-
मुत्तरसुत्तं भणदि—

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ १३८ ॥

एत्थ अंतोमुहुत्तमिदि बुत्ते^१ असंखेज्जावलियाओ त्ति घेत्तव्वं । कुदो ?

यह सूत्र भी सुगम है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे शतसहस्रपृथक्त्वप्रमाण हैं ॥ १३५ ॥

इसकी प्ररूपणा जीवस्थानके समान है । (देखो जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, पृ. ९७, ४५०) ।

संयतासंयत द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतासंयत द्रव्यप्रमाणसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं ॥ १३७ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात, अनन्त और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, यहां इनके प्रतिपक्षभूत संख्याका निर्देश है । जघन्य असंख्याता-संख्यातसे नीचेके असंख्यातोंके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

संयतासंयतों द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ १३८ ॥

यहां 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा कहनेपर 'असंख्यात आवलियां' ऐसा ग्रहण करना

१ प्रतिपु 'बुत्तं' इति पाठः ।

वइपुल्लवाइयस्स अंतोमुहुत्तस्स गहणादो । एदेण पलिदोवमे भागे हिदे संजदासंजद-
दव्वमागच्छदि । सेसं सुगमं ।

असंजदा मदिअण्णाणिभंगो ॥ १३९ ॥

पज्जवट्टियणए अवलंबिज्जमाणे जदि वि असंजदाणं तेहिंतो भेदो अत्थि तो वि
असंजदा मदिअण्णाणिभंगो त्ति वुच्चदे, दव्वट्टियणए अवलंबिज्जमाणे भेदाभावादो ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥१४०॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ १४१ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिमेहो कदो, तेसिं विरुज्झणिइसा । असंखेज्जं पि
तिविहं । तत्थ अणहिययअसंखेज्जपडिमेहडुमुत्तरसुत्तमागदं—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसापिणि-उस्सपिणीहि अवहिरंति
कालेण ॥ १४२ ॥

चाहिये, क्योंकि, वैपुल्यवाची अन्तर्मुहूर्तका यहां ग्रहण है । इस असंख्यात आवलीरूप
अन्तर्मुहूर्तका पख्योपममें भाग देनेपर संयतासंयत द्रव्य आता है । (देखो जीवस्थान-
द्रव्यप्रमाणानुगम, पृ. ६९, ८७-८८ तथा स्पर्शनानुगम, पृ. १५७) । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

असंयतोंका प्रमाण मतिअज्ञानियोंके समान है ॥ १३९ ॥

पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करनेपर यद्यपि असंयतोंके मतिअज्ञानियोंसे भेद
है, तथापि 'असंयतोंका प्रमाण मतिअज्ञानियोंके समान है' ऐसा कहा है, क्योंकि,
द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करनेपर दोनोंमें कोई भेद नहीं है ।

दर्शनमार्गणाके अनुसार चक्षुदर्शनी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १४० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चक्षुदर्शनी द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ १४१ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात और अनन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, यहां
उनके विरुद्ध संख्याका निर्देश है । असंख्यात भी तीन प्रकार है । उनमेंसे अनधिकृत
असंख्यातोंके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र प्राप्त होता है—

चक्षुदर्शनी कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे
अपहृत होते हैं ॥ १४२ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णासंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो,
एत्थ असंखेज्जासंखेज्जोमपिणि-उस्सपिणीणमभावादो । इच्छिदअसंखेज्जासंखेज्जस्स
जाणावणद्धमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण चक्खुदंसणीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदि-
भागवग्गपडिभाएण ॥ १४३ ॥

सूचिअंगुलस्स संखेज्जदिभागं वग्गिय एदेण जगपदरम्मि भागे हिदे चक्खु-
दंसणिरासी होदि । एत्थ चउरिंदियादिअपज्जत्तरासी चक्खुदंसणकखओवसमलक्खिओ
जदि घेप्पदि तो जगपदरस्स पदंगुलस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो होदि । णवरि सो
एत्थ ण गहिदो, पज्जत्तरासिम्हि वा चक्खुदंसणुवजोगाभावादो, द्व्वचक्खुदंसणाभावादो
वा । एदेण उक्कस्सासंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो ।

अचक्खुदंसणी असंजदभंगो ॥ १४४ ॥

कुदो ? द्व्वद्वियणयावलंबणे भेदाभावादो । सेमं सुगमं ।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ १४५ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जग्रन्य असंख्यातासंख्यातका
प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, इनमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका
अभाव है । इच्छित असंख्यातासंख्यातके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा चक्षुदर्शनियों द्वारा सूत्र्यंगुलके संख्यातवै भागके वर्गरूप
प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ १४३ ॥

सूत्र्यंगुलके संख्यातवै भागका वर्ग करके उसका जगप्रतरमें भाग देनेपर
चक्षुदर्शनीराशि होती है । यहां यदि चक्षुदर्शनावरणके क्षयोपशमसे उपलक्षित
चतुरिन्द्रियादि अपर्याप्त राशिका ग्रहण किया जाय तो प्रतरांगुलका असंख्यातवां भाग
जगप्रतरका भागहार होता है । परन्तु उसे यहां नहीं ग्रहण किया, क्योंकि,
अपर्याप्तराशिमें पर्याप्तराशिके समान चक्षुदर्शनोपयोगका अभाव है, अथवा द्रव्यचक्षु-
दर्शनका अभाव है । (देखो जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, सूत्र १५७ की टीका) । इस
सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है ।

अचक्षुदर्शनियोंका प्रमाण असंयतोंके समान है ॥ १४४ ॥

क्योंकि, द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर दोनोंमें कोई भेद नहीं है । शेष
सूत्रार्थ सुगम है ।

अवधिदर्शनियोंका प्रमाण अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ १४५ ॥

सुगमं ।

केवलदंसणी केवलाणिभंगो ॥ १४६ ॥

एदं पि सुगमं ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिया असं-
जदभंगो ॥ १४७ ॥

कुदो ? दव्वट्टियणयावलंबणादो । पज्जवट्टियणए पुण अवलंबिज्जमाणे अत्थि
विसेसो, सो जाणिय वत्तव्वो ।

तेउलेस्सिया दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १४८ ॥

सुगमं ।

जोदिसियदेवेहि सादिरेयं ॥ १४९ ॥

बेळप्पणंगुलसदवग्गेण सादिरेगेण जगपदरम्मि भागे हिदे जोदिसियदेवा तेउ-

यह सूत्र सुगम है ।

केवलदर्शनियोंका प्रमाण केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १४६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्या-
वाले जीवोंका प्रमाण असंयतोंके समान है ॥ १४७ ॥

क्योंकि, यहां द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन किया गया है । परन्तु पर्यायार्थिक
नयका अवलम्बन करनेपर विशेषता है, उसे जानकर कहना चाहिये ।

तेजोलेश्यावाले द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तेजोलेश्यावाले द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा ज्योतिषी देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १४९ ॥

साधिक दो सौ छप्पन अंगुलोंके वर्गका जगप्रतरमें भाग देनेपर जो लब्ध हो

१ कृष्ण-नील-कापोतलेश्या एकसो द्रव्यप्रमाणेनानन्तानन्ताः, अनन्तानन्ताभिन् सपिण्यवसपिणीगिर्वाप-
हियन्ते कालेन, क्षेत्रेणानन्तानन्तलोकाः । त. रा. ४, २२, १०.

२ तेजोलेश्या द्रव्यप्रमाणेन ज्योतिर्देवाः साधिकाः । त. रा. ४, २२, १०.

लेस्सिया होंति । पुणो तत्थ भवणवासिय-वाणेत्रतर-तिरिक्ख-मणुस्सतेउलेस्सियरासिम्हि पक्खित्ते सव्वा तेउलेस्सियरामी होदि । तेण जोदिसियदेवेहि सादिरियमिदि वुत्तं । मेसं सुगमं ।

पम्मलेस्सिया द्ववपमाणेण केवडिया ? ॥ १५० ॥

सुगमं ।

सण्णिपान्चिदियतिरिक्खजोणिणीणं संखेज्जदिभागो ॥ १५१ ॥

संखेज्जपदरंगुलेहि तप्पाओगेहि जगपदरम्मि भागे हिदे पम्मलेस्सियरामी होदि । सेसं सुगमं ।

सुक्कलेस्सिया द्ववपमाणेण केवडिया ? ॥ १५२ ॥

सुगमं ।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५३ ॥

उत्तने तेजोलेश्यावाले ज्योतिषी देव हैं । पुनः उसमें भवनवासी, वानव्यन्तर, तिर्यञ्च और मनुष्य तेजोलेश्यावालोंकी राशिको जोड़नेपर सर्व तेजोलेश्यावालोंकी राशि होती है । इसी कारण 'तेजोलेश्यावालोंका प्रमाण ज्योतिषी देवोंसे कुछ अधिक है' ऐसा कहा है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

पद्मलेश्यावाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १५० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिमतियोंके संख्यातर्वे भागप्रमाण हैं ॥ १५१ ॥

तत्प्रायोग्य संख्यान प्रतरंगुलोंका जगप्रतरमें भाग देनेपर पद्मलेश्यावालोंका प्रमाण होता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

शुक्लेश्यावाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ॥ १५२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्लेश्यावाले जीव द्रव्यप्रमाणसे पत्योपमके असंख्यातर्वे भागप्रमाण हैं ॥ १५३ ॥

१ पद्मलेश्या द्रव्यप्रमाणेण संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यग्योनीनां संखेयभागाः । त. रा. ४, २२, १०.

२ शुक्लेश्या पत्योपमस्यासंखेयभागाः । त. ग. ४, २२, १०.

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो । कुदो ? एदेसिं विरुद्धसंखाणिहेसादो ।
अणिच्छिदअसंखेज्जपडिसेहदुत्तरसुत्तं भणदि —

एदेहि पलिदोवमवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ १५४ ॥

एत्थ अवहारकालो असंखेज्जावलियमेत्तो । एदेण पलिदोवमे भागे हिदे सुक्क-
लेस्सियरासी होदि । सेसं सुगमं ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १५५ ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ १५६ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो, सव्वस्स वयणस्स सपडिक्खुक्खणणेण
अप्पणो अत्थस्स पदुप्पायणादो । अणिच्छिदाणंतेसु भवियरासिस्स पडिसेहदुत्तरसुत्तं
भणदि—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण

॥ १५७ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात और अनन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, यहां
इनके विरुद्ध संख्याका निर्देश है । अनिच्छित असंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र
कहते हैं—

शुक्कलेश्यावाले जीवों द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ १५४ ॥

यहां अवहारकाल असंख्यात आवलीमात्र है । इसका पल्योपममें भाग देनेपर
शुक्कलेश्यावाले जीवोंका प्रमाण होता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १५५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यसिद्धिक जीव द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १५६ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात और असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, सभी
षड्वन अपने प्रतिपक्षका निराकरण कर स्वकीय अभीष्ट अर्थके प्रतिपादक होते हैं ।
अनिच्छित अनन्तोंमें भव्यराशिके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

भव्यसिद्धिक कालकी अपेक्षा अनन्तान्तर अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत
नहीं होते ॥ १५७ ॥

एदेण परित्त-जुत्ताणंताणं जहणअणंताणंतस्स य पडिसेहो कदो, एदेसु अणंताणं-
तोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । अणवहरणं पि अदीदकालग्गहणादो । सेसं सुगमं ।
अणिच्छिदाणंताणंतपडिसेहहट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ १५८ ॥

एदेण उक्कस्सअणंताणंतस्स पडिसेहो कदो, अणंताणंताणि सव्वपज्जयपढम-
वग्गमूलाणि त्ति अभणिय अणंताणंतलोगवयणादो । सेसं सुगमं ।

अभवसिद्धिया द्व्यपमाणेण केवडिया ? ॥ १५९ ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ १६० ॥

जहणजुत्ताणंतमिदि घेत्तव्वं । कुदो ? आहरियपरंपरागयउवदेसादो । कधं एदस्स

इस सूत्रके द्वारा परीतानन्त, युक्तानन्त और जघन्य अनन्तानन्तका प्रतिषेध
किया गया है, क्योंकि, इनमें अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है। अपहृत
न होनेका कारण भी यह है कि यहां अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे केवल
अतीत कालका ग्रहण किया गया है। शेष सूत्रार्थ सुगम है। अनिच्छित अनन्तानन्तके
प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

भव्यसिद्धिक जीव क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं ॥ १५८ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि,
'सर्व पर्यायोंके प्रथम वर्गमूलप्रमाण अनन्तानन्त' ऐसा न कहकर अनन्तानन्त लोकोंका
कथन किया गया है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

अभव्यसिद्धिक द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं? ॥ १५९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

अभव्यसिद्धिक द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १६० ॥

यहां अनन्तसे 'युक्तानन्त' ऐसा ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, इस प्रकार
आचार्यपरम्परागत उपदेश है।

शंका—व्ययके न होनेसे व्युच्छित्तिको प्राप्त न होनेवाली अभव्यराशिके

अव्वए^१ संते अव्वोच्छिज्जमाणस्स^२ अणंतववएमो^३ ण, अणंतस्स केवलणाणस्स चैव विसए
अव्वट्ठिदानं संखाणमुवयारेण अणंतत्तविरोहाभावादो ।

सम्मत्ताणुवादेण . सम्मादिट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्मादिट्ठी
उवसमसम्मादिट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण
केवडिया ? ॥ १६१ ॥

सुगमं ।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६२ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो, उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स वि ।
अणिच्छिदअसंखेज्जपडिसेहट्टमुत्तरसुत्तं भणदि —

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ १६३ ॥

एत्थ सम्मादिट्ठी-वेदगसम्मादिट्ठीणमवहारकालो आवलियाए असंखेज्जदिभागो

‘अनन्त’ यह संज्ञा कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अनन्तरूप केवलज्ञानके ही विषयमें अवस्थित
संख्याओंके उपचारसे अनन्तपना माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि,
उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि द्रव्यप्रमाणसे कितने
हैं ? ॥ १६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ १६२ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात और अनन्तका तथा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका
भी प्रतिषेध किया गया है । अनिच्छित् असंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उक्त जीवों द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ १६३ ॥

यहां सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टियोंका अवहारकाल आवलीके असंख्यातवें

१ प्रतिषु ‘ववए’ इति पाठः ।

२ अप्रतौ ‘वोच्छिज्जमाणस्स माणस्स’, आप्रतौ ‘वोच्छिज्जमाणस्स’, काप्रतौ ‘वोच्छिज्जस्स माणस्स’
मप्रतौ ‘वोच्छिज्जमाणस्स माणस्स’ इति पाठः ।

त्ति घेत्तव्वो । कुदो ? सुत्ताविरुद्धगुरूवदेसादो । खइयसम्माइट्टीणं पुण संखेज्जावलियाओ, अवसेमाणमसंखेज्जावलियाओ त्ति घेत्तव्वं । सेसं सुगमं ।

मिच्छाइट्टी असंजदभंगो ॥ १६४ ॥

कुदो ? द्व्यद्वियणयावलंबणे दोण्हं रासीणं भेदानुवलंभादो ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी द्व्यपमाणेण केवडिया ? ॥ १६५ ॥

सुगमं ।

देवेहि सादिरेयं ॥ १६६ ॥

कुदो ? देवा सव्वे सण्णियो, तत्थ णेरइय-मणुस्सरासिमसंखेज्जेसेडिमेत्तं पुणो जगपदरस्स असंखेज्जेदिभागमेत्ततिरिक्खसण्णिरासिं च पक्खित्ते सयलसण्णीणं पमाणु-प्पत्तीदो । सेसं सुगमं ।

असण्णी असंजदभंगो ॥ १६७ ॥

एदं पि सुगमं ।

भागमात्र ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, ऐसा सूत्रसे अविरुद्ध गुरुपदेश है । क्षायिक-सम्यग्दृष्टियोंका अवहारकाल संख्यात आवली तथा शेष उपशमसम्यग्दृष्टि आदि तीनका अवहारकाल असंख्यात आवलीप्रमाण ग्रहण करना चाहिये । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

मिथ्यादृष्टियोंका द्रव्यप्रमाण असंयत जीवोंके समान है ॥ १६४ ॥

क्योंकि, द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर मिथ्यादृष्टि और असंयत इन दोनों राशियोंमें कोई भेद नहीं है ।

संज्ञिमार्गानुसार संज्ञी जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १६६ ॥

क्योंकि, देव सब संज्ञी हैं; उनमें असंख्यात श्रेणिमात्र नारक और मनुष्य राशिको तथा जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण तिर्यच संज्ञिराशिको मिलानेपर समस्त संज्ञियोंका प्रमाण उत्पन्न होता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

असंज्ञी जीवोंका प्रमाण असंयतोंके समान है ॥ १६७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

आहाराणुवादेण आहारा अणाहारा दव्वपमाणेण केवडिया ?

॥ १६८ ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ १६९ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । तिविहेसु अणंतेसु अणिच्छिदाणंत-
पडिसेहद्वमुत्तरसुत्तं भणदि—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण

॥ १७० ॥

एदेण परित्त-जुत्ताणंताणं जहण्णअणंताणंतस्स य पडिसेहो कदो, एदेसु अणंताणं-
तोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । उक्कस्सअणंताणंतस्स पडिसेहद्वमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ १७१ ॥

एदं पि सुगमं ।

एवं दव्वरमाणाणुगमो त्ति समत्तमणिआंगदारं ।

आहारमार्गणाके अनुसार आहारक और अनाहारक जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक और अनाहारक जीव द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १६९ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात और असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । तीन प्रकारके अनन्तोंमें अनिच्छित अनन्तोंके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

आहारक और अनाहारक जीव कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-
उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते हैं ॥ १७० ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतानन्त, युक्तानन्त और जघन्य अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, इनमें अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है । उत्कृष्ट अनन्तानन्तके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

आहारक और अनाहारक जीव क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं ॥ १७१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार द्रव्यप्रमाणानुगम अनियोगद्वारा समाप्त हुआ ।

खेत्ताणुगमौ

खेत्ताणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया सत्थाणेण
समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १ ॥

तत्थ सत्थाणं दुविहं सत्थाणसत्थाणं विहारवदिसत्थाणमिदि । वेयण-कसाय-
वेउच्चिय-मारणंतियभेएण समुग्घादो चउच्चिहो । एत्थ णेरइएसु आहारसमुग्घादो णत्थि,
महिद्विपत्तार्णमिसीणमभावादो । केवलिसमुग्घादो वि णत्थि, तत्थ सम्मत्तं मोत्तूण वयगंधस्स
वि अभावादो । तेजइयममुग्घादो वि तत्थ णत्थि, विणा महव्वएहि तदभावादो । उववादो
एगविहो । तत्थ वेदणावमेण ससरीरादो बाहिमेगपदेसमादिं कादूण जावुक्कस्सेण ससरीर-
तिगुण विपुंजणं वेयणममुग्घादो णाम । कसायतिव्वदाए ससरीरादो जीवपदेसां
तिगुणविपुंजणं कसायसमुग्घादो णाम । विविहिद्विस्स^१ माहप्पेण संखेज्जासंखेज्जजोयणाणि
सरीरेण ओट्टहिय अट्टाणं वेउच्चियसमुग्घादो णाम । अप्पप्पणो अच्चिदपदेसादो

क्षेत्रानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीव स्वस्थान, समुद्-
घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १ ॥

इनमें स्वस्थान पद स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानके भेदसे दो प्रकार
हैं । वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणंतिकके भेदसे समुद्घात चार प्रकार है । यहाँ
नारकियोंमें आहारकसमुद्घात नहीं है, क्योंकि, महर्षिप्रात ऋषियोंका वहाँ अभा-
व है । केवलिसमुद्घात भी नहीं है, क्योंकि, वहाँ सम्यक्त्वको छोड़ ब्रतका गन्ध भी नहीं
है । तैजससमुद्घात भी वहाँ नहीं है, क्योंकि, विना महाव्रतोंके तैजससमुद्घात
नहीं होता । उपपाद एक प्रकार है । इनमें वेदनाके वशसे अपने शरीरसे बाहर एक
प्रदेशको आदि करके उत्कर्षतः अपने शरीरसे तिगुणे आत्मप्रदेशोंके फैलनेका नाम वेदना-
समुद्घात है । कषायकी तीव्रतासे जीवप्रदेशोंका अपने शरीरसे तिगुणे प्रमाण फैलनेको
कषायसमुद्घात कहते हैं । विविध ऋद्रियोंके माहात्म्यसे संख्यात व असंख्यात योजनोंको
शरीरसे व्याप्त करके जीवप्रदेशोंके अवस्थानको वैक्रियिकसमुद्घात कहते हैं । आयामकी

१ प्रतिपु ' महिद्विपत्ताण- ' इति पाठः ।

२ आ-काप्रलोः ' तेजइयसमुग्घादे ' इति पाठः ।

३ अप्रती ' तिगुणाविपुंजणं ', आ काप्रलोः ' तिगुणविपुंजण- ' इति पाठः ।

४ अ-काप्रलोः ' विविहिद्विस्स ' इति पाठः ।

जाव उप्पज्जमाणखेत्तं ति आयामेण एगपदेसमादिं कादूण जावुक्कस्सेण सरीर-
तिगुणवाहल्येण कंडेक्कखंभट्टियत्तोरण-हल-गोमुत्तायारेण अंतोमुहुत्तावट्टाणं मारणंतिय-
समुग्घादो णाम । उववादो दुविहो— उजुगादिपुव्वओ विग्गहगदिपुव्वओ चेदि । तत्थ
एक्केक्कओ दुविहो— मारणंतियसमुग्घादपुव्वओ तच्चिवरीदओ चेदि । तेजासरीरं दुविहं
पसत्थमप्पसत्थं चेदि । अणुकंपादो दक्खिणंमविणिग्गयं डमर-मारीदिपसमक्खमं
दोसयरहिदं' सेदवणं णव-वारहंजोयणरुंदायामं पसत्थं णाम, तच्चिवरीदमियरं । आहार-
समुग्घादो णाम हत्थपमाणेण सव्वंगसुंदरेण समचउरससंठाणेण हंसधवलेण रस-रुधिर-
मांस-मेदट्टि-मज्ज-सुकसत्तधाउव्वज्जिएण विसग्गि-सत्थादिसयलंबाहामुक्केण वज्ज-सिला-
थंभ-जलपव्वयगमणदच्छेण सीसादो उग्गएण देहेण तित्थयरपादमूलगमणं । दंड-कवाड-
पदर-लोगपूरणाणि केवलिसमुग्घादो णाम । अप्पणो उप्पणगामार्इणं सीमाए अंतो
परिभमणं सत्थाणसत्थाणं णाम । तत्तो बाहिरपदेसे हिंडं विहारवदिसत्थाणं णाम ।
तत्थ 'णेरइया अप्पणो पदेहि केवडिखेत्ते होंति' ति आसंकासुत्तं । एवमासंकिय उत्तर-

अपेक्षा अपने अपने अधिष्ठित प्रदेशसे लेकर उत्पन्न होनेके क्षेत्र तक, तथा बाहल्यसे एक
प्रदेशको आदि करके उत्कर्षतः शरीरसे तिगुणे प्रमाण जीवप्रदेशोंके काण्ड, एक खम्भ-
स्थित तोरण, हल व गोमूत्रके आकारसे अन्तर्मुहूर्त तक रहनेको मारणान्तिकसमुद्घात
कहते हैं । (देखो पुस्तक १, पृ. २९९) । उपपाद दो प्रकार है— ऋजुगतिपूर्वक और
विग्रहगतिपूर्वक । इनमें प्रत्येक मारणांतिकसमुद्घातपूर्वक और तद्विपरीतके भेदसे दो
प्रकार है । तैजसशरीर प्रशस्त और अप्रशस्तके भेदसे दो प्रकार है । उनमें अनुकम्पासे
प्रेरित होकर दाहिने कंधेसे निकले हुए, राष्ट्रविप्लव और मारी आदि रोगविशेषके शान्त
करनेमें समर्थ, दोष रहित, श्वेतवर्ण, तथा नौ योजन विस्तृत एवं बारह योजन दीर्घ
शरीरको प्रशस्त, और इससे विपरीतको अप्रशस्त तैजसशरीर कहते हैं । हस्तप्रमाण,
सर्वाङ्गसुन्दर, समचतुरस्रसंस्थानसे युक्त, हंसके समान धवल; रस, रुधिर, मांस, मेदा,
अस्थि, मज्जा और शुक्र, इन सात धातुओंसे रहित; विष, अग्नि एवं शस्त्रादि समस्त
बाधाओंसे मुक्त; वज्र, शिला, स्तम्भ, जल व पर्वतमेंसे गमन करनेमें दक्ष; तथा मस्तकसे
उत्पन्न हुए शरीरसे तीर्थकरके पादमूलमें जानेका नाम आहारकसमुद्घात है । दण्ड,
कपाट, प्रतर और लोकपूरणरूप जीवप्रदेशोंकी अवस्थाको केवलिसमुद्घात कहते हैं ।
अपने अपने उत्पन्न होनेके ग्रामादिकोंकी सीमाके भीतर परिभ्रमण करनेको स्वस्थान-
स्वस्थान और इससे बाह्य प्रदेशमें घूमनेको विहारवत्स्वस्थान कहते हैं । उनमें ' नारकी
जीव अपने पदोंसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ' यह आशंकासूत्र है । इस प्रकार शंका करके

१ प्रतिपु ' दमर-मारीदिपसमक्खमा दू दोसयरहिदं ', मप्रती ' दमरमारीदिदोसक्खमा दोसयरहिदं '
इति पाठः ।

२ प्रतिपु ' णवारह ' इति पाठः ।

३ प्रतिपु ' सथल- ' इति पाठः ।

४ प्रतिपु ' पच्चय- ' इति पाठः ।

सुत्तं भणदि—

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २ ॥

एत्थ लोगो पंचविहो— उड्डुलोगो अधोलोगो तिरियलोगो मणुसलोगो सामण-
लोगो चेदि । एदेसिं पंचण्हं पि लोगाणं लोगग्गहणेण गहणं कादव्वं । कुदो ? देसा-
मासियत्तादो । णेरइया सव्वपदेहि चटुण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागे होंति, माणुसलोगादो
असंखेज्जगुणे । तं जहा— सत्थाणसत्थाणरासी मूलरासिस्स संखेज्जा भागा, विहारवदिस्त्थाण-
वेयण-कमाय-वेउव्वियसमुग्घादरासीओ मूलरासिस्स संखेज्जदिभागो । एदमत्थपदं
सव्वत्थ वत्तव्वं । पुणो सत्थाणसत्थाणादिणेरइयरासीओ ठविय अंगुलस्स संखेज्जदिभाग-
मेत्तओगाहणाहि गुणिय तेरामियकमेण पंचहि लोमेहि ओवट्टिदे चटुण्णं लोगाणमसंखे-
ज्जदिभागो, माणुसलोगादो असंखेज्जगुणमागच्छदि । णवरि वेयण-कमाय-वेउव्विय-
समुग्घादेसु ओगाहणा णवगुणा कायव्वा । मारणतियखेत्ते आणिज्जमाणे विदियपुढवि-
दव्वादो आणेदव्वं, तत्थ रज्जुमेत्तायामुवलंभादो । पढमपुढविमारणतियखेत्तं घेत्तूण
ओवट्टणा किण्ण कीरदे, असंखेज्जगुणदव्वदंसणादो, आवलियाए असंखेज्जदिभाग-

उत्तर सूत्र कहते हैं—

नारकी जीव उक्त तीन पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २ ॥

यहां लोक पांच प्रकारका है— ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक, मनुष्यलोक
और सामान्यलोक । यहां लोकके ग्रहणसे इन पांचों ही लोकोंका ग्रहण करना चाहिये
क्योंकि, यह सूत्र देशामर्शक है । नारकी जीव सर्व पदोंसे चार लोकोंके असंख्यातवें
भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थान-
स्वस्थानराशि मूलराशिके संख्यात बहुभाग तथा विहारवत्स्वस्थानराशि, वेदनासमुद्-
घातराशि, कषायसमुद्घातराशि एवं वैक्रियिकसमुद्घातराशि, ये राशियां मूलराशिके
संख्यातवें भागप्रमाण होती हैं । यह अर्थपद सर्वत्र कहना चाहिये । पुनः स्वस्थान-
स्वस्थानादि नारकराशियोंको स्थापित कर अंगुलके संख्यातवें भागमात्र अवगाहनाओंसे
गुणित कर त्रैराशिकक्रमसे पांच लोकोंसे (पृथक् पृथक्) अपवर्तित करनेपर चार
लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र लब्ध होता है ।
विशेषता यह है कि वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातमें
अवगाहना नौगुणी करना चाहिये । (जीवस्थानकी क्षेत्रप्ररूपणामें वैक्रियिकसमुद्घातके
लिये अवगाहना नौगुणी नहीं किन्तु संख्यातगुणी अलगसे कही गई है । देखो पु. ४,
पृ. ६३) । मारणांतिक क्षेत्रके निकालते समय उसे द्वितीय पृथिवीके द्रव्यसे निकालना
चाहिये, क्योंकि, वहां राजुमात्र आयामकी उपलब्धि है ।

शंका—प्रथम पृथिवीके मारणांतिकक्षेत्रको ग्रहण कर अपवर्तना क्यों नहीं की
जाती, क्योंकि, वहां असंख्यातगुणा द्रव्य देखा जाता है, तथा आवलीके असंख्यातवें

मेचुवकमणकालुवलंभादो च ? ण, तत्थ संखेज्जजोयणमेत्तमारणंतियखेत्तायाम-
दंसणादो । पढमपुढवीए वि विग्गहगईए कथं मारणंतियजीवाणमसंखेज्जजोयणायामं
मारणंतियखेत्तमुवलंभदे ? ण, असंखेज्जसेडिपढमवग्गमूलमेत्तायाममारणंतियखेत्तजीवाणं
बहुआणमणुवलंभादो । तेण विदियपुढविदव्वे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेचुवकमण-
कालेण भागे हिदे एगसमएण मरंतजीवाण पमाणं होदि । पुणो एदेसिमसंखेज्जदिभागो
मारणंतिएण विणा कालं करेदि, बहुआणं सुहपाणीणमभावादो असंखेज्जा भागा
मारणंतियं करेति । मारणंतियं करेताणमसंखेज्जदिभागो उज्जुगदीए मारणंतियं
करेदि, अप्पणो द्विदपदेसादो कंडुज्जुवखेत्तमिह उप्पज्जमाणणं बहुआणमणुवलंभादो ।
विग्गहगदीए मारणंतियं करेताणमसंखेज्जदिभागो मारणंतिएण विणा विग्गहगदीए
उप्पज्जमाणरासी होदि, तेण मरंतजीवाणं असंखेज्जे भागे मारणंतियकालंभंतरउवकमण-
कालेण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तेण गुणिदे मारणंतियकालमिह संचिदरासि-
पमाणं होदि । पुणो तम्महुवित्थोरण णवरज्जुगुणेण गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि ।

भागमात्र उपक्रमणकालकी भी उपलब्धि है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहां संख्यात योजनमात्र मारणान्तिक क्षेत्रका आयाम देखा जाता है ।

शंका—तो फिर प्रथम पृथिवीमें भी विग्रहगतिमें मारणान्तिक जीवोंका असंख्यात योजन आयामवाला मारणान्तिक क्षेत्र कैसे उपलब्ध होता है ? (देखो पु. ४, पृ. ६३-६४)

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंख्यात श्रेणियोंके प्रथम वर्गमूलमात्र आयामवाले मारणान्तिक क्षेत्रमें बहुत जीवोंकी अनुपलब्धि है ।

इसलिये द्वितीय पृथिवीके द्रव्यमें पत्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमण-
कालका भाग देनेपर एक समयसे मारणान्तिक जीवोंका प्रमाण होता है । पुनः इनके
असंख्यातवें भागप्रमाण जीव मारणान्तिकसमुद्घातके विना ही कालको करते हैं, तथा
वहां बहुत पुण्यवान् प्राणियोंका अभाव होनेसे असंख्यात बहुभागप्रमाण जीव मारणा-
न्तिकसमुद्घातको करते हैं । मारणान्तिकसमुद्घात करनेवालोंके असंख्यातवें भागमात्र
ऋजुगतिसे मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं, क्योंकि, अपने स्थित प्रदेशसे बाणके समान
ऋजु क्षेत्रमें उत्पन्न होनेवाले बहुत जीव नहीं पाये जाते । विग्रहगतिसे मारणान्तिक-
समुद्घातको करनेवालोंके असंख्यातवें भागप्रमाण मारणान्तिकके विना विग्रहगतिसे
उत्पन्न होनेवाली राशि है, इस कारण मरनेवाले जीवोंके असंख्यात बहुभागको आवलीके
असंख्यातवें भागमात्र मारणान्तिककालके भीतर उपक्रमणकालसे गुणित करनेपर
मारणान्तिककालमें संचित राशिका प्रमाण होता है । पुनः उसे नौराजुगुणित मुख-
विस्तारसे गुणा करनेपर मारणान्तिक क्षेत्र होता है । यहाँ भी पांच लोकोंका अपवर्तन

एत्थ वि पंचलोगोवट्टणं पुवं व कायवं ।

उववादखेत्ते आणिज्जमाणे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण विदियपुढविदव्वे भागे हिदे तिरिक्खेहिंतो विदियपुढवीए उप्पज्जमाणरासी होदि । एदस्स असंखेज्जदि-भागो चैव उज्जगदीए उप्पज्जदि, कंडुज्जुएण मग्गेण समउप्पत्तिट्ठाणमागच्छमाण-जीवाणं बहुयाणमणुवलंभादो । तेणेदस्स असंखेज्जा भागा विग्गहगदीए उप्पज्जमाण-तिरिक्खरासी होदि । पुणो एदं दवं तिरिक्खोगाहणमुहवित्थारेण तप्पाओग्ग-असंखेज्जजोयणगुणेण गुणिदे उववादखेत्तं होदि । ओवट्टणा पुवं व कायव्वा । सेसं जाणिय वत्तवं ।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ३ ॥

कुदो ? सत्थाण-समुग्वाद-उववादेहि लोगस्स असंखेज्जदिभागत्तं पडि विसे-साभावादो । एसो दव्वट्ठियणयं पडुच्च णिहेसो । पज्जवट्ठियणयं पडुच्च परूविज्जमाणे सत्तहं पुढवीणं दव्वविसेसो ओगाहणविसेसो मारणंतिय-उववादखेत्ताणमायामविसेसो च अत्थि । णवरि सो जाणिय वत्तव्वो ।

पूर्वके समान करना चाहिये ।

उपपादक्षेत्रके निकालनेमें पल्योपमके असंख्यातवं भागसे द्वितीय पृथिवीके द्रव्यको भाजित करनेपर तिर्यचोसे द्वितीय पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाली राशि होती है । इसका असंख्यातवं भाग ही ऋजुगतिसे उत्पन्न होता है, क्योंकि, बाणके समान ऋजु मार्गसे अपने उत्पत्तिस्थानको आनेवाले जीव बहुत नहीं पाये जाते । इसीलिये इसके असंख्यात बहुभागप्रमाण विग्रहगतिसे उत्पन्न होनेवाली तिर्यचराशि है । पुनः इस द्रव्यको तत्प्रायोग्य असंख्यात योजनसे गुणित तिर्यचोकी अवगाहनारूप मुखविस्तारसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्र होता है । अपवर्तन पूर्वके समान करना चाहिये । शेष जानकर कहना चाहिये ।

इसी प्रकार सात पृथिवियोंमें नारकी जीव उपर्युक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवं भागमें रहते हैं ॥ ३ ॥

क्योंकि, स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे लोकके असंख्यातवं भागत्वके प्रति कोई विशेषता नहीं है । यह निर्देश द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे है । पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा प्ररूपण करनेपर सात पृथिवियोंके द्रव्यकी विशेषता, अवगाहनाकी विशेषता और मारणान्तिक एवं उपपाद क्षेत्रोंके आयामकी विशेषता भी है । इसलिये उसे जानकर कहना चाहिये ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण
केवडिखेत्ते ? ॥ ४ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउच्चिय-मारणतिय-उववाद-
पदाणि तिरिक्खेसु अत्थि, अवसेसाणि णत्थि । एदेहि पदेहि तिरिक्खा केवडिखेत्ते होंति
त्ति आसंक्रिय परिहारं भणदि—

सव्वलोए ॥ ५ ॥

कुदो ? आणंतियादो । ण च ण सम्मांति त्ति आसंक्रियज्जं, लोगागासम्मि
अणंतोगाहणसत्तिसंभवादो । विहारवदिसत्थाणखेत्तं तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणं । कुदो ? तसपज्जत्ताणं
तिरिक्खाणं संखेज्जदिभागम्मि विहारुवलंभादो । तदो एदं पुध परूवेदव्वं ? ण,
सत्थाणम्मि एदस्संतब्भूदत्तणेण पुध परूवणाभावादो । वेउच्चियसमुग्घादखेत्तं चदुण्हं

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते
हैं ? ॥ ४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिक-
समुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये पद तिर्यंचोंमें होते हैं, शेष नहीं होते ।
'इन' पदोंसे तिर्यंच कितने क्षेत्रमें रहते हैं' इस प्रकार आशंका करके उसका परिहार
कहते हैं—

तिर्यंच जीव उक्त पदोंकी अपेक्षा सर्व लोकमें रहते हैं ? ॥ ५ ॥

क्योंकि, वे अनन्त हैं । अनन्त होनेसे वे लोकमें नहीं समाते हैं, ऐसी आशंका
भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि, लोकाकाशमें अनन्त अवगाहनशक्ति सम्भव है ।
विहारवत्स्वस्थानक्षेत्र तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यंग्लोकके संख्यातवें भाग
और अट्टाई द्वीपसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, त्रस पर्याप्त तिर्यंचोंका तिर्यंग्लोकके
संख्यातवें भागमें विहार पाया जाता है ।

शंका—स्वस्थानस्वस्थानसे विहारवत्स्वस्थानक्षेत्रमें विशेषता होनेके कारण
इसकी पृथक् प्ररूपणा करना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, स्वस्थानमें इसका अन्तर्भाव होनेसे पृथक् प्ररूपणा
नहीं की गई ।

वैक्रियिकसमुद्घातका क्षेत्र चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और मनुष्यक्षेत्रसे

लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणं। कुदो ? तिरिक्खेसु विउव्वमाण-
गसी पलिदोवमस्म असंखेज्जदिभागमेत्तघणंगुलेहि गुणिदसेडीमेत्तो त्ति गुरूवदेसादो ।
तस्सा एदस्स पुधपरुवणा कादव्वा ? ण, एदस्स समुग्घादे अंतव्वावादो । सेसं सुगमं ।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्ख-
जोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण
केवडिखेत्ते ? ॥ ६ ॥

एदमासंकासुत्तं सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७ ॥

एदं देसामासियं सुत्तं, देसपदुप्पायणमुहेण सूचिदाणेयत्थादो' । एत्थ ताव पंचि-
दियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणं बुच्चदे । तं जहा — एदे

असंख्यातगुणा है, क्योंकि, तिर्यचोंमें विक्रिया करनेवाली राशि पल्योपमके असंख्यातवें
भागमात्र घनांगुलोंसे गुणित जगश्रेणीप्रमाण है, ऐसा गुरुका उपदेश है ।

शंका— चूंकि तिर्यचोंके वैक्रियिकसमुद्घातक्षेत्रमें विशेषता है इस कारण
इसकी पृथक् प्ररूपणा करना चाहिये ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, इसका समुद्घातमें अन्तर्भाव हो जाता है । शेष
सूत्रार्थ सुगम है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती और
पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें
रहते हैं ॥ ६ ॥

यह आशंकासूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त चार प्रकारके तिर्यच उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें
रहते हैं ॥ ७ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, क्योंकि, एक देश कथनकी मुख्यतासे अनेक अर्थोंको सूचित
करता है । यहां पहले पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच
योनिमतियोंका क्षेत्र कहा जाता है । वह इस प्रकार है— ये तीनों ही स्वस्थानस्वस्थान,

तिणि वि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादग्दा तिण्हं लोमाणम-संखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । कुदो ? एदेसिं संखेज्जघणंगुलोगाहणत्तादो । पंचिदियतिरिक्खेसु अपज्जत्तरासी होदि बहुओ, तक्खेत्तेण किण्ण ओवट्टणा कीरदे ? ण, तत्थ अंगुलस्स असंखेज्जदिभागोगाहणम्मि बहुवखेत्ताणुवलंभादो । विहारपाओग्गरासिस्स संखेज्जा भागा सत्थाणसत्थाणरासीए एत्थ संखेज्जदिभागमेत्ता सेसरासीओ त्ति घेत्तव्वं ।

वेउच्चियसमुग्घादखेत्तं चट्टण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्ज-गुणं । कुदो ? तिरिक्खेसु विउच्चमाणरासिस्स असंखेज्जघणंगुलेहि गुणिदमेडिमेत्तपमाणु-वलंभादो । एदे तिणि वि मारणंतियसमुग्घादग्दा तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागे अच्छंति । कुदो ? एदेसिं तिण्हं पंचिदियतिरिक्खाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग-मेत्तभागहारुवलंभादो । तं जहा— एदाओ तिणि वि रासीओ पहाणीभूदसंखेज्जवस्साउअ-तिरिक्खोवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे एगसमएण मरंतजीवाणं पमाणं होदि । एदेसिमसंखेज्जदिभागो चैव मारणंतिएण विणा णिप्फिड-

विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त होकर तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, ये संख्यात घनांगुलप्रमाण अवगाहनावाले हैं ।

शंका—पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें अपर्याप्त राशि बहुत है, इसलिये उनके क्षेत्रसे क्यों नहीं अपवर्तन करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तोंमें अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण अवगाहना होनेसे बहुत क्षेत्रकी प्राप्ति नहीं होती । विहारप्रायोग्यराशिके संख्यात बहुभागप्रमाण एवं स्वस्थानस्वस्थान राशिके संख्यातवें भागमात्र यहां शेष राशियां हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिये ।

वैक्रियिकसमुद्घातक्षेत्र चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, तिर्यचोंमें विक्रिया करनेवाली राशिका प्रमाण असंख्यात घनांगुलोंसे गुणित जगश्रेणीमात्र पाया जाता है । ये तीनों ही तिर्यच मारणान्तिक-समुद्घातको प्राप्त होकर तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, इन तीनों पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके पत्योपमके असंख्यातवें भागमात्र भांगद्वार उपलब्ध है । वह इस प्रकार है— इन तीनों ही राशियोंमें प्रधानभूत संख्यातवर्षायुष्क तिर्यचोंके उपक्रमण-कालरूप आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर एक समयमें मरनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है । इनके असंख्यातवें भाग ही मारणान्तिकसमुद्घातके विना मरण करने -

माणराभि त्ति कट्टु एदस्स असंखेज्जे भागे मारणंतियउवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे गुणगारुवक्कमणकालादो भागहारुवक्कमणकालो संखेज्जगुणो त्ति उवरिमगुणगारेण हेट्ठिमभागहारमावलियाए असंखेज्जदिभागमोवट्ठिय सेसेण भागे हिदे सग-सगगमीणं संखेज्जदिभागो आगच्छदि । पुणो असंखेज्जजोयणाण मुक्कमारणंतियजीवे इच्छिय अण्णगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो । पुणो एदं रासिं रज्जुगुणिदसंखेज्जपदरंगुलेहिं गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि । एदेण तिसु लोणसु भागे हिदेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो आगच्छदि त्ति तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अच्छंति त्ति वुत्तं । णर-तिरियलोणेहिंतो असंखेज्जगुणे ।

तिण्हं रासीणमुववादखेत्तं पि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो णर-तिरियलोणेहिंतो असंखेज्जगुणं । एदस्स खेत्तस्म पमाणे आणिज्जमाणे मारणंतियभंगो । णवरि एगममय-मंचिदो एमो रासि त्ति कट्टु आवलियअसंखेज्जदिभागो गुणगारो अवणेदव्वो । पढमदंड-

वाली राशि है, ऐसा जानकर इसके असंख्यात बहुभागको मारणान्तिक उपक्रमणकालरूप आवलीके असंख्यातवै भागसे गुणित करनेपर चूंकि गुणकारभूत उपक्रमणकालसे भागहारभूत उपक्रमणकाल संख्यातगुणा है, इसलिये उपरिम गुणकारसे आवलीके असंख्यातवै भागरूप अधस्तन भागहारका अपवर्तन करके शेषका भाग देनेपर अपनी अपनी राशियोंका संख्यातवां भाग आता है । पुनः असंख्यात योजनां तक मारणान्तिक समुद्घातको करनेवाले जीवोंकी इच्छाराशि स्थापित कर अन्य पद्योपमके असंख्यातवै भागमात्र भागहारको स्थापित करना चाहिये । पुनः इस राशिको राजुसे गुणित असंख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित करनेपर मारणान्तिक क्षेत्रका प्रमाण होता है । इसका तीन लोकोंमें भाग देनेपर पद्योपमका असंख्यातवां भाग लब्ध होता है । इसीलिये 'तीन लोकोंके असंख्यातवै भागमें रहते हैं' ऐसा कहा है । उक्त जीव मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त होकर मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । (देखो पुस्तक ४, पृ. ७१-७२) ।

उक्त तीन राशियोंका उपपादक्षेत्र भी तीन लोकोंके असंख्यातवै भागप्रमाण और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा है । इस क्षेत्रके प्रमाणके निकालनेकी रीति मारणान्तिकक्षेत्रके समान है । विशेष इतना है कि यह राशि एक समय संचित है, ऐसा जानकर आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार अलग करना चाहिये । प्रथम

मुवसंहरिय विदियदंडद्विदजीवे इच्छिय अवरो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो ।

पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा च्चदुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । कुदो ? उस्सेधघणंगुले पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण खंडिदे एगखंडमेत्तोगाहणादो । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति । कुदो ? दो-तिण्णि-पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तभागहाराणं जहाकमेण मारणंतिय-उववादखेत्तेसु उवलंभादो । सेसं सुगमं ।

मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ८ ॥

एत्थ सत्थाणणिदेमेण सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणाणं गहणं, सत्थाणत्तणेण दोण्हं भेदाभावादो । सेसं सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९ ॥

दण्डका उपसंहार कर द्वितीय दण्डमें स्थित जीवोंकी इच्छा कर अन्य पल्योपमका असंख्यातवर्ग भाग भागहार स्थापित करना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीव स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त होकर चार लोकोंके असंख्यातवर्ग भागमें तथा अट्ठाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, उत्सेध घनांगुलको पल्योपमके असंख्यातवर्ग भागसे खण्डित करनेपर एक खण्डमात्र पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तोंकी अवगाहना लब्ध होती है । मारणान्तिक और उपपादको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यच तीन लोकोंके असंख्यातवर्ग भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, पल्योपमके दो व तीन असंख्यातवर्ग भागमात्र भागहार यथाक्रमसे मारणान्तिक और उपपाद क्षेत्रोंमें उपलब्ध हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनी स्वस्थान व उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ८ ॥

इस सूत्रमें ' स्वस्थान ' के निर्देशसे स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान दोनोंका ग्रहण किया गया है, क्योंकि, स्वस्थानपनेसे दोनोंमें कोई भेद नहीं है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उक्त तीन प्रकारके मनुष्य स्वस्थान व उपपाद पदोंसे लोकके असंख्यातवर्ग भागमें रहते हैं ॥ ९ ॥

एत्थ लोगणिदेसो देसामासियो, तेण पंचण्हं लोगणं गहणं होदि । एदेण सूचिदत्थस्स परूवणं कस्सामो । तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-द्विदतिविहा मणुसा चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे अचछंति । कुदो ? मणुस-मणुस-पज्जत्त-मणुसणीणं संखेज्जजीवाणं खेत्तग्गहणादो । सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तमणुस-अपज्जत्ताणं सत्थाणखेत्तस्स गहणं किण्ण कीरदे ? ण, तस्स अंगुलस्स संखेज्जदिभागे संखेज्जंगुलेसु वा णिचियक्कमेण अवट्ठणादो । उववादगदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदि-भागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अचछंति । कुदो ? पहाणीकदमणुसअपज्जत्त-उववादखेत्तादो । णवरि मणुसपज्जत्त-मणुसणीणमुववादखेत्तं चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदि-भागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणं । मणुसाणमुववादखेत्ताणयणविहाणं वुच्चदे । तं जहा— मणुसअपज्जत्तरामिमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालेण दोहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेहि य ओवट्ठिय पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागोवद्विद-पदंगुलेण गुणिदमेडीसत्तमभागेण गुणिदे उववादखेत्तं होदि । एत्थ पंचलोगोवट्ठणं जाणिय कायव्वं । सेसं सुगमं ।

सूत्रमें लोकका निर्देश देशामर्शक है, इसलिये उससे पांचों लोकोंका ग्रहण होता है । इस सूत्रसे सूचित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानमें स्थित तीन प्रकारके मनुष्य चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि यहां मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनी, इन संख्यात जीवोंके क्षेत्रका ग्रहण है ।

शंका—जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र मनुष्य अपर्याप्तोंके स्वस्थानक्षेत्रका ग्रहण क्यों नहीं किया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मनुष्य अपर्याप्तराशिका अंगुलके संख्यातवें भागमें अथवा संख्यात अंगुलोंमें संचितक्रमसे अवस्थान है ।

उपपादको प्राप्त उक्त तीन प्रकारके मनुष्य तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यंगलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां मनुष्य अपर्याप्तोंके उपपादक्षेत्रकी प्रधानता है । विशेषता यह है कि मनुष्य पर्याप्त और मनुष्य-नियोंका उपपादक्षेत्र चार लोकोंके असंख्यातवें भाग तथा अढ़ाई द्वीपसे असंख्यात-गुणा है । मनुष्योंके उपपादक्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं । वह इस प्रकार है— मनुष्य अपर्याप्त राशिका आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालसे तथा पल्योपमके दो असंख्यात भागोंसे अपवर्तित करके पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अपवर्तित प्रतरांगुलसे गुणित जगश्रेणीके सातवें भागसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्र होता है । यहां पांच लोकोंका अपवर्तन जानकर करना चाहिये । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १० ॥

एत्थ समुग्घादणिहेसो दव्वड्डियणयमवलंबिय ड्ढिदो, संगहिदवेदण-कसाय-वेउ-
व्विय-मारणंतिय-तेजाहार-दंड-कवाड-पदर-लोगपूरणत्तादो । सेमं सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११ ॥

जेण एदं देसामासियं सुत्तं तेणेदेण सुइदत्थपरूवणं कस्सामो । तं जहा—
वेदण-कसाय-वेउव्विय-तेजहारसमुग्घादगदा तिविहा मणुसा चट्ठुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-
भागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । णवरि मणुसिणीसु तेजाहारं णत्थि । मारणंतिय-
समुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति ।
कुदो ? पहाणीकदमणुसअपज्जत्तखेत्तादो । णवरि मणुसपज्जत्त-मणुसिणीणं मारणंतियखेत्तं
चट्ठुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणं । एवं दंड-कवाडखेत्ताणं
पि वत्तव्वं । णवरि कवाडखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो । संपहि पदर-लोगपूरण-

उक्त तीन प्रकारके मनुष्य समुद्घातसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १० ॥

यहां समुद्घातका निर्देश द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करके स्थित है, क्योंकि, यह पद वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक, तैजस, आहार, दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण, इन सब समुद्घातोंका संग्रह करनेवाला है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

उक्त तीन प्रकारके मनुष्य समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ११ ॥

चूंकि यह देशामर्शक सूत्र है अतः इसके द्वारा सूचित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—वेदना, कषाय, वैक्रियिक, तैजस और आहारक समुद्घातको प्राप्त तीन प्रकारके मनुष्य चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं। विशेष इतना है कि मनुष्यनियोंमें तैजस और आहारक समुद्घात नहीं होते। मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त तीन प्रकारके मनुष्य तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां मनुष्य अपर्याप्तोंका क्षेत्र प्रधान है। विशेष इतना है कि मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंका मारणान्तिक क्षेत्र चार लोकोंके असंख्यातवें भाग तथा मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार दण्ड और कपाट क्षेत्रोंका भी प्रमाण कहना चाहिये। परन्तु इतना विशेष है कि कपाटक्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। अब प्रतर और

समुग्घादे पडुच्च खेत्तपदुप्पायणडुमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जेसु वा भाएसु सव्वलोगे वा ॥ १२ ॥

पदरसमुग्घादे लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु अवट्ठाणं होदि, वादवलएसु जीवपदे-
माणमभावादे । लोगपूरणसमुग्घादे सव्वलोगे अवट्ठाणं होदि, जीवपदेसविरहिलो-
गासपदेसाभावादे । अधवा सव्वभेदमेक्कं चैव सुत्तमेक्कस्स समुग्घादगदस्स तिसु
अवट्ठाणेसु खेत्तभेदपदुप्पायणादे ।

मणुसअपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?

॥ १३ ॥

मुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १४ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेणेदेण सूचिदत्थपरूवणं कस्सामो तं जहा— सत्थाण-
वेदण-कसायसमुग्घादगदा चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे

लोकपूरण समुद्घातोंकी अपेक्षा कर क्षेत्रनिरूपणके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

समुद्घातकी अपेक्षा उक्त तीन प्रकारके मनुष्य लोकके असंख्यात बहुभागोंमें
अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १२ ॥

प्रतरसमुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यात बहुभागोंमें अवस्थान होता है,
क्योंकि, वातवलयोंमें जीवप्रदेशोंका अभाव रहता है। लोकपूरणसमुद्घातकी अपेक्षा सर्व
लोकमें अवस्थान होता है, क्योंकि, इस अवस्थामें जीवप्रदेशोंसे रहित लोकाकाशके
प्रदेशोंका अभाव है। अथवा यह सब एक ही सूत्र है, अर्थात् उपर्युक्त दोनों सूत्र भिन्न
नहीं हैं, किन्तु एक ही सूत्ररूप हैं, क्योंकि, एक केवलिसमुद्घातगत जीवकी तीन
अवस्थाओंमें क्षेत्रभेदका कथन करते हैं।

मनुष्य अपर्याप्त स्वस्थान, समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें
रहते हैं ? ॥ १३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्य अपर्याप्त उपर्युक्त तीन पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें
रहते हैं ॥ १४ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, इसलिये इसके द्वारा सूचित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं।
वह इस प्रकार है— स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त मनुष्य
अपर्याप्त चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें संचित-

णिचियक्कमेण । विण्णासकमेण' पुण असंखेज्जाओ जोयणकौडीओ माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणाओ । मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरिय-लोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति । मारणंतियखेत्ताणयणविहाणं बुच्चदे — सूचिअंगुल-पढम-तदियवग्गमूले गुणेदूण जगसेडिम्मिह भागे हिदे दव्वं होदि । तम्मिह आवलियाए असं-खेज्जभागमेत्तउवक्कमणकालेण भागे हिदे एगसमयसंचिदमरंतरासी' होदि । एदस्स असंखेज्जदिभागो मारणंतिएण विणा णिण्फिडमाणरासी होदि । पुणो मारणंतियरासिमाव-लियाए असंखेज्जदिभागेण मारणंतियउवक्कमणकालेण गुणिदे मारणंतियकालभंतरे संचिदरासी होदि । पुणो अवरेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे रज्जु-आयामेण पलिदोवमअसंखेज्जदिभागेणोवट्टिदपदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागेण विक्खंभेण मुक्कमारणंतियरासी होदि । पुणो एदस्स ओगाहणगुणगारे ठविदे मारणंतियखेत्तं होदि । एत्थ ओवट्टणं जाणिय कायव्वं ।

क्रमसे रहते हैं । परन्तु विन्यासक्रमसे मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणी असंख्यात योजन-कोटियां मनुष्य अपर्याप्तोंका क्षेत्र है । मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए मनुष्य अपर्याप्त तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोक एवं तिर्यग्लोकसे असंख्यात-गुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिक क्षेत्रके निकालनेका विधान कहते हैं— सूच्यंगुलके प्रथम और तृतीय वर्गमूलोंका परस्परमें गुणा कर जगश्रेणीमें भाग देनेपर मनुष्य अपर्याप्तोंका द्रव्यप्रमाण प्राप्त होता है । उसमें आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उप-क्रमणकालका भाग देनेपर एक समय संचित मरनेवाले मनुष्य अपर्याप्तोंकी राशि होती है । इसके असंख्यातवें भागप्रमाण मारणान्तिकसमुद्घातके विना मरण करनेवाली राशि है । पुनः मारणान्तिक राशिको आवलीके असंख्यातवें भागरूप मारणान्तिक उपक्रमणकालसे गुणित करनेपर मारणान्तिक कालके भीतर संचित राशिका प्रमाण होता है । पुनः अन्य पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर जो लब्ध हो उतना, राजुप्रमाण आयामसे तथा पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अपवर्तित प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण विष्कम्भसे मारणान्तिकसमुद्घातको करनेवाले मनुष्य अपर्याप्तोंका प्रमाण होता है । पुनः इसके अवगाहनागुणकारके स्थापित करनेपर, अर्थात् इस राशिको अवगाहनासे गुणित करनेपर, मनुष्य अपर्याप्तकोंका मारणान्तिक क्षेत्र होता है । यहां अपवर्तन जानकर करना चाहिये ।

१ प्रतिष्ठु 'विण्णासकमेण' इति पाठः ।

२ प्रतिष्ठु 'संचिदमारणंतियरासी' इति पाठः ।

उववाद्गदा तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति । एत्थ उववाद्देवत्तं मारणंतियस्येत्तं व ठवेद्वं । णवरि एसो रासी एगसमय-संचिदो त्ति आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणगारो ण दाद्वो । पढमदंडमुवसंहरिय विदियदंडेण सेडीए संखेज्जदिभागायामेणं मुक्कमारणंतियजीवे इच्छिय अण्णो गो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेद्वो । एत्थ ओवट्टणा पुव्वं व कायव्वं ।

देवगदीए देवा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?

॥ १५ ॥

एत्थ तेजाहार-केवलिसमुग्घादा णत्थि, देवेषु तेषिमत्थित्तविरोहादो । किं सव्वलोगे किं लोगस्स असंखेज्जेसु भागेषु किं वा संखेज्जदिभागे किमसंखेज्जदिभागे किमणंतिमभागे किं वा संखेज्जासंखेज्जाणंतलोगेषु त्ति पुच्छिदे उत्तरसुत्तं भणदि । अधवा आसंकिदसुत्तमेदं । वासदेणं विणा कधमासंकावग्गमदे ? तेण विणा वि तदट्ठा-वगदीदो ।

उपपादको प्राप्त मनुष्य अपर्याप्त तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोक एवं तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां उपपादक्षेत्रको मारणान्तिक क्षेत्रके समान स्थापित करना चाहिये । विशेष इतना है कि यह राशि एक समयसंचित है, अतएव आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार नहीं देना चाहिये । प्रथम दण्डका उपसंहार कर द्वितीय दण्डसे जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण आयामसे मुक्तमारणान्तिक जीवोंकी इच्छाराशि स्थापित कर एक अन्य पल्योपमका असंख्यातवां भाग आगहार स्थापित करना चाहिये । यहां अपवर्तन पूर्वके समान करना चाहिये ।

देवगतिमें देव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ?

॥ १५ ॥

यहां तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात और केवलिसमुद्घात नहीं हैं, क्योंकि, देवोंमें इनके अस्तित्वका विरोध है । 'क्या सर्व लोकमें, क्या लोकके असंख्यात बहु-भागोंमें, क्या लोकके संख्यातवें भागमें, क्या लोकके असंख्यातवें भागमें, क्या लोकके अनन्तवें भागमें, अथवा क्या संख्यात, असंख्यात व अनन्त लोकोंमें रहते हैं' ऐसा पूछनेपर उत्तर सूत्र कहते हैं । अथवा यह आशंकासूत्र है ।

शंका—वा शब्दके विना कैसे आशंकाका परिज्ञान होता है ?

समाधान—क्योंकि, वा शब्दके विना भी उस अर्थका परिज्ञान हो जाता है ।

१ अत्रौ ' असंखेज्जदिभागायामेण ' इति पाठः ।

२ अ-आप्रस्योः ' वेसदेण ' इति पाठः ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १६ ॥

देसामासियसुत्तमिदं, तेणेदेण सूचिदत्थस्स परूवणं कीरदे । तं जहा— सत्थाण-सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादगदा देवा तिण्हं लोगाणमसंखे-ज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । कुदो ? पहानीकदजोइसियक्खेत्तादो । विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउच्चियरासीओ सग-सगरासीणं सव्वत्थ संखेज्जदिसानदेकाधो, सत्थाणसत्थाणराशी सगरासिस्स सव्वत्थ संखेज्जाभागमेत्ता त्ति कधं णव्वदे ? ण, गुरुवदेसादो, एदेसु पदेसु द्विददेवा तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागे अच्छंति त्ति पक्खेत्तादो वा णव्वदे । मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति । एदस्स खेत्तस्स वृद्धणविहायं वुच्चदे । तं जहा— एत्थ वाणवेंतरखेत्तं पहानं, तत्थतणसंखेज्ज-

देव उपर्युक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ १६ ॥

यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिये इसके द्वारा सूचित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपाय-समुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त देव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां ज्योतिषी देवोंका क्षेत्र प्रधान है । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपाय-समुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त राशियां सर्वत्र अपनी अपनी राशियोंके संख्यातवें भागमात्र और स्वस्थानस्वस्थानराशि सर्वत्र अपनी राशिके संख्यात बहु-भागप्रमाण होती है ।

शंका—‘ विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातको प्राप्त राशियां अपनी अपनी राशियोंके संख्यातवें भागमात्र हैं, तथा स्वस्थानस्वस्थानराशि सर्वत्र अपनी राशिके संख्यात बहुभागप्रमाण है ’ यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपर्युक्त राशियोंका प्रमाण गुरुके उपदेशसे जाना जाता है । अथवा ‘ इन पदोंमें स्थित देव तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ’ इस व्याख्यानसे जाना जाता है ।

मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त देव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इस क्षेत्रके स्थापनाविधानको कहते हैं । वह इस प्रकार है— यहां वानव्यन्तरोका क्षेत्र प्रधान है, क्योंकि, वहांपर

वासाउएसु तत्थ द्वियअसंखेज्जवासाउएहिंतो असंखेज्जगुणेषु आवलियाए असंखेज्जदि-
भागमेत्तुवक्कमणकालुवलंभादो । तेण वेत्तरासिं ठविय मारणंतियउवक्कमणकालेणोवद्विद-
सगुवक्कमणकालसंखेज्जरूवेहि भागे हिदे मुक्कमारणंतियजीवा होंति । तेषिमसंखेज्जदि-
भागो ईसिपवभारादिउवरिमपुठवीसु उप्पज्जदि त्ति पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो
भागहारो दादव्वो । तिरिक्खेसु रज्जुमेत्तं गंतूणुप्पज्जमाणजीवाणमागमणद्धं च पुणो
पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागोवभत्थसंखेज्जरज्जूहि गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि ।

उववादगदा तिण्हं लोकाणमलंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे
अच्छंति । एदस्स खेत्तस्स विण्णासो मारणंतियमंगो । णवरि तिरिक्खरासिं तिरिक्खाण-
मुवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो वद्विय पुणो देवेषुप्पज्जमाणरासिमिच्छिय
तप्पाओग्गअसंखेज्जरूवेहि ओवद्विय रज्जुमेत्तं गंतूणुप्पज्जमाणजीवाणं पमाणागमणद्धं
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो दादव्वो । पुणो विदियदंडेण रज्जुसंखेज्जदि-
भागमेत्तायदजीवाणं पउरं संभवाभावादो पुणो अण्णेणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो

स्थित असंख्यातवर्षायुष्कोंकी अपेक्षा असंख्यातगुणे वहाँके संख्यातवर्षायुष्कोंमें आवलीके
असंख्यातवर्षे भागमात्र उपक्रमणकालकी उपलब्धि है । इसलिये व्यन्तरराशिको स्थापित
कर मारणान्तिक उपक्रमणकालसे अपवर्तित अपने उपक्रमण कालरूप संख्यात रूपोंका भाग
देनेपर मुक्तमारणान्तिक जीवोंका प्रमाण होता है । उनका असंख्यातवां भाग ईषत्प्रा-
ग्भारादि उपरिम पृथिवियोंमें उत्पन्न होता है, इसलिये पल्योपमका असंख्यातवां भाग
भागहार देना चाहिये । तिर्यच्चोंमें राजुमात्र जाकर उत्पन्न होनेवाले जीवोंके आगमनार्थ
पुनः प्रतरांगुलके संख्यातवर्षे भागसे गुणित संख्यात राजुओंसे गुणित करनेपर मारणा-
न्तिक क्षेत्र होता है ।

उपपादको प्राप्त देव तीन लोकोंके असंख्यातवर्षे भागमें तथा मनुष्यलोक व
तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इस क्षेत्रका विन्यास मारणान्तिक क्षेत्रके
समान है । विशेष इतना है कि तिर्यच्चराशिको तिर्यच्चोंके उपक्रमणकालरूप आवलीके
असंख्यातवर्षे भागसे अपवर्तित कर पुनः देवोंमें उत्पन्न होनेवाली राशिकी इच्छा कर
तत्प्रायोग्य असंख्यात रूपोंसे अपवर्तित कर राजुप्रमाण जाकर उत्पन्न होनेवाले जीवोंके
प्रमाणको लानेके लिये पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहार देना चाहिये । पुनः द्वितीय
दण्डसे राजुके संख्यातवर्षे भागमात्र आयामको प्राप्त जीवोंकी प्रचुर संभावना न होनेसे
पुनः एक और अन्य पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहार देना चाहिये । पुनः

भंगहारो दादव्वो । पुणो संखेज्जपदरंगुलगुणिदजगसेडिसंखेज्जभागेण गुणिदे उववाद-
खेत्तं होदि । एत्थ पंचलोगोवट्ठणं जाणिय कायव्वं ।

**भवनवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविभाणवासियदेवा देवगदि-
भंगो ॥ १७ ॥**

एसो दव्वट्ठियणयं पडुच्च णिद्वेसो, पज्जवट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे अत्थि
विसेसो । तं जहा — सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादग्घा
भवनवासियदेवा चट्ठुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति ।
एत्थ खेत्तविण्णासो जाणिय कायव्वो । उववादग्घाणं पि एवं चेव वत्तव्वं । तिरिक्ख-
मणुसाणं वे विग्गहे कादूण भवनवासियदेव्वेसु सेडीए संखेज्जदिभागायामेण विदियदंडे
विवादाणमुववादखेत्तं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं किण्ण लब्भदे ? णेदमसंभवादो ।
एगविग्गहं काऊण तत्थुप्पणाणमुववादखेत्तायामो ण ताव असंखेज्जजोयणमेत्तो ' सोलस
दु खरो भागो पंकवहुलो य तह चुलासीदि । आवबहुलो असीदि- ' ति सुत्तेण सह विरोहादो ।

संख्यात प्रतरंगुलोंसे गुणित जगश्रेणिके संख्यातवें भागसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्र
होता है । यहां पांच लोकोंका अपवर्तन जानकर करना चाहिये ।

भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविभाणवासी देवों तकका क्षेत्र देवगतिके
समान है ॥ १७ ॥

यह निर्देश द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे है, पर्यायार्थिक नयका अवलंबन करनेपर
विशेषता है । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात,
कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त भवनवासी देव चार लोकोंके
असंख्यातवें भागमें और अड़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां क्षेत्रचिन्त्यास
जानकर करना चाहिये । उपपादको प्राप्त भवनवासी देवोंके भी क्षेत्रका इसी प्रकार
कथन करना चाहिये ।

शंका—दो विग्रह करके भवनवासी देवोंमें जगश्रेणिके संख्यातवें भागप्रमाण
आयामसे द्वितीय दण्डमें प्राप्त तिर्यंच मनुष्योंका उपपादक्षेत्र तिर्यंगलोकसे असंख्यातगुणा
क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—ऐसा नहीं पाया जाता, क्योंकि असंभव है । एक विग्रह करके भवन-
वासियोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच-मनुष्योंके उपपादक्षेत्रका आयाम असंख्यात योजनमात्र
नहीं है, क्योंकि, ' खरभाग सोलह सहस्र योजन, पंकवहुलभाग चौरासी सहस्र
योजन, और अब्बहुलभाग अस्सी सहस्र योजन मोटा है ' इस सूत्रके साथ विरोध
होगा ।

लोगंते ठाइदूण हेड्डा गंतूण एगविग्गहं करिय तिरिच्छेण रज्जूए संखेज्जदिभागं गंतूणुप्पण्णाणं विदियदंडायामो सेडीए संखेज्जदिभागमेत्तो लब्भदि त्ति णेदं पि घडदे, तेसिं सुट्ठु थोवत्तादो । तं कुदो वगम्मदे ? तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति वक्खणाणाइरियवयणादो । ण दोण्णि विग्गहे काऊणुप्पण्णाणं विदिय-तदियदंडाणं संजोगो सेडीए संखेज्जदिभागायामो सेडिं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण खंडिदएगखंडा-यामो वा लब्भदि त्ति वोत्तुं जुत्तं, कंडुज्जुववट्ठाए सव्वदिसाहिंत्तो आगंतूण एगविग्गहं काऊण उप्पज्जमाणजीवेहिंत्तो दो विग्गहे क्कादूण उप्पज्जमाणजीवाणमसंखेज्जदिभागत्तादो । तदो भवणवासियाणमुववादखेत्तं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति सिद्धं । मारणंतिय-समुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियलोगादो' असंखेज्जगुणे अच्छंति । कुदो ? सत्थाणादो अद्वरज्जुमेत्तं तिरिच्छेण गंतूण एगविग्गहं करिय संखेज्जरज्जूओ उड्डं गंतूण सगउप्पत्तिट्ठाणं पत्ताणं तदुवलंभादो । वाणवंतर-जोदिमियाणं देवगदिमंगो

लोकान्तमें स्थित होकर नीचे जाकर एक विग्रह करके तिर्यग्रूपसे राजुके संख्यातवें भाग जाकर उत्पन्न होनेवालोंके द्वितीय दण्डका आयाम जगश्रेणीके संख्यातवें भागमात्र प्राप्त है, यह भी घटित नहीं होता, क्योंकि, वे बहुत थोड़े हैं ।

शंका—यह कहाँसे जाना जाता है ?

समाधान—‘ उपपादगत भवनवासियोंका क्षेत्र तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग है ’ इस प्रकार व्याख्यानाचार्योंके वचनसे जाना जाता है । दो विग्रह करके उत्पन्न हुए जीवोंके द्वितीय व तृतीय दण्डके संयोगमें जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण आयाम, अथवा जगश्रेणीको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे खण्डित करनेपर एक खण्डप्रमाण आयाम प्राप्त है, ऐसा कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि, बाणके समान ऋजु अवस्थामें सर्व दिशाओंसे आकर एक विग्रह करके उत्पन्न होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा दो विग्रह करके उत्पन्न होनेवाले जीव असंख्यातवें भागमात्र हैं । इसलिये भवनवासियोंका उप-पादक्षेत्र तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, यह बात सिद्ध हुई ।

मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त देव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, स्वस्थानसे अर्ध राजुमात्र तिरछे जाकर एक विग्रह करके संख्यात राजु ऊपर जाकर अपने उत्पात्ति-स्थानको प्राप्त हुए उक्त देवोंके उपर्युक्त क्षेत्र पाया जाता है ।

वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके क्षेत्रका प्ररूषण देवगतिके समान है, जो

ण विरुज्जदे, सत्थाणादिसु तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागुवलंभादो । णवरि जोदिसिएसु उवक्कमणकालो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, संखेज्जवासाउआणमभावादो ।

सोहम्मीसाणा^१ सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउवियससुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे अचळंति । एत्थ सग-सग-खेत्तविण्णासो कायव्वो । अप्पणो ओहिकखेत्तमेत्तं देवा विउव्वंति च्चि जं वयणं तण्ण घड्ढे, लोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवेउवियखेत्तप्पहुडिप्पसंगादो । मारणंतिय-उववाद्दगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अचळंति । एत्थ ताव उववाद्दखेत्तविण्णासो कीरदे । तं जहा— मगविक्खं भसूचिगुणिदसेडिं ठविय पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण सोहम्मीसाणुवक्कमणकालेण ओवड्ढिदे उप्पज्जमाणजीवा होंति । पहापत्थडे उप्पज्जमाणजीवाणमागमणडुमवरेगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो । पुणो एदस्स पदरंगुलगुणिदसेडीए संखेज्जदिभागे गुणगारेण ठविदे उववाद्द-खेत्तं होदि । एवं चेव मारणंतियखेत्तपरिक्खा कायव्वो ।

विरुद्ध नहीं है; क्योंकि, स्वस्थानादिक पदोंमें तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग पाया जाता है। विशेष इतना है कि ज्योतिषी देवोंमें उपक्रमणकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि, उनमें संख्यात वर्षकी आयुवालोंका अभाव है ।

स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातको प्राप्त सौधर्म-ईशान कल्पवासी देव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां अपना अपना क्षेत्रविन्यास करना चाहिये । 'देव अपने अवधिक्षेत्रप्रमाण विक्रिया करते हैं' इस प्रकार जो यह वचन है वह घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेमें लोकके असंख्यातवें भागमात्र वैक्रियिकक्षेत्रादिका प्रसंग आता है । (देखो पुस्तक ४, पृ. ७९-८०) ।

मारणान्तिक व उपपादको प्राप्त उक्त देव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां उपपादक्षेत्रका विन्यास करते हैं । वह इस प्रकार है—अपनी विष्कम्भसूचीसे गुणित जगश्रेणीको स्थापित कर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सौधर्म-ईशान कल्पवासी देवोंके उपक्रमण-कालसे अपवर्तित करनेपर उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है । प्रभा प्रस्तारमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण जाननेके लिये एक अन्य पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहार स्थापित करना चाहिये । पुनः इसके प्रतरांगुलसे गुणित जगश्रेणीके संख्यातवें भागको गुणकार रूपसे स्थापित करनेपर उपपादक्षेत्रका प्रमाण होता है । इसी प्रकार ही मारणान्तिकक्षेत्रकी परीक्षा करना चाहिये ।

१ प्रतिष्ठा 'सोहम्मीसाण' इति पाठः ।

२ प्रतिष्ठा 'संखेज्जदि-' इति पाठः ।

सणक्कुमारप्पहुडिउवरिमदेवा सव्वपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइ-
ज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । णवरि सव्वदुदेवा सत्थाणसत्थाण-वैयण-कसाय-वेउव्विय-
पदपरिणदा माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे अच्छंति । कथं ? सव्वदुदे वैयण-कसायसमु-
ग्घादाण तेहिंतो समुप्पज्जमाणथोवविपुंजणं पडुच्च तथोवदेसादो, कारणे कज्जोवयारादो
वा । एत्थ देवाणमोगाहणाणयणे उवउज्जंतीओ गाहाओ—

पणुवीसं असुराणं सेसकुमाराण दस धणू होंति ।

वेंतर-जोदिसियाणं दस सत्त धणू मुणेयव्वा' ॥ १ ॥

सोहम्मीसाणेसु य देवा खलु होंति सत्तरयणीया ।

छच्चेव य रयणीयो सणक्कुमारो य माहिदे' ॥ २ ॥

सानत्कुमारादि उपरिम देव सर्व पदोंसे चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और
अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । विशेष इतना है कि सर्वार्थसिद्धिविमान-
वासी देव स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमु-
द्घात, इन पदोंसे परिणत होकर मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि,
सर्वार्थसिद्धि विमानमें वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त देवोंके उनसे
उत्पन्न होनेवाले स्तोक विसर्पणकी अपेक्षा कर उस प्रकारका उपदेश किया गया है,
अथवा कारणमें कार्यका उपचार करनेसे वैसा उपदेश किया गया है । यहां देवोंकी
अवगाहनाके लानेमें ये उपयुक्त गाथायें हैं—

असुरकुमारोंके शरीरकी उंचाई पच्चीस धनुष और शेष कुमारदेवोंकी दश
धनुष होती है । व्यन्तर देवोंकी उंचाई दश धनुष और ज्योतिषी देवोंकी सात धनुषप्रमाण
जानना चाहिये ॥ १ ॥

सौधर्म व ईशान कल्पमें स्थित देव सात रत्नि ऊंचे, और सनत्कुमार व माहेन्द्र
कल्पमें छह रत्नि ऊंचे होते हैं ॥ २ ॥

१ असुराण पंचवीसं सेससुराणं हवंति दस दंडा । एस सहाउच्छेहो विक्किरियेसु बहुमेया ॥
ति. प. ३, १७६. अड्डाण वि पत्तेक्कं किण्णरपहुदीण वेंतरसुराणं । उच्छेहो णादव्वो दसकोदंडप्पमाणेण ॥
ति. प. ६, ९८. णवरि य जोइसियाणं उच्छेहो सत्तदंडपरिमाणं ॥ ति. प. ७, ६१८.

२ शरीरं सौधर्मेशानयोर्देवानां सप्तारत्निप्रमाणम्, सानत्कुमारसाहेन्द्रयोः षडरत्निप्रमाणम्, ब्रह्मलोक-
ब्रह्मोत्तर-लान्तवकापिष्टेसु पंचारत्निप्रमाणम्, सुवर्ण-शत-सहस्रानि, चत्वारिंशत्, आनतप्रापतयोरद्धचतुर्था-
रत्निप्रमाणम्, आरणाच्युतयोस्वरत्निप्रमाणम्, अधोप्रैवेयकेषु अर्द्धतृतीयारत्निप्रमाणम्, मध्यप्रैवेयकेष्वरत्निद्वयप्रमाणम्,
उवरिमप्रैवेयकेषु अनुदिशविमानेषु च अर्धद्वारत्निप्रमाणम्, अतुत्तरेष्वरत्निप्रमाणम् । स. सि. ४, २१.

बम्हे य लांतवे वि य कप्पे खलु होंति पंच रयणीयो ।

चत्तारि य रयणीयो सुक्क-सहस्सारकप्पेसु ॥ ३ ॥

आणद-पाणदकप्पे आहुट्ठाओ हवंति रयणीयो ।

तिण्णेव य रयणीओ तहारणे अच्चुदे चैय' ॥ ४ ॥

हेट्ठिमगेवज्जेसु अ अद्दुः ३ ज. ३. होंति रयणीओ ।

मज्झिमगेवज्जेसु अ रयणीओ होंति दो चैय ॥ ५ ॥

उवरिमगेवज्जेसु अ दिवड्ढरयणीओ होदि उस्सेहो ।

रयणी सुणेयव्वा ॥ ६ ॥

सेसं सुगमं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया सुहुमेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता
सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिस्सेत्ते ? ॥ १८ ॥

एत्थ एइंदिएसु विहारवदिसत्थाणं णत्थि, थावराणं विहारभावविरोहादो ।

ब्रह्म व लान्तव कल्पमें पांच, तथा शुक्र व सहस्वार कल्पोंमें चार रत्निप्रमाण
उत्सेध है ॥ ३ ॥

आनत-प्राणत कल्पमें साढ़े तीन रत्नि, और आरण व अच्युत कल्पमें एक
रत्निप्रमाण शरीरकी उंचाई जानना चाहिये ॥ ४ ॥

अधस्तन त्रैवेयकोंमें अढ़ाई रत्नि, और मध्यम त्रैवेयकोंमें दो रत्निप्रमाण
शरीरकी उंचाई है ॥ ५ ॥

उपरिम त्रैवेयकोंमें डेढ़ रत्नि, तथा अनुत्तर विमानवासी देवोंके शरीरकी उंचाई
एक रत्निप्रमाण जानना चाहिये ॥ ६ ॥

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इन्द्रियमार्गणानुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म
एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान,
समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १८ ॥

यहां एकेन्द्रियोंमें विहारवत्स्वस्थान नहीं होता, क्योंकि, स्थावरोंके विहारका

तेजाहार-केवलिसमुग्घादा णत्थि । सुहुमेइंदिएसु वेउव्वियसमुग्घादो वि णत्थि । सेसं सुगमं ।

सव्वलोगे ॥ १९ ॥

एसो लोयसहो सेसलोगाणं सूचओ, देसामासियत्तादो । तेणेदेण सूचिदत्थस्स परूवणं कस्सामो । सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उव्ववादपरिणदा एइंदिया तेसिं पज्जत्ता अपज्जत्ता य सव्वलोगे, आणंतियादो । वेउव्वियसमुग्घादगदा एइंदिया चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो । माणुसखेत्तं ण विण्णायदे । तं जहा — वेउव्वियमुट्ठावेंता सव्वसुहुमेइंदिएसु णत्थि, साभाविआदो । वादरेइंदियपज्जत्तएसु चेव अत्थि । ते वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता । तत्थेक्कजीवोगाहणा उस्सेहघणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । तस्स को पडिभागो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । जदि वेउव्वियरासीदो घणंगुलभागहारो संखेज्जगुणो होज्ज तो वेउव्वियखेत्तं माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो,

विरोध है । तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात और केवलिसमुद्घात एकेन्द्रियोंमें नहीं हैं । सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें वैक्रियिकसमुद्घात भी नहीं है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उपर्युक्त एकेन्द्रिय जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १९ ॥

यह लोक शब्द शेष लोकोंका सूचक है, क्योंकि, देशामर्शक है । इस कारण इसके द्वारा सूचित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं—स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपाय-समुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंसे परिणत एकेन्द्रिय व उनके पर्याप्त एवं अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, वे अनन्त हैं । वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त एकेन्द्रिय जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं, यह जाना नहीं जाता । वह इस प्रकार है—वैक्रियिक-समुद्घातको करनेवाले जीव सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें नहीं है, क्योंकि, ऐसा स्वभाव है । उक्त समुद्घातको करनेवाले एकेन्द्रिय जीव वादर एकेन्द्रियोंमें ही होते हैं । वे भी पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हैं । उनमें एक जीवकी अवगाहना उत्सेधघनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—पल्योपमका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

यदि वैक्रियिकराशिसे घनांगुलका भागहार संख्यातगुणा है, तो वैक्रियिकक्षेत्र मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण होगा, अथवा यदि वह भागहार वैक्रियिकराशिसे

अह असंखेज्जगुणो' तो असंखेज्जदिभागो, अह सरिसो माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो, अह भागहारादो' वेउच्चियरासी संखेज्जगुणो होदूण वेउच्चियखेत्तं माणुसखेत्तपमाणं होज्ज तो दो वि सरिसाणि, अह असंखेज्जगुणो' होज्ज तो माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणं वेउच्चियखेत्तं । ण च एत्थ एदं चेव होदि त्ति णिच्छओ अत्थि । तेण माणुसखेत्तं ण विण्णायदे ।

बादरेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥२०॥

सुगममेदं ।

लोगस्स संखेज्जदिभागे ॥ २१ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेणेदेण सइदत्थस्स परूवणं कस्सामो । तं जहा— तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति त्ति वत्तव्वं । किं कारणं ? जेण मंदरमूलादो उवरि जाव सदर-सहस्सारकण्णो त्ति पंचरज्जुउस्सेहेण

असंख्यातगुणा है तो वैक्रियिकक्षेत्र मानुषक्षेत्रके असंख्यातवें भागप्रमाण होगा, अथवा यदि वह भागहार वैक्रियिकराशिके सदृश है तो वैक्रियिकक्षेत्र मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग होगा । अथवा यदि वह भागहारसे वैक्रियिकराशि संख्यातगुणी होकर वैक्रियिकक्षेत्र मानुषक्षेत्रप्रमाण है तो दोनों ही सदृश होंगे, अथवा यदि असंख्यातगुणा है तो वैक्रियिकक्षेत्र मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा होगा । परन्तु यहाँपर उक्त भागहार इतना ही है, ऐसा निश्चय नहीं है, अतः मानुषक्षेत्रके विषयमें ज्ञान नहीं है ।

बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त स्वस्थानसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ २० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त बादर एकेन्द्रिय जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २१ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, इसलिये इसके द्वारा सूचित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है— उपर्युक्त बादर एकेन्द्रिय जीव तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिये ।

शंका— उक्त क्षेत्रप्रमाणका कारण क्या है ?

समाधान— क्योंकि, मन्दर पर्वतके मूल भागसे ऊपर शतार-सहस्रार कल्प

समचउरस्सा लोगणाली वादेण आउण्णा । तम्मि एगूणवंचासरज्जुपदराणं जदि एगं जगपदरं लब्भदि तो पंचरज्जुमेत्तपदराणं किं लभामो त्ति फलगुणिदमिच्छं पमाणेणो-
वट्टिदे वे पंचभागूणएगूणसत्तरिरूवेहि घणलोमे भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । पुणो तम्मि लोगपेरंतट्टिदवादखेत्तं संखेज्जजोयणवाहल्लजगपदरं अट्टुपुट्टविखेत्तं बादरजीवाहारं संखेज्जजोयणवाहल्लजगपदरमेत्तं अट्टुपुट्टवीणं हेट्ठा ट्टिदसंखेज्जजोयणवाहल्लजगपदर-
वादखेत्तं च आणेदूण पक्खिखत्ते लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं अणंताणंतवादरेइंदिय-
वादरेइंदियपज्जत्त-वादरेइंदियअपज्जत्तजीवावूरिदं^१ खेत्तं जादं । तेणेदे तिण्णि वि वादरे-
इंदिया सत्थाणेण तिण्हं लोगाणं वा संखेज्जदिभागे अच्छंति त्ति वुत्तं ।

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ २२ ॥

सुगममेदं ।

सव्वलोए ॥ २३ ॥

तक पांच राजु ऊंची, समचतुष्कोण लोकनाली वायुसे परिपूर्ण है। उसमें उनंचास प्रतरराजुओंका यदि एक जगप्रतर प्राप्त होता है, तो पांच प्रतरराजुओंका कितना जगप्रतर प्राप्त होगा, इस प्रकार फलराशिसे गुणित इच्छाराशिको प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर दो बंट पांच भाग कम उनहत्तर रूपोंसे घनलोकके भाजित करनेपर लब्ध एक भागप्रमाण प्राप्त होता है। पुनः उसमें संख्यात योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण लोकपर्यन्त स्थित वातक्षेत्रको, संख्यात योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण पेसे बादर जीवोंके आधारभूत आठ पृथिवीक्षेत्रको, और आठ पृथिवियोंके नीचे स्थित संख्यात योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण वातक्षेत्रको लाकर मिला देनेपर लोकके संख्यातवें भागमात्र अनन्तानन्त बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त व बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंसे परिपूर्ण क्षेत्र होता है। इस कारण 'ये तीनों ही बादर एकेन्द्रिय स्वस्थानसे तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें एवं मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं' पेसा कहा है।

उक्त बादर एकेन्द्रिय जीव समुद्घात और उपपादमे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ २२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त बादर एकेन्द्रिय जीव समुद्घात और उपपाद पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २३ ॥

१ अप्रती ' -मेत्तजगपदराणं ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' -पज्जत्ता जीवावूरिदं ' इति पाठः ।

एदे तिणिण वि बादरेइंदिया मारणंतिय-उववादपदेहि चेत्र सव्वलोए होंति । वेयण-कसायसमुग्घादेहि तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । वेउत्तिवयपदेण बादरेइंदियअपज्जत्तवदिरित्तबादरेइंदिया चटुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे होंति । तदो समुग्घादेण सव्वलोगे इदि वयणं ण घडदे । ण एस दोसो, देसामासियत्तादो ।

वेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ २४ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २५ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सुइदत्थो वुच्चदे । तं जहा- सत्थाणसत्थाण-विहारवदि-सत्थाण-वेयण-कसाय-समुग्घादगदा एदे बीइंदियादि छप्पि वग्गा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति, पज्जत्तखेत्तस्स

शंका—ये तीनों ही बादर एकेन्द्रिय जीव मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे ही सर्व लोकमें हैं। वेदनासमुद्घात व कषायसमुद्घातसे तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। वैक्रियिकपदसे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंको छोड़ शेष दो बादर एकेन्द्रिय चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। इस कारण 'समुद्घातसे सर्व लोकमें रहते हैं' यह कथन घटित नहीं होता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यह सूत्र देशामर्शक है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और इन तीनोंके पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ २४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त द्वीन्द्रियादिक जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २५ ॥

इस देशामर्शक सूत्रसे सूचित अर्थ कहा जाता है। वह इस प्रकार है—स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, और कषायसमुद्घातको प्राप्त ये द्वीन्द्रियादिक छहों वर्ग तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अट्टाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां पर्याप्तक्षेत्रकी प्रधानता है।

पाधणियादो । एदेसिं चेत्र तिणिण अपज्जत्ता चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण खंडिदुस्सेहघणंगुलमेत्तोगाहणत्तादो । मारणंतिय-उववाद्गदा णव वि वग्गा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियलोगहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति । एत्थ ताव मारणंतियखेत्तविण्णासो बुच्चदे— बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्तदव्वं ठविय' आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तेण सगसगु-वक्कमणकालेण सगसगदव्वम्मि भागे हिदे सगसगरामिम्मि मरंतजीवपमाणमागच्छदि । तस्स असंखेज्जदिभागो मारणंतिएण विणा मरदि त्ति एदस्स असंखेज्जे भागे घेत्तूण मारणंतिय-उवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे सगसगमारणंतियदव्वं होदि । रज्जुमेत्तायामेण मुक्कमारणंतियदव्वमिच्छिय अण्णगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागो भागहारो ठवेदव्वो । पुणो अप्पण्णो विक्खंभवग्गगुणिदरज्जुए गुणिदे बीइंदियादीणं णवणं मारणंतियखेत्तं होदि । एत्थ ओवट्टणं जाणिय कायव्वं ।

उववादखेत्तविण्णासो बुच्चदे । तं जहा— पुव्वुत्तदव्वाणि ठविय सगसगुवक्क-मणकालेण भागे हिदे एगसमएण मरंतजीवाणं पमाणं होदि । एदस्स असंखेज्जभागो

इन्हींके तीन अपर्याप्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्ठाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, वे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित उत्सेधघनांगुलप्रमाण अवगाहनासे युक्त होते हैं । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपादको प्राप्त नौ ही जीवराशियां तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां मारणान्तिकक्षेत्रका विन्यास कहा जाता है— द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके पर्याप्त व अपर्याप्त द्रव्यको स्थापित कर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र अपने अपने उपक्रमणकालसे अपने अपने द्रव्यके भाजित करनेपर अपनी अपनी राशिमैंसे मरनेवाले जीवोंका प्रमाण आता है । उसके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव मारणान्तिकसमुद्घातके विना मरण करते हैं, इसलिये इसके असंख्यात बहुभागोंको ग्रहणकर मारणान्तिक उपक्रमणकालरूप आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर अपना अपना मारणान्तिक द्रव्य होता है । एक राजुमात्र आयामसे मुक्तमारणान्तिक द्रव्यकी इच्छा कर एक अन्य पल्योपमका असंख्या-तवां भाग भागहार स्थापित करना चाहिये । पुनः अपने अपने विष्कम्भके वर्गसे गुणित राजुसे उसे गुणित करनेपर द्वीन्द्रियादिक नौ जीवराशियोंका मारणान्तिक क्षेत्र होता है । यहां अपवर्तन जानकर करना चाहिये ।

उपपादक्षेत्रका विन्यास कहते हैं । वह इस प्रकार है— पूर्वोक्त द्रव्योंको स्थापित कर अपने अपने उपक्रमणकालसे भाजित करनेपर एक समयमें मरनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है । इसके असंख्यातवें भागमात्र ही उक्त जीवराशि ऋजुगतिसे

चेव उजुगदीए उप्पज्जदि, असंखेज्जा भागा पुण विग्गहगदीए त्ति कट्टु एदस्स असंखेज्जे भागे घेचूण पुणो तेसिं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ते भागहारै ठविदे पढमदंडेण अद्दरज्जुमेत्तं रज्जूए संखेज्जदिभागं वा विसप्पिय द्विदजीवपमाणं होदि । पुणो तम्मिह पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे उप्पणपढमसमए पढमदंडमुव-संहरिय बिदियदंडेण सेटीए संखेज्जदिभागं तप्पाभोगमसंखेज्जदिभागं वा विसप्पिय द्विदजीवपमाणं होदि । पुणो तमप्पणो विक्खंभवगेण गुणिदसगायामेण गुणिदे उववादखेत्तं होदि । विगल्लिदिएसु वेउव्वियपदं णत्थि, साभावियादो ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ २६ ॥

एत्थ सत्थाणणिहेसो दोण्हं सत्थाणाणं गाहओ, दव्वट्टियणयावलंबणादो । सेसं सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २७ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेणेदेण सूइदत्थो वुच्चदे- सत्थाणसत्थाण-विहारवदि-सत्थाणपज्जाएण परिणदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे,

उत्पन्न होती है, और असंख्यात बहुभागप्रमाण विग्रहगतिले, ऐसा जानकर इसके असंख्यात बहुभागोंको ग्रहणकर पुनः उनके पत्योपमके असंख्यातवें भागमात्र भाग-हारको स्थापित करनेपर प्रथम दण्डसे अर्धं राजुमात्र अथवा राजुके संख्यातवें भाग-प्रमाण फैलकर स्थित जीवोंका प्रमाण होता है । पुनः उसमें पत्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें प्रथम दण्डका उपसंहार कर द्वितीय दण्डसे जगश्रेणीके संख्यातवें भाग अथवा तत्प्रायोग्य असंख्यातवें भागप्रमाण फैलकर स्थित जीवोंका प्रमाण होता है । पुनः उसे अपने अपने विष्कम्भके वर्गसे गुणित अपने अपने आयामसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्रका प्रमाण होता है । विकलेन्द्रियोंमें वैक्रियिक पद नहीं है, क्योंकि, ऐसा उनका स्वभाव है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थानसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥२६॥

यहां सूत्रमें स्वस्थानपदका निर्देश दोनों स्वस्थानोंका ग्राहक है, क्योंकि, यहां द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थानसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २७ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, इस कारण इसके द्वारा सूचित अर्थको कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानरूप पर्यायसे परिणत पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और

अड्डाड्ज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति, पहाणीकयपज्जत्तरासिस्स संखेज्जभागत्तादो संखेज्जदिभागत्तादो च । उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहितो असंखेज्जगुणे अच्छंति । एदस्स खेत्तस्साणयणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ २८ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेषु सब्वलोगे
दा ॥ २९ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाड्ज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति, पहाणीकदपज्जत्तरासिस्स संखेज्जदिभागत्तादो । तेजाहारसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे, १ माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । दंडगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे,

अट्टाई १ द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, स्वस्थानस्वस्थानपदगत उक्त जीव प्रधानभूत पर्याप्त राशिके संख्यात बहुभाग और विहारवत्स्वस्थानगत वे ही जीव उक्त राशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

उपपादको प्राप्त पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इस क्षेत्रके निकालनेका विधान पूर्वके समान कहना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव समुद्घातकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ २८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागमें, अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २९ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातको प्राप्त उक्त जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अट्टाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, वे प्रधानभूत पर्याप्त-राशिके संख्यातवें भाग हैं । तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । दण्ड-समुद्घातको प्राप्त उक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यात-

माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे । क्वाडगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहितो असंखेज्जगुणे । एदेसिं खेत्तविण्णासो कायव्वो । लोयस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिदेसेण सूइदत्था एदे । अधव्वा लोगस्स असंखेज्ज-भागा, वादवल्यं मोत्तूण पदरसमुग्घादे सेसासेसलोगमेत्तागासपदेसे विसप्पिय द्विदजीवपदेसुवलंभादो । सव्वलोगे वा, लोगपूरणे सव्वलोगागासं विसप्पिय द्विदजीव-पदेसाणमुवलंभादो ।

पंचिंदियअपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडि-
खेत्ते ? ॥ ३० ॥

एत्थ विहारवदिसत्थाणं वेउव्वियसमुग्घादो च णत्थि । सेसं सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३१ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेणेदेण सूइदत्थो वुच्चदे । तं जहा —सत्थाणं-वेयण-

गुणे क्षेत्रमें रहते हैं । कपाटसमुद्घातको प्राप्त वे ही जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इनका क्षेत्रविन्यास जानकर करना चाहिये । 'लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं' इस निर्देशसे सूचित अर्थ ये हैं । अथवा उक्त जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण है, क्योंकि, प्रतर-समुद्घातमें वातवलयको छोड़कर शेष समस्त लोकमात्र आकाशप्रदेशमें फैलकर स्थित जीवप्रदेश पाये जाते हैं । अथवा सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, लोकपूरणसमुद्घातमें सर्व लोकाकाशमें फैलकर स्थित जीवप्रदेश पाये जाते हैं ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३० ॥

पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंमें विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात नहीं है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं
॥ ३१ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, इसलिये इसके द्वारा सूचित अर्थको कहते हैं । वह

कसायसमुग्धादगदा पंचिदियअपज्जत्ता चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? उस्सेहघणंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तोगाहणत्तादो । सव्वत्थ अपज्जत्तोगाहणट्ठं भागहारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ खेत्तविण्णासो जाणिय कायव्वो ।

कायाणुवादेण पुढविकाइय आउकाइय तेउकाइय वाउकाइय
सुहुमपुढविकाइय सुहुमआउकाइय सुहुमतेउकाइय सुहुमवाउकाइय
तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्धादेण उववादेण केवडि-
खेत्ते ? ॥ ३२ ॥

सुगममेदं ।

सव्वलोगे ॥ ३३ ॥

सत्थान-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा एदे पुढविकाइयादिसोलस वि वग्गा

इस प्रकार है— स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त पंचेन्द्रिय अपर्याप्त चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, वे उत्सेधघनांगुलके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनावाले हैं । सर्वत्र अपर्याप्तोंकी अवगाहनाके लिये भागहार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । मारणा-न्तिक और उपपादको प्राप्त पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां क्षेत्रविन्यास जान-कर करना चाहिये ।

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त पृथिवीकायिकादि जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ३३ ॥

स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त ये पृथिवीकायिकादि सोलह जीवराशियां सर्व लोकमें रहती हैं, क्योंकि,

सव्वलोगे । कुदो ? असंखेज्जलोगपरिमाणत्तादो । तेउकाइएसु वेउन्वियसमुग्घादगदा पंचण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागे, अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तोगाहणादो । वाउकाइएसु वेउन्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागे । माणुसखेत्तं ण णव्वदे ।

बादरपुठविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवण-
प्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?
॥ ३४ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३५ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेणेदेण आमासियत्थेण अणामासियत्थो वुच्चदे । तं जहा— बादरपुठविआदिअट्टवग्गा सत्थाणगदा तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागे, तिरिय-लोगादो संखेज्जगुणे, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । कुदो ? सापज्जत्ताणं पुठवि-काइयाणं पुठवीओ चेवस्सिदूण अवट्टाणादो । एदेहि रुद्धखेत्तजाणावणट्टमट्टपुठवीओ

वे असंख्यात लोकप्रमाण हैं । तेजस्कायिकोंमें वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए जीव पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, वे अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण अवगाहनावाले हैं । वायुकायिकोंमें वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं, यह ज्ञात नहीं है ।

बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर व उनके अपर्याप्त जीव स्वस्थानसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त बादर पृथिवीकायिकादिक जीव स्वस्थानसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३५ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, इस कारण इसके द्वारा आमृष्ट अर्थात् गृहीत अर्थसे अनामृष्ट अर्थात् अगृहीत अर्थको कहते हैं । वह इस प्रकार है— बादर पृथिवी आदि आठ जीवराशियां स्वस्थानको प्राप्त होकर तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे, और अट्टाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, अपर्याप्तोंसे सहित पृथिवीकायिक जीवोंका अवस्थान पृथिवियोंका ही आश्रय करके है । इन जीवोंसे

जगपदरपमाणेण कस्सामो—

तत्थ पढमपुढवी एगरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुदीहा वीससहस्सणवेजोयणलक्ख-
बाहल्ला; एसा अप्पणो बाहल्लस्स सत्तमभागबाहल्लं जगपदरं होदि । विदियपुढवी
सत्तमभागूणवेरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा बत्तीसजोयणसहस्सबाहल्ला सोलससहस्स-
समहियचउण्हं लक्खाणमेगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि । तदियपुढवी बेसत्त-
भागूणतिण्णिरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा अट्टावीसजोयणसहस्सबाहल्ला; इमं जगपदर-
पमाणेण कीरमाणे बत्तीससहस्साहियपंचलक्खजोयणाणमेगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं
होदि । चउत्थपुढवी तिण्णिसत्तभागूणचत्तारिरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा चउवीस-
जोयणसहस्सबाहल्ला; इमं जगपदरपमाणेण कीरमाणे छज्जोयणलक्खाणमेगूणवंचासभाग-
बाहल्लं जगपदरं होदि । पंचमपुढवी चत्तारिसत्तभागूणपंचरज्जुविकखंभा सत्तरज्जुआयदा
वीसजोयणसहस्सबाहल्ला; इमं जगपदरपमाणेण कीरमाणे वीससहस्साहियछणं लक्खाणं
एगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि । छट्ठपुढवी पंचसत्तभागूणछरज्जुविकखंभा सत्त-
रज्जुआयदा सोलसजोयणसहस्सबाहल्ला बाणउदिसहस्साहियपंचण्हं लक्खाणमेगूणवंचास-

रुद्ध क्षेत्रके ज्ञापनार्थ आठ पृथिवियोंको जगप्रतर प्रमाणसे करते हैं—

उनमें प्रथम पृथिवी एक राजु विस्तृत, सात राजु दीर्घ और बीस सहस्र कम दो लाख योजनप्रमाण बाहल्यसे सहित है। यह घनफलकी अपेक्षा अपने बाहल्यके सातवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है। द्वितीय पृथिवी एक बटे सात भाग कम दो राजु विस्तृत, सात राजु आयत और बत्तीस सहस्र योजनप्रमाण बाहल्यसे संयुक्त है। यह घनफलकी अपेक्षा चार लाख सोलह सहस्र योजनोंके अनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है। तृतीय पृथिवी दो बटे सात भाग कम तीन राजु विस्तृत, सात राजु आयत और अट्टाईस सहस्र योजनप्रमाण बाहल्यसे युक्त है। इसे जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर पांच लाख बत्तीस सहस्र योजनोंके अनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण होती है। चतुर्थ पृथिवी तीन बटे सात भाग कम चार राजु विस्तृत, सात राजु आयत और चौबीस सहस्र योजनप्रमाण बाहल्यसे संयुक्त है। इसे जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर वह छह लाख योजनोंके अनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण होती है। पंचम पृथिवी चार बटे सात भाग कम पांच राजु विस्तृत, सात राजु आयत और बीस सहस्र योजनप्रमाण बाहल्यसे संयुक्त है। इसे जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर छह लाख बीस सहस्र योजनोंके अनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण होती है। छठी पृथिवी पांच बटे सात भाग कम छह राजु विस्तृत, सात राजु आयत और सोलह सहस्र योजनप्रमाण बाहल्यसे संयुक्त है। यह घनफलकी अपेक्षा पांच लाख बानबै सहस्र योजनोंके अनंचासवें भाग

भागबाहल्लं जगपदरं होदि । सत्तमपुठवी छसत्तभागूणसत्तरज्जुविकखंभा सत्तरज्जु-
आयदा अट्टजोयणसहस्सबाहल्ला चउदालसहस्साहियतिण्णं लक्खाणमेगुणवंचासभाग-
बाहल्लं जगपदरं होदि । अट्टमंपुठवी सत्तरज्जुआयदा एगरज्जुरुंदा अट्टजोयणबाहल्ला
सत्तमभागाहियएगजोयणबाहल्लं जगपदरं होदि । एदाणि सव्वखेत्ताणि एगट्ठे कदे
तिरियलोगबाहल्लादो संखेज्जगुणबाहल्लं जगपदरं होदि ।

मेरु-कुलसेल-देविंदय-सेडीबद्ध-पइण्णयविमाणखेत्तं च एत्थेव दट्ठव्वं, सव्वत्थ
तत्थ पुठविकाइयाणं संभवादो । बादरपुठविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया
बादरवणप्फदिकाइया पत्तेयसरीरा एदेसिं चैव अपज्जत्ता य भवणविमाणट्टपुठवीसु
णिचियक्कमेण णिवसंति । तेउ-आउ-रुक्खाणं कधं तत्थ संभवो ? ण, इंदिएहि'
अगेज्झाणं सुट्टुसण्हाणं पुठविजोगियाणमत्थित्तस्स विरोहाभावादो ।

बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है । सत्तम पृथिवी छह बटे सात भाग कम सात राजु विस्तृत,
सात राजु आयत और आठ सहस्र योजनप्रमाण बाहल्यसे संयुक्त है । यह घनफलकी
अपेक्षा तीन लाख चवालीस सहस्र योजनोंके उन्चासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण
है । अष्टम पृथिवी सात राजु आयत, एक राजु विस्तृत और आठ योजनप्रमाण बाहल्यसे
संयुक्त है । यह घनफलकी अपेक्षा एक बटे सात भाग अधिक एक योजन बाहल्यरूप
जगप्रतरप्रमाण है । इन सब क्षेत्रोंको एकत्रित करनेपर तिर्यग्लोकके बाहल्यसे संख्यात-
गुणे बाहल्यरूप जगप्रतर होता है । (देखो पुस्तक ४, पृ. ८८ आदि) ।

मेरु, कुलपर्वत तथा देवोंके इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानोंका क्षेत्र भी
यहींपर देखना चाहिये, क्योंकि, वहां सब जगह पृथिवीकायिक जीवोंकी सम्भावना
है । बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पति-
कायिक प्रत्येकशरीर तथा इनके ही अपर्याप्त जीव भी भवनवासियोंके विमानोंमें व
आठ पृथिवियोंमें निचितक्रमसे निवास करते हैं ।

शंका—तेजस्कायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंकी वहां कैसे
सम्भावना है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, इन्द्रियोंसे अग्राह्य व अतिशय सूक्ष्म पृथिवीसम्बद्ध
उन जीवोंके अस्तित्वका कोई विरोध नहीं है ।

समुद्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ३६ ॥

सुगममेदं ।

सव्वलोगे ॥ ३७ ॥

देसामासियसुत्तमेदं, तेणेदेण स्रइदत्थो वुच्चदे — वेयण-कसायपरिणदा एदे तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगादो संखेज्जगुणे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे अचलंति, एदेसिं पुढवीसु चैव अवट्टाणादो । बादरतेउकाइया वेउच्चियं गदा पंचण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोगे । कुदो ? असंखेज्जलोग-परिमाणादो । एवं बादरणिगोदपदिट्टिदाणं तेसिमपज्जत्ताणं च वत्तव्वं । सुत्ते बादरणिगोद-पदिट्टिदा किण्ण परूविदा ? ण, बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरेसु तेसिमंतवभावादो । कुदो ? पत्तेयसरीरत्तणेण तदो एदेसिं भेदाभावादो ।

.....

उक्त बादर पृथिवीकायिकादिक जीव समुद्घात व उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त बादर पृथिवीकायिकादि जीव समुद्घात व उपपादसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ३७ ॥

यह सूत्र देशामर्शक है, इस कारण इसके द्वारा सूचित अर्थ कहते हैं— वेदना व कषाय समुद्घातको प्राप्त ये जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे, और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, इनका पृथिवियोंमें ही अवस्थान है । बादर तेजस्कायिक वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त होकर पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपादको प्राप्त वे ही जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, वे असंख्यात लोकप्रमाण हैं । इसी प्रकार बादर निगोद-प्रतिष्ठित और उनके अपर्याप्त जीवोंका भी क्षेत्र कहना चाहिये ।

शंका—सूत्रमें बादर निगोदप्रतिष्ठित जीवोंकी प्ररूपणा क्यों नहीं की गई ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनका बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंमें अन्तर्भाव है, क्योंकि प्रत्येकशरीरपनेकी अपेक्षा उनसे इनके कोई भेद नहीं है ।

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादर-
वणप्फादिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता' सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण
केवडिखेत्ते ? ॥ ३८ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३९ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— बादरपुढविपज्जत्ता सत्थाण-वेयण-कसायसमुग्घादगदा
चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगणे । कुदो ? एदेसिं' अवहारकालहुं
पदरांगुलस्स इविदपलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागादो एदेसिमोगाहणहुं घणांगुलस्स
इविदपलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागस्स असंखेज्जगुणत्तादो । मारणांतिय-उववाद्गदा
तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्ठणा जाणिय
ओवट्ठेदव्वा । एवं बादरआउकाइय-बादरवणप्फादिपत्तेयसरीर-बादरणिगोदपदिद्धिदपज्जत्ताणं ।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर तेजस्कायिक
पर्याप्त व बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने
क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त बादर पृथिवीकायिकादि पर्याप्त जीव उक्त पदोंसे लोकके असांख्यातवें
भागमें रहते हैं ॥ ३९ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान,
वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त होकर चार लोकोंके असांख्यातवें भागमें
और अट्ठाईवीपसे असांख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, इन जीवोंके अवहारकालके
लिये प्रतरांगुलके स्थापित पल्योपमके असांख्यातवें भागकी अपेक्षा इनकी अवगाहनाके
लिये घनांगुलका स्थापित पल्योपमका असांख्यातवां भाग असांख्यातगुणा है, अर्थात्
इनके अवहारकालका निमित्तभूत जो प्रतरांगुलका भागहार पल्योपमके असांख्यातवें भाग-
प्रमाण बतलाया गया है उसकी अपेक्षा अवगाहनाका निमित्तभूत पल्योपमके असांख्यातवें
भागप्रमाण घनांगुलका भागद्वार असांख्यातगुणा है । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपादको
प्राप्त बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव तीन लोकोंके असांख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक
व तिर्यग्लोकसे असांख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां अपवर्तना जानकर करना चाहिये ।
इसी प्रकार बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त

१ अ-काप्रसो: 'पत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्ता', आप्रसो 'पत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्तापज्जत्ता' इति पाठः ।

२ प्रतिष्ठा ' रासि ' इति पाठः ।

णवरि बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरा पज्जत्ता सत्थाण-वेयण-कसायपदेसु तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे । कधं ? बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरिणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहणिया ओगाहणा घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, घणंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तबीईदियाणिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहणोगाहणाए असंखेज्जगुणत्तणहाणुववत्तीदो । जदि पत्तेयसरीरपज्जत्ताण-मोगाहणभागहारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो चेव होज्ज तो वि पदरंगुलभागहारादो घणंगुलभागहारो संखेज्जगुणो ति तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं ण विरुज्जदे । एवं बादरतेउकाइयपज्जत्ता । णवरि सत्थाण-वेयण-कसायएहिं पंचणहं लोगाणमसंखेज्जदि-भागे, मारणंतिय-उववादेहिं चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे ति वत्तव्वं । वेउव्वियपदस्स सत्थाणभंगो ।

बादरवाउकाइया तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?

॥ ४० ॥

सुगमं ।

और बादर निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र जानना चाहिये । विशेष इतना है कि बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषाय-समुद्घात पदोंमें तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं । इसका कारण यह है कि बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भागमात्र है, क्योंकि, अन्यथा द्विन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहनासे वह असंख्यातगुणी नहीं बन सकती । यदि प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंकी अवगाहनाका भागहार पर्यापमका असंख्यातवां भाग ही हो तो भी प्रतरांगुलके भागहारसे घनांगुलका भागहार संख्यातगुणा है, अतएव तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग विरुद्ध नहीं है । इसी प्रकार बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंका भी क्षेत्र जानना चाहिये । विशेष इतना है कि स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मारणान्तिक व उपपाद् पदोंकी अपेक्षा चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिये । वैक्रियिक-समुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण स्वस्थानके समान समझना चाहिये ।

बादर वायुकायिक और उनके ही अपर्याप्त जीव स्वस्थानकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ४० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स संखेज्जदिभागे ॥ ४१ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेणेदस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा— तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति । कुदो ? समचउरस्स-लोगणालिं पंचरज्जुआयदमावूरिय तेसिं सव्वकालमवट्ठाणादो ।

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते, सव्वलोगे ? ॥ ४२ ॥

वेयण-कसायसमुग्घादे तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । वेउव्वियसमुग्घादेण चट्ठण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । माणुसखेत्तादो ण णव्वदे । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगे, असंखेज्जलोगपरिमाणत्तादो ।

बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ४३ ॥

सुगममेदं ।

बादर वायुकायिक और उनके अपर्याप्त जीव स्वस्थानसे लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४१ ॥

यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिये इसका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— उक्त जीव स्वस्थानसे तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, समचतुष्कोण पांच राजु आयत लोकनालीको व्याप्त करके उनका सर्व कालमें अवस्थान है ।

उक्त जीव समुद्घात व उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ४२ ॥

वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातकी अपेक्षा उक्त जीव तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा उक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं, यह ज्ञात नहीं हैं । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदसे सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि वे असंख्यात लोकप्रमाण हैं ।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स संखेज्जदिभागे' ॥ ४४ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे- सत्थाण-वेयण-कसायपदेहि तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति । कुदो ? एदसिं पंचरज्जुआयद-एगरज्जु-समंतदोवाहल्लसमचउरसलोगणालीए अवट्टाणादो । वेउच्चियपदेण चउण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे । माणुसखेत्तादो ण णव्वदे । मारणंतिय-उववादेहि तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । सव्वलोगो किण्ण लब्भदे ? ण, अण्णेहिंतो आगंतूण एत्थुप्पज्जमाणजीवाणं एदेहिंतो अण्णत्थुप्पज्जणट्ठं मारणंतियं करेमाणजीवाणं च बहुत्ताभावादो, बादरवाउक्काइयपज्जत्ताणं पाएण पंचरज्जुखेत्तब्भंतरे चैव मारणंतिय-उववादाणमुवलंभादो ।

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोद-जीवा तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ४५ ॥

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपादसे लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंसे बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, इनका पांच राजु आयत और चारों ओरसे एक राजु मोटी समचतुष्कोण लोकनालीमें अवस्थान है । वैक्रियिक पदसे चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं, यह ज्ञात नहीं है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादकी अपेक्षा तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—मारणान्तिकसमुद्घात व उपपादकी अपेक्षा सर्व लोक क्यों नहीं प्राप्त होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अन्य जीवोंमेंसे आकर इनमें उत्पन्न होनेवाले जीव, तथा इनमेंसे अन्यत्र उत्पन्न होनेके लिये मारणान्तिकसमुद्घातको करनेवाले जीव बहुत नहीं हैं, तथा वायुकायिक पर्याप्त जीवोंके प्रायः करके पांच राजुप्रमाण क्षेत्रके भीतर ही मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पद पाये जाते हैं ।

वनस्पतिकायिक, वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोदजीव, निगोदजीव पर्याप्त, निगोदजीव अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक,

सुगममेदं ।

सव्वलोए ॥ ४६ ॥

कुदो ? सव्वलोगं गिरंतरेण वाविय अवट्टाणादो । बादराणं वं सुहुमाणं लोग-
स्सेगदेसे अवट्टाणं किण्ण होज्ज ? ण, 'सुहुमा सव्वत्थ जल-थलागासेसु होंति' त्ति
वयणेण सह विरोहादो ।

बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अप-
ज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ४७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४८ ॥

देसामासियस्सेदस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा— तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे,

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोदजीव,
सूक्ष्म निगोदजीव पर्याप्त और सूक्ष्म निगोदजीव अपर्याप्त, ये स्वस्थान, समुद्घात व
उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ४६ ॥

क्योंकि, निरन्तररूपसे सर्व लोकको व्याप्त कर इनका अवस्थान है ।

शंका—बादर जीवोंके समान सूक्ष्म जीवोंका लोकके एक देशमें अवस्थान
क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा होनेपर 'सूक्ष्म जीव जल, थल व आकाशमें
सर्वत्र होते हैं' इस वचनसे विरोध होगा ।

बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक
अपर्याप्त, बादर निगोदजीव, बादर निगोदजीव पर्याप्त और बादर निगोदजीव
अपर्याप्त स्वस्थानसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ४७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीव स्वस्थानकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४८ ॥

इस देशामर्शक सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— उक्त जीव

णर-तिरियलोगादो संखेज्जगुणे । कुदो ? पुढवीओ चवस्सिदूण बादराणमवट्ठाणादो ।
माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे ।

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ४९ ॥

सुगमं ।

सव्वलोए ॥ ५० ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे— वेयण-कसायसमुग्घादेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे,
तिरियलोगादो संखेज्जगुणे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे । कारणं पुच्चं व वत्तव्वं ।
मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगे । कुदो ? आणंतियादो ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ता पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्ज-
त्ताणं भंगो ॥ ५१ ॥

जेण दोण्हं सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउत्त्रियपदेहि' तिण्हं
लोगाणं असंखेज्जदिभागत्तणेण, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तणेण, माणुसखेत्तादो

स्वस्थानसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे संख्यात-
गुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, पृथिवियोंका आश्रय करके ही बादर जीवोंका अवस्थान
है । मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

उक्त जीव समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमे रहते हैं ? ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीव समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ५० ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातसे तीन
लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे, और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे
क्षेत्रमें रहते हैं । कारण पूर्वके ही समान कहना चाहिये । मारणान्तिकसमुद्घात व
उपपाद पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, वे अनन्त हैं ।

त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीवोंके क्षेत्रका
निरूपण पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान है ॥५१॥

क्योंकि, दोनों (त्रस व पंचेन्द्रिय) जीवोंके स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्व-
स्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा तीन
लोकोंके असंख्यातवें भागत्वसे, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागत्वसे व मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा

असंखेज्जगुणत्तणेण; उववाद-मारणतिएहि' तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तणेण, णर-तिरिय-लोगेहिंतो असंखेज्जगुणत्तणेण; केवलिसमुग्घादेण तेजाहारपदेहि य अपज्जत्तजोग्गपदेहि य भेदो णत्थि । तेण पंचिदियाणं भंगो त्ति ण विरुज्जदे ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ५२ ॥

एत्थ सत्थाणे' दो वि सत्थाणाणि अत्थि, समुग्घादे वेयण-कसाय-वेउव्विय-तेजाहार-मारणतियसमुग्घादा अत्थि, उट्ठाविदउत्तरसरीराणं मारणतियगदाणं पि मण-वचि-जोगसंभवस्स विरोहाभावादो । उववादो णत्थि, तत्थ कायजोगं मोत्तूणणजोगाभावादो ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ५३ ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे । तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-

असंख्यातगुणत्वसे कोई भेद नहीं है; उपपाद् व मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भागत्वसे एवं मनुष्य व तिर्यग्लोककी अपेक्षा असंख्यातगुणत्वसे कोई भेद नहीं है; तथा केवलिसमुद्घात, तैजससमुद्घात व आहारकसमुद्घात पदोंसे एवं अपर्याप्त योग्य पदोंसे भी कोई भेद नहीं है । अत एव 'उक्त त्रस जीवोंका क्षेत्र पंचेन्द्रिय जीवोंके समान है' ऐसा कहना विरुद्ध नहीं है ।

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीव स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ५२ ॥

यहां स्वस्थानमें दोनों स्वस्थान और समुद्घातमें वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात, आहारसमुद्घात एवं मारणान्तिक-समुद्घात हैं, क्योंकि, उत्तर शरीरको उत्पन्न करनेवाले मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त जीवोंके भी मनोयोग व वचनयोगके होनेमें कोई विरोध नहीं है । मनोयोगी व वचन-योगी जीवोंमें उपपाद् पद नहीं है, क्योंकि, उनमें काययोगको छोड़कर अन्य योगोंका अभाव है ।

पांचों मनोयोगी व पांचों वचनयोगी जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहार-

१ प्रतिष्ठा ' -मारणतिण्ण ' इति पाठः ।

२ प्रतिष्ठा ' सत्थाणेण ' इति पाठः ।

वेउव्वियसमुग्घादगदा एदे दस वि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे; तेजाहारसमुग्घादगदा चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जस्स संखेज्जदिभागे; मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति । उववादं णत्थि, मणजोगवचिजोगाणं विवक्खादो ।

कायजोगी-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ५४ ॥

सुगममेदं ।

सव्वलोए ॥ ५५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा— सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगे । कुदो ? आणंतियादो । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि कायजोगिणो तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे ।

वत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त ये दश ही जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई-द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । तैजससमुद्घात व आहारकसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपके संख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्य व तिर्यग्लोककी अपेक्षा असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । उपपाद पद नहीं है, क्योंकि, मनोयोग व वचनयोगकी यहां विवक्षा है ।

काययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ५४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

काययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ५५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे काययोगी व औदारिक-मिश्रकाययोगी सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, वे अनन्त हैं । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे काययोगी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, जगप्रतरके

कुदो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसरासिस्स गहणादो । तेजाहारपदेहि कायजोगिणो चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जस्स संखेज्जदिभागे । दंड-कवाड-पदर-लोग-पूरणेहि कायजोगिणो ओघमंगो ।

ओरालियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥५६॥

सुगमं ।

सव्वलोए ॥ ५७ ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे— सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतियेहि सव्वलोभे । कुदो ? सव्वत्थावट्टाणाविरोहिजीवाणमोरालियकायजोगीणं मारणंतियादो । विहारपदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? तसणालिं^१ मोत्तूणणत्थ विहाराभावादो । वेउव्विय-तेजा-दंडसमुग्घादगदा चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । णवरि तेजासमुग्घादगदा माणुस-

असंख्यातवें भागमात्र त्रसराशिका यहां ग्रहण है । तैजससमुद्घात और आहारक-समुद्घात पदोंसे काययोगी जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपके संख्यातवें भागमें रहते हैं । दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा काययोगियोंके क्षेत्रका निरूपण ओघके समान है ।

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ५६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ५७ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा उक्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि सर्वत्र अवस्थानके अविरोधी औदारिककाययोगी जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात होता है । विहारपदकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई-द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, त्रसनालिको छोड़कर उक्त जीवोंका अन्यत्र विहार नहीं है । वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और दण्डसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । विशेष इतना है कि तैजससमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें

१ प्रतिष्ठा ' त्रसरासि ' इति पाठः ।

खेत्तस्स संखेज्जदिभागे । क्वाड-पदर-लोगवूरणाहारपदाणि णत्थि, ओरालियकायजोगेण तेसिं विरोहादो ।

उववादं णत्थि ॥ ५८ ॥

ओरालियकायजोगेण सह एदस्स विरोहादो ।

वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥५९॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ६० ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-पदेहि वेउव्वियकायजोगिणो तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? पहाणीकयजोइसियरासित्तादो । मारणंतिय-समुग्घादेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्टणं जाणिय कायव्वं ।

उववादो णत्थि ॥ ६१ ॥

रहते हैं । कपाटसमुद्घात, प्रतरसमुद्घात, लोकपूरणसमुद्घात और आहारकसमुद्घात पद नहीं है, क्योंकि, औदारिककाययोगके साथ उनका विरोध है ।

औदारिककायजोगी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ ५८ ॥

क्योंकि, औदारिककाययोगके साथ इसका विरोध है ।

वैक्रियिककाययोगी स्वस्थान और समुद्घातसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥५९॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिककायजोगी जीव स्वस्थान व समुद्घातसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६० ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना-समुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे वैक्रियिककाययोगी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अडाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां ज्योतिषी राशिकी प्रधानता है । मारणान्तिक-समुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोककी अपेक्षा असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां अपवर्तन जानकर करना चाहिये ।

वैक्रियिककाययोगियोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ ६१ ॥

वेउव्वियकायजोगेण उववादस्स विरोहादो ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ६२ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ६३ ॥

एदस्स अत्थो— तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाहज्जादो असंखेज्जगुणे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे । कुदो ? देवरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्तवेउव्वियमिस्स कायजोगिदव्वुवलंभादो ।

समुग्घाद-उववादा णत्थि ॥ ६४ ॥

वेउव्वियमिस्सेण सह एदेसिं विरोहादो । होदु मारणंतिय-उववादेहि सह विरोहो, ण वेयण-कसायसमुग्घादेहि । तम्हा वेउव्वियमिस्सम्मि समुग्घादो णत्थि त्ति ण घडदे ? एत्थ परिहारो वुच्चदे— सत्थाणखेत्तादो वाचयदुवारेण लोगस्स असंखेज्जदिभागेण

क्योंकि, वैक्रियिककाययोगके साथ उपपाद पदका विरोध है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी स्वस्थानकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ६२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थानकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थानसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे, और तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, देवराशिके संख्यातवें भागमात्र वैक्रियिकमिश्रकाययोगी द्रव्य पाया जाता है ।

समुद्घात व उपपाद पद नहीं हैं ॥ ६४ ॥

क्योंकि, वैक्रियिकमिश्रकाययोगके साथ इनका विरोध है ।

शंका—वैक्रियिकमिश्रकाययोगका मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंके साथ भले ही विरोध हो, किन्तु वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातके साथ कोई विरोध नहीं है । अत एव 'वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें समुद्घात नहीं है' यह वचन घटित नहीं होता ?

समाधान—उक्त शंकाका यहां परिहार कहा जाता है— स्वस्थान क्षेत्रसे

वेयण-कसाय-वेउच्चिय-विहारवदिसत्थाण-तेजाहारखेत्ताणि अपुअभूदत्तादो तत्थेव लीणाणि त्ति एदाणि एत्थ खुद्दाबंधे ण परिग्गहिदाणि । तदो मारणंतियमेक्कं चेव केवलिसमुग्घादेण सहिदं एत्थ समुग्घादणिद्देसेण वेप्पदि । सो च समुग्घादो एत्थ णत्थि, तेणेसो ण दोसो त्ति । अधवा वेयण-कसाय-वेउच्चिय-तेजाहारणं पि एत्थ खुद्दाबंधे अत्थि समुग्घाद-ववएसो, किंतु ण ते पहाणं, मारणंतियखेत्तादो तेसिमहियखेत्ताभावादो । तदो पहाणं मारणंतियपदं जत्थ अत्थि, तत्थ समुग्घादो वि अत्थि । जत्थ तं णत्थि, ण तत्थ समुग्घादो त्ति बुच्चदि । तदो दोहि पयोरेहि 'समुग्घादो णत्थि' त्ति ण विरुज्झदे ।

आहारकायजोगी वेउच्चियकायजोगिभंगो ॥ ६५ ॥

एसो दव्वट्टियणिद्देसो । पज्जवट्टियणयं पडुच्च भण्णमाणे अत्थि तदो विसेसो । तं जहा-सत्थाण-विहारवदिसत्थाणपरिणदा चदुण्हं लोभाणमसंखेज्जदिभागे, माणुस-खेत्तस्स संखेज्जदिभागे । मारणंतियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोभाणमसंखेज्जदिभागे,

कथनकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागसे वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, विहारवत्स्वस्थान, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घातके क्षेत्र अभिन्न होनेसे उसीमें लीन हैं, अतएव ये यहां 'क्षुद्रकबन्ध' में नहीं ग्रहण किये गये हैं । इसी कारण केवलिसमुद्घात सहित एक मारणान्तिकसमुद्घात ही यहां समुद्घात-निर्देशसे ग्रहण किया जाता है । और वह समुद्घात यहां है नहीं, इसलिये यह कोई दोष नहीं है । अथवा वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजस-समुद्घात और आहारकसमुद्घातको भी यहां 'क्षुद्रकबन्ध' में समुद्घातसंज्ञा प्राप्त है, किन्तु वे प्रधान नहीं हैं, क्योंकि, मारणान्तिक क्षेत्रकी अपेक्षा उनके अधिक क्षेत्रका अभाव है । अतएव जहां प्रधान मारणान्तिक पद है वहां समुद्घात भी है, किन्तु जहां वह नहीं है वहां समुद्घात भी नहीं है, ऐसा कहा जाता है । इस कारण दोनों प्रकारोंसे 'समुद्घात नहीं है' यह वचन विरोधको प्राप्त नहीं होता ।

आहारककाययोगियोंके क्षेत्रका निरूपण वैक्रियिककाययोगियोंके क्षेत्रके समान है ॥ ६५ ॥

यह द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा निर्देश है । पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा निरूपण करनेपर वैक्रियिककाययोगियोंके क्षेत्रसे यहां विशेषता है । वह इस प्रकार है— स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रसे परिणत आहारककाययोगी जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त

अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे त्ति ।

आहारमिस्सकायजोगी वेउव्वियमिस्सभंगो ॥ ६६ ॥

एसो वि दव्वट्टियणिदेसो, लोगस्स असंखेज्जदिभागत्तणेण दोण्हं खेत्ताणं समाणत्तं पेक्खिय पवुत्तीदो । पज्जवट्टियणयं पडुच्च भेदो अत्थि । तं जहा— आहारमिस्सकायजोगी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे त्ति ।

कम्मइयकायजोगी केवडिखेत्ते ? ॥ ६७ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगे ॥ ६८ ॥

एदं देसामासियसुत्तं ण होदि, वुत्तत्थं मोत्तूणेदेण सूइदत्थाभावादो । कधं कम्मइयकायजोगिरासी सव्वलोए ? ण, तस्स अणंतस्स सव्वजीवरासिस्स असंखेज्जदिभागत्तणेण तदविरोहादो ।

जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

आहारकमिश्रकाययोगियोंका क्षेत्र वैक्रियिकामिश्रकाययोगियोंके समान है ॥ ६६ ॥

यह भी द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा निर्देश है, क्योंकि, लोकके असंख्यातवें भागत्वसे दोनों क्षेत्रोंकी समानताकी अपेक्षा कर इसकी प्रवृत्ति हुई है । पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा भेद है । वह इस प्रकार है— आहारकमिश्रकाययोगी जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं ।

कर्मणकाययोगी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कर्मणकाययोगी जीव सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ६८ ॥

यह देशामर्शक सूत्र नहीं है, क्योंकि, उक्त अर्थको छोड़कर इसके द्वारा सूचित अर्थका अभाव है ।

शंका—कर्मणकाययोगी जीवराशि सर्व लोकमें कैसे रहती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कर्मणकाययोगिराशिके अनन्त सर्व जीवराशिके असंख्यातवें भाग होनेसे उसमें कोई विरोध नहीं है ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उव-
वादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ६९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ७० ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सूइदत्थो वुच्चदे । तं जहा— सत्थाण-विहारवदि-
सत्थाण-वेयण-कसाय-वेउच्चियसमुद्घादगदा इत्थिवेदजीवा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? पहाणीकयदेवित्थि-
वेदरासित्तादो । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहितो
असंखेज्जगुणे । एत्थ मारणंतिय-उववादखेत्तविण्णासो जाणिदूण कायव्वो । एवं पुरिस-
वेदस्स वि वत्तव्वं । णवरि एत्थ तेजाहारपदाणि अत्थि । तेसु वडुंता चदुण्णं लोगाणम-
संखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे ति वत्तव्वं ।

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव स्वस्थान, समुद्घात और
उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते
हैं ॥ ७० ॥

इस देशामर्शक सूत्रसे सूचित अर्थको कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थान,
विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त
स्त्रीवेदी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और
अट्टाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां देव स्त्रीवेद राशि प्रधान है ।
मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त स्त्रीवेदी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें
भागमें और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां मारणान्तिक
और उपपाद क्षेत्रोंका विन्यास जानकर करना चाहिये । इसी प्रकार पुरुषवेदियोंका
क्षेत्र भी कहना चाहिये । विशेष इतना है कि पुरुषवेदियोंमें तैजससमुद्घात और
आहारकसमुद्घात पद भी हैं । उन पदोंमें वर्तमान पुरुषवेदी जीव चार लोकोंके
असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिये ।

णवुंसयवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?
॥ ७१ ॥

सुगममेदं ।

सव्वलोए ॥ ७२ ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे । तं जहा — सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोए । कुदो ? आणंतियादो । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिहं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । णवरि वेउव्वियसमुग्घादगदा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे । कुदो ? तस-रासिग्गहणादो ।

अवगदवेदा सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ७३ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ७४ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे — चदुण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स

नपुंसकवेदी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ?
॥ ७१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नपुंसकवेदी जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७२ ॥

इसका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है — स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त नपुंसकवेदी जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, वे अनन्त हैं । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । विशेष इतना है कि वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, यहां त्रसराशिका ग्रहण है ।

अपगतवेदी जीव स्वस्थानसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ७३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपगतवेदी जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं — अपगतवेदी जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें

संखेज्जदिभागे । कुदो ? संखेज्जुवसामग-खवगजीवग्गहणादो ।

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ७५ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेषु सव्वलोगे
वा ॥ ७६ ॥

मारणंतियसमुग्घादगदा उवसामगा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइजादो
असंखेज्जगुणे । एवं दंडगदा वि । क्खाडगदा वि एवं चेव । णवरि तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागे त्ति वत्तव्वं । पदरगदा लोगस्स असंखेज्जेसु भागेषु । कुदो ? वादवलएसु
जीवपदेसाभावादो । लोगपूरणे सव्वलोगे, जीवपदेसेहि अणोड्ढलोगपदेसाभावादो ।

उववादं णत्थि ॥ ७७ ॥

तत्थुःपज्जमाणजीवाभावादो ।

और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, यहां संख्यात उपशामक और
क्षपक जीवोंका ग्रहण है ।

अपगतवेदी जीव समुद्घातकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ७५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपगतवेदी जीव समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा
असंख्यात बहुभागोंमें, अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७६ ॥

मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उपशामक जीव चार लोकोंके असंख्यातवें
भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार दण्डसमुद्घातको
प्राप्त जीव भी चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें
रहते हैं । कपाटसमुद्घातको प्राप्त जीवोंका क्षेत्र भी इसी प्रकार ही है । विशेष इतना है
कि तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ऐसा कहना चाहिये । प्रतरसमुद्घातको प्राप्त
वे ही जीव लोकके असंख्यात बहुभागोंमें रहते हैं, क्योंकि, इस अवस्थामें वातवलयोंमें
जीवप्रदेशोंका अभाव रहता है । लोकपूरणसमुद्घातको प्राप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं,
क्योंकि, जीवप्रदेशोंसे अनवष्टब्ध लोकप्रदेशोंका इस अवस्थामें अभाव रहता है ।

अपगतवेदी जीवोंमें उपपाद पद नहीं होता ॥ ७७ ॥

क्योंकि, अपगतवेदियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका अभाव है ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई
णवुंसयवेदभंगो ॥ ७८ ॥

कुदो ? सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगावट्टाणेण; वेउव्विया-
हारपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तणेण, तिरियलोगस्स संखेज्जदिगत्तणेण,
अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणत्तणेण दोण्हं भेदाभावादो । णवरि वेउव्वियस्स तिरियलोगस्स
संखेज्जदिभागत्तणेण भेदो अत्थि, तमेत्थ ण पहाणं । णवरि एत्थ तेजाहारपदाणि
अत्थि, णवुंसए णत्थि अप्पसत्थत्तणेण ।

अकसाई अवगदवेदभंगो ॥ ७९ ॥

सुगममेदं ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी णवुंसयवेदभंगो
॥ ८० ॥

णवरि वेउव्वियस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तणेण भेदो अत्थि, तमेत्थ

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी
जीवोंका क्षेत्र नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ ७८ ॥

क्योंकि, स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और
उपपाद पदोंकी अपेक्षा सर्व लोकमें अवस्थानसे, तथा वैक्रियिक और आहारक समुद्धातकी
अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें व तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागत्वसे एवं अट्टाई
द्वीपकी अपेक्षा संख्यातगुणत्वसे उक्त चारों कषायवाले जीवों व नपुंसकवेदियोंके कोई
भेद नहीं है । विशेष इतना है कि वैक्रियिकसमुद्धातकी अपेक्षा तिर्यग्लोकके संख्यातवें
भागत्वसे भेद है, किन्तु वह यहां प्रधान नहीं है । दूसरी विशेषता यह है कि यहां
तैजससमुद्धात और आहारकसमुद्धात पद हैं, किन्तु अप्रशस्त होनेसे नपुंसकवेदियोंमें ये
नहीं होते हैं ।

अकषायी जीवोंका क्षेत्र अपगतवेदियोंके समान है ॥ ७९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ज्ञानमार्गणानुसार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानियोंका क्षेत्र नपुंसकवेदियोंके
समान है ॥ ८० ॥

विशेष इतना है कि वैक्रियिकसमुद्धातकी अपेक्षा तिर्यग्लोकके संख्यातवें

अप्पहाणं ।

विभंगणाणि-मणपज्जवणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडि-
खेत्ते ? ८१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८२ ॥

एत्थ ताव विभंगणाणीणं वुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-
कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदि-
भागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगणे । कुदो ? पहाणीकददेवपज्जत्तरासित्तादो । मारणंतिय-
समुग्घादगदा एवं चैव । णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं ।

मणपज्जवणाणीणं वुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-
समुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जस्स संखेज्जदिभागे । मारणंतिय-
समुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे । सेसं सुगमं ।

भागत्वसे दोनोंमें भेद है, परन्तु वह यहां अप्रधान है ।

विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव स्वस्थान व समुद्रातसे कितने क्षेत्रमें
रहते हैं ? ॥ ८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें
रहते हैं ॥ ८२ ॥

यहां पहले विभंगज्ञानियोंका क्षेत्र कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहार-
वत्स्वस्थान, वेदनासमुद्रात, कषायसमुद्रात और वैक्रियिकसमुद्रातको प्राप्त विभंग-
ज्ञानी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और
अट्ठाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां देव पर्याप्त राशि प्रधान है ।
मारणान्तिकसमुद्रातको प्राप्त विभंगज्ञानियोंके क्षेत्रका प्ररूपण भी इसी प्रकार है ।
विशेष इतना है कि वे तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ऐसा कहना चाहिये ।

मनःपर्ययज्ञानियोंका क्षेत्र कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान,
वेदनासमुद्रात और कषायसमुद्रातको प्राप्त मनःपर्ययज्ञानी जीव चार लोकोंके
असंख्यातवें भागमें और अट्ठाई द्वीपके संख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिक-
समुद्रात प्राप्त वे ही जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्ठाई द्वीपसे
असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उववादं णत्थि ॥ ८३ ॥

एदेसिं दोण्हं णाणाणमपज्जत्तकाले संभवाभावादो ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण
केवडिखेत्ते ? ॥ ८४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८५ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा—सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-
वेउक्खिय-मारणंतिय-उववाद्गदा एदे च्चदुण्हं लोणाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो
असंखेज्जगुणे । एवं तेजाहारपदेसु वि । णवरि माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे ।

केवलणाणी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ८६ ॥

सुगमं ।

विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ ८३ ॥

क्योंकि, अपर्याप्तकालमें इन दोनों ज्ञानोंकी संभावना नहीं है ।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीव स्वस्थान, समुद्घात
और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है—स्वस्थानस्वस्थान, विहार-
वत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात
और उपपादको प्राप्त ये उपर्युक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्ठाई द्वीपसे
असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात
पदोंमें जानना चाहिये । विशेष इतना है कि इन पदोंकी अपेक्षा मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें
भागमें रहते हैं ।

केवलज्ञानी जीव स्वस्थानकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८७ ॥

सत्थाण-विहारवदिसत्थाणेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागं माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागं च मोत्तूणुवरि पुसणस्साभावादो ।

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ८८ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेषु सब्वलोगे वा ॥ ८९ ॥

दंडगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कवाड-गदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । पदरगदा लोगस्स असंखेज्जेसु भागेषु । लोगपूरणे सब्वलोगे ।

उववादं णत्थि ॥ ९० ॥

अपज्जत्तकाले केवलणाणाभावादो ।

केवलज्ञानी जीव स्वस्थानसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८७ ॥

स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागको छोड़कर ऊपर स्पर्शनका अभाव है ।

समुद्घातकी अपेक्षा केवलज्ञानी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

समुद्घातकी अपेक्षा केवलज्ञानी जीव लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागोंमें, अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ? ॥ ८९ ॥

दण्डसमुद्घात केवलज्ञानी चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । कपाटसमुद्घातगत केवलज्ञानी तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । प्रतरसमुद्घातगत केवलज्ञानी लोकके असंख्यात बहुभागोंमें रहते हैं । लोकपूरण-समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोकमें रहते हैं ।

केवलज्ञानियोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ ९० ॥

क्योंकि, अपर्याप्तकालमें केवलज्ञानका अभाव है ।

संजमाणुवादेण संजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा अकसाई-
भंगो ॥ ९१ ॥

एसो दच्चट्टियणिहेसो । पज्जवट्टियणए अवलंबिज्जमाणे विसेसो अत्थि तं
वत्तइस्सामो । तं जहा— सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउच्चिय-तेजाहार-
समुग्घादगदा संजदा च्चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे ।
मारणंतियसमुग्घादगदा च्चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे ।
केवलिसमुग्घादगदा (लोगस्स असंखेज्जदिभागे) असंखेज्जेसु वा भागेषु सच्चलोगे वा ।
एवं जहाक्खादसुद्धिसंजदाणं वत्तच्चं । णवरि तेजाहारपदाणि णत्थि ।

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा सुहुम-
सांपराइयसुद्धिसंजदा संजदासंजदा मणपज्जवणाणिभंगो ॥ ९२ ॥

एसो दच्चट्टियणिहेसो । पज्जवट्टियणए अवलंबिज्जमाणे पुण अत्थि विसेसो ।
तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउच्चिय-तेजाहारपदेहि सामाइय-

संयममार्गणानुसार संयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीवोंका क्षेत्र अकषायी
जीवोंके समान, है ? ॥ ९१ ॥

यह कथन द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे है । पर्यायार्थिक नयका अवलंबन
करनेपर जो विशेषता है उसे कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान,
वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारक-
समुद्घातको प्राप्त संयत जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुष-
क्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव चार
लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । केवलि-
समुद्घातको प्राप्त वे ही संयत जीव (लोकके असंख्यातवें भागमें), अथवा असंख्यात
बहुभागोंमें, अथवा सर्व लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार यथाख्यातशुद्धिसंयत जीवोंका
क्षेत्र भी कहना चाहिये । विशेष इतना है कि उनके तैजस और आहार पद नहीं होते ।

समायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत
और संयतासंयत जीवोंका क्षेत्र मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है ॥ ९२ ॥

यह कथन द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे है । पर्यायार्थिक नयका अवलंबन करने-
पर विशेषता है । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना-
समुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात,

छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । मारणंतियपदेण एवं चेव । णवरि माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं । एवं परिहारसुद्धिसंजदाणं । णवरि तेजाहारं णत्थि । एवं सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणं । णवरि विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियपदाणि वि णत्थि । सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपदेहि संजदासंजदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे त्ति भेदुवलंभादो ।

असंजदा णवुंसयभंगो ॥ ९३ ॥

णवरि वेउव्वियस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे । सेसं सुगमं ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?

॥ ९४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९५ ॥

इन पदोंकी अपेक्षा सामायिक छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिकपदकी अपेक्षा भी इसी प्रकार ही क्षेत्रका निरूपण है । विशेष इतना है कि मारणान्तिकसमुद्घातगत जीव मानुष-क्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ऐसा कहना चाहिये । इसी प्रकार परिहारशुद्धि-संयत जीवोंका भी क्षेत्र है । विशेषता केवल इतनी है कि इनके तैजस और आहारक-समुद्घात नहीं होते । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंका भी क्षेत्र है । विशेष इतना है कि इनके विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घात पद भी नहीं हैं । स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे संयतासंयत जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, इस प्रकार भेद पाया जाता है ।

असंयत जीवोंका क्षेत्र नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ ९३ ॥

विशेष इतना है कि वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त असंयत जीव तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी जीव स्वस्थानसे और समुद्घातसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ९४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चक्षुदर्शनी जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ९५ ॥

एत्थ विवरणं कस्सामो । तं जहा— सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउत्थिवयपदेहि चक्खुदंसणी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । तेजाहारपदेहि चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । मारणंतियपदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहितो असंखेज्जगुणे अच्छंति त्ति संबंधो कायच्चो ।

उववादं सिया अत्थि, सिया णत्थि । लद्धिं पडुच्च अत्थि, णिव्वत्तिं पडुच्च णत्थि । जदि लद्धिं पडुच्च अत्थि, केवडिखेत्ते ?
॥ ९६ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९७ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे । तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहितो असंखेज्जगुणे ।

अचक्खुदंसणी असंजदभंगो ॥ ९८ ॥

इस सूत्रके अर्थका विवरण करते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थान, विहार-वत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अट्टाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिये ।

चक्षुदर्शनी जीवोंके उपपाद पद कथंचित् होता है, और कथंचित् नहीं भी होता है । लब्धिकी अपेक्षा उपपाद पद होता है, किन्तु निर्वृत्तिकी अपेक्षा नहीं होता । यदि लब्धिकी अपेक्षा उपपाद पद होता है तो उसकी अपेक्षा वे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥९६॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपपादकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥९७॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— उपपादकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

अचक्षुदर्शनियोंका क्षेत्र असंयत जीवोंके समान है ॥ ९८ ॥

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ ९९ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १०० ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया नीललेस्सिया काउलेस्सिया
असंजदभंगो ॥ १०१ ॥

कुदो ? सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणतिय-उववादेहि सव्वलोगे अवट्टाणेण;
विहारवदिसत्थाण-वेउच्चियपदेहि तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदि-
भागे, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणे अवट्टाणेण च साधम्मियादो । णवरि वेउच्चिय
तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे । तमेत्थ अप्पहाणं ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण
केवडिखेत्ते ? ॥ १०२ ॥

सुगमं ।

अवधिदर्शनियोंका क्षेत्र अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ ९९ ॥

केवलदर्शनियोंका क्षेत्र केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १०० ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

लेश्यामार्गणानुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले
जीवोंका क्षेत्र असंयतोंके समान है ॥ १०१ ॥

क्योंकि, स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात
और उपपाद, इन पदोंकी अपेक्षा सर्व लोकमें अवस्थानसे; तथा विहारवत्स्वस्थान और
वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवै भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवै
भागमें, एवं अट्टाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें अवस्थानसे उपर्युक्त लेश्यावाले जीवोंकी
असंयत जीवोंसे समानता है। विशेष इतना है कि वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा उक्त जीव
तिर्यग्लोकके असंख्यातवै भागमें रहते हैं। किन्तु वह यहां अप्रधान है।

तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे
कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १०२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १०३ ॥

एदस्स देसामासियसुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहार-वदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि तेउलेस्सिया तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? पहाणीकयदेव-रासित्तादो । मारणंतियपदेण वि एवं चेव । णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं । एवं चेव उववादेण वि । एत्थ ओवट्ठणे ठविज्जमाणे सोधम्मरासिं ठविय अप्पणो उवक्कमणकालेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे एगसमएण तत्थुप्पज्जमाणजीवपमाणं होदि । पुणो पभापत्थडे उप्पज्जमाणजीवाणं पमाणगमणट्ठम-वेरगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो । एवं ठविदे दिवड्ढुरज्जुआयामेण उववाद्दगदजीवपमाणं होदि । पुणो संखेज्जपदरंगुलमेत्तरज्जूहि गुणिदे उववाद्दखेत्तं होदि । एत्थ ओवट्ठणं जाणिय कायव्वं ।

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसायपदेहि पम्मलेस्सिया तिण्हं लोगाणं

उक्त दो लेख्यावाले जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ १०३ ॥

इस देशामर्शक सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे तेजोलेख्यावाले जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां देवराशिकी प्रधानता है । मारणान्तिकसमुद्घात पदकी अपेक्षा भी इसी प्रकार ही क्षेत्र है । विशेष इतना है कि तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिये । इसी प्रकार उपपाद् पदकी अपेक्षा भी क्षेत्रका निरूपण जानना चाहिये । यहां अपवर्तनके स्थापित करते समय सौधर्मराशिको स्थापित कर अपने उपक्रमणकालरूप पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर एक समयमें वहां उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है । पुनः प्रभा पटलमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके प्रमाणके परिज्ञानार्थ एक अन्य पल्योपमके असंख्यातवें भागको भागहाररूपसे स्थापित करना चाहिये । इस प्रकार उक्त भागहारके स्थापित करनेपर डेढ़ राजुप्रमाण आयामसे उपपाद्को प्राप्त जीवोंका प्रमाण होता है । पुनः उसे संख्यात प्रतरांगुलमात्र राजुओंसे गुणित करनेपर उपपाद्क्षेत्रका प्रमाण होता है । यहां अपवर्तना जानकर करना चाहिये ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात

असंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? पहाणीकदतिरिक्खरासीदो । वेउच्चिय-मारणंतिय-उववादेहि चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागे अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? सणक्कुमार-माहिंदजीवाणं पाहणियादो ।

सुक्कलेस्सिया सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १०४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १०५ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-उववादेहि चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एत्थ उववादजीवा संखेज्जा चेव । कुदो ? मणुस्सेहिंतो चेव आगमणादो ।

समुग्घादेण लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा ॥ १०६ ॥

...

पदोंसे पद्मलेश्यावाले जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तिर्यंग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां तिर्यंचराशि प्रधान है । वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पके जीवोंकी प्रधानता है ।

शुक्लेश्यावाले जीव स्वस्थान और उपपाद पदोंसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १०४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्लेश्यावाले जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥१०५॥

इसका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान और उपपाद पदोंसे शुक्लेश्यावाले जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां उपपादपदगत जीव संख्यात ही हैं, क्योंकि, मनुष्योंमेंसे ही यहां आगमन है ।

शुक्लेश्यावाले जीव समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागोंमें अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १०६ ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे । तं जहा— वेयण-कसाय-वेउव्विय-दंड-मारणंतियपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एवं तेजाहारपदाणं पि । णवरि माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे त्ति वत्तव्वं । सेसकेवल्लिपदाणि सुगमाणि ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १०७ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगे ॥ १०८ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि अभवसिद्धिया सव्वलोगे । कुदो ? आणंतियादो । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? 'सव्वत्थोवा धुवबंधगा, सादियबंधगा असंखेज्जगुणा, अणादियबंधगा असंखेज्जगुणा, अद्भुवबंधगा विसेसाहिया धुवबंधगेणूणसादियबंधगेणेत्ति' तसरासिमस्सिदूण वुत्तबंधप्पावहुगसुत्तादो णव्वदे ।

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, दण्डसमुद्घात और मारणान्तिक पदोंकी अपेक्षा चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार तैजससमुद्घात व आहारकसमुद्घात पदोंके भी क्षेत्रका निरूपण करना चाहिये । विशेष इतना है कि इन पदोंकी अपेक्षा उक्त जीव मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिये । शेष केवलिसमुद्घात पद सुगम हैं ।

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १०७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यसिद्धिक व अभव्यसिद्धिक जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥१०८॥

इसका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा अभव्यसिद्धिक जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, वे अनन्त हैं । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—यह कहाँसे जाना जाता है ?

समाधान—'धुवबन्धक सबसे स्तोक हैं, सादिबन्धक असंख्यातगुणे हैं, अनादिबन्धक असंख्यातगुणे हैं, और अधुवबन्धक धुवबन्धकोंसे रहित सादिबन्धकोंके प्रमाणसे विशेष अधिक हैं' इस प्रकार त्रसराशिका आश्रय कर कहे गये बन्धसम्बन्धी अल्प-

तसकाइएसु अभवसिद्धिया पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता । कधमेदं णव्वदे ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ततससादियबंधगेहिंतो तसधुवबंधगाणमसंखेज्जगुण-हीणत्तण्णहाणुववत्तीदो । भवसिद्धियाणमोघमंगो ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्मादिट्ठी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १०९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११० ॥

एदस्स अत्थो बुच्चदे । तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-उववादेण चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तरासित्तादो ।

बहुत्वानियोगद्वारके सूत्रसे जाना जाता है ।

त्रसकायिकोंमें अभव्यसिद्धिक जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हैं ।

शंका— यह कैसे जाना जाता है कि त्रसकायिकोंमें अभव्यसिद्धिक जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही हैं ?

समाधान— क्योंकि, यदि ऐसा न माना जाय तो पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र त्रस सादिबन्धकोंकी अपेक्षा त्रस धुवबन्धकोंके असंख्यातगुणहीनता बन नहीं सकती ।

भव्यसिद्धिक जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि स्वस्थान और उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १०९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ११० ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहार-वत्स्वस्थान और उपपाद पदसे उक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अट्ठाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, उक्त जीवराशि पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र है ।

समुग्घादेण लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेषु
सव्वलोगे वा ॥ १११ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिएहि सम्मादिट्ठी
खइयसम्मादिट्ठी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे । एवं
केवलिदंडखेत्तं पि । एवं तेजाहारपदाणं । णवरि माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे त्ति
वत्तच्चं । सेसतिणिण वि केवलिपदाणि सुगमाणि ।

वेदगसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सासणसम्माइट्ठी सत्थाणेण समु-
ग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ११२ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जाणिय वत्तच्चो । णवरि उवसमसम्माइट्ठीसु मारणंति-
उववादपदट्ठिदजीवा संखेज्जा चेव ।

सम्यग्दृष्टि व क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें
भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागोंमें, अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १११ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिक-
समुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्य-
ग्दृष्टि जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें व मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यातगुणे
क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार केवलिदण्डसमुद्घातकी अपेक्षा भी क्षेत्रका निरूपण करना
चाहिये । इसी प्रकार तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा भी
क्षेत्रका प्रमाण जानना चाहिये । विशेष इतना है कि उक्त दोनों समुद्घातगत जीव
जीव मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिये । शेष तीनों ही
केवलपद सुगम हैं ।

वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थान,
समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ११२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव उक्त पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ११३ ॥

इस सूत्रका अर्थ जानकर कहना चाहिये । विशेष इतना है कि उपशमसम्य-
ग्दृष्टियोंमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंमें स्थित जीव संख्यात ही हैं ।

सम्मामिच्छाद्विह्वी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ११४ ॥

सम्मामिच्छाद्विह्वीस्स वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेसु संतेसु वि समुग्घादस्स अत्थित्त-मभणिय सत्थाणपदस्स एक्कस्स चैव परूवणादो णज्जदिं जधा वेयण-कसाय-वेउव्विय-पदाणि समुग्घादपदमिह ण गहिदाणि त्ति । जदि एदमिह गंथे ण गहिदाणि तो वि किमट्ठं एत्थ परूवणा कीरदे ? जेसिमेरिसो अहिप्पाओ ण ते तेहि परूवेत्ति । जेसिं पुण समुग्घादपदस्संतो वेदणादिपदाणि अत्थि ते तेहि परूवणं करेत्ति । जदि एवं तो सम्मामिच्छाद्विह्वीसु समुग्घादपदेण होदव्वं ? ण एस दोसो, जत्थ मारणंतियमत्थि तत्थेव तेसिमत्थित्तस्स अब्भुवगमादो । किमट्ठमेवंविहअब्भुवगमो कीरदे ? ण, मारणंतिएण विणा वेदणादिखेत्ताणं पहाणत्ताभावपदुप्पायणट्ठं तहाब्भुवगमकरणे दोसाभावादो । सेसं सुगमं ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव स्वस्थानकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ११४ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंके होनेपर भी समुद्घातके अस्तित्वको न कहकर केवल एक स्वस्थानपदके ही निरूपणसे जाना जाता है कि वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पद समुद्घातपदमें गृहीत नहीं है ।

शंका—यदि इस ग्रन्थमें वे गृहीत नहीं हैं तो किस लिये यहां उनकी प्ररूपणा की जाती है ?

समाधान—इस प्रकार जिनका अभिप्राय है वे उनकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण नहीं करते हैं । किन्तु जिनके अभिप्रायसे वेदनासमुद्घातादि पद समुद्घात पदके भीतर हैं वे उनकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण करते हैं ।

शंका—यदि ऐसा है तो सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें समुद्घात पद होना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जहां मारणान्तिकसमुद्घात पद है वहां ही उनका अस्तित्व स्वीकार किया गया है ।

शंका—ऐसा किस लिये स्वीकार किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घातके विना वेदनादिसमुद्घात क्षेत्रोंकी प्रधानताके अभावको बतलानेके लिये वैसा स्वीकार करनेमें कोई दोष नहीं है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११५ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि सम्माभिच्छादिट्ठी चटुहं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अङ्काइज्जादो असंखेज्जगुणे त्ति एसो सुत्तस्सत्थो ।

मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो ॥ ११६ ॥

सुगममेदं ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केव-
डिखेत्ते ? ॥ ११७ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११८ ॥

एदेण सूचिदत्थो वुच्चदे । तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण कसाय-वेउव्वियपदेहि सण्णी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदि-
भागे, अङ्काइज्जादो असंखेज्जगुणे । एवं मारणंतिय-उववादेसुं वि वत्तव्वं । णवरि

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव स्वस्थानसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ११५ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, यह इस सूत्रका अर्थ है ।

मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र असंयत जीवोंके समान है ॥ ११६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञिमार्गणानुसार संज्ञी जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ११७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ११८ ॥

इस सूत्रके द्वारा सूचित अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे संज्ञी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंके विषयमें भी कहना चाहिये । विशेष इतना है कि तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे

तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं' ।

असण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥११९॥

सुगमं ।

सव्वलोगे ॥ १२० ॥

एदस्सत्थो — सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि असण्णी सव्व-लोगे । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । णवरि वेउव्वियं तिरियलोगस्स असं-खेज्जदिभागे ।

आहाराणुवादेण आहारा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १२१ ॥

सुगममेदं ।

सव्वलोगे ॥ १२२ ॥

क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिये ।

असंज्ञी जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ?
॥ ११९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १२० ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे असंज्ञी जीव सर्व लोकमें रहते हैं । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अड्ढाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । विशेष इतना है कि वैक्रियिक पदकी अपेक्षा तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ।

आहारमार्गणानुसार आहारक जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १२२ ॥

१ अ-आप्रलो: ' वत्तव्वं भाणितव्वं ' इति पाठः ।

एदस्सत्थो— सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि सच्चलोए, आणं-
तियादो । विहारवदिसत्थाण-वेउच्चियपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे ।

अणाहारा केवडिखेत्ते ? ॥ १२३ ॥

सुगमं ।

सच्चलोए ॥ १२४ ॥

कुदो ? आणंतियादो । एत्थ भवस्स पढमसमए अवड्ढिदाणं उववादं होदि,
विदियादिदोसु समएसु ड्ढिदाणं सत्थाणं होदि । एवं दोसु पदेसु लब्भमाणेसु किमड्ढं
ताणि दो पदाणि ण वुत्ताणि ? ण, तत्थ खेत्तभेदाणुवलंभादो ।

एवं खेत्ताणुगमो त्ति

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात,
मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे आहारक जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि,
वे अनन्त हैं । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे तीन लोकोंके असंख्यातवें
भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

अनाहारक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १२३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अनाहारक जीव सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १२४ ॥

क्योंकि, वे अनन्त हैं !

शंका—यहां भवके प्रथम समयमें अवस्थित जीवोंके उपपाद होता है और
द्वितीयादिक दो समयोंमें स्थित जीवोंके स्वस्थान पद होता है । इस प्रकार दो पदोंकी
प्राप्ति होनेपर किसलिये उन दो पदोंको यहां नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनमें क्षेत्रभेद नहीं पाया जाता ।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

फोसणाणुगमो

फोसणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएहि सत्था-
णेहि केवडिखेत्तं फोसिदं ? ॥ १ ॥

एत्थ णिरयगदीए त्ति चेवकारो अज्झाहारेयव्वो । तेण किं लद्धं ? णिरयगदीए
चेव णेरइया, ण अण्णत्थ कत्थ वि त्ति पडिसेहो उवलद्धो । तेहि णेरइएहि सत्थाणत्थेहि
केवडियं खेत्तं फोसिदं— किं सव्वलोगो, किं लोगस्स असंखेज्जा भागा, किं लोगस्स
संखेज्जदिभागो, किमसंखेज्जदिभागो त्ति एदमाइरियासंकिदं । वां सद्देण विणा कधमा-
संकावग्गमदे ? ण, अवुत्तस्स वि पयरणवसेण कत्थ वि अधगमुवलंभादो । सेसं सुगमं ।
एत्थ ओघाणुगमो किण्ण परूविदो ? ण, चोद्दसमग्गणाविसिद्धजीवाणं फोसणावग्गमेण

स्पर्शनानुगमसे गतिमार्गणानुसारं नरकगतिमें नारकी जीव स्वस्थान पदोंसे
कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १ ॥

यहां सूत्रमें ' नरकगतिमें ही ' ऐसा एवकारका अध्याहार करना चाहिये ।

शंका—एवकारका अध्याहार करनेसे क्या लाभ है ?

समाधान—नरकगतिमें ही नारकी जीव हैं, अन्यत्र कहींपर नहीं हैं, इस प्रकार
एवकारसे उनका अन्यत्र प्रतिषेध उपलब्ध होता है । उन नारकियोंके द्वारा स्वस्थान
पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है— क्या सर्व लोक स्पृष्ट है, क्या लोकका असंख्यात बहुभाग
स्पृष्ट है, क्या लोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है, किं वा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट
है ? यह आचार्य द्वारा आशंका की गई है ।

शंका—वा शब्दके विना कैसे आशंकाका परिज्ञान होता है ?

समाधान—अनुक्तका भी प्रकरणवश कहींपर अवगम पाया जाता है । शेष
सूत्रार्थ सुगम है ।

शंका—यहां ओघानुगमका प्ररूपण क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, चौदह मार्गणाओंसे विशिष्ट जीवोंके स्पर्शनका ज्ञान

१ प्रतिषु ' -णेरइया ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' वे ' इति पाठः ।

३ प्रतिषु ' मग्गण- ' इति पाठः ।

तस्स वि अवगमादो ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २ ॥

होदु गाम वट्टमाणकाले^१ णेरइएहि सत्थाणेहि छुत्तं खेत्तं चदुण्हं लोगाणमसंखे-
ज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणं । किंतु णादीदकाले एदं होदि, तत्थ तिण्हं लोगाणं
संखेज्जदिभागमेत्तच्छुत्तखेत्तुवलंभादो । तं कथं ? णेरइया लोगाणलिं समच्चउरसरज्जुमेत्ता-
यामविक्खंभ-छरज्जुआयदं सव्वमदीदकाले सट्टाणट्टिया फुसंति त्ति ? ण, संखेज्ज-
जोयणबाहल्लसत्तपुट्ठीओ मोत्तूण तेसिमदीदकाले अण्णत्थ अवट्टाणाभावादो । जदि वि एवं
तो वि तीदकाले तिरियलोगादो संखेज्जगुणेण होदव्वं, संखेज्जसूचिअंगुलबाहल्ल-
तिरियपदरमेत्तखेत्तुवलंभादो ? ण, पुट्ठीणमसंखेज्जदिभागो चेव णेरइया होंति त्ति
गुरूवदेसादो, सत्थाणेहि तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो^२ चेव पोसिदो त्ति वक्खाणादो वा ।

होनेसे उसका भी ज्ञान हो जाता है ।

नारकियों द्वारा स्वथान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २ ॥

शंका—वर्तमान कालमें नारकियोंसे स्पृष्ट क्षेत्र चार लोकोंके असंख्यातवें भाग-
प्रमाण व माणुसक्षेत्रसे असंख्यातगुणा भले ही हो, किन्तु यह अतीतकालमें नहीं बनता,
क्योंकि, अतीतकालमें तीन लोकोंके संख्यातवें भागमात्र स्पृष्ट क्षेत्र पाया जाता है ?

प्रतिशंका— वह कैसे ?

प्रतिशंकाका समाधान— नारकी जीव स्वस्थानमें स्थित होते हुए अतीतकालमें
समच्चतुष्कोण एक राजुप्रमाण आयाम व विक्कम्भसे युक्त तथा छह राजु ऊंची सब
लोकनालीको छूते हैं ।

शंकाका समाधान— नहीं, क्योंकि, संख्यात योजन बाहल्यरूप सात पृथिवि-
योंको छोड़कर उन नारकियोंका अतीतकालमें अन्यत्र अवस्थान नहीं है ।

शंका—यद्यपि ऐसा है तो भी अतीतकालमें तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र
होना चाहिये, क्योंकि, संख्यात सूच्यंगुल बाहल्यरूप व तिर्यक् प्रतरमात्र क्षेत्र पाया
जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, पृथिवियोंके असंख्यातवें भागमें ही नारकी जीव
होते हैं, ऐसा गुरूपदेश है; अथवा स्वस्थानोंकी अपेक्षा तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग
ही स्पृष्ट है, ऐसा व्याख्यान पाया जाता है ।

१ प्रतिषु^१ कालो^१ इति पाठः ।

२ प्रतिषु^२ -भागे^२ इति पाठः ।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ ३ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४ ॥

एदं सुत्तं वड्डमाणकालमस्सिदूण उवइदं । ण च एत्थ पुणरुत्तदोसो, मंदबुद्धीणं पुणरुत्तपुच्चुत्तथसंभालणेण फलोवलंभादो । अहवा वेयण-कसाय-वेउव्वियपदाण-मतीदकालफोसणं पडुच्च एदं वुत्तं । तत्थ चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागस्स माणुस-खेत्तादो असंखेज्जगुणस्स फोसिदखेत्तस्सुवलंभादो ।

छ्चोदसभागा वा देसूणा ॥ ५ ॥

एदं मारणंतिय-उववादपदाणमदीदकालमस्सिदूण वुत्तं । मारणंतियस्स छ्चोदस-भागा संखेज्जजोयणसहस्सेण ऊणा । अधवा एत्थ ऊणपमाणमेत्तियमिदि ण णव्वदे, पासेसु मज्जेसु एत्तियं खेत्तमूणमिदि विसिद्धुवएसाभावादो । उववादपदे वि ऊणपमाणं

नारकियोंके द्वारा समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नारकियों द्वारा उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ४ ॥

यह सूत्र वर्तमान कालका आश्रय कर उपदिष्ट है । यहां पुनरुक्त दोष भी नहीं है, क्योंकि, मन्दबुद्धि जीवोंको पुनरुक्त पूर्वोक्त अर्थका स्मरण करानेसे फलकी उपलब्धि है । अथवा, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंके वर्तमान-कालसम्बन्धी स्पर्शनकी अपेक्षा कर यह सूत्र कहा गया है, क्योंकि, उनमें चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा स्पृष्ट क्षेत्र पाया जाता है ।

अथवा, उक्त नारकियोंके द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है ॥ ५ ॥

यह सूत्र मारणान्तिक और उपपाद पदोंके अतीत कालका आश्रय कर कहा गया है । मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा संख्यात योजनसहस्रसे हीन छह बटे चौदह भाग-प्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है । (देखो पुस्तक ४, पृ. १७४ आदि) । अथवा यहां हीनताका प्रमाण इतना है, यह जाना नहीं जाता, क्योंकि, स्पर्शनके मध्यमें इतना क्षेत्र कम है, इस प्रकार विशिष्ट उपदेशका अभाव है । उपपाद पदमें भी हीनताका प्रमाण पूर्वके

पुत्रं व जाणिदूण वत्तव्वं । कधं छुचोदसभागा मारणं जुज्जदे ? ण, तिरिक्ख-णेरइयाणं सव्वदिसाहिंतो आगमण-गमणसंभवादो ।

पढमाए पुढवीए णेरइया सत्थाण-समुग्घाद-उववादपदेहि केव-
डियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ६ ॥

एत्थ चेवकारो ण अज्झाहारेयव्वो, अवहारणाभावादो । जे पढमाए पुढवीए णेरइया तेहि सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदमिदि एत्थ संबंधो कायव्वो । सेसं सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो' ॥ ७ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सुइदत्थो वुच्चदे । तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहार-
वदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादपदेहि' वड्डमाणकालमस्सिदूण परू-

समान जानकर कहना चाहिये ।

शंका — मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कैसे योग्य है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, तिर्यंच व नारकी जीवोंका सब दिशाओंसे आगमन और गमन सम्भव है ।

प्रथम पृथिवीमें नारकी जीवोंके द्वारा स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ६ ॥

यहां एवकारका अध्याहार नहीं करना चाहिये, क्योंकि, अवधारण अर्थात् निश्चयका अभाव है । जो प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव हैं उनके द्वारा स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है, इस प्रकार यहां सम्बन्ध करना चाहिये । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

प्रथम पृथिवीके नारकियों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ७ ॥

इस देशामर्शक सूत्रके द्वारा सूचित अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिक-समुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात तथा उपपाद पदोंकी अपेक्षा वर्तमान कालका आश्रय कर स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहार-

वणाए खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउन्वियपदपरिणदेहि^१ णेरइएहि तीदे काले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? असंखेज्जजोयणविक्खंभणिरयात्रासखेत्तफलं ठविय णेरइयाणगुस्सेहेण गुणिय लद्धं तप्पाओग्गसंखेज्जबिलसलागाहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्त-खेत्तुवलंभादो । अदीदकाले मारणंतिय-उत्रवादपरिणदेहि पढमपुढविणेरइयेहि तिण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कथं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं ? असीदिसहस्साहियजोयणलक्खपढम-पुढविबाहल्लम्मि हेट्ठिमजोयणसहस्सं णेरइएहि सव्वकालं ण लुप्पदि त्ति काऊण एत्थ जोयणसहस्समवणिय सेसजोयणसहस्सबाहल्लं रज्जुपदरं ठविय उस्सेहेण एग्गुणवंचास-मेत्तखंडाणि काऊण पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । कुदो ? एक्करज्जुरुंदो सत्तरज्जुआयदो जोयणलक्खबाहल्लो तिरियलोगो त्ति गुरुवएसादो । जे पुण जोयणलक्खबाहल्लं रज्जुविक्खंभं झल्लरीसमाणं तिरियलोगं भणंति तेसिं

वत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात और वैक्रियिकसमुद्धात पदोंको प्राप्त नारकियोंके द्वारा अतीत कालमें चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यात-गुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, असंख्यात योजन विष्कम्भरूप नारकावासके क्षेत्रफलको स्थापित कर व उसे नारकियोंके उत्सेधसे गुणित कर प्राप्त राशिको तत्प्रायोग्य संख्यात बिलशलाकाओंसे गुणित करनेपर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भागमात्र क्षेत्र उपलब्ध होता है । अतीत कालकी अपेक्षा मारणान्तिकसमुद्धात व उपपाद् पदको प्राप्त प्रथम पृथिवीके नारकियों द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है ।

शंका—तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्शन क्षेत्र कैसे प्राप्त होता है ?

समाधान—एक लाख अस्सी सहस्र योजनप्रमाण प्रथम पृथिवीके बाह्यमें अधस्तन एक सहस्र योजन क्षेत्र सर्व काल नारकियोंसे नहीं छुआ जाता, ऐसा समझकर, इसमेंसे एक सहस्र योजनोंको कम कर, शेष (एक लाख उन्यासी) सहस्र योजन बाह्यरूप राजुप्रतरको स्थापित कर, उत्सेधसे उनंचास मात्र खण्ड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है, क्योंकि, 'एक राजु विस्तृत, सात राजु आयत, और एक लाख योजन बाह्यवाला तिर्यग्लोक है' ऐसा गुरुका उपदेश है । किन्तु जो आचार्य एक लाख योजन बाह्यसे युक्त व एक राजु विस्तृत झालरके समान तिर्य-

१ अ-काप्रत्योः 'पदेहि परिणदे णेरइएहि', आप्रतौ 'पदेहि परिणदे णेरइए' इति पाठः ।

मारणंतिय-उववादखेत्ताणि तिरियलोगादो सादिरियाणि होंति । ण चेदं घडदे, एदम्हि उवदेसे घेप्पमाणे लोगम्मि तिणिसदतेदालमेत्तघणरज्जूणमणुप्पत्तीदो । ण च एदाओ घणरज्जू असिद्धाओ, रज्जू सत्तगुणिदा जगसेडी, सा वग्गिदा जगपदरं, सेडीए गुणिद-जगपदरं घणलोगो होदि त्ति सयलाइरियसम्मदपरियम्मसिद्धत्तादो । ण च सव्वदो हेट्ठिम-मज्झिम-उवरिमभागेहि वेत्तासण-झल्लरी-मुइंगसमाणे लोगे घेप्पमाणे सेटी'-पदर-घणलोगा वग्गसमुट्ठिदा होंति, तथा संभवाभावादो । ण च एदेसिमवग्गसमुट्ठिदत्तम-ब्धुवगंतुं जुत्तं, कदजुम्मेहि पंचिंदियतिरिक्ख-पज्जत्त-जोणिणि-जोदिसिय-वेंतरदेवअवहार-कालेहि सुत्तसिद्धेहि अकदजुम्मजगपदरे भागे हिदे सच्छेदस्स जीवरासिस्स आगमण-प्पसंगादो । ण च एवं, जीवाणं छेदाभावादो, दव्वाणिओगद्वारवक्खाणम्मि वुत्तहेट्ठिम-उवरिमवियप्पाणमभावप्पसंगादो च । तिणिसदतेदालघणरज्जूपमाणो उवमालोओ, एदम्हादो अण्णो पंचदव्वाहारो लोगो त्ति के वि आइरिया भणंति । तं पि ण घडदे, उवमेएण विणा उवमाए अण्णत्थ घणंगुल-पलिदोवम-सागरोवमादिसु अणुवलंभादो । तम्हा-एत्थ वि उवमेएण लोगेण पमाणदो उवमालोगाणुसारिणा पंचदव्वाहारेण

ग्लोकको बतलाते हैं उनके मतानुसार मारणान्तिक व उपपाद क्षेत्र तिर्यग्लोकसे साधिक होते हैं । (देखो पुस्तक ४, पृ. १८३ और १८६ के विशेषार्थ) । परन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि, इस उपदेशके ग्रहण करनेपर लोकमें तीनसौ तैतालीस मात्र घनराजुओंकी उत्पत्ति नहीं बनती । तथा ये घनराजु असिद्ध भी नहीं हैं, क्योंकि, 'राजुको सातसे गुणित करनेपर जगश्रेणी, उस जगश्रेणीका वर्ग जगप्रतर और जगश्रेणीसे गुणित जगप्रतरप्रमाण घनलोक होता है' इस प्रकार समस्त आचार्यों द्वारा माने गये परिकर्मसूत्रसे वे सिद्ध हैं । दूसरी बात यह है कि सब ओरसे अधस्तन, मध्यम व उपरिम भागोंसे क्रमशः वेत्तासन, झालर व मृदंगके समान लोकके ग्रहण करनेपर जगश्रेणी, जगप्रतर और घनलोक वर्गसे उत्पन्न नहीं होंगे; क्योंकि, उक्त मान्यतामें वैसा संभव ही नहीं है । और इनकी विना वर्गके उत्पत्ति स्वीकार करना उचित भी नहीं है, क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यच, योनिमती तिर्यच, ज्योतिषी और वानव्यन्तर देवोंके सूत्रसिद्ध कृतयुग्मराशिरूप अवहारकालोंका अकृतयुग्म जगप्रतरमें भाग देनेपर सच्छेद जीवराशिकी प्राप्तिका प्रसंग होगा । परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि जीवोंके छेदोंका अभाव है । तथा द्रव्यानुयोगद्वारके व्याख्यानमें कहे गये अधस्तन व उपरिम विकल्पोंके अभावका भी प्रसंग होगा । (देखो पुस्तक ३, पृ. २१९, २४९ व पुस्तक ७, पृ. २५३) ।

तीनसौ तैतालीस घनराजुप्रमाण उपमालोक है, इससे पांच द्रव्योंका आधारभूत लोक अन्य है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं । परन्तु वह भी घटित नहीं होता, क्योंकि, उपमेयके विना उपमाका अन्यत्र घनांगुल, पव्योपम व सागरोपमादिकोंमें अनुपलम्भ है । अत एव यहां भी प्रमाणसे उपमालोकका अनुसरण करनेवाला

अण्णेण होदव्वमण्णहा एदस्स उवमालोगत्ताणुववत्तीदो । सेसं सुगुमं ।

विदियाए जाव सत्तभाए पुढवीए णेरइया सत्थाणेहि केवडियं
खेत्तं फोसिदं ? ॥ ८ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९ ॥

एदस्सत्थो— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणपदपरिणदेहि अदीद-वट्टमाणकालेसु
णेरइएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ?
छण्णं पुढवीणं लोगणालीए रुद्धखेत्तस्स असंखेज्जदिभागे चेव णेरइयावासाणमुवलंभादो ।

समुग्घाद-उववादेहि य केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १० ॥

सुगमं ।

व पांच द्रव्योंका आधारभूत उपमेय लोक अन्य होना चाहिये, क्योंकि, इसके विना
इसके उपमालोकत्व बन नहीं सकता (देखो पुस्तक ४, पृ. १०-२२)। शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

द्वितीयसे लेकर सप्तम पृथिवी तकके नारकियों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना
क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त नारकियों द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है
॥ ९ ॥

इस सूत्रका अर्थ— स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान पदोंसे परिणत
नारकियोंके द्वारा अतीत व वर्तमान कालोंमें चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और
अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, छह पृथिवियोंके लोकनालीसे रुद्ध
असंख्यातवें भागमें ही नारकावास पाये जाते हैं ।

उक्त नारकियों द्वारा समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?
॥ १० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो एग-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छ-चोद्दस-
भागा वा देसूणा ॥ ११ ॥

वेयण-कसाय-वेउव्वियपदपरिणदेहि तीदे काले लोगस्स असंखेज्जदिभागो फोसिदो ।
वट्टमाणकाले पुण छपुढविणेरइएहि वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववाद्दपरिणदेहि
चदुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । तीदे काले
मारणंतिय-उववादेहि विदियादिछपुढविणेरइएहि जहाक्रमेण देसूणाएग-बे-तिण्णि-चत्तारि-
पंचचोद्दसभागा । कुदो ? तिरिक्खाणं णेरइयाणं तीदे काले सव्वदिसाहि आगमण-
गमणसंभवादो ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाण-समुग्घाद्-उववादेहि केवडियं
खेत्तं फोसिदं ? ॥ १२ ॥

सुगममेदं ।

सव्वलोगो ॥ १३ ॥

उक्त नारकियों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम चौदह
भागोंमेंसे क्रमशः एक, दो, तीन, चार, पांच और छह भाग स्पृष्ट हैं ॥ ११ ॥

वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे परिणत उक्त
नारकियों द्वारा अतीत कालकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है । किन्तु
वर्तमान कालकी अपेक्षा छह पृथिवियोंके नारकियों द्वारा वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात,
वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद् पदोंसे परिणत होकर चार लोकोंका
असंख्यातवां भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । अतीत कालकी
अपेक्षा मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद् पदोंसे द्वितीयादि छह पृथिवियोंके नारकियों
द्वारा यथाक्रमसे कुछ कम चौदह भागोंमेंसे एक, दो, तीन, चार, पांच और छह भाग
स्पृष्ट हैं, क्योंकि, तिर्यच व नारकियोंका अतीत कालमें सब दिशाओंसे आगमन और
गमन सम्भव है ।

तिर्यचगतिमें तिर्यच जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद् पदोंसे कितना
क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यच जीव उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ १३ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा— एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । सत्थाण-
सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि तीदे काले सव्वलोगो फोसिदो । कुदो ? वट्टमाणे
व सव्वलोगे अवट्टाणुवलंभादो । विहारेण तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । असंखेज्जेसु
समुद्देशु तसजीवविरहिएसु संतेसु कधं विहरंताणं तिरिक्खाणं तत्थ संभवो ? ण, तत्थ
पुव्ववइरियदेवाणं पओएण विहारे विरोहाभावादो । तीदे काले विहरंततिरिक्खेहि पुट्ट-
खेत्ताणयणविहाणं वुच्चदे । तं जहा— लक्खजोयणबाहल्लं रज्जुपदरं ठविय उट्टमेगूण-
वंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं खेत्तं होदि ।
जदि वि जोयणलक्खवाहल्लेण विणा संखेज्जजोयणबाहल्लं तिरियपदरं लब्भदि, तो वि
तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो चेव होदि । वेउव्वियसमुग्घादगदाणं वट्टमाणे खेत्तं,
तीदे काले तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, दोहि लोगेहितो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।
कुदो ? वाउकाइयजीवाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं विउव्वणखमाणं पंच-

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— यहां वर्तमानकालप्ररूपणा क्षेत्र-
प्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिक-
समुद्घात और उपपाद पदोंसे अतीत कालमें तिर्यंच जीवों द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि,
वर्तमान कालके समान अतीत कालमें भी तिर्यंच जीवोंका सर्व लोकमें अवस्थान पाया
जाता है । विहारकी अपेक्षा अतीत कालमें तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यंग्लोकका
संख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है ।

शंका— असंख्यात समुद्रोंके त्रस जीवोंसे रहित होनेपर वहां विहार करनेवाले
त्रस जीवोंकी सम्भावना कैसे हो सकती है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, वहां पूर्व वैरी देवोंके प्रयोगसे विहार होनेमें कोई
विरोध नहीं है ।

अतीत कालमें विहार करनेवाले तिर्यंचोंसे स्पृष्ट क्षेत्रके निकालनेका विधान कहते
हैं । वह इस प्रकार है— एक लाख योजन बाहल्यरूप राजुप्रतरको स्थापित कर ऊपरसे
उनंचास खण्ड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यंग्लोकके संख्यातवें भागमात्र क्षेत्र
होता है । यद्यपि एक लाख योजन बाहल्यके विना संख्यात योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतर
प्राप्त होता है, तथापि तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भाग ही होता है । वैक्रियिकसमुद्घातको
प्राप्त तिर्यंच जीवोंकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । किन्तु
अतीत कालकी अपेक्षा तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और दो लोकोंसे असंख्यातगुणा
क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, विक्रिया करनेमें समर्थ पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण वायु-

रज्जुबाहल्लरज्जुपदरमेत्तफोसणुवलंभादो ।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-
जोणिणि-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता सत्थाणेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?
॥ १४ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५ ॥

एदस्स अत्थो बुच्चदे । तं जहा — एदेसिं वड्डमाणं खेत्तं । आदिल्लेहि तिहि
वि तिरिक्खेहि सत्थाणेण तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिक्खलोगस्स संखेज्जदि-
भागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एदस्सि खेत्ते आणिज्जमाणे भोगभूमि-
पडिभागदीवाणमंतरेसु द्विदअसंखेज्जेसु समुद्देसु सत्थाणपर्दद्विदतिरिक्खा णत्थि च्चि
एदं खेत्तमाणिय रज्जुपदरम्मि अवणिय सेसं संखेज्जसूचिअंगुलेहि गुणिदे तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं पंचिंदियतिरिक्खतिगस्स सत्थाणखेत्तं होदि । विहारवदि-
सत्थाण-वेयण-कसाय-वेउन्वियचउक्केण परिणदतिविहपंचिंदियतिरिक्खेहि तिण्हं लोमाणम-

कायिक जीवोंका पांच राजु बाहल्यरूप राजुप्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती और
पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त चार प्रकारके तिर्यचों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥१५॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— इनकी वर्तमानकालिक स्पर्शन-
प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा प्रथम तीन प्रकारके तिर्यचों
द्वारा स्वस्थान पदसे तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग
और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । इस क्षेत्रके निकालते समय भोगभूमि-
प्रतिभागरूप द्वीपोंके अन्तरालमें स्थित असंख्यात समुद्रोंमें स्वस्थान पदमें स्थित तिर्यच
नहीं हैं, अतः इस क्षेत्रको लाकर व राजुप्रतरमेंसे कम कर शेषको संख्यात सूच्यगुलोंसे
गुणित करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र उक्त तीन पंचेन्द्रिय तिर्यचोंका स्वस्थान-
क्षेत्र होता है । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-
समुद्घात, इन चार पदोंसे परिणत तीन प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यचों द्वारा तीन लोकोंका

संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? मित्तामित्तेदेवाणं वसेण एदेसिं सव्वदीव-समुद्देशु संचरणं पडि विरोहाभावादो । तेणेत्थ संखेज्जंगुलबाहल्लतिरियपदरमुड्डुमेगूणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे पंचिदियतिरिक्खतिगस्स विहारादिचउक्कखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि । एसो वासहेण सइदट्ठो । विहारवदिसत्थाणखेत्तपरूवणाए चेत्र वेयण-कसाय-वेउच्चिय-पदाणं पि परूवणा कदा गंथलाघवकरणट्ठं ।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १६ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा ॥ १७ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । वेयण-कसाय-वेउच्चियपदाणं पि तीदकालपरूवणा पुव्वमेव परूविदा । मारणांतिय-उववादपरिणयपंचिदियतिरिक्खतिएहि

असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, मित्र व शत्रुरूप देवोंके वशसे इनके सर्व द्वीपसमुद्रोंमें संचार करनेका कोई विरोध नहीं है । इसीलिये यहां संख्यात अंगुल बाहल्यरूप तिर्यक् प्रतरके ऊपरसे उनंचास खण्ड कर प्रतराकारसे स्थापित करनेपर उक्त तीन पंचेन्द्रिय तिर्यचोंका विहारादि चार पदसम्बन्धी क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र होता है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । ग्रन्थलाघवके लिये विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रकी प्ररूपणासे वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी भी प्ररूपणा कर दी गई है ।

उक्त तीन प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके द्वारा समुद्घात व उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त तिर्यचोंके द्वारा उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १७ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात व वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी अतीतकालप्ररूपणा भी पूर्वमें ही की जा चुकी है । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे परिणत उक्त तीन पंचेन्द्रिय तिर्यचों द्वारा

तीदकाले सव्वलोगो फोसिदो । लोगणालीए बाहिं तसकाइयाणं सव्वकालसंभवाभावादो सव्वलोगो त्ति वयणं ण जुज्जदे । ण एस दोसो, मारणांतिय-उववादपरिणयतसजीवे मोत्तूण सेसतसाणं बाहिमत्थित्तपडिसेहादो । पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं वट्टमाण-परूवणाए खेत्तभंगो । संपदि तीदकालपरूवणं कस्सामो । तं जहा— सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसायपदपरिणएहि पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? कम्म-भूमिपडिभागे सयंपहपव्वर्यपरभागे अड्डाइज्जदीव-समुद्देसु च अदीदकाले तत्थ सव्वत्थ संभवादो । तेण तेहि फोसिदखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो । तस्साणयणविहाणं वुच्चदे—सयंपहपव्वदब्भंतरखेत्तं जगपदरस्स संखेज्जदिभागो । तं रज्जुपदरम्मि अवणिदे सेसं जगपदरस्स संखेज्जदिभागो । तं संखेज्जसूचिअंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । अपज्जत्ताणमंगुलस्सासंखेज्जदिभागोगाहणाणं कधं संखेज्जं-

अतीत कालमें सर्व लोक स्पृष्ट है ।

शंका—लोकनालीके बाहिर सर्वदा कालमें त्रसकायिक जीवोंकी सर्वदा सम्भावना न होनेसे 'सर्व लोक स्पृष्ट है' यह कहना योग्य नहीं है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे परिणत त्रस जीवोंको छोड़कर शेष त्रस जीवोंके अस्तित्वका लोकनालीके बाहिर प्रतिषेध है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीवोंकी वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रके समान है। इस समय अतीत कालकी अपेक्षा प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, वेदनास्पृद्धात और कषायसमुद्घात पदोंसे परिणत पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तों द्वारा तीर्थलोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि कर्मभूमिप्रतिभागरूप स्वयंप्रभ पर्वतके पर-भागमें और अढ़ाई द्वीप-समुद्रोंमें अतीत कालकी अपेक्षा वहां उनकी सर्वत्र सम्भावना है। इसीलिये उनके द्वारा स्पृष्ट क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। उसके निकालनेके विधानको कहते हैं— स्वयंप्रभ पर्वतका अभ्यन्तर क्षेत्र जगप्रतरके संख्यातवें भागप्रमाण है। उसे राजुप्रतरमेंसे कम करनेपर शेष जगप्रतरके संख्यातवें भागप्रमाण रहता है। उसे संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है ।

शंका—अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनावाले अपर्याप्त जीवोंका

गुलुस्सेहो लब्भदे ? ण, मुदपंचिदियादितसकाइयाणं कलेवरेसु अंगुलस्स संखेज्जदिभाग-
मादिं काऊण जाव संखेज्जजोयणा त्ति' कमवड्डीए ड्ढिदेसु उप्पज्जमाणाणमपज्जत्ताणं
संखेज्जंगुलुस्सेहुवलंभादो । अधवा सव्वेसु दीव-समुद्देसु पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ता
होति । कुदो ? पुव्ववइरियदेवसंबंधेण कम्मभूमिपडिभागुप्पणपंचिदियतिरिक्खाणं
एगबंधणवद्धलज्जीवणिकाओगाढओरालियदेहाणं सव्वदीव-समुद्देसु अवट्ठाणदंसणादो ।
मारणंतिय-उववादेहि पुण सव्वलोगो फोसिदो । कुदो ? मारणंतिय-उववादाणं सव्वलोगे
पडिसेहाभावादो ।

मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीओ सत्थाणेहि
केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १८ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९ ॥

संख्यात अंगुलप्रमाण उत्सेध कैसे पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अंगुलके संख्यातवें भागको आदि लेकर संख्यात
योजन तक क्रमवृद्धिसे स्थित मृत पंचेन्द्रियादि त्रसकायिक जीवोंके शरीरोंमें उत्पन्न
होनेवाले अपर्याप्तोंका संख्यात अंगुलप्रमाण उत्सेध पाया जाता है । अथवा, सभी द्वीप-
समुद्रोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त जीव होते हैं, क्योंकि, पूर्वके वैरी देवोंके सम्बन्धसे
एक बन्धनमें बद्ध छह जीवनिकायोंसे व्याप्त औदारिक शरीरको धारण करनेवाले कर्म-
भूमि प्रतिभागमें उत्पन्न हुए पंचेन्द्रिय तिर्यचोंका सर्व समुद्रोंमें अवस्थान देखा जाता
है । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि,
मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे परिणत उक्त जीवोंका सब लोकमें प्रतिषेध
नहीं है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यनियों द्वारा स्वस्थान पदोंसे
कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त तीन प्रकारके मनुष्यों द्वारा स्वस्थानसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट
है ॥ १९ ॥

१ अ-आप्रसोः ' जौयण त्ति' इति पाठः ।

एदस्सत्थो वुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणेहि चदुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागो फोसिदो, तीदे काले पुव्ववइरियदेवसंबंधेण वि माणुसुत्तरसेलादो परदो मणुसाणं गमणाभावादो । माणुसखेत्तस्स पुण संखेज्जदिभागो फोसिदो, उवरिगमणा-भावादो । अधवा विहारेण माणुसलोगो देसुणो फोसिदो त्ति केइं भणंति, पुव्ववइरियदेव-संबंधेण उड्ढं देसुणजोयणलक्खुप्पायणसंभवादो ।

समुग्घादेण केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ २० ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा ॥ २१ ॥

वेदण-कसाय-वेउव्वियपदाणं विहारवदिसत्थाणभंगो । तेजाहारपदाणं सत्थाण-सत्थाणभंगो । मारणंतिएण सव्वलोगो फोसिदो, तीदे काले सव्वमिह लोगखेत्ते माणुसाणं

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान व विहारवत्स्वस्थानसे चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है, क्योंकि, अतीत कालमें पूर्वके वैरी देवोंके सम्बन्धसे भी मानुषोत्तर पर्वतके आगे मनुष्योंका गमन नहीं है । परन्तु मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है, क्योंकि, मानुषक्षेत्रके ऊपर उक्त मनुष्योंका गमन नहीं है । अथवा, विहारकी अपेक्षा कुछ कम मानुषलोक स्पृष्ट है, ऐसा कोई आचार्य कहते हैं, क्योंकि, पूर्ववैरी देवोंके सम्बन्धसे ऊपर कुछ कम एक लाख योजनके उत्पादनकी सम्भावना है ।

उपर्युक्त मनुष्योंके द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त मनुष्योंके द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग, अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २१ ॥

वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण विहारवत्स्वस्थानके समान है । तैजससमुद्घात और आहारक-समुद्घात पदोंकी अपेक्षा स्पर्शनप्ररूपणा स्वस्थानस्वस्थान पदके समान है । मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा उक्त मनुष्योंके द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, अतीत कालकी अपेक्षा सब लोकक्षेत्रमें मारणान्तिकसमुद्घातसे मनुष्योंका गमन पाया

मारणंतिण गमणुवलंभादो । दंड-कवाड-लोगपूरणपरूवणा सुगमेत्ति (ण) परूविज्जदे ।

उववादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ २२ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा ॥ २३ ॥

लोगस्सासंखेज्जदिभागो त्ति णिहेसो वड्डमाणकालावेक्खो । एदेण जाणिज्जदे वड्डमाणातीदकालसंबंधिखेत्ताणि दो वि फोसणे परूविज्जंति त्ति । अदीदे घणसव्वलोगो फोसिदो, सुहुमेहि सव्वलोगावड्डिएहि आगंतूण मणुस्सेसु उप्पज्जमाणेहि आवूरिज्जमाणलोगदंसणादो । कथं पंचेचालीसजोयणलक्खबाहल्लतिरियपदरमेत्तागासपदेसड्डिदमणुस्सेहि सव्वलोगो आवूरिज्जदि ? ण, मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विविवागजोगगासासपदेसेहि सव्वलोगपेरंतेसु मज्झे च समयविरोहेण अवड्डिएहि णिगंतूण संखेज्जासंखेज्जजोयणायामेण मणुसगइमुव्वगएहि सव्वादीदकालभिम सव्वलोगावूरणं पडि विरोहाभावादो ।

जाता है । दण्ड, कपाट, प्रतर व लोकपूरण समुद्घातपदोंकी प्ररूपणा सुगम है, इसलिये उनकी प्ररूपणा यहां नहीं की जाती है ।

उपर्युक्त मनुष्योंके द्वारा उत्पादपदकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपपाद पदकी अपेक्षा उक्त मनुष्यों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २३ ॥

‘लोकका असंख्यातवां भाग’ यह निर्देश वर्तमान कालकी अपेक्षा है । इससे जाना जाता है कि वर्तमान व अतीत कालसम्बन्धी क्षेत्र दोनों ही स्पर्शनमें प्ररूपित हैं । अतीत कालकी अपेक्षा सर्व घनलोक स्पृष्ट है, क्योंकि, मनुष्योंमें आकर उत्पन्न होनेवाले सर्व लोकमें स्थित सूक्ष्म जीवोंसे परिपूर्ण लोक देख जाता है ।

शंका—पैंतालीस लाख योजन बाह्यवाले तिर्यक्प्रतरमात्र आकाशप्रदेशोंमें स्थित मनुष्योंके द्वारा सर्व लोक कैसे पूर्ण किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि लोकके पर्यन्तभागोंमें व मध्यमें भी समयविरोधसे स्थित ऐसे मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विपाकयोग्य आकाशप्रदेशोंसे निकलकर संख्यात एवं असंख्यात योजन आयामरूपसे मनुष्यगतिको प्राप्त हुए मनुष्यों द्वारा सर्व अतीत कालमें सर्व लोकके पूर्ण करनेमें कोई विरोध नहीं है ।

मणुसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं भंगो ॥२४॥

वट्टमाणं खेत्तं । सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादेहि चटुण्हं लोगाणमसंखे-
ज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो तीदे काले फोसिदो । मारणंतिय-उववादेहि
सव्वलोगो । तेण पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं भंगो ण होदि त्ति ? ण, दव्वद्वियणए
अवलंबिज्जमाणे दोसाभावादो ।

देवगदीए देवा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २५ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्टचोदस भागा वा देसूणा
॥ २६ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे- वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । सत्थाणेण देवेहि तिण्हं

मनुष्य अपर्याप्तोंके स्पर्शनका निरूपण पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तोंके समान
है ॥ २४ ॥

मनुष्य अपर्याप्तोंके वर्तमानकालिक स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान
है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा चार
लोकोंका असंख्यातवां भाग व मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग अतीत कालमें स्पृष्ट है ।
मारणान्तिकसमुद्घात व उपपादपदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है ।

शंका—इसी कारण मनुष्य अपर्याप्तोंके स्पर्शनको पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तोंके
समान कहना ठीक नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर वैसा कहनेमें
कोई दोष नहीं है ।

देवगतिमें देव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ २५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

देव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह
भाग स्पर्श करते हैं ॥ २६ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—वर्तमानकालिक स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके
समान है । देवों द्वारा स्वस्थानकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,

लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं ? ण एस दोसो, चंदाइच्च-बुह-भेसइ-कोण-सुक्कंगार-णक्खत्त-तारागण-अट्टविहवेंतरविमाणेहि य . रुद्धखेत्ताणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्ताणमुवलंभादो । विहारेण अट्टचोदसभागा देसूणा फोसिदा । मेरु-मूलादो उवरि छरज्जुमेत्तो हेट्ठा दोरज्जुमेत्तो देवाणं विहारो, तेण अट्टचोदसभागो त्ति बुत्तो । केण ते ऊणा ? तदियपुढवीए हेट्ठिमजोयणसहस्सेण ।

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्टणवचोदसभागा वा देसूणा
॥ २८ ॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिहेसो वट्टमाणक्खेत्तपरुवणाओ, तेण

तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है ।

शंका—तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे घटित होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, चन्द्र, आदित्य, बुध, वृहस्पति, शनि, शुक्र, अंगारक (मंगल), नक्षत्र, तारागण और आठ प्रकारके व्यन्तर विमानोंसे रुद्ध क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण पाये जाते हैं । विहारकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । मेरुमूलसे ऊपर छह राजुमात्र और नीचे दो राजुमात्र क्षेत्रमें देवोंका विहार है, इसलिये ' आठ बटे चौदह भाग ' ऐसा कहा है ।

शंका—वे आठ बटे चौदह भाग किससे कम हैं ?

समाधान—तृतीय पृथिवीके नीचे एक सहस्र योजनसे कम हैं ।

देवों द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह वा नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २८ ॥

' लोकका असंख्यातवां भाग ' यह निर्देश वर्तमानक्षेत्रप्ररूपणाकी अपेक्षासे है,

एत्थ खेत्ताणिओगंहारपरूवणा जा जोग्गा सा सव्वा परूवेदव्वा । संपहि तीद-
कालखेत्तपरूवणा कीरदे- वेयण-कसाय-वेउच्चिएहि अट्टचोदसभागा फोसिदा । कुदो ?
विहरमाणणं देवाणं सगविहारखेत्तस्संतरे वेयण-कसाय-विउच्चणाणमुवलंभादो । मारणं-
तिएण णवचोदसभागा फोसिदा, मेरुमूलादो उवरि सत्त हेट्ठा दोरज्जुमेत्तखेत्तम्भंतरे
तीदे काले सव्वत्थ कयमारणंतियदेवाणमुवलंभादो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो छचोदसभागा वा देसूणा ॥३०॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ति वट्टमाणखेत्तं पडुच्च णिद्देशो कदो । तेणेत्थ
खेत्तपरूवणा सव्वा कायव्वा । तीदकालखेत्तपरूवणं कस्सामो- छचोदस्सभागा देसूणा ।
कुदो ? आरणच्चुदकप्पो ति तिरिक्ख-मणुसअसंजदसम्मादिट्ठीणं संजदासंजदाणं च उववादु-
वलंभादो ।

इसलिये यहां जो क्षेत्रानुयोगद्वारप्ररूपणा योग्य हो उस सबकी प्ररूपणा करना चाहिये ।
अब अतीत कालसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा की जाती है— वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात
और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, विहार
करनेवाले देवोंके अपने विहारक्षेत्रके भीतर वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और
वैक्रियिकसमुद्घात पद पाये जाते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा नौ बटे चौदह
भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, मेरुमूलसे ऊपर सात और नीचे दो राजुमात्र क्षेत्रके भीतर
सर्वत्र अतीत कालमें मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त देव पाये जाते हैं ।

उपपादकी अपेक्षा देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपपादकी अपेक्षा देवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम छह
बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ ३० ॥

‘लोकका असंख्यातवां भाग’ यह निर्देश वर्तमान क्षेत्रकी अपेक्षासे किया गया
है । इस कारण यहां सब क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये । अतीत कालकी अपेक्षा क्षेत्रकी
प्ररूपणा करते हैं— उपपादकी अपेक्षा अतीत कालमें कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट
हैं; क्योंकि, आरण-अच्युत कल्प तक तिर्यंच व मनुष्य असंयत सम्यग्दृष्टियों और
संयतासंयतोंका उपपाद पाया जाता है ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसियदेवा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं
फोसिदं ? ॥ ३१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्दुट्ठा वा अट्टचोद्दस भागा वा
देसूणा ॥ ३२ ॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिद्देशो वट्टमाणं पडुच्च वुत्तो । तेण एत्थ खेत्तपरू-
पणा कायव्वा । तीदकालं पडुच्च परूवणं कस्सामो— सत्थाणेण वाणवेंतर-जोदिसियदेवेहि
तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो
फोसिदो । कुदो ? वट्टमाणकाले व तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमोद्दुहिय अवट्टाणादो ।
भवणवासियदेवेहि सत्थाणेण चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो
फोसिदो । विहारवदिसत्थाणेण आहुट्टचोद्दसभागा । कुदो ? भवणवासिय-वाणवेंतर-
जोदिसियदेवाणं मेरूमूलादो अधो दौणिण, उवरि जाव सोहम्मविमाणसिहरधयदंडो
त्ति दिवड्ढरज्जुमेत्तसगणिमित्तविहारस्सुवलंभादो । परपच्चएण पुण अट्टचोद्दस भागा

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र
स्पर्श करते हैं ? ॥ ३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त देव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग, साढ़े तीन राजु अथवा
कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ ३२ ॥

‘लोकका असंख्यातवां भाग’ यह निर्देश वर्तमान कालकी अपेक्षा कहा गया है । इस
कारण यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये । अतीत कालकी अपेक्षा प्ररूपणा करते हैं— स्वस्थान-
पदसे वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका
संख्यातवां भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, वर्तमान कालके
समान अतीत कालमें भी तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागको व्याप्तकर उनका अवस्थान है ।
भवनवासी देवों द्वारा स्वस्थानकी अपेक्षा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाई
द्वीपसे असंख्यातगुणाक्षेत्र स्पृष्ट है । विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा चौदह भागोंमेंसे साढ़े
तीन भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंका स्वनिमित्तक
विहार मेरूमूलसे नीचे दो राजु और ऊपर सौधर्म विमानके शिखरपर स्थित ध्वजादण्ड तक
डेढ़ राजुमात्र पाया जाता है । परन्तु परनिमित्तक विहारकी अपेक्षा उक्त देवों द्वारा कुछ

देखना । कुदो ? उवरिमदेवेहि णिज्जमाणा णं अद्धवंचमरउज्जुओ सगपच्चएण अद्धु-
रउज्जुओ गच्छंति त्ति देवाणमद्धुचोइसभागफोसगं होदि ।

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ३३ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धुट्ठा वा अट्ठणवचोइस भागा
वा देसूणा ॥ ३४ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे—लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति वयणं वट्टमाणखेत्त-
परूवणद्धं भणिदं । तेण एत्थ खेत्तपरूवणा सव्वा कायव्वा । संपधि उवरिल्लेहि सुत्ता-
वयवेहि अदीदकालखेत्तपरूवणा कीरदे—वेयण-कसाय-वेउच्चिएहि आहुट्ठुचोइसभागा
अट्ठुचोइसभागा वा फोसिदा । कुदो ? सग-परपच्चएहि हिडंताणं भवण-
वासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवाणं वेयण-कसाय-वेउच्चिएहि सह परिणयाणमेत्तियवुत्त-
खेत्तुवलंभादो । मारणंतिएण णवचोइसभागा देसूणा फोसिदा । कुदो ? मेरुमूलादो हेट्ठदो

कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, उपरिम देवोंसे ले जाये गये वे देव साढ़े चार
राजु और स्वनिमित्तसे साढ़े तीन राजुप्रमाण गमन करते हैं; इसलिये देवोंका स्पर्शन
आठ बटे चौदह भागप्रमाण होता है ।

समुद्घातकी अपेक्षा उपर्युक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

समुद्घातकी अपेक्षा उपर्युक्त देवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा
चौदह भागोंमें कुछ कम साढ़े तीन भाग, अथवा आठ व नौ भाग स्पृष्ट हैं ॥ ३४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—‘लोकका असंख्यातवां भाग’ यह वचन वर्तमान-
क्षेत्रके प्ररूपणार्थ कहा गया है । इस कारण यहां सब क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये ।
इस समय सूत्रके उपरिम अवयवोंसे अतीतकालसम्बन्धी क्षेत्रकी प्ररूपणा की जाती
है—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा चौदह
भागोंमें साढ़े तीन अथवा आठ भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, स्वनिमित्तसे या परनिमित्तसे विहार
करनेवाले भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंका वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्-
घात एवं वैक्रियिकसमुद्घात पदोंके साथ परिणत होनेपर इतना ही उक्त क्षेत्र पाया जाता
है । मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है, क्योंकि, मेरु-

दोरञ्जुमेत्तमद्वाणं गंतूण द्विदभवणादिदेवाणं घणोदहिद्विदआउकाइयजीवेसु मुक्कमारणं-
तियाणं णवचोइसभागमेत्तफौसणुवलंभादो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ३५ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३६ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । संपधि तीदकाल-
खेत्तपरूवणं कस्सामो । तं जहा— उववादपरिणदेहि भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिएहि
तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्ज-
गुणो फोसिदो । जोइसियाणं णवजोयणसदवाहल्लं तिरियपदरं ठविय उट्टुमेगुणवंचासखंडाणि
करिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं उववादखेत्तं होदि । वाण-
वेंतराणं जोयणलक्खवाहल्लं तिरियपदरं ठविय उट्टुमेगुणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण
ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तमुववादखेत्तं होदि । भवणवासियाणं पि जोयण-

मूलसे नीचे दो राजुमात्र मार्ग जाकर स्थित भवनवासी आदि देवोंका घनोदधि
वातचलयमें स्थित अष्काधिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करते समय नौ बटे चौदह
भागमात्र स्पर्शन पाया जाता है ।

उपपाद पदकी अपेक्षा उक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपपाद पदकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ३६ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— यहां वर्तमान प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।
इस समय अतीतकालिक क्षेत्रप्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है— उपपादपरिणत
भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,
तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, व अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । ज्योतिषी
देवोंके नौ सौ योजन बाह्यरूप तिर्यक्प्रतरको स्थापित कर व ऊपरसे उनंचास खण्ड
करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र उपपादक्षेत्र
होता है । वानव्यन्तर देवोंके एक लाख योजन बाह्यरूप तिर्यक्प्रतरको स्थापित कर व
ऊपरसे उनंचास खण्ड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां
भागमात्र उपपादक्षेत्र होता है । भवनवासियोंके भी एक लाख योजन बाह्यरूप राजु-

लक्खवाहल्लं रज्जुपदरं ठविय पुव्वं व खंडिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदि-
भागमेत्तमुववादखेत्तं होदि ।

सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादं देवगदिभंगो
॥ ३७ ॥

एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । अदीदकालमस्सिदूण परूवणाए वि दव्व-
ट्टियणयावलंबणेण देवगदिभंगो होदि, ण पज्जवट्टियणयावलंबणम्मि । कुदो ? सत्थाणेण
सोधम्मीसाणदेवेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो
फोसिदो, विहार-वेयण-कसाय-वेउच्चिय-मारणंतियपरिणएहि अट्ट-णवचोदसभागा देसूणा
फोसिदा ति णिदिट्टत्तादो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो
दिवड्डचोदसभागा वा देसूणा ॥ ३८ ॥

वट्टमाणकालं पडुच्च लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अदीदकालं पडुच्च दिवड्ड-

प्रतरको स्थापित कर व पूर्वके समान ही खंड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर
तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र उपपादक्षेत्र होता है ।

सौधर्म-ईशान कल्पवासी देवोंके स्पर्शनका निरूपण स्वस्थान और समुद्घातकी
अपेक्षा देवगतिके समान है ॥ ३७ ॥

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालका आश्रय करके
स्पर्शनकी प्ररूपणा भी द्रव्यार्थिक नयके अवलंबनसे देवगतिके समान है, किन्तु
धर्यायार्थिक नयसे वह देवगतिके समान नहीं है । इसका कारण यह है कि स्वस्थानसे
सौधर्म-ईशान कल्पवासी देवों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्टाई द्वीपसे
असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, तथा विहार, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिक-
समुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे परिणत उक्त देवों द्वारा कुछ कम आठ बटे
चौदह और नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है ।

उपपाद पदकी अपेक्षा उक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? उपपाद पदकी
अपेक्षा उक्त देवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा चौदह भागोंमें कुछ कम डेढ़
भागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है ॥ ३८ ॥

वर्तमान कालकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग और अतीत कालकी

चोद्दसभागा देसूणा । कुदो ? तिरिक्ख-मणुस्साणं तीदे काले पहापत्थडे उप्पज्जंताणं दिवड्ढरज्जुवाहल्लरज्जुपदरमेत्तफौसणुवलंभादो ।

सणक्कुमार जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ३९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्टुचोद्दसभागा वा देसूणा ॥४०॥

वट्टुमाणकालं पडुच्च लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिडिडुं । तेणेत्थ खेत्त-परूवणा सन्वा कायन्वा । तीदकाले सत्थाणेण लोगस्स असंखेज्जदिभागो फोसिदो । कुदो ? विमाणरुद्धखेत्तस्स चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागमेत्तपमाणत्तादो । विहार-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपदपरिणएहि अट्टुचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । कुदो ? तसजीवे मोत्तूणणत्थ एदेसिगुप्पत्तीए अभावादो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४१ ॥

अपेक्षा कुछ कम चौदह भागोंमें डेढ़ भागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, अतीत कालकी अपेक्षा प्रभा पटलमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच व मनुष्योंका डेढ़ राजु बाहल्यसे युक्त राजुप्रतरमात्र स्पर्शन पाया जाता है ।

सनत्कुमारसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तकके देव स्वस्थान और समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ३९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त देव स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ ४० ॥

वर्तमान कालकी अपेक्षा 'लोकका असंख्यातवां भाग' ऐसा निर्देश किया है । इस कारण यहां सब क्षेत्ररूपणा करना चाहिये । अतीत कालमें स्वस्थानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है, क्योंकि, विमानरुद्ध क्षेत्रका प्रमाण चार लोकोंके असंख्यातवै भागमात्र है । विहार, वेदनासमुद्घात, कसायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे परिणत उक्त देवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, तस जीवोंको छोड़ अन्यत्र उनकी उत्पत्तिका अभाव है ।

उक्त देवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ४१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो तिण्णि-अद्दुट्ट-चत्तारि-अद्दवंचम-
पंचचोदसभागा वा देसूणा ॥ ४२ ॥

एदस्स अत्थो- वट्टमाणकालं पडुच्च लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिहेसो ।
तेणेत्थ खेत्तपरुवणा सयला कायच्चा । अदीदेण तिण्णि-आहुट्ट-चत्तारि-अद्दवंचम-पंच-
चोदसभागा जहाकमेण फोसिदा । कुदो ? मेरुमूलादो तिण्णिरज्जूओ उवरि चडिय
सणक्कुमार-माहिंदकप्पाणं परिसमत्ती, तदो उवरिमद्दरज्जुं गंतूण बम्ह-बम्हुत्तरकप्पाणं
परिसमत्ती, तदो तत्तो उवरिमद्दरज्जुं गंतूण लंतय-काविट्टकप्पाणं परिसमत्ती, तदो अद्द-
रज्जुं गंतूण सुक्क-महासुक्ककप्पाणमवसाणं, तत्तो अद्दरज्जुं गंतूण सदर-सहस्सारकप्पाणं
परिसमत्ती होदि त्ति ।

आणद जाव अच्चुदकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादेहि केव-
डियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४३ ॥

सुगमं ।

यंह सूत्र सुगम है ।

उक्त देवों द्वारा उपपाद पदकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा चौदह
भागोंमें कुछ कम तीन, साढ़े तीन, चार, साढ़े चार और पांच भाग स्पष्ट हैं ॥ ४२ ॥

इस सूत्रका अर्थ — वर्तमान कालकी अपेक्षा 'लोकका असंख्यातवां भाग'
वेसा निर्देश किया गया है । इस कारण यहां सब क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये । अतीत
कालकी अपेक्षा यथाक्रमसे चौदह भागोंमें तीन, साढ़े तीन, चार, साढ़े चार और पांच
भाग स्पष्ट हैं, क्योंकि, मेरुमूलसे तीन राजु ऊपर चढ़कर सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंकी
समाप्ति है, इससे ऊपर अर्ध राजु जाकर ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पोंकी समाप्ति है, तत्पश्चात्
उससे ऊपर अर्ध राजु जाकर लान्तव-कापिष्ठ कल्पोंकी समाप्ति है, उससे ऊपर अर्ध
राजु जाकर शुक्र-महाशुक्र कल्पोंका अन्त है, तथा उससे अर्ध राजु ऊपर जाकर शतार-
सहस्रार कल्पोंकी समाप्ति होती है ।

आनंतसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवों द्वारा स्वस्थान व समुद्घात पदोंकी
अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पष्ट है ? ॥ ४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो छचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४४ ॥

वट्टमाणं खेत्तभंगो । अदीदेण सत्थाणपरिणदेहि लोगस्स असंखेज्जदिभागो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणएहि छचोद्दसभागा फोसिदा । कुदो ? मेरूमूलादो अधो तेसिं गमणाभावेण वेउव्वियादीणमभावादो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४५ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्दच्छट्ट-छचोद्दसभागा' वा देसूणा ॥ ४६ ॥

एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । अदीदेण आणद-पाणदकप्पे अद्दच्छट्ट-चोद्दसभागा, आरणच्चुदकप्पे छचोद्दसभागा । सेसं सुगुमं ।

उपर्युक्त देवों द्वारा स्वस्थान व समुद्घात पदोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ ४४ ॥

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा स्वस्थान पदसे परिणत उक्त देवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे परिणत उक्त देवों द्वारा छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, मेरूमूलसे नीचे उनका गमन न होनेसे वहां वैक्रियिकसमुद्घातादिकोंका अभाव है ।

उपपादकी अपेक्षा उपर्युक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपपादकी अपेक्षा उक्त देवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े पांच या छह भाग स्पृष्ट हैं ॥ ४६ ॥

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा आनत-प्राणत कल्पमें चौदह भागोंमेंसे साढ़े पांच भाग और आरण-अच्युत कल्पमें छह भाग-प्रमाण स्पर्शन है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ अप्रती ' अद्दच्छट्टचोद्दसभागा ', आप्रती ' अद्दच्छोद्दसभागा ', काप्रती ' अद्दच्छोद्दसभागा ' इति पाठः ।

णवगेवज्ज जाव सवट्टसिद्धिविमाणवासियदेवा सत्थाण-समुग्घाद-
उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४८ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादेहि
अदीद-वट्टमाणेण चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।
णवरि सव्वट्टसिद्धिम्मिह मारणंतिय-उववादविरहिदसेसपदेहि माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो
सि वत्तव्वं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया सुहुमेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता
सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४९ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ ५० ॥

नौ ग्रैवेयकोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविमान तकके देव स्वस्थान, समुद्घात और
उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ४७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त देव उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ४८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिक-
समुद्घात, मारणान्तकसमुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा अतीत व वर्तमान कालसे
चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है ।
विशेष इतना है कि सर्वार्थसिद्धिमें मारणान्तिक व उपपाद पदोंको छोड़ शेष पदोंकी
अपेक्षा मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है, ऐसा कहना चाहिये ।

इन्द्रियमार्गानुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म
एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान,
समुद्घात व उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ ५० ॥

एत्थ वड्डमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । तीदेण सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-
उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो । वेउव्वियपदेण लोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो ।
णवरि सुहुमाणं वेउव्वियं णत्थि ।

बादरेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं
फोसिदं ? ॥ ५१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ५२ ॥

कुदो ? पंचरज्जुवाहल्लं रज्जुपदरं वाउक्काइयजीवावूरिदं बादरएइंदियजीवावूरिद-
सत्तपुढवीओ च, तासिं पुढवीणं हेड्डा द्विदवीसवीसजोयणसहस्सवाहल्लं तिण्णि तिण्णि
वादवलयखेत्ताणि लोगंतद्विदवाउक्काइयखेत्तं च एगट्ठं कदे तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो
णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो खेत्तविसेसो उत्पज्जदि । तेण लोगस्स संखेज्जदि-
भागो अदीद-वड्डमाणेसु कालेसु लब्भदि ।

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा स्वस्थान,
वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे सर्व लोक
स्पृष्ट है । वैक्रियिकसमुद्घात पदसे लोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है । विशेष इतना है
कि सूक्ष्म जीवोंके वैक्रियिकसमुद्घात नहीं होता ।

बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव
स्वस्थान पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंकी अपेक्षा लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श करते
हैं ॥ ५२ ॥

क्योंकि, वायुकायिक जीवोंसे परिपूर्ण पांच राजु बाहल्यरूप राजुप्रतर, बादर
एकेन्द्रिय जीवोंसे परिपूर्ण सात पृथिवियों, उन पृथिवियोंके नीचे स्थित बीस बीस
सहस्र योजन बाहल्यरूप तीन तीन वातवलयक्षेत्रों, तथा लोकान्तमें स्थित वायु-
कायिकक्षेत्रको एकत्रित करनेपर तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक व
तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्रविशेष उत्पन्न होता है । इसलिये अतीत व वर्तमान
कालोंमें लोकका संख्यातवां भाग प्राप्त होता है ।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ ५३ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ ५४ ॥

एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेतभंगो । वेदण-कसाएहि तीदे काले तिण्हं लोमाणं संखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एवं वेउच्चिण्ण वि, पंचरज्जुआयदतिरियपदरम्मि सव्वत्थ विउच्चमाणवाउक्काइयाणं तीदे काले उवलंभादो । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो ।

वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्थाणेहि केव-
डियं खेतं फोसिदं ? ॥ ५५ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५६ ॥

समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ५४ ॥

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । वेदनासमुद्घात और कषाय-समुद्घात पदोंसे अतीत कालमें तीन लोकोंका संख्यातवां भाग तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । इसी प्रकार वैक्रियिकसमुद्घात पदकी अपेक्षा भी तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, अतीत कालकी अपेक्षा पांच राजु आयत तिर्यक्प्रतरमें सर्वत्र विक्रिया करनेवाले वायुकायिक जीव पाये जाते हैं । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है ।

द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त और चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ५६ ॥

एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणेहि तीदे तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्ज-गुणो फोसिदो । एत्थ सत्थाणखेत्ते आणिज्जमाणे सयंपहपव्वदादो, परभागट्टियखेत्त-माणिय संखेज्जसूचीअंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं सत्थाणखेत्तं होदि । विहारवदिसत्थाणखेत्ते आणिज्जमाणे तिरियपदरं ठविय संखेज्जजोयणाणि बाहल्लं होंति त्ति संखेज्जजोयणेहि गुणिय पुणो एदं बाहल्लमेगुणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । अपज्जत्ताणं विहारवदिसत्थाणं णत्थि ।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ५७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो सब्वलोगो वा ॥ ५८ ॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति वट्टमाणकालावेक्खो णिदेसो । तेणेत्थ खेत्त-परूवणा कायव्वा । वेयण-कसायपदेहि तीदे काले तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान और विहार-वत्स्वस्थान पदोंसे अतीत कालमें तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यहां स्वस्थानक्षेत्रके निकालते समय स्वयंप्रभ पर्वतके पर भागमें स्थित क्षेत्रको लेकर संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र स्वस्थानक्षेत्र होता है । विहारवत्स्वस्थानक्षेत्रके निकालनेमें तिर्यक्प्रतरको स्थापित कर 'संख्यात योजन बाहल्य हैं' अतः संख्यात योजनोंसे गुणित कर पुनः इस बाहल्यके उनंचास खण्ड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है । अपर्याप्त जीवोंके विहारवत्स्वस्थान नहीं होता ।

समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥५७॥

यह सूत्र सुगम है ।

समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ५८ ॥

'लोकका असंख्यातवां भाग' यह निर्देश वर्तमान कालकी अपेक्षा है, इसलिये यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये । वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा अतीत कालमें तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और

लोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? पुच्चवेरियसंबंधेण तिरियपदरं सव्वं हिंडमाणविगल्लिदियाणं सव्वत्थ तीदे कसाय-वेयणाणमुवलंभादो । एसो वासहत्थो । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो, सव्वत्थ गमणागमणविरोहा-भावादो । विगल्लिदियअपज्जत्ताणं वेयण-कसायखेत्ताणं सत्थाणभंगो, तत्थ विहारवदि-सत्थाणस्स अभावादो ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?

॥ ५९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्टचोदसभागा वा देसूणा ॥६०॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिदेसो वट्टुमाणावेक्खो । तेणेत्थ खेत्तपरूवणा कायव्वा । संपधि वासहत्थो ताव उच्चदे— सत्थाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एदम्मि खेत्ते

अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, पूर्ववैरियोंके सम्बन्धसे सर्व तिर्यक्-प्रतरमें घूमनेवाले विकलेन्द्रिय जीवोंके सर्वत्र अतीत कालकी अपेक्षा कषायसमुद्घात व वेदनासमुद्घात पद पाये जाते हैं । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिक-समुद्घात व उपपाद पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, सर्वत्र उक्त जीवोंके गमना-गमनमें कोई विरोध नहीं है । विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण स्वस्थान पदके समान है, क्योंकि विहार वत्स्वस्थानपदका उनमें अभाव है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थानपदोंसे कितने क्षेत्रका स्पर्श करते हैं ? ॥ ५९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव स्वस्थानपदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ ६० ॥

‘लोकका असंख्यातवां भाग’ यह निर्देश वर्तमान कालकी अपेक्षासे है । इस-लिये यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये । अब यहां वा शब्दसे सूचित अर्थ कहते हैं— स्वस्थानपदोंसे तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । इस क्षेत्रके निकालनेमें राजुप्रतरको स्थापित

आणिज्जमाणे रज्जुपदरं ठविय संखेज्जंगुलेहि गुणिय तसजीववज्जियसमुद्देहि ओट्टद्ध-
खेत्तमवणिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । पंचिदियतिरिक्ख-
अपज्जत्ताणं विगल्लिदियअपज्जत्ताणं च सत्थाणखेत्तं पुण सयंपहपव्वयस्स परदो चैव
होदि, भोगभूमिपाडिभागम्मि तेसिमुप्पत्तीए अभावादो । अधवा पुव्ववेरियदेवपओणेण
भोगभूमिपाडिभागदीव-समुद्दे पदिदतिरिक्खकलेवरेसु तसअपज्जत्ताणमुप्पत्ती अत्थि त्ति
भणंताणमहिप्पाएण खेत्ते आणिज्जमाणे संखेज्जंगुलबाहल्लं रज्जुपदरं ठविय एगुण-
वंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे अपज्जत्तसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदि-
भागो होदि । एवं विहारसत्थाणेण वि, मित्तामित्तदेवप्पओएण सव्वदीव-समुद्देसु विहारस्स
विरोहाभावादो । णवरि देवाणं विहारमस्सिदूण अट्टचोदसभागा देसूणा हंति ।

समुद्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ६१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्टचोदसभागा वा देसूणा असं-
खेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा ॥ ६२ ॥

कर व संख्यात अंगुलोंसे गुणित कर और उसमेंसे त्रस जीव रहित समुद्रोंसे व्याप्त क्षेत्रको कम कर प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है । किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त और विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका स्वस्थानक्षेत्र स्वयंप्रभ पर्वतके पर भागमें ही है, क्योंकि, भोगभूमिप्रतिभागमें उनकी उत्पत्तिका अभाव है । अथवा पूर्ववैरी देवोंके प्रयोगसे भोगभूमिप्रतिभागरूप द्वीप समुद्रोंमें पड़े हुए तिर्यच-शरीरोंमें त्रस अपर्याप्तोंकी उत्पत्ति होती है, ऐसा कहनेवाले आचार्योंके अभिप्रायसे उक्त क्षेत्रके निकालते समय संख्यात अंगुल बाहल्यरूप राजुप्रतरको स्थापित कर व उनंचास खण्ड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर अपर्याप्त जीवोंका स्वस्थानक्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण होता है । इसी प्रकार विहारवत्स्वस्थानपदकी अपेक्षा भी स्पर्शन-प्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, मित्र व शत्रु स्वरूप देवोंके प्रयोगसे सर्व द्वीप-समुद्रोंमें विहारका कोई विरोध नहीं है । विशेष इतना है कि देवोंके विहारका आश्रय कर कुछ कम आठ बटे चौदह भाग होते हैं ।

समुद्घातोंकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

समुद्घातोंकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, कुछ कम आठ बटे चौदह भाग, असंख्यात बहुभाग, अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ६२ ॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिद्देशो वट्टमाणावेक्खो । तेणेत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा । वेयण-कसाय-वेउव्विण्हि अट्टचोद्दसभागा फोसिदा, विहरंतदेवाणं सव्वत्थ वेयण-कसाय-विउव्वण्णणं विरोहाभावादो । तेजाहारपदेहि चट्टुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो । दंडगदेहि चट्टुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो । एवं क्वाडगदेहि त्ति । णवरि तिरियलोगादो संखेज्ज-गुणो । एसो वासद्धत्थो । पदरगदेहि असंखेज्जा भागा, वादवल्लए मोत्तूण सव्वत्थावूरणादो । मारणंतिय-लोगपूरणेहि सव्वलोगो फोसिदो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ६३ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा ॥ ६४ ॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिद्देशो वट्टमाणावेक्खो । तेणेत्थ खेत्तवण्णणा

‘लोकका असंख्यातवां भाग’ यह निर्देश वर्तमान कालकी अपेक्षा है । इस कारण यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये । वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घात पदोंसे आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, विहार करनेवाले देवोंके सर्वत्र वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंके विरोधका अभाव है । तैजससमुद्घात व आहारकसमुद्घात पदोंसे चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषलोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है । दण्डसमुद्घातको प्राप्त जीवों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । इसी प्रकार कपाटसमुद्घातगत जीवों द्वारा भी स्पृष्ट है । विशेष इतना है कि उनके द्वारा तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । प्रतरसमुद्घातगत जीवों द्वारा लोकका असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, इस अवस्थामें लोक वातवल्लयोंको छोड़कर सर्वत्र जीवप्रदेशोंसे पूर्ण होता है । मारणान्तिकसमुद्घात व लोकपूरण-समुद्घात पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है ।

उपर्युक्त जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ६३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ६४ ॥

‘लोकका असंख्यातवां भाग’ यह निर्देश वर्तमान कालकी अपेक्षासे है । इस

कायच्वा । सव्वलोगट्टिदसुहुमेइंदिएहिंतो पंचिदिएसु आगंतूण उप्पण्णपढमसमयजीवाणं सव्वलोगे वावित्तदंसणादो उववादेण सव्वलोगो फोसिदो । सत्थाण-समुग्घाद-उववादेसु एयवियप्पेसु कधं सव्वत्थ बहुवयणणिहेसो ? ण, तेसु सर्गदाणेयवियप्पसंभवादो ।

पंचिदियअपज्जत्ता सत्थाणेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥६५॥
सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६६ ॥

एदस्स अत्थं भण्णमाणे वट्ठमाणं खेत्तं । अदीदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एदस्स कारणं पुव्वमेव परूविदं ।

समुग्घादेहि उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ६७ ॥
सुगमं ।

कारण यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये । सर्व लोकमें स्थित सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमेंसे पंचेन्द्रिय जीवोंमें आकर उत्पन्न होनेके प्रथमसमयवर्ती जीवोंके सर्व लोकमें व्याप्त देखे जानेसे उपपादकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है ।

शंका—स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंके एक विकल्परूप होनेपर सर्वत्र बहुवचनका निर्देश कैसे किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनमें स्वगत अनेक विकल्पोंकी सम्भावना है ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थानकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥६५॥
यह सूत्र सुगम है ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थानकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श करते हैं ॥ ६६ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते समय वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्र-प्ररूपणाके समान करना चाहिये । अतीत कालकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । इसका कारण पूर्वमें ही कहा जा चुका है ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों द्वारा समुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६८ ॥

एत्थ खेत्तपरूवणं कायव्वं ।

सव्वलोगो वा ॥ ६९ ॥

वेयण-कसायपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासइत्थो । मारणंतिय-उववादेहि सव्व-लोगो फोसिदो ।

कायाणुवादेण पुढविकाइय वाउकाइय सुहुमतेउकाइय सुहुम-वाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ७० ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ ७१ ॥

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों द्वारा उक्त पदोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पष्ट है ॥ ६८ ॥

यहां वर्तमान कालकी अपेक्षा क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये ।

अथवा पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों द्वारा उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पष्ट है ॥६९॥

पंचेन्द्रिय अपर्याप्तों द्वारा वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंसे तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पष्ट है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादकी अपेक्षा सर्व लोक स्पष्ट है ।

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक, वायुकायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायु-कायिक और उन्हींके पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ७० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव उक्त पदोंकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ ७१ ॥

एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । अदीदेण सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो । तेउकाइएहि वेउव्वियपदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कम्म-भूमिपडिभागसयंभूरमणदीवद्धे चैव किर तेउकाइया होंति, ण अण्णत्थेत्ति के वि आइरिया भणंति । तेसिमहिप्पाएण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो । अण्णे के वि आइरिया सव्वेसु दीव-समुद्देशु तेउकाइयवादरपज्जत्ता संभवंति त्ति भणंति । कुदो ? सयंभूरमणदीव-समुद्दुप्पणाणं बादरतेउपज्जत्ताणं वाएण हिरिज्जमाणणं कीडणसीलदेव-परतंताणं वा सव्वदीव-समुद्देशु सविउव्वणाणं^१ गमणसंभवादो । केइमारिया तिरियलोगादो संखेज्जगुणो फोसिदो त्ति भणंति । कुदो ? सव्वपुढवीसु वादरतेउपज्जत्ताणं संभवादो । तिसु वि उवदेसेसु को एत्थ गेज्जो ? तइज्जो घेत्तव्वो, जुत्तीए अणुगगहिदत्तादो । ण च सुत्तं तिण्हमेक्कस्स वि मुक्ककंठं होऊण परूवयमत्थि । पहिल्लओ उवएसो वक्खाणेहि वक्खाणाइरियेहि य संमदो त्ति एत्थ सो चैव णिदिट्ठो । वाउक्काइएहि वेउव्वियपदेण

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे उक्त जीव सर्व लोक स्पर्श करते हैं । तेजस्कायिक जीवोंके द्वारा वैक्रियिकपदकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । कर्मभूमिप्रतिभागरूप अर्ध स्वयंभूरमण द्वीपमें ही तेजस्कायिक जीव होते हैं, अन्यत्र नहीं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं । उनके अभि-प्रायसे उक्त स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है । अन्य कितने ही आचार्य 'सर्व द्वीप-समुद्रोंमें तेजस्कायिक वादर पर्याप्त जीव संभव हैं' ऐसा कहते हैं, क्योंकि, स्वयंभूरमण द्वीप व समुद्रमें उत्पन्न वादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंका वायुसे लेजाये जानेके कारण अथवा कीडनशील देवोंके परतंत्र होनेसे सर्व द्वीप-समुद्रोंमें विक्रिया युक्त होकर गमन सम्भव है । कितने आचार्योंका कहना है कि उक्त जीवोंके द्वारा वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, सर्व पृथिवियोंमें वादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंकी सम्भावना है ।

शंका— उपर्युक्त तीनों उपदेशोंमें कौनसा उपदेश यहां ग्राह्य है ?

समाधान— तीसरा उपदेश यहां ग्रहण करने योग्य है, क्योंकि, वह युक्तिसे अनु-गृहीत है । दूसरी बात यह है कि सूत्र इन तीन उपदेशोंमेंसे एकका भी मुक्ककण्ठ होकर प्ररूपक नहीं है । पहिला उपदेश व्याख्यानों और व्याख्यानाचार्योंसे सम्मत है, इसलिये यहां उसीका निर्देश किया गया है । वायुकायिक जीवोंके द्वारा वैक्रियिकपदसे तीन लोकोंका

१ अप्रतौ ' -समुद्देशु वि उप्पणाणं ' इति पाठः ।

तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? पंचरज्जुवाहल्लं तिरियपदरमावरिय तीदे काले अवट्टाणादो ।

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवण-
फदिगइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं
फोसिदं ? ॥ ७२ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७३ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । तीदे काले एदेहि तिण्हं लोगाणम-
संखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।
कुदो ? सच्चकालमट्टपुढवीओ भवणविमाणाणि च अस्सिदूण अवट्टाणादो ।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ७४ ॥

सुगमं ।

संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है,
क्योंकि, उक्त जीवोंका अतीत कालकी अपेक्षा पांच राजु तिर्यक्प्रतरको पूर्ण कर
अवस्थान है ।

बादर पृथिवीकायिक, बादर अष्कायिक, बादर तेजस्कायिक, बादर वनस्पति-
कायिक प्रत्येकशरीर और उनमें प्रत्येकके अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र
स्पर्श करते हैं ? ॥ ७२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥७३॥

इस सूत्रकी वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा
इन्हीं जीवों द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा, और
अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, सर्व कालमें आठ पृथिवियों और
भवनविमानोंका आश्रय करके उक्त जीवोंका अवस्थान है ।

समुद्घात और उपपाद पदोंसे उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥७४॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७५ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— तिण्णं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो वड्डमाणे फोसिदी । सेसं खेत्तमंगो ।

सव्वलोगो वा ॥ ७६ ॥

एत्थ वासइत्थो वुच्चदे— वेयण-कसायपदपरिणदेहि वेउव्वियपदपरिणदेहि य तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ वेउव्वियपदस्स पुच्चं व तिविहं वक्खाणं कायव्वं । मारणांतिय-उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो, वड्डमाणातीदकालदंसणादो ।

बादरपुढवि—बादरआउ—बादरतेउ—बादरवणप्फदिकाइयपत्तेय—
सरिरपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥७७ ॥

सुगमं ।

समुद्घात व उपापद पदोंसे उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट हैं ॥ ७५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— वर्तमान कालमें उक्त पदोंकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । शेष कथन क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

अथवा उक्त पदोंकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ७६ ॥

यहां वा शब्दसे सूचित अर्थ कहते हैं— वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंसे परिणत तथा वैक्रियिक पदसे परिणत उक्त जीवोंके द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यहां वैक्रियिक पदकी अपेक्षा पूर्वके समान तीन प्रकार व्याख्यान करना चाहिये । मारणान्तिकसमुद्घात और उपापद पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, इन पदोंमें वर्तमान व अतीत काल देखे जाते हैं ।

बादर पृथिवीकायिक, बादर अष्कायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ७७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७८ ॥

एत्थ खेत्तवण्णं कायव्वं, वट्टमाणप्पणादो । तीदे तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-
भागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ?
अपज्जत्ताणं वं पज्जत्ताणं पि सव्वपुट्ठीसु अवट्टाणविरोहाभावादो । ण च अट्टसु पुट्ठीसु
पुट्ठीवि-आउ-तेउ-वाउबादराणं बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीराणं च अपज्जत्ता चैव होंति
त्ति जुत्ती अत्थि । अण्णाइरियवक्ख्खाणं पुण एवं ण होदि । तं कधं ? बादरआउपज्जत्त-
बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि सत्थाण-वेयण-कसायपरिणएहि तिण्हं लोगाणम-
संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो, चित्ताए उवरिमभागं मोत्तूण
बादरआउपज्जत्त-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ताणमण्णत्थ अवट्टाणाभावादो । एवं
बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ताणं पि वत्तव्वं, पत्तेयसरीरत्तं पडि भेदाभावादो । एवं बादर-
तेउकाइयपज्जत्ताणं पि । कुदो ? सयंपहपव्वयस्स परभागे चैव एदेसिमवट्टाणादो । एदं

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं

॥ ७८ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है । अतीत
कालकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा, और अट्टाई-
द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, अपर्याप्तोंके समान पर्याप्त जीवोंका भी
सर्व पृथिवियोंमें अवस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं है । आठ पृथिवियोंमें पृथिवीकायिक,
अप्कायिक, तेजस्कायिक व वायुकायिक बादर जीवों तथा बादर वनस्पतिकायिक
प्रत्येकशरीर जीवोंके अपर्याप्त जीव ही होते हैं, ऐसी कोई युक्ति भी नहीं है । परन्तु
अन्य आचार्योंका व्याख्यान ऐसा नहीं है ।

शंका—यह कैसे ?

समाधान—‘ बादर अप्कायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक-
शरीर पर्याप्त जीवों द्वारा स्वस्थान, वेदनासमुद्घात व कषायसमुद्घात पदोंसे परिणत
होकर तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है,
क्योंकि, चित्रा पृथिवीके उपरिम भागको छोड़कर अप्कायिक पर्याप्त और बादर वन-
स्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंका अन्यत्र अवस्थान नहीं है । इसी प्रकार
बादर निगोद-प्रतिष्ठित पर्याप्तोंका भी कथन करना चाहिये, क्योंकि, प्रत्येकशरीरत्वके
प्रति दोनोंमें कोई भेद नहीं है । इसी प्रकार बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंका भी
समझना चाहिये, क्योंकि, स्वयंप्रभ पर्वतके पर भागमें ही इनका अवस्थान है ’ । यह

च अण्णाहरियवक्खाणं चक्खिदियपमाणबलपयट्ठं । पुढविकाइया सव्वपुढवीसु होंति च्चि
एदं पि चक्खिदियबलपयट्ठं चेव । ण च पुढविकाइयादओ अंगुलस्स असंखेज्जदिभाग-
मेत्तसरीरा इंदियगेज्जा, जेण इंदियबलेण विहि-पडिसेहो होज्ज । तम्हा' सव्व-
पुढवीओ अस्सिदूण एदेसिं बादरअपज्जत्ताणं व पज्जत्ताणं पि अवट्ठाणेण होदव्वं,
विरोहाभावादो । तत्थ जलंता णिरयपुढवीसु अग्गिणो वहंतीओ णईओ च णत्थि च्चि
जदि अभावो वुच्चदे, तं पि ण घडदे,

षष्ठ-सप्तमयोः शीतं शीतोष्णं पंचमे स्मृतम् ।

चतुर्ध्वत्युष्णमुद्दिष्टंस्तासामेव महीगुणा ॥ १ ॥

इदि तत्थ वि आउ-तेऊणं संभवादो । कथं पुढवीणं हेट्ठा पत्तेयसरीराणं संभवो ?
ण, सीएण वि सम्मुच्छिज्जमाणपगण-कुहुणादीणमुवलंभादो । कथमुण्हम्हि संभवो ? ण,
अच्चुण्हे वि समुप्पज्जमाणजवासपाईणमुवलंभादो ।

अन्य आचार्योंका व्याख्यान चक्षु इन्द्रियरूप प्रमाणके बलसे प्रवृत्त है । ' पृथिवीकायिक
जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं ' यह भी व्याख्यान चक्षु इन्द्रियके बलसे ही प्रवृत्त है ।
और अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण शरीरवाले पृथिवीकायिकादि जीव इन्द्रियोंसे
ग्राह्य हैं नहीं, जिससे इन्द्रियबलसे उनका विधान व प्रतिषेध हो सके । अतएव इनके
बादर अपर्याप्त जीवोंके समान पर्याप्त जीवोंका भी अवस्थान सर्व पृथिवियोंका आश्रय
करके होना चाहिये, क्योंकि, उसमें कोई विरोध नहीं है । वहां नरकपृथिवियोंमें
जलती हुई अग्नियां और बहती हुई नदियां नहीं हैं, इस कारण यदि उनका अभाव
कहते हो तो वह भी घटित नहीं होता, क्योंकि—

छठी और सातवीं पृथिवीमें शीत तथा पांचवींमें शीत व उष्ण दोनों माने गये
हैं । शेष चार पृथिवियोंमें अत्यन्त उष्णता है । ये उनके ही पृथिवीगुण हैं ॥ १ ॥

इस प्रकार उन नरक पृथिवियोंमें अप्कायिक व तेजस्कायिक जीवोंकी
सम्भावना है ।

शंका—पृथिवियोंके नीचे प्रत्येकशरीर जीवोंकी संभावना कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि शीतसे भी उत्पन्न होनेवाले पगण और कुहुन
आदि वनस्पतिविशेष पाये जाते हैं ।

शंका—उष्णतामें प्रत्येकशरीर जीवोंका उत्पन्न होना कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अत्यन्त उष्णतामें भी उत्पन्न होनेवाले जवासप
आदि वनस्पतिविशेष पाये जाते हैं ।

१ प्रतिषु ' तं जहा ' इति पाठः ।

समुद्घात-उपवादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ ७९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८० ॥

एत्थ खेत्तवण्णं कायवं, वट्टमाणप्पणादो ।

सव्वलोगो वा ॥ ८१ ॥

एत्थ ताव वासदत्थो उच्चदे । तं जहा- वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि तिण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । मारणांतिय-उपवादेहि सव्वलोगो फोसिदो, एदेसिं सव्वत्थ गमणागमणं पडि विरोहाभावादो ।

बादरवाउक्काइया तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ ८२ ॥

समुद्घात व उपपाद पदोंकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ७९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ८० ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ८१ ॥

यहां पहले वा शब्दसे सूचित अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— वेदना-समुद्घात, कषायसमुद्घात, और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, इन जीवोंके सर्वत्र गमनागमनके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

बादर वायुकायिक और उसके ही अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ८२ ॥

सुगमं ।

लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ८३ ॥

कुदो ? पंचरज्जुवाहल्लरज्जुपदरमावूरिय अवट्ठाणादो । लोगंते अट्टपुढवीणं हेट्ठा वि अवट्ठाणमत्थि किंतु तमेदस्स असंखेज्जदिभागो ।

समुग्घाद-उवघादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ८४ ॥

सुगमं ।

(लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ८५ ॥

सुगमं ।)

सव्वलोगो वा ॥ ८६ ॥

एत्थ वासहत्यो वुच्चदे— वेयण-कसाय-वेउव्विएहि तिण्हं लोगाणं संखेज्जदि-

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ८३ ॥

क्योंकि, पांच राजु बाहल्यरूप राजुपतरको पूर्ण कर उक्त जीवोंका अवस्थान है । उनका अवस्थान लोकान्तमें तथा आठ पृथिवियोंके नीचे भी है, किन्तु वह इसके असंख्यातवें भागमात्र है ।

उपर्युक्त जीव समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

(उपर्युक्त जीव उक्त पदोंसे लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ८५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।)

अथवा, सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ ८६ ॥

यहां वा शब्दसे सूचित अर्थ कहते हैं— वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे तीन लोकोंका संख्यातवां भाग तथा मनुष्यलोक व तिर्य-

भागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासइत्थो । णवरि वेउव्वियं वट्टमाणेण खेत्तभंगो । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो ।

बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ८७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ८८ ॥

अदीद-वट्टमाणेहि पंचरज्जुवाहल्लरज्जुपदरमावूरिय अवट्टाणादो ।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ८९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ९० ॥

एदं वट्टमाणमस्सिदूण परुविदं । तेण वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि तिण्हं

ग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । विशेष इतना है कि वर्तमान कालकी अपेक्षा वैक्रियिकपदका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है ।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?
॥ ८७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं
॥ ८८ ॥

क्योंकि, अतीत और वर्तमान कालोंकी अपेक्षा उक्त जीवोंका पांच राजु बाहल्य-रूप राजुप्रतरको पूर्णकर अवस्थान है ।

समुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?
॥ ८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त पदोंकी अपेक्षा लोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ९० ॥

यह वर्तमान कालका आश्रय कर कथन किया गया है । इसलिये वेदना-रुमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे तीन लोकोंका

लोगाणं संखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो वट्टमाणे क्किण्ण पुसिज्जदि ? ण, पंचरज्जुवाहल्लरज्जुपदरं मोत्तूण अण्णत्थ मारणंतिय-उववादे करेमाणजीवाणं सुट्ठु त्थोवत्तुवलंभादो । वेउच्चियपदेण खेत्तभंगो ।

सव्वलोगो वा ॥ ९१ ॥

वेयण-कसाय-वेउच्चिएहि तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासदत्थो । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो, तीदकालप्पणादो ।

वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुम-
णिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि
केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ९२ ॥

सुगमं ।

संख्यातवां भाग तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है ।

शंका—मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे वर्तमानमें सर्व लोक स्पर्श क्यों नहीं किया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पांच राजु बाह्यरूप राजुप्रतरको छोड़कर अन्यत्र मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको करनेवाले जीव बहुत थोड़े पाये जाते हैं । वैक्रियिक पदकी अपेक्षा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिये ।

अथवा, उपर्युक्त जीवों द्वारा समुद्घात व उपपादसे सर्व लोक स्पृष्ट है ॥९१॥

वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे तीन लोकोंका संख्यातवां भाग तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, अतीत कालकी विवक्षा है ।

वनस्पतिक्रायिक, निगोदजीव, सूक्ष्म वनस्पतिक्रायिक और सूक्ष्म निगोदजीव तथा उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ९२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सव्वलोगो ॥ ९३ ॥

कुदो ? आणंतियादो, सव्वत्थ जल-थलागासेसु अवट्टाणं पडि विरोहाभावादो च ।
बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता
अपजत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ९४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९५ ॥

कुदो ? अट्टपुटवीओ चेमस्सिदूण अवट्टाणादो । तदो एदेहि तिण्हं लोगाणम-
संखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो अदीद-
वट्टमाणेहि फोसिदो ।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ९६ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ ९७ ॥

उपर्युक्त जीव उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ ९३ ॥

क्योंकि, वे अनन्त हैं; तथा जल, थल व आकाशमें सर्वत्र उनके अवस्थानमें कोई विरोध नहीं है ।

बादर वनस्पतिकायिक व बादर निगोदजीव तथा उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ९४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ९५ ॥

क्योंकि, आठ पृथिवियोंका ही आश्रय कर उनका अवस्थान है । अत एव इन जीवोंके द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा और मानुष-
क्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीत व वर्तमान कालोंकी अपेक्षा स्पृष्ट है ।

समुद्घात व उपपाद पदोंसे उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ९६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

समुद्घात व उपपाद पदोंसे उक्त जीवों द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ९७ ॥

तीदवट्टमाणेसु मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगावूरणादो ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदिय-
पज्जत्त-अपज्जत्तभंगो ॥ ९८ ॥

सुगममेदं ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगी सत्थाणेहि केवडियं
खेत्तं फोसिदं ? ॥ ९९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०० ॥

एसो वट्टमाणणिहेसो । तेणेत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा ।

अट्टचोदसभागा वा देसूणा ॥ १०१ ॥

एत्थ ताव वासइत्थो बुच्चदे- सत्थाणेण अप्पिदजीवेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-

क्योंकि, अतीत व वर्तमान कालोंमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे उनके द्वारा सर्व लोक पूर्ण किया जाता है ।

त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीवोंके स्पर्शनका निरूपण पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान है ॥९८॥

यह सूत्र सुगम है ।

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ९९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥१००॥

यह कथन वर्तमान कालकी अपेक्षा है । अतएव यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये ।

अथवा, उक्त जीव स्वस्थान पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ १०१ ॥

यहां प्रथम वा शब्दसे सूचित अर्थ कहते हैं— स्वस्थानकी अपेक्षा प्रकृत जीवों

भागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासइत्थो । विहारवदिसत्थाणेण अट्टचोइसभागा देसूणा फोसिदा । कुदो ? अट्टरज्जुवाहल्ललोगणालीए मण-वचिजोगीणं विहारुवलंभादो ।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १०२ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०३ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणा कायच्चा, वट्टमाणप्पणादो^१ ।

अट्टचोइसभागा देसूणा सब्वलोगो वा ॥ १०४ ॥

आहार-तेजइयपदेहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदि-भागो फोसिदो । एसो वासइत्थो । वेयण-कसाय-वेउव्विएहि अट्टचोइसभागा देसूणा फोसिदा, अट्टरज्जुआयदलोगणालीए सब्वत्थ तीदे काले वेयण-कसाय-विउव्वणाण-मुवलंभादो । मारणंतिएण सब्वलोगो ।

द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है। विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है, क्योंकि, मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंका विहार आठ राजु बाह्व्ययुक्त लोकनालीमें पाया जाता है।

उपर्युक्त जीवों द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १०२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त जीवों द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १०३ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी प्रधानता है।

अथवा, उन्हीं जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग या सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १०४ ॥

आहारकसमुद्घात और तैजससमुद्घात पदोंकी अपेक्षा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है। यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है। वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, आठ राजु आयत लोकनालीमें सर्वत्र अतीत कालकी अपेक्षा वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पाये जाते हैं। मारणान्तिक-समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है।

१ प्रतिष्ठ ' वट्टमाणप्पमाणादो ' इति पाठः ।

उववादो णत्थि ॥ १०५ ॥

तत्थ मण-वच्चिजोगाणमभावादो ।

कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाण-समुग्घाद-उव-
वादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १०६ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ १०७ ॥

एदस्स अत्थो — सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि वट्टमाणादीदेसु सव्वलोगो फोसिदो । कुदो ? सव्वत्थ गमणागमणावट्टाणं पडि विरोहाभावादो । विहार-वदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि वट्टमाणं खेत्तं । अदीदेण अट्टचौदसभागा देसणा फोसिदा । णवरि वेउव्वियपदेण तिहं लोगाणं संखेज्जदिभागो । तेजाहारपदेहि चटुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । एत्थ वासदेण विणा कधमेसो

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता ॥१०५॥

क्योंकि, उपपाद पदमें मनोयोग व वचनयोगका अभाव है ।

काययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १०६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ १०७ ॥

इसका अर्थ— स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिक-समुद्घात और उपपाद पदोंसे वर्तमान व अतीत कालोंमें उक्त जीवोंने सर्व लोकका स्पर्श किया है, क्योंकि, उन जीवोंके सर्वत्र गमनागमन और अवस्थानमें कोई विरोध नहीं है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे वर्तमानकालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है । विशेष इतना है कि वैक्रियिक पदकी अपेक्षा तीन लोकोंके संख्यातवें भागका स्पर्श किया है । तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पदोंसे चार लोकोंके असंख्यातवें भाग व मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागका स्पर्श किया है ।

शंका— प्रस्तुत सूत्रमें वा शब्दके बिना यहाँ इस अर्थका व्याख्यान कैसे किया जाता है ?

अथो एत्थ वक्खाणिज्जदि ? ण एस दोसो, एदस्स सुत्तस्स देसामासियत्तादो । विहार-
वदिसत्थाण-वेउव्विय-तेजाहारपदाणि ओरालियमिस्से णत्थि ।

ओरालियकायजोगी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?

॥ १०८ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ १०९ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिएहि वट्टमाणातीदेसु सव्वलोगो फोसिदो
विहारवदिसत्थाणेण वट्टमाणं खेत्तं । अदीदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-
लोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । वेउव्वियपदेण वट्टमाणं
खेत्तं । अदीदेण तिण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो
फोसिदो । एदं सुत्तं देसामासियं काऊण सव्वमेदं वक्खाणं सुत्तारूढं कायव्वं ।

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह सूत्र देशामर्शक है ।

विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पद औदारिकमिश्रयोगमें नहीं होते हैं ।

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र
स्पर्श करते हैं ? ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श
करते हैं ॥ १०९ ॥

स्वस्थानस्वस्थान वेदनासमुद्घात कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात
पदोंसे उक्त जीवोंने सर्व लोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थानसे वर्तमान
कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा तीन
लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अर्द्धाईद्वीपसे असंख्यात-
गुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । वैक्रियिक पदसे वर्तमान कालकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके
समान है । अतीत कालकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग तथा मनुष्यलोक व
तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । इस सूत्रको देशामर्शक करके यह
सब सूत्रविहित व्याख्यान करना चाहिये ।

उववादं णत्थि ॥ ११० ॥

उववादकाले ओरालियकायजोगस्स अभावादे ।

वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥१११॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११२ ॥

एदस्स अत्थो — तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? वट्टमाणप्पणादो ।

अट्टचोदसभागा देसूणा ॥ ११३ ॥

वेउव्वियकायजोगीहि सत्थाणेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदि-सत्थाणेण अट्टचोदसभागा फोसिदा, अट्टरज्जुबाहल्ललोगणालीए वेउव्वियकायजोगेण

औदारिककाययोगमें उपपाद पद नहीं होता ॥ ११० ॥

क्योंकि, उपपादकालमें औदारिककाययोगका अभाव रहता है ।

वैक्रियिककाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?
॥ १११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिककाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ११२ ॥

इस सूत्रका अर्थ— उक्त जीवोंने स्वस्थानपदोंसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अट्टाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि, वर्तमानकालकी प्रधानता है ।

अतीत कालकी अपेक्षा वैक्रियिककाययोगी जीव कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ ११३ ॥

वैक्रियिककाययोगी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे अतीत कालकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । विहारवःस्वस्थानकी अपेक्षा आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है, क्योंकि, आठ राजु बाहल्यवाली लोकनालीमें वैक्रियिककाययोगसे देवोंका

देवाणं विहारुवलंभादो ।

समुद्घादेण केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ ११४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११५ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्ट-तेरहचोदसभागा देसूणा ॥ ११६ ॥

वेयण-कसाय-वेउंविचयपदेहि अट्टचोदसभागा फोसिदा । मारणंतिण्ण तेरह-चोदसभागा देसूणा फोसिदा । कुदो ? मेरुमूलादो उवरि सत्त हेट्ठा छरज्जुआयामलोग-णालिमावूरिय वेउंविचयकायजोगेण तीदे कयमारणंतियजीवाणमुवलंभादो ।

उववादं णत्थि ॥ ११७ ॥

तत्थ वेउंविचयकायजोगाभावादो ।

विहार पाया जाता है ।

उक्त जीव समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ११४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीव समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ११५ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी-प्रधानता है ।

उक्त जीव अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह और तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ ११६ ॥

अतीत कालकी अपेक्षा वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे उक्त जीवोंने आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घातसे कुछ कम तेरह बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है, क्योंकि, मेरुमूलसे ऊपर सात और नीचे छह राजु आयामवाली लोकनालीको पूर्णकर वैक्रियिककाययोगके साथ अतीत कालमें मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त जीव पाये जाते हैं ।

वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें उपपाद पद नहीं होता ॥ ११७ ॥

क्योंकि, उपपाद पदमें वैक्रियिककाययोगका अभाव है ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?
॥ ११८ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११९ ॥

एत्थ वड्डमाणं खेत्तं । अदीदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदिसत्थाणं णत्थि ।

समुग्घाद-उववादं णत्थि ॥ १२० ॥

होदु णाम भारणंतिय-उववादाणमभावो, एदेसिं दोण्हं वेउव्वियमिस्सकायजोगेण सह विरोहादो । वेउव्वियस्स वि तत्थ अभावो होदु णाम, अपज्जत्तकाले तदसंभवादो । ण पुण वेयण-कसायाणं तत्थ असंभवो, णेरइएसु अपज्जत्तकाले चेव ताणमुवलंभादो ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ११८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ११९ ॥

यहां वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श करते हैं । विहारवत्स्वस्थान उनके होता नहीं है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समुद्घात और उपपाद नहीं होते ॥ १२० ॥

शंका—वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंका अभाव भले ही हो, क्योंकि, इनका वैक्रियिकमिश्रकाययोगके साथ विरोध है । इसी प्रकार वैक्रियिकसमुद्घातका भी उनके अभाव रहा आवे, क्योंकि, अपर्याप्तकालमें वैक्रियिकसमुद्घातका होना असंभव है । किन्तु वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंकी उनमें असंभावना नहीं है, क्योंकि, नारकियोंके ये दोनों समुद्घात अपर्याप्तकालमें ही पाये जाते हैं ? (जीवस्थान स्पर्शनानुगमके सूत्र ९४ की टीकामें धवलाकारने यहां उपपाद पद भी स्वीकार किया है ।)

एत्थ परिहारो बुच्चदे । तं जहा— हेतु णाम तेसिं संभवो, किंतु तत्थ सत्थाणखेत्तादो अहियं खेत्तं ण लब्भदि त्ति तेसिं पडिसेहो कदो । किमिदि ण लब्भदे ? जीवपदेसाणं तत्थ सरीरतिगुणविप्फुज्जणाभावादो ।

आहारकायजोगी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?

॥ १२१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १२२ ॥

एत्थ वट्टमाणस्स खेत्तभंगो । अदीदेण सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसायपदेहि चदुणं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । मारणंतिएण चदुणं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो ।

समाधान—उक्त शंकाका परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है— नारकियोंके अपर्याप्तकालमें वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंकी सम्भावना रही आवे, किन्तु उनमें स्वस्थानक्षेत्रसे अधिक क्षेत्र नहीं पाया जाता, इसी कारण उनका प्रतिषेध किया है ।

शंका—स्वस्थानक्षेत्रसे अधिक क्षेत्र वहां क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—क्योंकि, उनमें जीवप्रदेशोंके शरीरसे तिगुणे विसर्पणका अभाव है ।

आहारककाययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारककाययोगी जीव उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ? ॥ १२२ ॥

यहां वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंसे आहारककाययोगी जीवोंने चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागका स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घातसे चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

उववादं णत्थि ॥ १२३ ॥

कुदो ? अच्चंताभावेण ओसारिदत्तादो ।

आहारमिस्सकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?
॥ १२४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १२५ ॥

एत्थ वट्टमाणस्स खेत्तभंगो । अदीदेण चटुण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागो,
माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । विहारवदिसत्थाणं णत्थि ।

समुग्घाद-उववादं णत्थि ॥ १२६ ॥

कुदो ? अच्चंताभावेण ओसारिदत्तादो ।

कम्मइयकायजोगीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १२७ ॥

आहारककाययोगी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ १२३ ॥

क्योंकि, वह अत्यन्ताभावसे निराकृत है ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?
॥ १२४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श
करते हैं ॥ १२५ ॥

यहां वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।
अतीत कालकी अपेक्षा चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें
भागका स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान उनके होता नहीं है ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके समुद्घात और उपपाद पद नहीं होते ॥ १२६ ॥

क्योंकि, वे अत्यन्ताभावसे निराकृत हैं ।

कर्मणकाययोगी जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ॥ १२७ ॥

सुगमं ।

सर्वलोगो ॥ १२८ ॥

एदं पि सुगमं ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १२९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३० ॥

एत्थ खेत्तपरुवणा कायव्वा, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्टचोदसभागा देसूणा ॥ १३१ ॥

एदं देसामासियसुत्तं । तेणेदेण सुइदत्थस्स ताव परुवणं कस्सामो । तं जहा—
सत्थाणेण तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो
असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ वाणवंतर-जोदिसियाणं विमाणेहि रुद्धखेत्तं घेत्तूण तिरिय-

यह सूत्र सुगम है ।

कार्मणकाययोगियों द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १२८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव स्वस्थान पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १२९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ १३० ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी प्रधानता है ।

अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कुछ क्रम आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है ॥ १३१ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, इस कारण इससे सूचित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानकी अपेक्षा उक्त जीवोंने तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । यहां वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके विमानोंसे रुद्ध क्षेत्रको ग्रहणकर तिर्यग्लोकका

लोगस्स संखेज्जदिभागो साहेयव्वो । एसो सइदत्थो । विहारवदिसत्थाणेहि पुण अट्टचोदस-
भागा देसूणा फोसिदा, देवीहि सह देवाणमट्टचोदसभागेषु तीदे काले संचारुवलंभादो ।

समुग्घादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ १३२ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३३ ॥

एत्थ खेत्तवण्णं कायव्वं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्टचोदसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १३४ ॥

वेयण-कसाय-वेउत्थियपदपरिणदेहि अट्टचोदसभागा देसूणा फोसिदा । कुदो ?
देवीहि सह अट्टचोदसभागे भंमंताणं देवाणं सव्वत्थ वेयण-कसाय-विउव्वणाणसुवलंभादो ।
तेजाहारसमुग्घादा ओघभंगो । णवरि इत्थिवेदे तदुभयं णत्थि । मारणंत्तियसमुग्घादेण

संख्यातवां भाग सिद्ध करना चाहिये । यह सूचित अर्थ है । किन्तु विहारवत्स्वस्थानकी
अपेक्षा उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है, क्योंकि,
देवियोंके साथ देवोंका आठ बटे चौदह भागोंमें अतीत कालकी अपेक्षा गमन पाया
जाता है ।

स्त्रीवेदी व पुरुषवेदी जीव समुद्घातोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?
॥ १३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

समुद्घातकी अपेक्षा उक्त जीव लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं
॥ १३३ ॥

यहां क्षेत्रका वर्णन करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी प्रधानता है ।

अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह भागोंका
अथवा सर्व लोकका स्पर्श किया है ॥ १३४ ॥

वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे परिणत
स्त्रीवेदी व पुरुषवेदी जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि,
देवियोंके साथ आठ बटे चौदह भागमें भ्रमण करनेवाले देवोंके सर्वत्र वेदना, कषाय
और वैक्रियिक समुद्घात पाये जाते हैं । तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पदोंकी
अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण ओघके समान है । विशेष इतना है कि स्त्रीवेदमें वे दोनों

सव्वलोगो, तिरिक्ख-मणुस्सपुरिसिथिवेदाणं सव्वलोगे मारणंतियसंभवादो । वासहो किमट्ठं ? समुच्चयट्ठो । देव-देवीणं मारणंतियं वेप्पमाणे णवचोद्दसभागा होंति त्ति फोसणविसेसजाणावणट्ठं वा वासहो परूविदो ।

उववादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ १३५ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३६ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा, वट्टमाणप्पणादो ।

सव्वलोगो वा ॥ १३७ ॥

कुदो ? सव्वदिसादो आगंतूण इत्थि-पुरिसवेदेसु उप्पज्जमाणाणगुवलंभादो । देव-देवीओ च अस्सिदूण भण्णमाणे तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो छचोद्दसभागा तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो त्ति जाणावणट्ठं वासद्दग्गहणं कयं ।

पद नहीं होते । मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, तिर्यच और मनुष्य पुरुष-स्त्रीवेदियोंके सर्व लोकमें मारणान्तिकसमुद्घातकी सम्भावना है ।

शंका—सूत्रमें वा शब्दका प्रयोग किस लिये किया गया है ?

समाधान—वा शब्दका प्रयोग समुच्चयके लिये किया गया है । अथवा देव-देवियोंके मारणान्तिकसमुद्घातको ग्रहण करनेपर नौ बटे चौदह भाग होते हैं, इस स्पर्शनविशेषके ज्ञापनार्थ वा शब्दका प्रयोग किया गया है ।

उपपादकी अपेक्षा स्त्रीवेदी व पुरुषवेदी जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?
॥ १३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १३६ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, उपपादकी अपेक्षा अतीत कालमें उक्त जीवों द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १३७ ॥

क्योंकि, सर्व दिशाओंसे आकर स्त्री व पुरुष वेदियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीव पाये जाते हैं । देव-देवियोंका आश्रय कर स्पर्शनके कहनेपर तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, छह बटे चौदह भाग और तिर्यगलोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है, इसके ज्ञापनार्थ सूत्रमें वा शब्दका ग्रहण किया है ।

णवुंसयवेदा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?

॥ १३८ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ १३९ ॥

एदस्स अत्थो— सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि अदीद-वट्टमाणेण सव्वलोगो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादेहि वट्टमाणे खेत्तं । अदीदे तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । णवरि वेउव्वियपदेण तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, णर-तिरिय-लोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? वाउक्काइयाणं विउव्वमाणणं पंचचोइस-भागमेत्तफोसणस्सुवलंभादो । तेजाहारसमुग्घादा णत्थि ।

अवगदवेदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १४० ॥

सुगमं ।

नपुंसकवेदी जीवोंने स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नपुंसकवेदी जीवोंने उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १३९ ॥

इस सूत्रका अर्थ— स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिक-समुद्घात और उपपाद पदोंसे अतीत व वर्तमान कालकी अपेक्षा नपुंसकवेदियोंने सर्व लोकका स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । विशेषता इतनी है कि वैक्रियिकपदसे तीन लोकोंके संख्यातवें भाग तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि, विक्रिया करनेवाले वायुकायिक जीवोंके पांच बटे चौदह भागमात्र स्पर्शन पाया जाता है । तैजस व आहारक समुद्घात नपुंसकवेदियोंके होते नहीं हैं ।

अपगतवेदी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १४० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १४१ ॥

सुगमं ।

समुग्घादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ १४२ ॥

एदं पि सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १४३ ॥

दंड-कवाड-मारणंतियसमुग्घादगदेहि चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइ-ज्जादो असंखेज्जगुणो अदीद-वट्टमाणेण फोसिदो । णवरि कवाडगदेहि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो संखेज्जगुणो वा फोसिदो ।

असंखेज्जा वा भागा ॥ १४४ ॥

एदं पदरगदाणं फोसणं, वादवलएसु जीवपदेसाणं पवेसाभावादो ।

सव्वलोगो वा ॥ १४५ ॥

अपगतवेदी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ १४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंने समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ॥ १४२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंने समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४३ ॥

दण्ड, कपाट व मारणान्तिक समुद्घातोंको प्राप्त हुए अपगतवेदियों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीत और वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पृष्ट है । विशेष इतना है कि कपाटसमुद्घातगत अपगतवेदियों द्वारा तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग अथवा संख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है ।

अथवा, उक्त जीवों द्वारा समुद्घातसे लोकका असंख्यात बहुभाग स्पृष्ट है ॥ १४४ ॥

यह प्रतरसमुद्घातगत अपगतवेदियोंका स्पर्शनक्षेत्र है, क्योंकि, यहां वातचलयोंमें जीवप्रदेशोंके प्रवेशका अभाव है ।

अथवा, सर्व लोक स्पृष्ट हैं ॥ १४५ ॥

एदं लोगपूरणफोसणं । सेसं सुगमं ।

उववादं णत्थि ॥ १४६ ॥

अच्चंताभावेण ओसारिदत्तादो ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई
णवुंसयवेदभंगो ॥ १४७ ॥

जहा णवुंसयवेदस्स अदीद-वट्टमाणकाले अस्सिदूण परूविदं तथा एत्थ वि
परूवेदव्वं, णत्थि एत्थ विसेसो । णवरि पदविसेसो जाणिय वत्तव्वो । वेउव्वियं वट्ट-
माणेण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अदीदेण अट्टचोद्दसभागा देसूणा ।

अकसाई अवगदवेदभंगो ॥ १४८ ॥

सुगमं ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी सत्थाण-समुग्घाद-
उववादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ १४९ ॥

यह लोकपूरणसमुद्घातको प्राप्त अपगतवेदियोंका स्पर्शन है । शेष सूत्रार्थ
सुगम है ।

अपगतवेदियोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ १४६ ॥

क्योंकि, वह अत्यन्ताभावसे निराकृत है ।

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी
जीवोंकी प्ररूपणा नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ १४७ ॥

जिस प्रकार नपुंसकवेदकी अपेक्षा अतीत व वर्तमान कालोंका आश्रयकर निरूपण
किया है उसी प्रकार यहां भी निरूपण करना चाहिये, क्योंकि, यहां उससे कोई
विशेषता नहीं है। विशेष इतना है कि पदोंकी विशेषता जानकर कहना चाहिये।
वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा वर्तमान कालसे तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अतीत
कालसे कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन है ।

अकषायी जीवोंकी प्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है ॥ १४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ज्ञानमार्गणानुसार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीवोंने स्वस्थान, समुद्घात और
उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १४९ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ १५० ॥

सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि अदीद-वट्टमाणेण सव्वलोगो फोसिदो । कुदो ? विस्ससादो । विहारवदिसत्थाणपदेण अदीद-वट्टमाणेण जहाकमेण अट्टचोदसभागा तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो । वेउच्चियपदस्स वट्टमाणं खेत्तं । अदीदेण अट्टचोदसभागा फोसिदो ।

विभंगणाणी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १५१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५२ ॥

एत्थ खेत्तवणणा कायव्वा, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्टचोदसभागा देसूणा ॥ १५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीवोंने उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १५० ॥

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे अतीत व वर्तमान कालकी अपेक्षा मतिअज्ञानी जीवोंने सर्व लोक स्पर्श किया है, क्योंकि, ऐसा स्वभावसे है । विहारवत्स्वस्थानपदसे अतीत व वर्तमान कालकी अपेक्षा यथाक्रमसे आठ बटे चौदह भाग व तिर्यग्लोकके संख्यातर्वे भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । वैकिकियिक पदकी अपेक्षा वर्तमान कालकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

विभंगज्ञानी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

विभंगज्ञानी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५२ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ? ॥ १५३ ॥

देसामासियसुत्तमेदं, तेणेदेण सइदत्थो वुच्चदे— सत्थाणेहि तिण्हं लोगाणम-
संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।
एसो सइदत्थो । विहारवदिसत्थाणेहि अट्टचोदसभागा देसूणा फोसिदा ।

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १५४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५५ ॥

एत्थ खेत्तवण्णा कायव्वा, वट्टमाणेण अहियारादो ।

अट्टचोदसभागा देसूणा फोसिदा ॥ १५६ ॥

एदस्स अत्थो— वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि अट्टचोदसभागा देसूणा फोसिदा,
विहरंताणं सव्वत्थ वेयण-कसाय-वेउव्वियाणं संभवादो ।

सव्वलोगो वा ॥ १५७ ॥

यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिये इससे सूचित अर्थ कहते हैं— स्वस्थानपदोंसे विभंगज्ञानी जीवोंने तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है। यह सूचित अर्थ है। विहार-वत्स्वस्थान पदकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है।

समुद्घातकी अपेक्षा विभंगज्ञानी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥१५४॥

यह सूत्र सुगम है।

समुद्घातकी अपेक्षा विभंगज्ञानी जीवोंने लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १५५ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि वर्तमान कालका अधिकार है।

अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १५६ ॥

इस सूत्रका अर्थ— वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है, क्योंकि, विहार करनेवाले विभंगज्ञानियोंके सर्वत्र वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात सम्भव हैं।

अथवा सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १५७ ॥

एदं मारणंतियपदमस्सिदूण वुत्तं । कुदो ? विभंगणाणितिरिक्ख-मणुस्साणं
मारणंतियस्स तीदे काले सव्वलोगुवलंभादो । देव-णेरइयाणं मारणंतियमस्सिदूण तेरह-
चोदसभागा होंति त्ति जाणावणट्टं वासदणिदेसो कदो ।

उववादं णत्थि ॥ १५८ ॥

कुदो ? विस्ससादो ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं
खेत्तं फोसिदं ? ॥ १५९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६० ॥

एत्थ खेत्तवण्णणं कायव्वं, वट्टमाणावलंबणादो ।

अट्टचोदसभागा देसूणा ॥ १६१ ॥

यह मारणान्तिकपदका आश्रयकर कहा गया है, क्योंकि, विभंगज्ञानी तिर्यच और मनुष्योंके मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा अतीत कालमें सर्व लोक पाया जाता है । देव व नारकियोंके मारणान्तिकसमुद्घातका आश्रयकर तेरह बटे चौदह भाग होते हैं, इसके ज्ञापनार्थ सूत्रमें वा शब्दका निर्देश किया है ।

विभंगज्ञानी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता है ॥ १५८ ॥

क्योंकि, ऐसा स्वभाव है ।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंने स्वस्थान व समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १५९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंने उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६० ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा कहना चाहिये, क्योंकि वर्तमान कालकी अपेक्षा है ।

अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६१ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेणेदेण सइदत्थो ताव उच्चदे । तं जहा— सत्थाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । तेजाहारपदानं खेत्तं । एसो सइदत्थो । विहारवदिसत्थाण-वेयणं-कसाय-वेउच्चिय-मारणंतिएहि अट्टचोइसभागा देसूणा फोसिदा ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १६२ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६३ ॥

एदस्स अत्थपरूवणाए खेत्तमंगो । कुदो ? वट्टमाणप्पणादो ।

छचोइसभागा देसूणा ॥ १६४ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— तिरिकखअसंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदाणमारणादि-देवेसुप्पज्जमाणं छचोइसभागा । हेट्ठा दोरज्जुमेत्तद्वाणं गंतूण ट्ठिदावत्थाए छिण्णाउआणं

यह देशामर्शक सूत्र है, अत एव इससे सूचित अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— उपर्युक्त तीन ज्ञानवाले जीवोंने स्वस्थानपदोंसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रके समान है । यह सूचित अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है ।

उक्त जीवोंने उपपाद पदसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १६२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंने उपपाद पदसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६३ ॥

इस सूत्रके अर्थका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है, क्योंकि, वर्तमानकालकी विवक्षा है ।

अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— आरणादिक देवोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंका उत्पादक्षेत्र छह बटे चौदह भग्नाप्रमाण है ।

शंका— नीचे दो राजुमात्र मार्ग जाकर स्थित अवस्थामें, आयुके क्षीण होनेपर

मणुस्सेसुप्पज्जमाणान् देवानं उववादखेत्तं किण्ण धेप्पदे ? ण, तस्स पढमदंडेणूणस्स छुचोइंसभागेसु चैव अंतब्भावादो, तेसिं मूलसरीरपवेसंमंतरेण तदवत्थाए मरणा-भावादो च ।

मणपज्जवणाणी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?

॥ १६५ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६६ ॥

एदस्स अत्थे भण्णमाणे वट्टमाणं खेत्तं । अदीदेण चट्टुण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।

उववादं णत्थि ॥ १६७ ॥

मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले देवोंका उत्पादक्षेत्र क्यों नहीं ग्रहण किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रथम दण्डसे क्रम उसका छह बटे चौदह भागोंमें ही अन्तर्भाव हो जाता है, तथा मूलशरीरमें जीवप्रदेशोंके प्रवेश बिना उस अवस्थामें उनके मरण का अभाव भी है । (?)

मनःपर्ययज्ञानी जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मनःपर्ययज्ञानी जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६६ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते समय वर्तमान कालकी अपेक्षा क्षेत्रके समान निरूपण करना चाहिये । अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवोंने चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंके उपपाद पद नहीं होता है ॥ १६७ ॥

१ प्रतिष्ठ ' मणुस्सेसुप्पज्जमाणानि ' इति पाठः ।

२ प्रतिष्ठ ' -पदेस ' इति पाठः ।

कुदो ? विस्ससादो ।

केवलणाणी अवगदवेदभंगो ॥ १६८ ॥

णवरि मारणंतियपदं णत्थि, केवलणाणिम्हि तस्सत्थित्तविरोहादो ।

संजमाणुवादेण संजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा अकसाइ-
भंगो ॥ १६९ ॥

एसो सुत्तणिहेसो दब्बट्टियणयावलंबणो । पज्जवट्टियणए पुण अवलंबिज्जमाणे
संजदा अकसाइतुल्ला ण होत्ति, संजदेसु अकसाइजीवेसु अविज्जमाणवेउच्चिय-तेजाहार-
पदाणमुवलंबादो । सेसं सुगमं ।

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइयसंजदाणं मण-
पज्जवणाणिभंगो ॥ १७० ॥

एसो दब्बट्टियणिहेसो । पज्जवट्टियणए पुण अवलंबिज्जमाणे सामाइयच्छेदो-
वट्ठावणसुद्धिसंजदा पुण मणपज्जवणाणितुल्ला होत्ति, मणपज्जवणाणिसु तेजाहारपदाणम-

क्योंकि, ऐसा स्वभाव है ।

केवलज्ञानी जीवोंकी प्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है ॥ १६८ ॥

विशेष इतना है कि केवलज्ञानियोंके मारणान्तिक पद नहीं होता, क्योंकि, केवलज्ञानीमें उसके अस्तित्वका विरोध है ।

संयममार्गणानुसार संयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीवोंकी प्ररूपणा अकषायी जीवोंके समान है ॥ १६९ ॥

इस सूत्रका निर्देश द्रव्यार्थिक नयका आलम्बन करता है । पर्यायार्थिक नयका आलम्बन करनेपर संयत जीव अकषायी जीवोंके तुल्य नहीं हैं, क्योंकि, अकषायी जीवोंमें अविद्यमान वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पद संयतोंमें पाये जाते हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है ॥ १७० ॥

यह कथन द्रव्यार्थिक नयसे है । पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत जीव मनःपर्ययज्ञानियोंके तुल्य होते हैं, क्योंकि, मनःपर्ययज्ञानियोंमें तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पदोंका अभाव है । परन्तु

भावादो । सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा पुण मणपज्जवणाणितुल्ला ण होंति, सुहुमसांपराइय-संजदेसु वेउव्वियपदाभावादो । सेसं सुगमं ।

संजदासंजदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १७१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७२ ॥

एदस्सत्थो— वट्टमाणे खेत्तभंगो । अदीदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । होदु णाम विहारवदि-सत्थाणस्सेदं, सव्वदीव-समुद्देसु वहरियदेवसंबंधेण तीदे काले संजदासंजदाणं संभवादो । ण सत्थाणस्स, सव्वदीव-समुद्देसु सत्थाणत्थसंजदासंजदाणमभावादो ? ण एस दोसो, जदि वि सव्वत्थ णत्थि तो वि सयंपहपव्वयस्स परमाए तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे सत्थाणत्थियसंजदासंजदाणमुवलंभादो ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीव मनःपर्ययज्ञानियोंके तुल्य नहीं होते, क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिकसंयतोंमें वैक्रियिक पदका अभाव है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

संयतासंयत जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १७१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतासंयत जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७२ ॥

इसका अर्थ— वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालमें तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

शंका— विहारवत्स्वस्थान पदकी अपेक्षा उपर्युक्त स्पर्शनका प्रमाण भले ही ठीक हो, क्योंकि, वैरी देवोंके सम्बन्धसे अतीत कालमें सर्व द्वीप-समुद्रोंमें संयतासंयत जीवोंकी सम्भावना है । किन्तु स्वस्थानपदकी अपेक्षा उक्त स्पर्शन नहीं बनता, क्योंकि, स्वस्थानमें स्थित संयतासंयत जीवोंका सर्व द्वीप-समुद्रोंमें अभाव है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यद्यपि सर्वत्र संयतासंयत जीव नहीं हैं, तथापि तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्वयंप्रभ पवर्तके पर भागमें स्वस्थानस्थित संयतासंयत पाये जाते हैं ।

समुग्धादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १७३ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७४ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणा कायत्वा, वट्टमाणप्पणादो ।

छचोदसभागा वा देसूणा ॥ १७५ ॥

एत्थ ताव वासदत्थो बुच्चदे । तं जहा— वेयण-कसाय-वेउच्चियपदेहि तिण्हं
लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो
फोसिदो । एसो वासदत्थो । मारणंतियेण पुण छचोदसभागा फोसिदा, तिरिक्खेहिंतो
जाव अच्चुदकप्पो त्ति मारणंतियं मेल्लमाणसंजदासंजदाणं तदुवलंभादो ।

उववादं णत्थि ॥ १७६ ॥

संजदासंजदगुणेण उववादस्स विरोहादो ।

समुद्घातोंकी अपेक्षा संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
॥ १७३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतासंयत जीवोंने समुद्घातोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श
किया है ॥ १७४ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है
॥ १७५ ॥

यहां पहिले वा शब्दसे सूचित अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है—वेदनासमुद्घात,
कषाथसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग,
तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया
है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिकसमुद्घातसे (कुछ कम) छह बटे
चौदह भागोंका स्पर्श किया है, क्योंकि, तिर्यच्चोमेंसे अच्युत कल्प तक मारणान्तिक-
समुद्घातको करनेवाले संयतासंयत जीवोंके उपर्युक्त स्पर्शन पाया जाता है ।

संयतासंयत जीवोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ १७६ ॥

क्योंकि, संयतासंयतगुणस्थानके साथ उपपादका विरोध है ।

असंजदाणं णवुंसयभंगो ॥ १७७ ॥

सुगममेदं ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी सत्थाणेहि केवडियं खेतं फोसिदं ?
॥ १७८ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७९ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणा कायच्चा, वट्टमाणपरूवणादो ।

अट्टचोदसभागा वा देसूणा ॥ १८० ॥

सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो,
अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासहत्थो । विहारवदिसत्थाणेण अट्टचोदस-

असंयत जीवोंके स्पर्शनका निरूपण नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ १७७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

दर्शनमार्गणाके अनुसार चक्षुदर्शनी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ॥ १७८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चक्षुदर्शनी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है
॥ १७९ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी प्रधानता है ।

अतीत कालकी अपेक्षा स्वस्थान पदोंसे चक्षुदर्शनी जीवोंने कुछ कम आठ बटे
चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १८० ॥

चक्षुदर्शनी जीवोंने स्वस्थानसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके
संख्यातवें भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । यह वा शब्दसे
सूचित अर्थ है । विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीवों द्वारा (कुछ कम) आठ बटे

भागा चक्खुदंसणीहि फोसिदा, अट्टरज्जुबाहल्लरज्जुपदरब्भंतरे चक्खुदंसणीणं विहारस्स विरोहाभावादो ।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १८१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८२ ॥

एत्थ खेत्तपरूवणा कायव्वा, वट्टमाणकालेण अहियारादो ।

अट्टचोदसभागा देसूणा ॥ १८३ ॥

कुदो ? वेयण-कसाय-वेउच्चियसमुग्घादेहि विहरंतदेवेषु समुप्पणेहि अट्टचोदस-
भागखेत्तस्स पुसिज्जमाणस्स दंसणादो । मारणंतियफोसणपरूवणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि-

सव्वलोगो वा ॥ १८४ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा— देव-णेरइएहि^१ मारणंतियसमुग्घादेहि
तेरहचोदसभागा फोसिदा, लोगणालीए बाहिमेदेसिं उववादाभावेण मारणंतिएण गमणा-

चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, आठ राजु बाहल्यसे युक्त राजुप्रतरके भीतर चक्षुदर्शनी
जीवोंके विहारका कोई विरोध नहीं है ।

चक्षुदर्शनी जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चक्षुदर्शनी जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है
॥ १८२ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालका अधिकार है ।

अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ १८३ ॥

क्योंकि, विहार करनेवाले देवोंमें उत्पन्न वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्-
घातोंसे स्पर्श किया जानेवाला आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र देखा जाता है ।
मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शनके प्ररूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

अथवा, सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १८४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— देव व नारकियों द्वारा
मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा तेरह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, लोकनालीके
बाहिर इनके उत्पादका अभाव होनेसे मारणान्तिकसमुद्घातके द्वारा गमन नहीं होता ।

१ अप्रतौ ' देव-णेरइयाणं हि ' इति पाठः ।

भावादो । एसो वासइत्थो । तिरिक्ख-मणुस्सेहि पुण सव्वलोगो फोसिदो, तेसिं लोणगालीए बाहिमभंतरे च मारणंतिएण गमणुवलंभादो ।

उववादं सिया अत्थि सिया णत्थि ॥ १८५ ॥

अत्थित्त-णत्थित्ताणं चक्खुदंसणविसयाणं एककम्मिह जीवे एकककालम्मिह परोप्पर-परिहारलक्खणविरोहो व्व सहअणवट्ठाणलक्खणविरोहाभावपटुप्पायणट्ठं सियासदो ठविदो । कधमविरोहो त्ति जाणावणट्ठमुत्तरमुत्तं भणदि—

लद्धिं पडुच्च अत्थि, णिव्वत्तिं पडुच्च णत्थि ॥ १८६ ॥

लद्धी चक्खिदियावरणखओवसमो, सो अपज्जत्तकाले वि अत्थि, तेण विणा वडिंझदियणिव्वत्तीए अभावादो । णिव्वत्ती णाम चक्खुगोलियाए णिप्पत्ती, सा अपज्जत्त-काले णत्थि, अणिप्पत्तीए णिप्पत्तिविरोहादो । जेण सरूवेण चक्खुदंसणमत्थि तेणेव सरूवेण जदि तस्स णत्थित्तं परूविज्जदि तो विरोहो पसज्जदे । ण च एवं, तम्हा सहअणवट्ठाणलक्खणो विरोहो णत्थि त्ति ।

यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । किन्तु तिर्यंच व मनुष्योंके द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, लोकनालीके बाहिर और भीतर मारणान्तिकसमुद्रघातसे उनका गमन पाया जाता है ।

चक्षुदर्शनी जीवोंके उपपाद पद कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है ॥ १८५ ॥

एक जीवमें एक कालमें चक्षुदर्शनविषयक अस्तित्व और नास्तित्वके परस्पर-परिहारलक्षण विरोधके समान सहानवस्थानलक्षण विरोधका अभाव बतलानेके लिये सूत्रमें ' स्यात् ' शब्दका उपादान किया है । उक्त अस्तित्व व नास्तित्वमें अविरोध कैसे है, इस बातके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

चक्षुदर्शनी जीवोंके लब्धिकी अपेक्षा उपपाद पद है, किन्तु निर्वृत्तिकी अपेक्षा वह नहीं है ॥ १८६ ॥

चक्षुइन्द्रियावरणके क्षयोपशमको लब्धि कहते हैं । वह अपर्याप्तकालमें भी है, क्योंकि, उसके विना बाह्य निर्वृति नहीं होती । गोलकरूप चक्षुकी निष्पत्तिका नाम निर्वृति है । वह अपर्याप्तकालमें नहीं है, क्योंकि, अनिष्पत्तिका निष्पत्तिसे विरोध है । जिस रूपसे चक्षुदर्शन है उसी रूपसे यदि उसका नास्तित्व कहा जाय तो विरोधका प्रसंग होगा । किन्तु ऐसा है नहीं, अतएव यहां सहानवस्थानलक्षण विरोध नहीं है ।

जदि लद्धिं पडुच्च अत्थि, केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ १८७ ॥
सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८८ ॥

एदं सुगमं, वडुमाणप्पणादो ।

सव्वलोगो वा ॥ १८९ ॥

एदस्स अत्थो—देव-णेरइएहि सच्चक्खुतिरिक्ख-मणुस्सेहिंतो चक्खुदंसणीसुप्पणेहि बारहचोद्दसभागा फोसिदा, लोगणालीए बाहिं चक्खुदंसणीणमभावादो, आणदादिउवरिम-देवाणं तिरिक्खेसुप्पादाभावादो च । एसो वासइत्थो । एइंदिएहिंतो सच्चिक्खुदिएसु उप्पणेहि पढमसमए सव्वलोगो फोसिदो, आणंतियादो सव्वपदेसेहिंतो आगमण-संभवादो च ।

अचक्खुदंसणी असंजदभंगो ॥ १९० ॥

एसो दव्वट्ठियणिहेसो । पज्जवट्ठियणए पुण अवलंबिज्जमाणे अचक्खुदंसणिणो

यदि लब्धिकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीवोंके उपपाद पद है तो उनके द्वारा इस पदसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १८७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चक्षुदर्शनी जीवों द्वारा उपपाद पदसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १८८ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, यहां वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १८९ ॥

इस सूत्रका अर्थ— चक्षुदर्शनी तिर्यंच और मनुष्योंमेंसे चक्षुदर्शनियोंमें उत्पन्न हुए देव व नारकियों द्वारा बारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, लोकनालीके बाहिर चक्षुदर्शनी जीवोंका अभाव है, तथा आनतादि उपरिम देवोंका तिर्यंचोंमें उत्पाद भी नहीं है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । एकेन्द्रिय जीवोंमेंसे चक्षुइन्द्रिय सहित जीवोंमें उत्पन्न हुए जीवों द्वारा प्रथम समयमें सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, वे अनन्त हैं तथा सर्व प्रदेशोंसे उनके आगमनकी सम्भावना भी है ।

अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा असंयत जीवोंके समान है ॥ १९० ॥

यह कथन द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा है । पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर

असंजदतुल्ला ण होंति, अचक्खुदंसणीसु तेजाहारपदाणगुवलंभादो ।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ १९१ ॥

सुगमं ।

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १९२ ॥

एदं पि सुगमं ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणं असं-
जदभंगो ॥ १९३ ॥

सुगममेदं ।

तेउलेस्सियाणं सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १९४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९५ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणा कायच्चा वट्टमाणविवक्खाए ।

अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा असंयत जीवोंके तुल्य नहीं है, क्योंकि अचक्षुदर्शनियोंमें तैजस और आहारक समुद्घात पद पाये जाते हैं ।

अवधिदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ १९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

केवलदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्या-
वाले जीवोंकी प्ररूपणा असंयत जीवोंके समान है ॥ १९३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तेजोलेश्यावाले जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १९४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तेजोलेश्यावाले जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट
है ॥ १९५ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अट्टचोदसभागा वा देसूणा ॥ १९६ ॥

सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, त्तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइजादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासइत्थो । विहारवदिसत्थाणेण अट्टचोदस-
भागा देसूणा फोसिदा, तेउलेस्सियदेवाणं विहरमाणामेदस्सुवलंभादो ।

समुग्घादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ १९७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९८ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्टचोदसभागा वा देसूणा ॥ १९९ ॥

वेयण-कसाय-वेउक्खियपरिणदेहि अट्टचोदसभागा फोसिदा, विहरंताणं देवाण-
मेदेसिं तिण्हं पदाणं सव्वत्थुवलंभादो । मारणंतिण्ण णवचोदसभागा फोसिदा, मेरुमूलादो

अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ १९६ ॥

स्वस्थानकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, विहार करते हुए तेजोलेख्यावाले देवोंके इतना स्पर्शन पाया जाता है ।

समुद्घातकी अपेक्षा तेजोलेख्यावाले जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?
॥ १९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है
॥ १९८ ॥

यह सूत्र सगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं
॥ १९९ ॥

वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदोंसे परिणत तेजोलेख्यावाले जीवों द्वारा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, विहार करते हुए देवोंके ये तीनों पद सर्वत्र पाये जाते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है, क्योंकि,

हेट्टिम दोहि रज्जुहि सह उवरि सत्तरज्जुफोसणुवलंभादो ।

उववादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ २०० ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०१ ॥

सुगमं, वट्टमाणकाले पडिबद्धत्तादो ।

दिवड्ढुचोदसभागा वा देसूणा ॥ २०२ ॥

कुदो ! मेरूमूलादो पहापत्थडस्स दिवड्ढुरज्जुमेत्तमुवरि चडिदूण अवट्टाणादो । सणक्कुमार-महिंदाणं पढमिंदयदेवेसु' तेउलेस्सिएसु उप्पाइज्जमाणे सादिरेयदिवड्ढुरज्जुखेतं किण्ण लब्भदे ? ण, सोहम्मादो थोवं चैव ट्ठाणमुवरि गंतूण सणक्कुमारादिपत्थडस्स अवट्टाणादो । कधमेदं णव्वदे ? अण्णहा देसूणत्ताणुववत्तीदो । मारणंतिय-उववादादिट्ठिद-वासद्दा वुत्तसणुच्चयत्था दट्टव्वा ।

मेरूमूलसे नीचे दो राजुओंके साथ ऊपर सात राजु स्पर्शन पाया जाता है ।

उपपादकी अपेक्षा तेजोलेश्यावाले जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥२००॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥२०१॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालसे संबद्ध है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम डेढ़ वटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥२०२॥

क्योंकि, मेरूमूलसे डेढ़ राजुमात्र ऊपर चढ़कर प्रभा पटलका अवस्थान है ।

शंका—सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंके प्रथम इन्द्रक विमानमें स्थित तेजोलेश्यावाले देवोंमें उत्पन्न करानेपर डेढ़ राजुसे अधिक क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सौधर्म कल्पसे थोड़ा ही स्थान ऊपर जाकर सानत्कुमार कल्पका प्रथम पटल अवस्थित है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता ?

समाधान—क्योंकि, ऐसा न माननेपर उपर्युक्त डेढ़ राजु क्षेत्रमें जो कुछ न्यूनता बतलाई है वह बन नहीं सकती । मारणान्तिक और उपपाद पदोंमें स्थित वा शब्द उक्त अर्थके समुच्चयके लिये जानना चाहिये ।

१ अशाप्रसो: ' पदमैदयदेवेसु ' इति पाठः ।.

पम्मलेस्सिया सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?
॥ २०३ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०४ ॥

सुगमं, वट्टमाणणिरोहादो ।

अट्टचोदसभागा वा देसूणा ॥ २०५ ॥

सत्थाणेण तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाहज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासहसूइदत्थो । विहार-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणएहि अट्टचोदसभागा देसूणा फोसिदा । कुदो ? पम्मलेस्सिय-देवाणमेइंदिएसु मारणंतियाभावादो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २०६ ॥

सुगमं ।

पद्मलेश्यावाले जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २०३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंने उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥२०४॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षारूप निरोध है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २०५ ॥

स्वस्थान पदकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कपाथसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे परिणत उन्हीं पद्मलेश्यावाले जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, पद्मलेश्यावाले देवोंके एकेन्द्रिय जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घातका अभाव है ।

उक्त जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २०६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०७ ॥

एदं पि सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

पंचचोदसभागा वा देसूणा ॥ २०८ ॥

कुदो ? मेरुमूलादो उवरि पंचरज्जुमेत्तद्वाणं गंतूण सहस्सारकप्पस्स अवट्टाणादो ।
एत्थ वासदो बुत्तसमुच्चयट्ठो ।

सुक्कलेस्सिया सत्थाण-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?
॥ २०९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २१० ॥

एत्थ खेत्तवण्णणा कायन्वा, वट्टमाणप्पणादो ।

छचोदसभागा वा देसूणा ॥ २११ ॥

उक्त जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है
॥ २०७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कुछ कम पांच बटे चौदह
भाग स्पृष्ट हैं ॥ २०८ ॥

क्योंकि, मेरुमूलसे पांच राजुमात्र मार्ग जाकर सहस्रारकल्पका अवस्थान है ।
सूत्रमें वा शब्द पूर्वोक्त अर्थके समुच्चयके लिये है ।

शुक्ललेश्यावाले जीवोंने स्वस्थान और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? ॥ २०९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंने उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २१० ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया
है ॥ २११ ॥

एदस्सत्थो— सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियल्लोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्ठाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासहेण समुच्चिदत्थो । विहारवदिसत्थाण-उववादेहि छचोदसभागा फोसिदा, तिरियल्लोगादो आरणच्चुदकप्पे समुप्पज्जमाणं छरज्जुअब्भंतरे विहरंताणं च एत्तियमेत्तफोसणुवलंभादो ।

समुग्घादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ २१२ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २१३ ॥

एत्थ खेत्तपरूवणा कायव्वा ।

छचोदसभागा वा देसूणा ॥ २१४ ॥

आरणच्चुददेवेषु कयमारणंतियतिरिक्ख-मणुस्साणमुवलंभादो । वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादाणं विहारवदिसत्थाणभंगो ।

असंखेज्जा वा भागा ॥ २१५ ॥

इसका अर्थ— स्वस्थान पदसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिरियल्लोकके संख्यातवें भाग, और अट्ठाईपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । यह वा शब्द द्वारा समुच्चय रूपसे सूचित अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान और उपपाद पदोंसे छह बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है, क्योंकि, तिरियल्लोकसे आरण-अच्युत कल्पमें उत्पन्न होनेवाले और छह राजुके भीतर विहार करनेवाले उक्त जीवोंके इतना मात्र स्पर्शन पाया जाता है ।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २१२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ? ॥ २१३ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २१४ ॥

क्योंकि, आरण-अच्युत कल्पवासी देवोंमें मारणान्तिकसमुद्घातको करनेवाले तिरियच्च और मनुष्य पाये जाते हैं । वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण विहारवत्स्वस्थानके समान है ।

अथवा, असंख्यात बहुभाग स्पृष्ट हैं ॥ २१५ ॥

एदं पदरगदकेवलमस्सिदूण भणिदं, वादवलए मोत्तूण तत्थ सव्वलोगंगदजीव-
पदेसाणमुवलंभादो । दंडगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्ज-
गुणो फोसिदो । एवं कवाडगदेहि वि । णवरि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो तत्तो
संखेज्जगुणो वा फोसिदो त्ति वत्तव्वं । एसो वासहेण यउत्तसमुच्चओ । पुव्वसुत्तद्विय-
वासहेण वि अउत्तसमुच्चओ पुव्वसुत्ते चेव कदो, सुक्कलेस्सियदेवेहि कयमारणंतिएहि
चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो त्ति एदस्स
सूचयत्तादो ।

सव्वलोगो वा ॥ २१६ ॥

एदं लोगपूरणगदकेवलं पडुच्च समुद्दिट्ठं । एत्थ वासहो उत्तसमुच्चयत्थो ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिय अभवसिद्धिय सत्थाण-समुग्घाद-
उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २१७ ॥

यह प्रतरसमुद्घातगत केवलीका आश्रय कर कहा गया है, क्योंकि, प्रतरसमुद्-
घातमें वातवलयोंको छोड़कर सर्व लोकमें व्याप्त जीव प्रदेश पाये जाते हैं। दण्डसमुद्घात-
गत जीवों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा
क्षेत्र स्पृष्ट है। इसी प्रकार कपाटसमुद्घातगत जीवोंद्वारा भी स्पृष्ट है। विशेष इतना है कि
तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग अथवा उससे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, ऐसा कहना
चाहिये। यह सूत्रमें नहीं कहे हुए अर्थका वा शब्दके द्वारा समुच्चय किया गया है। पूर्व
सूत्रमें स्थित वा शब्दके द्वारा भी अनुक्त अर्थका समुच्चय पूर्व सूत्रमें ही किया गया है,
क्योंकि, वह वा शब्द 'मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त शुक्ललेख्यावाले देवोंके द्वारा
चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है' इस
अर्थका सूचक है।

अथवा, सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २१६ ॥

यह लोकपूरणसमुद्घातगत केवलीकी अपेक्षा कहा गया है। यहां वा शब्द
पूर्वोक्त अर्थके समुच्चयके लिये है।

भव्यमार्गानुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवों द्वारा स्वस्थान,
समुद्घात एवं उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २१७ ॥

१ प्रतिषु ' एवं ' इति पाठः ।

२ अ-काप्रत्तो: ' अउत्तसमुच्चओ चेव ', आप्रतौ ' अउत्तसमुच्चओ पुव्वसुत्तं चेव ' इति पाठः ।

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ २१८ ॥

सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि अदीद वट्टमाणे सव्वलोगो फोसिदो । विहारवदिसत्थाणेण वट्टमाणे खेत्तं; अदीदेण अट्टचोद्दमभागा फोसिदा । वेउव्वियपदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । भव-मिद्धिएसु सेसपदाणमोव्वभंगो । कधभेदं समुवलद्धं ? देसामासियत्तादो ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?

॥ २१९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २२० ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवों द्वारा उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २१८ ॥

स्वस्थान, वेदना, कषाय मारणान्तिक और उपपाद पदोंसे अतीत व वर्तमान कालमें भव्यसिद्धिक एवं अभव्यसिद्धिक जीवों द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है । विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा वर्तमान कालमें क्षेत्रके समान प्ररूपणा है; अतीत कालमें आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । भव्यसिद्धिक जीवोंमें शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण ओधके समान है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इस सूत्रके देशामर्शक होनेसे उपर्युक्त अर्थ उपलब्ध होता है ।

सम्यक्त्वमार्गणानुसार सम्यग्दृष्टी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २१९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २२० ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अट्टचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २२१ ॥

सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासइत्थो । विहारवदिसत्थाणेण अट्टचोद्दस-
भागा देसूणा फोसिदा, सम्माइट्ठीणं मेरुमूलादो हेट्ठा दोरज्जुमेत्तद्वाणगमणस्स दंसणादो ।

समुद्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २२२ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २२३ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणं कायव्वं, वट्टमाणवेयण-कसाय-वेउव्विय-तेजाहार-केवल्लि-
समुद्घाद-मारणंतियखेत्तप्पणादो ।

अट्टचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २२४ ॥

वेयण-कसाय-वेउव्विय मारणंतियपदेहि अट्टचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं
॥ २२१ ॥

स्वस्थान पदसे सम्यग्दृष्टि जीवोंने तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके
संख्यातवें भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । यह वा शब्दसे
सूचित अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान पदसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं,
क्योंकि, मेरुमूलसे नीचे दो राजुमात्र मार्गमें सम्यग्दृष्टियोंका गमन देखा जाता है ।

सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २२२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ?
॥ २२३ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि वर्तमानकालसम्बन्धी वेदना, कषाय,
वैक्रियिक, तैजस, आहारक, केवल्लिसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा
क्षेत्रकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं
॥ २२४ ॥

वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक पदोंकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि जीवों

एदं देवसम्माइट्टिणो अस्सिदूण उच्चं। वासदो किमहुं बुत्तो ? तिरिक्ख-मणुससम्मा-इट्टिखेत्तसमुच्चयदुं । तं जहा— वेयण-कसाय-वेउच्चिएहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो; तेजाहारपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जस्स संखेज्जदिभागो; मारणंतिएण छुचोइस-भागो फोसिदा । एसो वासदसमुच्चिदत्थो ।

असंखेज्जा वा भागा वा ॥ २२५ ॥

एदं पदरगदकेवलिसिदूण उच्चं । दंडगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो पढमवासदेण समुच्चिदत्थो । कवाडगदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो तत्तो संखेज्जगुणो वा, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो विदियवासदसमुच्चिदत्थो । एवं सव्वत्थ पदरगदकेवलिसुत्तट्टियदोणं वासहाणमत्थो परूवेदव्वो ।

सव्वलोगो वा ॥ २२६ ॥

द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । यह स्पर्शन क्षेत्र देव सम्यग्दृष्टियोंका आश्रयकर कहा गया है ।

शंका—सूत्रमें वा शब्दका ग्रहण किस लिये किया है ?

समाधान—तिर्य्यच और मनुष्य सम्यग्दृष्टियोंके क्षेत्रका समुच्चय करनेके लिये सूत्रमें वा शब्दका ग्रहण किया है । वह इस प्रकार है— तिर्य्यच व मनुष्य सम्यग्दृष्टियोंके द्वारा वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदोंसे तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्य्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा; तैजस और आहारक पदोंसे चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपका संख्यातवां भाग; तथा मारणान्तिक-समुद्घातसे छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । यह वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है ।

अथवा, असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है ॥ २२५ ॥

यह कथन प्रतरसमुद्घातगत केवलीका आश्रयकर किया है । दण्डसमुद्घातगत केवलियों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह प्रथम वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है । कपाटसमुद्घातगत केवलियोंके द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्य्यग्लोकका संख्यातवां भाग या उससे संख्यातगुणा, तथा अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह द्वितीय वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है । इसी प्रकार सर्वत्र प्रतरसमुद्घातगत केवलियोंके स्पर्शनका निरूपण करनेवाले सूत्रोंमें स्थित दो वा शब्दोंका अर्थ करना चाहिये ।

अथवा, सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २२६ ॥

एदं लोगपूरणमस्सिदूण भणिदं । वासदो उत्तममुच्चयत्थो ।

उववादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ २२७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २२८ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

छचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २२९ ॥

देव-णेणइएहि मणुस्सेसुप्पज्जमाणेहि चटुण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइ-ज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, एक्कारहरज्जुदीह-पणदालीसजोयणलक्खरुंदखेत्तस्स उवलंभादो । ण च एत्तियमेत्तं चेवेत्ति णियमो अत्थि, अण्णस्म वि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तस्स उवलंभादो । एमो वासदत्थो । तिरिय-मणुस्सेहिंदो देवेसुप्पणेहि छचोद्दसभागा फोसिदा ।

यह सूत्र लोकपूरणसमुद्घातका आश्रय कर कहा गया है । वा शब्द पूर्वोक्त अर्थके समुच्चयके लिये है ।

उक्त सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ॥ २२७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २२८ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २२९ ॥

मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले देव-नारकियोंके द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, यहां ग्यारह राजु दीर्घ और पैतालीस लाख योजन विस्तीर्ण क्षेत्र पाया जाता है । और ' इतना मात्र ही क्षेत्र है ' ऐसा नियम भी नहीं है, क्योंकि, अन्य भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग पाया जाता है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । तिर्यच और मनुष्योंमेंसे देवोंमें उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

खड्यसम्माइट्टी सत्थाणेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ २३० ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २३१ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्टचोइसभागा वा देसूणा ॥ २३२ ॥

सत्थाणत्थेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासइत्थो । विहारवदिसत्थाणेण अट्टचोइस-
भागा देसूणा फोसिदा ।

समुग्घादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ २३३ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २३४ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
॥ २३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श
किया है ॥ २३१ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, उक्त जीवों द्वारा अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह
भाग स्पृष्ट हैं ॥ २३२ ॥

स्वस्थानमें स्थित क्षायिकसम्यग्दृष्टियों द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,
तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा
शब्दसे सूचित अर्थ है । विहारवत्स्वस्थानसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

समुद्घात पदोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

समुद्घात पदोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट
है ॥ २३४ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्टचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २३५ ॥

तेजाहारपदेहि चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो संखेज्जदिभागो' फोसिदो । तिरिक्ख-मणुस्सेहि वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियसमुग्घादेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जुगुणो फोसिदो । एसो वासदत्थो । देवेहि पुण वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियसमुग्घादेहि अट्टचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा ।

असंखेज्जा वा भागा वा ॥ २३६ ॥

एदं पदरगदकेवल्लिखेत्तं पडुच्च भणिदं, तत्थ वादवल्लयं मोत्तूण सेसासेसलोग-गदजीवपदेसाणमुवल्लंभादो । दंडगदेहि चटुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जुगुणो फोसिदो । एसो पढमवासहेण सुइदत्थो । कवाडगदेहि तिण्हं लोगाणम-

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २३५ ॥

तैजस और आहारक पदोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है। तिर्यंच व मनुष्य क्षायिक-सम्यग्दृष्टियों द्वारा वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यंग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है। परन्तु देव क्षायिकसम्यग्दृष्टियों द्वारा वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

अथवा, असंख्यात बहुभाग स्पृष्ट हैं ॥ २३६ ॥

यह सूत्र प्रतरसमुद्घातगत केवलीके क्षेत्रकी अपेक्षा कहा गया है, क्योंकि, प्रतर-समुद्घातमें वातबल्यको छोड़कर शेष समस्त लोकमें व्याप्त जीवप्रदेश पाये जाते हैं। दण्डसमुद्घातगत केवलियोंके द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह प्रथम वा शब्दसे सूचित अर्थ है। कपाटसमुद्घातगत

१ प्रतिष्ठु ' असंखेज्जदिभागो ' इति पाठः ।

संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो तत्तो संखेज्जगुणो वा, अङ्काइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो विदियवासहसमुच्चिदत्थो ।

सव्वलोगो वा ॥ २३७ ॥

एदं लोगपूरणगदकेवल्लिं पडुच्च परूविदं । एत्थ वासहो उत्तसमुच्चयत्थो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २३८ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २३९ ॥

एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । अदीदे तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अङ्काइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।

वेदगसम्मादिट्ठी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?
॥ २४० ॥

केवलियोंके द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग या उससे संख्यातगुणा, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह द्वितीय वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है ।

अथवा, सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २३७ ॥

यह सूत्र लोकपूरणसमुद्घातगत केवलीकी अपेक्षासे कहा गया है । यहाँ वा शब्द पूर्वोक्त अर्थके समुच्चयके लिये है ।

उपपादकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?
॥ २३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपपादकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २३९ ॥

यहाँ वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालमें तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ २४० ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २४१ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्टचोदसभागा वा देसूणा ॥ २४२ ॥

सत्थाणेहि तिण्हं लोमाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिंदो । एसो वासंहेण समुच्चिदत्थो । विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउन्विय-मारणंतिएहि अट्टचोदसभागा देसूणा फोसिदा ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २४३ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २४४ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

यह सूत्र सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ २४१ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २४२ ॥

स्वस्थान पदसे तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाज्जापसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

उक्त वेदकसम्यग्दृष्टियों द्वारा उपपाद पदसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥२४३॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियों द्वारा उपपाद पदसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २४४ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

छचोदसभागा वा देसूणा ॥ २४५ ॥

देव-णेरइएहिंतो आगंतूण वेदगसम्मादिट्टिमणुस्सेसुप्पणेहि चदुण्हं लोगणम-संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । णवरि देवेहि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । एसो वासइसमुच्चिदत्थो । तिरिक्ख-मणुस्सेहिंतो देवेसुप्पज्ज-माणवेदगसम्माइट्ठीहि छचोदसभागा फोसिदा ।

उवसमसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥२४६॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २४७ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्टचोदसभागा वा देसूणा ॥ २४८ ॥

सत्थाणेहि तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो,

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं
॥ २४५ ॥

देव-नारकियोंमेंसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुए वेदकसम्यग्दृष्टियों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अट्टाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । विशेष इतना है कि देवों द्वारा तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है । तिर्यच और मनुष्योंमेंसे देवोंमें उत्पन्न होनेवाले वेदकसम्यग्दृष्टियों द्वारा छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?
॥ २४६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २४७ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ?
॥ २४८ ॥

स्वस्थान पदसे उक्त जीवों द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका

अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासदसमुच्चिदत्थो । विहारवदिसत्थाणेण अड्डचोदसभागा फोसिदा, उवसमसम्माइट्ठीणं देवाणमड्डचोदसभागंतरे विहारं पडि विरोहाभावादो ।

समुग्घादेहि उववादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ २४९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २५० ॥

एत्थ अदीद-वट्टमाणकालेसु मारणंतिय-उववादपरिणएहि चटुण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, माणुसखेत्तम्मि चैव मरंताणं उवसमसम्माइट्ठीणमुवलंभादो । वेयण-कमाय-वेउच्चियसमुग्घादाणमुवसमसम्माइट्ठीणं देवाणमड्डचोदसभागा किण्ण परूविदा ? ण, एवं परूविज्जमाणे सासणस्स मारणंतिय-समुग्घादस्स वि अड्डचोदसभागा होंति ति संदेहो मा होहदि त्ति तण्णिराकरणट्ठं ण परूविदा ।

संख्यातवां भाग, और अड्डाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है । विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि देवोंके आठ बटे चौदह भागोंके भीतर विहारमें कोई विरोध नहीं है ।

उक्त उपशमसम्यग्दृष्टियों द्वारा समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियों द्वारा उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २५० ॥

यहां अतीत व वर्तमान कालोंमें मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे परिणत उपशमसम्यग्दृष्टियों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अड्डाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, मानुषक्षेत्रमें ही मरणको प्राप्त होनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि पाये जाते हैं ।

शंका—वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा उपशमसम्यग्दृष्टि देवोंके आठ बटे चौदह भाग यहां क्यों नहीं कहे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा निरूपण करनेपर 'सासादनसम्यग्दृष्टिके मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा भी आठ बटे चौदह भाग होते हैं' ऐसा संदेह न हो, इस प्रकार उसके निराकरणके लिये उक्त आठ बटे चौदह भागोंका निरूपण नहीं किया ।

सासणसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥२५१॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २५२ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्टचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २५३ ॥

सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासद्दसमुच्चिदत्थो । विहारवदिसत्थाणपरिणएहि अट्टचोद्दसभागा फोसिदा ।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २५४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २५५ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
॥ २५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २५२ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवोने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २५३ ॥

स्वस्थानकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अट्टाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है । विहारवृत्स्वस्थान पदसे परिणत सासादनसम्यग्दृष्टियों द्वारा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २५४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥२५५॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्ट-बारहचोदसभागा वा देसूणा ॥ २५६ ॥

वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादेहि अट्टचोदसभागा फोसिदा । मारणंतियसमुग्घादेहि बारहचोदसभागा फोसिदा, मेरुमूलादो हेट्टोवरि पंच-सत्तरज्जुआयामेण मारणंतियस्सुवलंभादो ।

उववादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ २५७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २५८ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

एकारहचोदसभागा देसूणा ॥ २५९ ॥

कुदो ? छट्ठिपुढविणेरइयाणं सासणगुणेण पंचिंदियतिरिक्खेसु उत्पज्जमाणं पंचचोदसभागं उववादेण लभंति, देवेहिंतो पंचिंदियतिरिक्खेसुत्पज्जमाणं छचोदस-

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ और बारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २५६ ॥

वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंसे आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । मारणान्तिकसमुद्घातसे बारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, मेरुमूलसे नीचे पांच और ऊपर सात राजु आयामसे मारणान्तिकसमुद्घात पाया जाता है ।

उक्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २५७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवों द्वारा उपपाद पदसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २५८ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २५९ ॥

क्योंकि, सासादनगुणस्थानके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें उत्पन्न होनेवाले छठी पृथिवीके नारकियोंके पांच बटे चौदह भाग उपपादसे प्राप्त होते हैं, तथा देवोंसे

भागा लब्धंति, एदेसिं समासो एककारहचौदसभागा सासणोववादफोसणखेत्तं होदि सि ।
उवरि सत्त चौदसभागा किण्ण लद्धा ? ण, सासणाणमेइंदिएसु उववादाभावादो ।
मारणंतियमेइंदिएसु गदसासणा तत्थ किण्ण उप्पज्जंति ? ण, भिच्छत्तमागंतूण सासण-
गुणेण उप्पत्तिविरोहादो ।

सम्मामिच्छाइट्ठीहि सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? ॥२६०॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २६१ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्टचौदसभागा वा देसूणा ॥ २६२ ॥

तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके छह बटे चौदह भाग प्राप्त होते हैं, इन दोनोंके जोड़रूप ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपादकी अपेक्षा स्पर्शनक्षेत्र होता है ।

शंका—ऊपर सात बटे चौदह भाग क्यों नहीं प्राप्त होते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी एकेन्द्रियोंमें उत्पत्ति नहीं है ।

शंका—एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि जीव उनमें उत्पन्न क्यों नहीं होते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आयुके नष्ट होनेपर उक्त जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमें आ जाते हैं, अतः मिथ्यात्वमें आकर सासादनगुणस्थानके साथ उत्पत्तिका विरोध है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥२६०॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २६१ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २६२ ॥

सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अङ्गाइजादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासदत्थो । विहारवदिसत्थाणेण अट्टचोदस-भागा वा फोसिदा । सेसं सुगमं ।

समुग्घाद-उववादं णत्थि ॥ २६३ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छत्तगुणेण मरणाभावादो । वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादाण-मेत्थ परूवणं किण्ण कदं ? ण, तेसिं पहाणत्ताभावादो ।

मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो ॥ २६४ ॥

सुगमभेदं ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?
॥ २६५ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २६६ ॥

स्वस्थान पदसे तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अङ्गाईट्ठीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । तथा विहारवत्स्वस्थानसे आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके समुद्घात और उपपाद पद नहीं होते हैं ॥ २६३ ॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके साथ मरणका अभाव है ।

शंका—वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंकी यहां प्ररूपणा क्यों नहीं की गई है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उनकी प्रधानता नहीं है ।

मिथ्यादृष्टि जीवोंके स्पर्शनका निरूपण असंयत जीवोंके समान है ॥ २६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञिभार्गणानुसार संज्ञी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
॥ २६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है
॥ २६६ ॥

सुगमं, वट्टमाणविवक्खादो ।

अट्टचोदसभागा वा देसूणा फोसिदा ॥ २६७ ॥

सत्थाणेण तिण्हं लोगणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अट्टाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासदत्थो । विहारवदिसत्थाणेण अट्टचोदसभागा फोसिदा ।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २६८ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २६९ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्टचोदसभागा वा देसूणा ॥ २७० ॥

वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादेहि अट्टचोदसभागा फोसिदा, देवाणं विहरंताणं तिण्हमेदेसिमुवलंभादो ।

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २६७ ॥

स्वस्थान पदसे संज्ञी जीवोंने तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अट्टाईड्डीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । विहारवत्स्वस्थानसे आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है ।

समुद्घातोंकी अपेक्षा संज्ञी जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २६९ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २७० ॥

वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंकी अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, विहार करते हुए देवोंके ये तीनों समुद्घात पाये जाते हैं ।

१ अप्रती ' लोगस्स संखेज्जदिभागो ', काप्रती ' लोगसंखेज्जदिभागो ' इति पाठः ।

सव्वलोगो वा ॥ २७१ ॥

मारणंतियसमुग्घादं पडुच्च एसो णिदेसो । तमकाइएसु सण्णीसु मुक्कमागणंतिय-
सण्णी जीवे पडुच्च बारहचोदसभागा देसुणा फोसिदा । एमो वासदत्थो ।

उववादेहि केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ २७२ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २७३ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

सव्वलोगो वा ॥ २७४ ॥

सण्णीसुप्पणअसण्णीणं सव्वलोगोत्रलंभादो । सण्णीणं सण्णीसुप्पज्जमाणानं
बारहचोदसभागा होंति । सम्माइड्डीणं छचोदसभागा । एसो वासदत्थो । एवमणत्थ वि
अउत्तट्ठाणे वासहाणमत्थो वत्तव्वो ।

अथवा, सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २७१ ॥

यह कथन (असंज्ञी जीवोंमें किये गये) मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षासे है ।
त्रसकायिक संज्ञी जीवोंमें मारणान्तिक समुद्घातको करनेवाले संज्ञी जीवोंकी अपेक्षा
कुछ कम बारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है ।

उपपादकी अपेक्षा संज्ञी जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २७२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपपादकी अपेक्षा संज्ञी जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है
॥ २७३ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २७४ ॥

क्योंकि, संज्ञियोंमें उत्पन्न हुए असंज्ञी जीवोंके सर्व लोक क्षेत्र पाया जाता है ।
किन्तु संज्ञियोंमें उत्पन्न होनेवाले संज्ञी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र बारह बटे चौदह भाग है ।
सम्यग्दृष्टि संज्ञियोंका उपपादक्षेत्र छह बटे चौदह भागप्रमाण है । यह वा शब्दसे
सूचित अर्थ है । इसी प्रकार अन्यत्र भी अनुक्त स्थानमें वा शब्दोंका अर्थ कहना
चाहिये ।

असणी मिच्छादृष्टिभंगो ॥ २७५ ॥

सुगमं ।

आहाराणुवादेण आहारा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं
खेतं फोसिदं ? ॥ २७६ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ २७७ ॥

एदं देसामासियसुत्तं । तेण विहारवदिसत्थाणेण अट्टचोदसभागा फोसिदा ।
वेउव्विएण तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो फोसिदो । सेसं सुगमं ।

अणाहारा केवडियं खेतं फोसिदं ? ॥ २७८ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो वा ॥ २७९ ॥

एदं पि सुगमं ।

एवं फोसणाणुगमो त्ति समत्तमणिओगहारं ।

असंज्ञी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र मिथ्यादृष्टियोंके समान है ॥ २७५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारमार्गणानुसार आहारक जीवोंने स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे
कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २७६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक जीवोंने उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ २७७ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है । अत एव (इसके द्वारा सूचित अर्थ—) विहार-
वत्स्वस्थानकी अपेक्षा आहारक जीवोंने आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है ।
वैक्रियिकसमुद्घातसे तीन लोकोंके संख्यातवें भागका स्पर्श किया है । शेष सूत्रार्थ
सुगम है ।

अनाहारक जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २७८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अनाहारक जीवोंने सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ २७९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

णाणाजीवेण कालाणुगमो

णाणाजीवेण कालाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेर-
इया केवचिरं कालादो होति ? ॥ १ ॥

णाणाजीवग्गहणमेगजीवपडिसेहट्ठं । कालाणुगमग्गहणं सेसाणिओगद्दारपडि-
सेहट्ठं । गदिग्गहणं सेसमग्गणापडिसेहफलं । णिरयगइण्णिदेसो सेसगइपडिसेहफलो ।
णेरइयण्णिदेसो तत्थद्वियपुढविकाइयादिपडिसेहफलो । केवचिरं कालादो होति त्ति
एदस्सत्थो— णिरयगदीए णेरइया किमणादि-अपज्जवसिदा, किमणादि-सपज्जवसिदा, किं
सादि-अपज्जवसिदा, किं सादि-सपज्जवसिदा त्ति सिस्सस्स आसंकुद्दीवणमेदेण कयं ।
अथवा णासंकियसुत्तमिदं, किंतु पुच्छासुत्तमिदि वत्तवं । एसो अत्थो सव्वसंकासुत्तेसु
जोजेयव्वो ।

सव्वद्धा ॥ २ ॥

अणादि-अपज्जवसिदा होति, सेसतिसु वियप्पेसु णत्थि । कुदो ? सहावदो

नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें
नारकी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १ ॥

एक जीवके प्रतिषेधार्थ सूत्रमें 'नाना जीव' का ग्रहण किया है। 'कालानु-
गम' का ग्रहण शेष अनुयोगद्वारोंके निषेधार्थ है। 'गति' ग्रहणका फल शेष
मार्गणाओंका प्रतिषेध करना है। 'नरकगति' का निर्देश शेष गतियोंका प्रतिषेधक है।
'नारकी' पदके निर्देशका फल नरकोंमें स्थित पृथिवीकायिकादि जीवोंका प्रतिषेध
करना है। 'कितने काल तक रहते हैं' इसका अर्थ इस प्रकार है— 'नरकगतिमें
नारकी जीव क्या अनादि-अपर्यवसित हैं, क्या अनादि-सपर्यवसित हैं, क्या सादि-
अपर्यवसित हैं, और क्या सादि-सपर्यवसित हैं' इस प्रकार इस सूत्र द्वारा शिष्यकी
आशंकाका उद्दीपन किया है। अथवा यह आशंका-सूत्र नहीं है, किन्तु पृच्छासूत्र है,
ऐसा कहना चाहिये। यह अर्थ सर्व शंकासूत्रोंमें जोड़ना चाहिये।

नाना जीवोंकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकी जीव सर्व काल रहते हैं ॥ २ ॥

नारकी जीव अनादि-अपर्यवसित हैं, शेष तीन विकल्पोंमें नहीं हैं; क्योंकि,

चेव । ण च सव्वं सहेउअं चेवेत्ति णियमो अत्थि, एयंतवादप्पसंगादो । तम्हा ' ण अण्णहावाइणो जिणा ' इदि एदं सहहेयच्चं ।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ३ ॥

जहा णेरइयाणं सामण्णेण अणादिओ अपज्जवसिदो संताणकालो वुत्तो तथा सत्तसु पुढवीसु णेरइयाणं पि । पादेक्कं संताणस्स वोच्छेदो ण होदि त्ति वुत्तं होदि ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्ख-
पज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता
मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी केवचिरं कालादो
होंति ? ॥ ४ ॥

एदे सुत्तम्मि वुत्तजीवा संताणं पडुच्च किमणादि-अपज्जवसिदा, किमणादि-
सपज्जवसिदा, किं सादि-अपज्जवसिदा, किं सादि-सपज्जवसिदा; सादि-सपज्जवसिदा वि
संता तत्थ किमेगसमयावट्ठाइणो किं दुसमया किं तिसमया, एवमावलिय-खण-लव-मुहुत्त-

पेसा स्वभावसे ही है। और सब सहेतुक ही हो ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेमें एकान्तवादका प्रसंग आता है। इस कारण 'जिनदेव अन्यथावादी नहीं है' इस प्रकार इसका श्रद्धान करना चाहिये।

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं ॥ ३ ॥

जिस प्रकार नारकियोंका सामान्यसे अनादि-अपर्यवसित सन्तानकाल कहा है, उसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें ही नारकियोंका सन्तानकाल अनादि-अपर्यवसित है। प्रत्येक सन्तानका व्युच्छेद नहीं होता, ऐसा इस सूत्रका अभिप्राय है।

तिर्यचगतिमें तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती व पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त; तथा मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४ ॥

ये सूत्रमें कहे हुए जीव सन्तानकी अपेक्षा 'क्या अनादि-अपर्यवसित हैं, क्या अनादि-सपर्यवसित हैं, क्या सादि-अपर्यवसित हैं, क्या सादि-सपर्यवसित हैं, और क्या सादि-सपर्यवसित भी होकर उसमें क्या एक समय अवस्थायी हैं, क्या दो समय अवस्थायी हैं, क्या तीन समय अवस्थायी हैं— इस प्रकार आवली, क्षण, लव, मुहूर्त,

१ प्रतिष्ठा 'अपज्जत्ताण' इति पाठः ।

दिवस-पक्ष-मास-उदु-अयण-संवच्छर-पुव्व-पव्व-पल्ल-सागरुस्सप्पिणि-कप्पादिकाला-
वट्ठाइणो त्ति आसंक्रिय तस्स उत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वद्धा ॥ ५ ॥

सव्वा अद्धा कालो जेसिं ते सव्वद्धा, संताणं पाडि तत्थ सव्वकालावट्ठाइणो त्ति
बुत्तं होदि ।

मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ६ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ७ ॥

कुदो ? अणप्पिदग्गदीदो आगंतूण मणुसअपज्जत्तेसुप्पज्जिय अंतरं विणासिय
खुद्दाभवग्गहणमच्छिय' णिस्सेसमणप्पिदग्गदिं गदाणं खुद्दाभवग्गहणमेत्तजहण्णकालु-
वलंभादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८ ॥

दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, पूर्व, पर्व, पल्य, सागर, उत्सर्पिणी एवं
कल्पादि काल तक अवस्थायी हैं' इस प्रकार आशंका ऋके उसका उत्तरसूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त जीव सन्तानकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं ॥ ५ ॥

'सर्व है अद्धा अर्थात् काल जिनका' इस बहुव्रीहि समासके अनुसार 'सर्वाद्धा'
पदका अर्थ 'सर्व काल रहनेवाले' होता है, अर्थात् संतानकी अपेक्षा वहां उपर्युक्त
जीव सर्व काल स्थित रहनेवाले हैं, यह सूत्रका अभिप्राय है ।

मनुष्य अपर्याप्त जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्य अपर्याप्त जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण काल तक रहते हैं ॥ ७ ॥

क्योंकि, अविवक्षित गतिसे आकर मनुष्य अपर्याप्तोंमें उत्पन्न होकर व अन्तरको
नष्ट कर क्षुद्रभवग्रहणकाल तक रहकर निःशेष रूपसे अविवक्षित गतिमें गये हुए उक्त
जीवोंका क्षुद्रभवग्रहणमात्र जघन्य काल पाया जाता है ।

वे ही मनुष्य अपर्याप्त जीव उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल-
तक रहते हैं ॥ ८ ॥

तं जहा— मणुसअपज्जत्तएसु अंतरिय द्विदेसु अणप्पिदगदीदो थोवा जीवा मणुसअपज्जत्तएसु आगंतूण उप्पण्णा । णट्टमंतरं । तेसिं जीवाणं जीविददुच्चरिमसमओ त्ति पुणो वि उप्पत्तिं पडुच्च अंतरं करिय पुणो अण्णे उप्पाएयव्वा । तत्थ वि उप्पत्तिं पडुच्च अप्पिदजीवाणं जीविददुच्चरिमसमयो त्ति अंतरं करिय पुणो अण्णे उप्पाएयव्वा । तत्थ वि उप्पत्तिं पडुच्च अप्पिदजीवाणं जीविददुच्चरिमसमओ त्ति अंतरं करिय अण्णे उप्पाएयव्वा । अण्णेण पयारेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवारेसु गदेसु तदो णियमा अंतरं होदि । एदम्हि काले आणिज्जमाणे एक्किस्से वारसलागाए जदि संखेज्जावलयि-मेत्तो कालो लब्भदि, तो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसलागासु किं लभावो त्ति फलेण इच्छं गुणिय पमाणेणोवद्विदे मणुसअपज्जत्ताणं संताणस्स कालो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो जादो । केइमेगमाउद्विदिं ठविय आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-णिरंतरुवक्कमणकालेण गुणिय पमाणेणोवद्वंति । तेसिमेसो कालो णागच्छदि ।

देवगदीए देवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ९ ॥

सुगमं ।

इसीको स्पष्ट करते हैं— मनुष्य अपर्याप्तक जीवोंके अन्तरित होकर स्थित होने-पर अविवक्षित गतियोंसे स्तोक जीव मनुष्य अपर्याप्तोंमें आकर उत्पन्न हुए । इस प्रकार अन्तर नष्ट हुआ । उन जीवोंके जीवितके द्विचरम समय तक फिर भी उत्पत्तिकी अपेक्षा अन्तर करके पुनः अन्य जीवोंको मनुष्य अपर्याप्तोंमें उत्पन्न कराना चाहिये । उनमें भी उत्पत्तिकी अपेक्षा विवक्षित जीवोंके जीवितके द्विचरम समय तक अन्तर करके पुनः अन्य जीवोंको उत्पन्न कराना चाहिये । उनमें भी उत्पत्तिकी अपेक्षा विवक्षित जीवोंके जीवितके द्विचरम समय तक अन्तर करके अन्य जीवोंको उत्पन्न कराना चाहिये । इस प्रकारसे पल्योपमके असंख्यातवै भागमात्र वारोंके वीत जानेपर तत्पश्चात् नियमसे अन्तर होता है । इस कालके निकालते समय ' यदि एक वार-शलाकामें संख्यात आवलीमात्र काल लब्ध होता है, तो पल्योपमके असंख्यातवै भागमात्र वार-शलाकाओंमें कितना काल लब्ध होगा ? ' इस प्रकार फलराशिसे इच्छाराशिको गुणित कर प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर मनुष्य अपर्याप्तोंकी सन्तानका काल पल्योपमके असंख्यातवै भागमात्र होता है । कितने ही आचार्य एक आयुस्थितिको स्थापित कर आवलीके असंख्यातवै भागमात्र निरंतर उपक्रमणकालसे गुणित करके प्रमाणसे अपवर्तित करते हैं । उनके उपर्युक्त विधानसे यह काल नहीं आता ।

देवगतिमें देव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सर्वदा ॥ १० ॥

एदं पि सुगमं ।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सर्वदृसिद्धिविमाणवासियदेवा
॥ ११ ॥

सुगमं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता
बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता
केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १२ ॥

णत्थि एत्थ किं पि वत्तव्वं, सुगमत्तादो ।

सर्वदा ॥ १३ ॥

एदं पि सुगमं ।

देवगतिमें देव सर्व काल रहते हैं ॥ १० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इसी प्रकार भवनवासी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों तक सब
देव सर्व काल रहते हैं ॥ ११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त;
बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त; सूक्ष्म एकेन्द्रिय,
सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त; द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और
पंचेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव कितने काल तक रहते हैं? ॥ १२ ॥

यहां कुछ भी कहनेके लिये नहीं है, क्योंकि इसका अर्थ सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ १३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया
वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता
बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्ता तसकाइयपज्जत्ता
अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १४ ॥

एत्थ वि णत्थि वत्तव्वं, सुगमत्तादो ।

सव्वद्धा ॥ १५ ॥

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, पृथिवीकायिक पर्याप्त, पृथिवीकायिक
अपर्याप्त; बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक
अपर्याप्त; सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक
अपर्याप्त; अष्कायिक, अष्कायिक पर्याप्त, अष्कायिक अपर्याप्त; बादर अष्कायिक, बादर
अष्कायिक पर्याप्त, बादर अष्कायिक अपर्याप्त; सूक्ष्म अष्कायिक, सूक्ष्म अष्कायिक पर्याप्त
सूक्ष्म अष्कायिक अपर्याप्त; तेजस्कायिक, तेजस्कायिक पर्याप्त, तेजस्कायिक अपर्याप्त;
बादर तेजस्कायिक, बादर तेजस्कायिक पर्याप्त, बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त; सूक्ष्म
तेजस्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त; वायुकायिक,
वायुकायिक पर्याप्त, वायुकायिक अपर्याप्त; बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक
पर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त; सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त,
सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त; वनस्पतिकायिक, वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वनस्पति-
कायिक अपर्याप्त; बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर
वनस्पतिकायिक अपर्याप्त; निगोद जीव, निगोद जीव पर्याप्त, निगोद जीव अपर्याप्त;
बादर निगोद जीव, बादर निगोद जीव पर्याप्त, बादर निगोद जीव अपर्याप्त; सूक्ष्म
निगोद जीव, सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्त; बादर
वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, बादर
वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त; त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रस-
कायिक अपर्याप्त जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १४ ॥

यहां भी कुछ कहने योग्य नहीं है, क्योंकि, यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ १५ ॥

सुगम ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरा-
लियकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्म-
इयकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १६ ॥

सुगम ।

सव्वद्धा ॥ १७ ॥

मणजोगि-वचिजोगीणमद्धा जहण्णेण एगसमओ, उक्कसेण अंतोमुहुत्तं । मणुस-
अपज्जत्ताणं पुण जण्णओ उक्कस्सओ वि अंतोमुहुत्तगेत्तो चेव । जदि एवविहमणुस-
अपज्जत्ताणं संताणो सांतरो होज्ज तो मण-वचिजोगीणं संताणो सांतरो किण्ण हवे,
विसेसाभावादो । ण दव्वपमाणकओ विसेसो, देवाणं संखेज्जभागमेत्तदव्वुवलक्खिय-
वेउव्वियमिस्सकायजोगिसंताणस्स वि सव्वद्धप्पसंगादो । एत्थ परिहारो वुच्चदे । तं
जहा— ण दव्वबहुत्तं संताणाविच्छेदस्स कारणं, संखेज्जमणुसपज्जत्ताणं संताणस्स वि

यह सूत्र सुगम है ।

योगमार्गणाके अनुसार पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, औदा-
रिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और कर्मणकाययोगी
जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ १७ ॥

शंका—मनोयोगी और वचनयोगियोंका काल जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे
अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है । परन्तु मनुष्य अपर्याप्तोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त-
मात्र ही है । यदि इस प्रकारके मनुष्य अपर्याप्तोंकी सन्तान सान्तर है, तो मनोयोगी
और वचनयोगियोंकी सन्तान सान्तर क्यों नहीं होगी, क्योंकि, उनमें कोई विशेषता
नहीं है । यदि द्रव्यप्रमाणकृत विशेषता मानी जाय तो वह भी नहीं बनती, क्योंकि,
देवोंके संख्यातवै भागमात्र द्रव्यसे उपलक्षित वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंकी सन्तानके
भी सर्व काल रहनेका प्रसंग होगा ?

समाधान—यहां उपर्युक्त शंकाका परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है—
द्रव्यकी अधिकता सन्तानके अविच्छेदका कारण नहीं है, क्योंकि, ऐसा होनेपर

वोच्छेदप्पसंगादो । ण सगद्धाथोवत्तं संताणवोच्छेदस्स कारणं, वेउव्वियमिस्सद्वादो संखेज्ज-
गुणहीणद्धुवलक्खियमेणजोगिसंताणस्स वि सांतरत्तप्पसंगादो । किंतु जस्स गुणट्ठाणस्स
मगगणट्ठाणस्स वा एगजीवावट्ठाणकालादो पवेसंतरकालो बहुगो होदि तस्सण्णय-
वोच्छेदो । जस्स पुण कयावि ण बहुओ तस्स ण संताणस्स वोच्छेदो ति घेत्तव्वं ।
मणजोगि-वच्चिजोगीणं पुण एगसमयो सुट्ठु पविरलो ति एत्थ जहण्णकालत्तणेण ण
गहिदो ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९ ॥

कुदो ? ओरालियकायजोगट्ठिदतिरिक्ख-मणुस्साणं वे विग्गहे कादूण देवेसुप्पज्जिय
सव्वजहण्णेण कालेण पज्जत्तीओ समाणिय अंतोमुहुत्तमेत्तजहण्णकालवलंभादो ।

संख्यात मनुष्य पर्याप्त जीवोंकी सन्तानके भी व्युच्छेदका प्रसंग होगा । अपने कालकी
अल्पता भी सन्तानव्युच्छेदका कारण नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर वैक्रियिक-
मिश्रकालसे संख्यातगुणे हीन कालसे उपलक्षित मनोयोगिसन्तानके भी सान्तरताका
प्रसंग आवेगा । किन्तु जिस गुणस्थान अथवा मार्गणास्थानके एक जीवके अवस्थान-
कालसे प्रवेशान्तरकाल बहुत होता है उसकी सन्तानका व्युच्छेद होता है । जिसका
वह काल कदापि बहुत नहीं है उसकी सन्तानका व्युच्छेद नहीं होता, ऐसा ग्रहण
करना चाहिये । परन्तु मनोयोगी व वचनयोगियोंका एक समय बहुत ही कम पाया जाता
है, इस कारण यहां जघन्य कालरूपसे वह नहीं ग्रहण किया गया ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९ ॥

क्योंकि, औदारिककाययोगमें स्थित तिर्यंच और मनुष्योंका दो विश्रह करके
देवोंमें उत्पन्न होकर और सर्व जघन्य कालसे पर्याप्तियोंको पूर्ण कर बहुत ही कम पाया
जाता अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य काल पाया जाता है ।

१ अप्तौ ' -हीणव्वुचलक्खिय ' , आ-काप्रसौः ' -हीणव्वुचलक्खिय ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' एगसमया सुट्ठु पविरदो ' इति पाठः ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २० ॥

मणुसअपज्जत्ताणं जघा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो संताणकालो परूविदो तथा एत्थ वि परूवेदव्वो ।

आहारकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २१ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ २२ ॥

कुदो ? मणजोग-वचिजोगेहितो आहारकायजोगं गंतूण विदियसमए कालं करिय जोगंतरं गयस्स एगसमयकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३ ॥

एत्थ आहारकायजोगीणं दुच्चरिमसमओ जाव आहारकायजोगप्पवेसस्स अंतरं करिय पुणो उवरिमसमए अण्णे जीवे पवेसियव्वा' । एवं संखेज्जवारसलागासु उप्पण्णासु तदो णियमा अंतरं होदि । एवं संखेज्जंतोमुहुत्तसमासो वि अंतोमुहुत्तमेत्तो चैव ।

वही काल उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातर्वे भागप्रमाण है ॥ २० ॥

जिस प्रकार मनुष्य अपर्याप्तोंके पल्योपमके असंख्यातर्वे भागमात्र सन्तान-कालका निरूपण किया जा चुका है, उसी प्रकार यहांपर भी निरूपण करना चाहिये ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव जघन्यसे एक समय तक रहते हैं ॥ २२ ॥

क्योंकि, मनोयोग और वचनयोगसे आहारककाययोगको प्राप्त होकर व द्वितीय समयमें मरण कर योगान्तरको प्राप्त होनेपर एक समय काल पाया जाता है ।

आहारककाययोगी जीव उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं ॥ २३ ॥

यहां आहारक काययोगियोंके द्विचरम समय तक आहारककाययोगमें प्रवेशका अन्तर करके पुनः उपरिम समयमें अन्य जीवोंका प्रवेश कराना चाहिये । इस प्रकार संख्यात वार-शलाकाओंके उत्पन्न होनेपर तत्पश्चात् नियमसे अन्तर होता है । इस प्रकार संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंका जोड़ भी अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है ।

कथं णव्वदे ? उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो त्ति सुत्तवयणादो ।

आहारमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २४ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५ ॥

कुदो ? आहारमिस्सकायजोगचरस्स^१ आहारमिस्सकायजोगं गंतूण सुट्ठु जहण्णेण कालेण पज्जत्तीओ समाणिदस्स जहण्णकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६ ॥

एत्थ वि पुव्वं व संखेज्जंतोमुहुत्ताणं संकलणा कायव्वा ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवंसयवेदा अवगदवेदा केव-
चिरं कालादो होंति ? ॥ २७ ॥

सुगमं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि उन संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंका जोड़ भी अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है ?

समाधान—' उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है ' इस सूत्रवचनसे जाना जाता है ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं ॥ २५ ॥

क्योंकि, आहारकमिश्रकाययोगमें जानेवाले जीवके आहारकमिश्रकाययोगको प्राप्त होकर अतिशय जघन्य कालसे पर्याप्तियोंको पूर्ण करलेनेपर (सूत्रोक्त) जघन्य काल पाया जाता है ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं ॥ २६ ॥

यहांपर भी पूर्वके समान संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंका संकलन करना चाहिये ।

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अपगतवेदी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ आप्रतौ ' -जोगिचरस्स ' इति पाठः ।

सव्वद्धा ॥ २८ ॥

एदं पि सुगमं ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई
अकसाई केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २९ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ३० ॥

एदं पि सुगमं ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी
आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी केवचिरं
कालादो होंति ? ॥ ३१ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ३२ ॥

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ २८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी
और अकषायी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ३० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिक-
ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीव कितने काल तक
रहते हैं ? ॥ ३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ३२ ॥

णत्थि एत्थ वत्तच्चं, सुगमत्तादो ।

संजमाणुवादेण संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परि-
हारसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा
केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३३ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ३४ ॥

एदं पि सुगमं ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३५ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ ३६ ॥

कुदो ? उवसंतकसायस्स अणियद्धिवादरसांपराइयपविट्ठस्स वा सुहुमसांप-
राइयगुणट्ठाणं पडिवण्णविदियसमए कालं करिय देवेसुववण्णस्स एगसमयस्सुवलंभादो ।

यहां कुछ व्याख्यानके योग्य नहीं है, क्योंकि, यह सूत्र सुगम है ।

संयममार्गणाके अनुसार संयत, सामायिकछेदोपस्थापनशुद्धिसंयत, परिहार-
शुद्धिसंयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत, संयतासंयत और असंयत जीव कितने काल
तक रहते हैं ? ॥ ३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ३४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीव जघन्यसे एक समय रहते हैं ॥ ३६ ॥

क्योंकि, उपशान्तकषाय वा अनिवृत्तिबादरसाम्परायप्रविष्ट जीवोंके सूक्ष्म-
साम्परायिक गुणस्थानको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें मरण कर देवोंमें उत्पन्न होनेपर
एक समय जघन्य काल पाया जाता है ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३७ ॥

एत्थ संखेज्जंतोमुहुत्तममासममुब्भूदो अंतोमुहुत्तकालो परूवेदव्वो ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवल-
दंसणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३८ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ३९ ॥

एदं पि सुगमं ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-तेउ-
लेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥४०॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ४१ ॥

एदं पि सुगमं ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीव उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं ॥ ३७ ॥

यहां संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंके संकलनसे उत्पन्न हुए अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा करना चाहिये ।

दर्शनमार्गणाके अनुसार चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवाधिदर्शनी और केवल-
दर्शनी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ३९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले,
तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥४०॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ४१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो
होति ? ॥ ४२ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ४३ ॥

एदं पि सुगमं ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी
मिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होति ? ॥ ४४ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ४५ ॥

एदं पि सुगमं ।

उवसमसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होति ?
॥ ४६ ॥

सुगमं ।

भव्यमार्गणाके अनुमार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव कितने काल
तक रहते हैं ? ॥ ४२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

सम्यत्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि, श्लायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और
मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ? ॥ ४५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४७ ॥

कुदो ? दिङ्कमग्गाणं सम्मामिच्छत्तुवसमसम्मत्ताणि पाडिवज्जिय सव्वजहण्ण-
कालं तेसु अच्छिय गुणंतरगदाणं सुट्ठु जहण्णंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४८ ॥

एत्थ एदम्हि काले आणिज्जमाणे अप्पिदगुणट्ठाणकालमेत्तम्हि एगपवेसणकाल-
सलागं करिय एरिसासु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसलागासुप्पण्णासु तदो
णियमा अंतरं होदि । एत्थ सव्वकालसलागाहि गुणकाले गुणिदे उक्कस्सकालो
होदि ।

सासणसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ४९ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ ५० ॥

कुदो ? उवसमसम्मत्तद्वाए एगसमयावसेसाए सासणं गंतूण एगसमयमच्छिय

उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक
रहते हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी जीवोंके सम्यग्मिथ्यात्व और उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त कर
तथा सर्व जघन्य काल तक इन गुणस्थानोंमें रहकर अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेपर
अतिशय जघन्य अन्तर्मुहूर्तमात्र काल पाया जाता है ।

उपर्युक्त जीव उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल तक रहते
हैं ॥ ४८ ॥

यहां इस कालके निकालते समय विवक्षित गुणस्थानके कालप्रमाण एक
प्रवेशनकालको शलाका करके पुनः ऐसी पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र शलाका-
ओंके उत्पन्न होनेपर तत्पश्चात् नियमसे अन्तर होता है । यहां सब कालशलाकाओंसे
गुणस्थानकालको गुणित करनेपर उत्कृष्ट काल होता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव जघन्यसे एक समय रहते हैं ॥ ५० ॥

क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वकालमें एक समय शेष रहनेपर सासादनगुणस्थानको

विदियममए मिच्छत्तं गदस्स एगसमयदंसणादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५१ ॥

सुगममेदं, सम्मामिच्छत्तकालसमासविहाणेण एदस्स कालस्स समुप्पत्तीदो ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी असण्णी केवचिरं कालादो होंति ?

॥ ५२ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ५३ ॥

सुगमं ।

आहारा अणाहारा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५४ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ५५ ॥

सुगमं ।

एवं णाणार्जवेण कालानुगमो त्ति समत्तमणिओगहारं ।

प्राप्त होकर और एक समय रहकर द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर एक समय जघन्य काल देखा जाता है ।

सामादनसम्यग्दृष्टि जीव उत्कर्षसे पत्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल तक रहते हैं ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वकालके संकलनका जो विधान कहा जा चुका है उसीसे इस कालकी भी उत्पत्ति होती है ।

संज्ञिमार्गणाके अनुसार संज्ञी और असंज्ञी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ५२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी और असंज्ञी जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक व अनाहारक जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ५४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक व अनाहारक जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगम अनुयोगद्वारा समाप्त हुआ

गाणाजीवेण अंतराणुगमो

गाणाजीवेहि अंतराणुगमेण गदियाणुवादेण गिरयगदीए णेर-
इयाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १ ॥

गाणाजीवणिहेसो एगजीवपडिसेहफलो । अंतरणिहेसो सेसाणिओगहारपडि-
सेहफलो । णेरइयणिहेसो तत्थट्ठियपुढविकाइयादिपडिसेहफलो । केवचिरं-णिहेसो ममया-
वलिय-खण-लव-मुहुत्तादिफलो । अवसेसं सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ २ ॥

कुदो ? सव्वद्वासु अवट्ठाणादो । गाणाजीवेहि कालणिरूवणाए चैव एदेसिमंतर-
मत्थि एदेसिं च णत्थि त्ति णव्वदे । तदो अंतरपरूवणा ण कादव्वे त्ति । एत्थ परिहारो
वुच्चदे । तं जहा— कालाणिओगहारं जेसिमंतरमत्थि त्ति अवगदं तेसिमंतराणं पमाण-
परूवणट्ठमिदमणिओगहारमागदं । जदि एवं तो सांतररासीणमेव परूवणा कीरउ वंतर-

.....
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तराणुगमसे गतिमार्गणाके अनुमार नरकगतिमें
नारकी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १ ॥

‘नाना जीवोंकी अपेक्षा’ यह निर्देश एक जीवकी अपेक्षाके प्रतिषेधके लिये है ।
‘अन्तर’ निर्देशका फल शेष अनुयोगद्वारोंका प्रतिषेध है । ‘नारकी जीवों’ का निर्देश वहां-
पर स्थित पृथिवीकायिकादि जीवोंका प्रतिषेधक है । ‘कितने काल’ यह निर्देश समय,
आवली, क्षण, लव व मुहूर्तादि रूप कालविशेषोंका सूचक है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

नारकी जीवोंका अन्तर नहीं होता ॥ २ ॥

क्योंकि, उनका सर्व कालोंमें अवस्थान है ।

शंका—नाना जीवोंकी अपेक्षा की गई कालप्ररूपणासे ही ‘इनका अन्तर है
और इनका नहीं है’ यह बात जानी जाती है । अत एव फिर अन्तरप्ररूपणा नहीं करना
चाहिये ?

समाधान—यहां परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है—कालानुयोगद्वारमें
जिन जीवोंका ‘अन्तर है’ ऐसा ज्ञात हुआ है, उनके अन्तरोंके प्रमाणप्ररूपणार्थ यह अनु-
योगद्वार आता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो अन्तरविशिष्ट सान्तरराशियोंकी ही प्ररूपणा करना

विसिद्धाणं, ण सव्वद्धरासीणमिदि ? तो बखहि एवं वेत्तव्वं दव्वद्वियणयसिस्साणुग्गहट्ठं कालाणिओगहारं भणिय संपहि पज्जवद्वियसिस्साणुग्गहट्ठमतराणिओगहारपरूवणा आगदा त्ति ।

णिरंतरं ॥ ३ ॥

निर्गतमंतरमस्माद्राशेरिति णिरंतरं । तं जेण सिद्धं तेण एसो पज्जुवासपडिसेहो, एसो रासी अंतरादो पुधभूदो वदिरित्तो त्ति वुत्तं होदि । जदि एवं तो पुणरुत्तदोसो पावदे, पुव्वगुत्तप्पसिद्धत्थपरूवणादो । ण एस दोसो, पुव्विल्लमुत्तं जेण अभावपहाणं तेण पसज्जपडिमेहपडिवट्ठं । तदो तेण अभावं पत्त विहीए परूवणट्ठमेदस्स अवयागदो ।

एवं सत्तसु पढवीसु णेरइया ॥ ४ ॥

चाहिये, सब काल रहनेवाली राशियोंकी नहीं ?

समाधान—तो फिर इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंके अनुग्रहार्थ कालानुयोगद्वारको कहकर इस समय पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंके अनुग्रहार्थ अन्तरानुयोगद्वारप्ररूपणा प्राप्त होती है ।

नारकी जीव निरन्तर हैं ॥ ३ ॥

इस राशिका अन्तर नहीं है, इसलिये यह निरन्तर है । (यह 'निरन्तर' शब्दका निरुक्त्यर्थ है) । चूंकि वह राशि सिद्ध है, इसीलिये यह पर्युदासप्रतिषेध है । यह नारकराशि अन्तरसे पृथग्भूत वा व्यतिरिक्त है, यह उपर्युक्त कथनका अभिप्राय है ।

शंका—यदि ऐसा है तो पुनरुक्तदोष प्राप्त होता है, क्योंकि, इस सूत्र द्वारा पूर्व सूत्रसे प्रसिद्ध अर्थका प्रतिपादन किया गया है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि पूर्व सूत्र अभावप्रधान है, इसलिये वह प्रसज्यप्रतिषेधसे सम्बद्ध है । इस कारण उससे अभावको प्राप्त राशिकी विधिके निरूपणार्थ इस सूत्रका अवतार हुआ है ।

विशेषार्थ—अभाव दो प्रकारका होता है, पर्युदास और प्रसज्य । पर्युदासके द्वारा एक वस्तुके अभावमें दूसरी वस्तुका सद्भाव ग्रहण किया जाता है । और प्रसज्यके द्वारा केवल अभावमात्र सप्रज्ञा जाता है । चूंकि प्रस्तुत प्रसंगमें अन्तरके अभावमें नारक राशिका अस्तित्व विवक्षित है इसलिये यहां पर्युदास पक्ष ग्रहण करना चाहिये ।

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव अन्तरसे रहित या निरन्तर हैं ॥ ४ ॥

कुदो ? अंतराभावं पडि विसेसाभावादो' ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-
पज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुस-
गदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीणमंतरं केवचिरं कालादो
होंति ? ॥ ५ ॥

दोणं गइणमेगवारेण णिदेसो किमट्ठं कओ ? देव-णेरइयाणं व एदेसिं पुध-
खेत्तावासो णत्थि ति जाणावणट्ठं । सेसं सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ६ ॥

एसो पसज्जपडिसेहो, विहीए पहाणत्ताभावादो ।

पेरंत्तरं ॥ ७ ॥

एसो पज्जुवासपडिसेहो, पडिसेहस्स पहाणत्ताभावादो ।

क्योंकि, अन्तराभावके प्रति सातों पृथिवियोंके नारकियोंमें कोई विशेषता नहीं है।

तिर्यचगतिमें तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच
योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त तथा मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त व
मनुष्यनियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५ ॥

शंका—दोनों गतियोंका निर्देश एक वार किसलिये किया ?

समाधान—देव और नारकियोंके समान इनका पृथक् क्षेत्रमें निवास नहीं है,
इस बातके ज्ञापनार्थ दोनों गतियोंका एक वार निर्देश किया है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता ॥ ६ ॥

यह प्रसज्यप्रतिषेध है, क्योंकि, यहां विधिकी प्रधानताका अभाव है।

वे जीव निरन्तर हैं ॥ ७ ॥

यह पर्युदास प्रतिषेध है, क्योंकि, यहां प्रतिषेधकी प्रधानता नहीं है।

मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ९ ॥

सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेसु मणुसअपज्जत्तएसु कालं काऊण अण्णगइं गएसु एगसमयमंतरं होऊण विदियसमए अण्णेसु तत्थुप्पण्णेसु लद्धमेगसमयमंतरं ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १० ॥

कुदो ? मणुसअपज्जत्तएसु कालं काऊण अण्णगइं गएसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकाले अइक्कंतै पुणो णियमेण मणुसअपज्जत्तएसु उत्पज्जमाणजीवाणसुवलंभादो ।

देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ११ ॥

सुगमं ।

मनुष्य अपर्याप्तोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्य अपर्याप्तोंका अन्तर जघन्यसे एक समय है ॥ ९ ॥

जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र मनुष्य अपर्याप्तोंके मरकर अन्य गतिको प्राप्त होनेपर एक समय अन्तर होकर द्वितीय समयमें अन्य जीवोंके मनुष्य अपर्याप्तोंमें उत्पन्न होनेपर एक समय अन्तर प्राप्त होता है ।

मनुष्य अपर्याप्तोंका अन्तर उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल होता है ॥ १० ॥

क्योंकि, मनुष्य अपर्याप्तोंके मरकर अन्य गतिको प्राप्त होनेके पश्चात् पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालके वीत जानेपर पुनः नियमसे मनुष्य अपर्याप्तोंमें उत्पन्न होनेवाले जीव पाये जाते हैं ।

देवगतिमें देवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ उवसम-सुहुमाहारे वेणुवियमिस्स-णरअपज्जते । सासणसम्भे मिस्से सातरणा मग्गणा अट्ठ ॥ सत्त दिग्गा इम्भासा वासपुथूतं च बारससुहुता । पल्लासंखं तिण्हं वरमवरं एगसमयो दु ॥ गो. जी. १४२=१४३.

२ प्रसिद्ध 'सेडीपुव्वसंखेज्जदिभागमेत्तेसु' इति पाठः ।

णत्थि अंतरं ॥ १२ ॥

एदं पि सुगमं ।

णिरंतरं ॥ १३ ॥

सुगमं ।

भवणवासियप्पहुडि जाव सब्बट्टसिद्धिविमाणवासियदेवा देव-
गदिभंगो ॥ १४ ॥

सुगमं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-बीइंदिय-
तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि ? ॥ १५ ॥

सुगमं ।

देवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ १२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

देव निरन्तर हैं ॥ १३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों तक अन्तरका निरूपण
देवगतिके समान है ॥ १४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त; बादर
एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त; सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म
एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त; द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय
अपर्याप्त; त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त; चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय
पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त; पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त
जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

णत्थि अंतरं ॥ १६ ॥

एदं पज्जवट्ठियसिस्साणुग्गहट्ठं परूविदं ।

णिरंतरं ॥ १७ ॥

एदं सुत्तं दव्वट्ठियसिस्साणुग्गहट्ठं परूविदं ।

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वण-
प्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवण-
प्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइय-पज्जत्त-अप-
ज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १८ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ १९ ॥

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ १६ ॥

यह सूत्र पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंके अनुग्रहार्थ कहा गया है ।

उक्त जीव निरन्तर हैं ॥ १७ ॥

यह सूत्र द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंके अनुग्रहार्थ कहा गया है ।

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, पृथिवीकायिक पर्याप्त, पृथिवीकायिक अपर्याप्त; बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त; सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त और सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, ये नौ पृथिवीकायिक जीव, इसी प्रकार नौ अप्कायिक, नौ तेजस्कायिक, नौ वायुकायिक, नौ वनस्पतिकायिक व नौ निगोद जीव, तथा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त व अपर्याप्त और त्रसकायिक पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ १९ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ २० ॥

सुगमं । दुणयाणुग्गहट्टं परूविद-दोसुत्ताणि जाणावेति सुत्तकत्तारस्स वीयरायत्तं जीवदयावरत्तं च ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवच्चिजोगि-कायजोगि-ओरा-
लियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-वेउव्वियकायजोगि-कम्मइय-
कायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ २१ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ २२ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ २३ ॥

सुगमं ।

यह सूत्र सुगम है ।

ये सब जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ २० ॥

यह सूत्र सुगम है । दोनों नयोंका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंके अनुग्रहार्थ कहे गये उपर्युक्त दो सूत्र सूत्रकर्ताकी वीतरागता और जीवदयापरताको सूचित करते हैं ।

योगमार्गणाके अनुसार पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, औदा-
रिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और कर्मणकाययोगी
जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ २१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ २२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वे जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ २३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?
॥ २४ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ २५ ॥

कुदो ? वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु सव्वेसु पज्जत्तीओ समाणिदेसु एगसमय-
मंतरिदूण विदियसमए देवेसु णेरइएसु उप्पण्णेसु वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं एग-
समयं होदि ।

उक्कस्सेण बारसमुहुत्तं ॥ २६ ॥

देवेसु णेरइएसु वा अणुप्पज्जमाणा जीवा जदि सुहु बहुअं कालमच्छंति तो बारस
मुहुत्ताणि चैव ! कथमेदं णव्वदे ? जिणव्वयणविणिग्गयवयणादो ।

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि ? ॥ २७ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ २४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका अन्तर जघन्यसे एक समय होता है ॥ २५ ॥

क्योंकि, सब वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके पर्याप्तियोंको पूर्ण करलेनेपर एक
समयका अन्तर होकर द्वितीय समयमें देवों व नारकियोंके उत्पन्न होनेपर वैक्रियिकमिश्र-
काययोगियोंका अन्तर एक समय होता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका अन्तर उत्कर्षसे बारह मुहूर्त होता है ॥ २६ ॥

देव अथवा नारकियोंमें न उत्पन्न होनेवाले जीव यदि बहुत अधिक काल तक
रहते हैं तो बारह मुहूर्त तक ही रहते हैं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह जिनभगवान्के मुखसे निकले हुए वचनोंसे जाना जाता है ।

आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल
तक होता है ? ॥ २७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ २८ ॥

कुदो ? आहार-आहारमिस्सजोगेहि विणा तिहुवणजीवाणमेगसमयमुवलंभादो ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २९ ॥

कुदो ? दोहि वि जोगेहि विणा सव्वपमत्तमंजदाणं वासपुधत्तावट्ठाणदंसणादो ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदाण-
मंतरं केवचिरं कालादो होंदि ? ॥ ३० ॥

सुगमं !

णत्थि अंतरं ॥ ३१ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर जघन्यसे एक समय होता है ॥ २८ ॥

क्योंकि, आहारक और आहारकमिश्र काययोगियोंके विना तीनों लोकोंके जीव एक समय पाये जाते हैं ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है ॥ २९ ॥

क्योंकि, उक्त दोनों ही योगोंके विना समस्त प्रमत्तसंयतोंका वर्षपृथक्त्व काल तक अवस्थान देखा जाता है ।

वेदमार्गणाके अनुमार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अपगतवेदी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वे जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ३२ ॥

सुगमं ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई
(अकसाई-) णमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३३ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ३४ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ३५ ॥

सुगमं ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणि-आभिणि
बोहिय-सुद-ओहिणाणि-मणपज्जवणाणि-केवलणाणीणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि ? ॥ ३६ ॥

सुगमं ।

यह सूत्र सुगम है ।

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी
और (अकषायी) जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता ॥ ३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वे जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिक-
ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवाधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीवोंका अन्तर
कितने काल तक होता है ? ॥ ३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

णत्थि अंतरं ॥ ३७ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ३८ ॥

सुगमं ।

संजमाणुवादेण संजदा सामाइयछेदोवट्टावणसुद्धिसंजदा परि-
हारसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदाण-
मंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३९ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ४० ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ४१ ॥

सुगमं ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसजदाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ?
॥ ४२ ॥

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ३७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ये जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयममार्गणाके अनुमार संयत, सामायिकछेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहार-
शुद्धिसंयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत, संयतासंयत और असंयत जीवोंका अन्तर
कितने काल तक होता है ? ॥ ३९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ४० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वे जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सूक्ष्मसांपरायिक जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ४२ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ ४३ ॥

कुदो ? सुहुमसांपराइयसंजदेहि विणा एगसमयदंसणादो ।

उक्कस्सेण छम्मासाणि ॥ ४४ ॥

कुदो ? खवगसेडीसमारोहणस्स छम्मासाणमुवरिमुक्कस्संतरस्स अणुवलंभादो ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणि-ओहिदंसणि-केवल-
दंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो त्थोदि ? ॥ ४५ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ४६ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ४७ ॥

सुगमं ।

यह सूत्र सुगम है ।

सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंका अन्तर जघन्यसे एक समय होता है ॥ ४३ ॥

क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिक संयतोंके बिना एक समय देखा जाता है ।

उक्त जीवोंका अन्तर उत्कर्षसे छह मास होता है ॥ ४४ ॥

क्योंकि, क्षपकश्रेणी आरोहणका छह मासोंके ऊपर उत्कृष्ट अन्तर नहीं पाया जाता ।

दर्शनमार्गानुसार चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ४६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ये जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ४७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-तेउ-
लेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?
॥ ४८ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ४९ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ५० ॥

सुगमं ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि ? ॥ ५१ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ५२ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले,
तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्कलेश्यावाले जीवोंका अन्तर कितने काल तक
होता है ? ॥ ४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वे जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ५० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर
कितने काल तक होता है ? ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ५२ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ५३ ॥

सुगमं ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठि-मिच्छा-
इट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५४ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ५५ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ५६ ॥

सुगमं ।

उवसमसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५७ ॥

सुगमं ।

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव निरन्तर हैं ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और
मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वे जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ५६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ ५८ ॥

कुदो ? तिसु वि लोएसु उवसममम्मादिट्ठीणमेक्कम्हि समए अभावदंसणादो ।

उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि ॥ ५९ ॥

रादिंदियमिदि दिवसस्स सण्णा, अहोरत्तेहि मिलिएहि दिवसववहारदंसणादो ।
उवसमसम्मत्तस्स सत्तदिवसमेत्तमंतरं होदि त्ति वुत्तं होदि । एत्थ उवसंहारगाथा—

सम्मत्ते सत्त दिणा विरदाविरदीए चोदसा हवन्ति ।

विरदीसु अ पण्णरसा विरहिदकालो मुणेयव्वो' ॥ १ ॥

सासणसम्माइट्ठि-सम्माभिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि ? ॥ ६० ॥

सुगमं ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर जघन्यसे एक समय है ॥ ५८ ॥

क्योंकि, तीनों ही लोकोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंका एक समयमें अभाव देखा जाता है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर उत्कर्षसे सात रात-दिन है ॥ ५९ ॥

‘ रात्रिदिव ’ यह दिवसका नाम है, क्योंकि सम्मिलित दिन व रात्रिसे ‘ दिवस ’ का व्यवहार देखा जाता है । उपशमसम्यक्त्वका अन्तर सात दिवसमात्र होता है, यह उक्त कथनका निष्कर्ष है । यहां उपसंहारगाथा—

उपशमसम्यक्त्वमें सात दिन, (उपशमसम्यक्त्व सहित) विरताविरति अर्थात् देशव्रतमें चौदह दिन, और विरति अर्थात् महाव्रतमें पन्द्रह दिन प्रमाण विरहकाल जानना चाहिये ॥ १ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ६० ॥

- यह सूत्र सुगम है ।

१ पदसुवसमसहिदाए विरदाविरदीए चोदसा दिवसा । विरदीए पण्णरसा विरहिदकालो दु बोद्वव्वो ॥
गो. जी. १४४.

जहण्णेण एगसमयं ॥ ६१ ॥

कुदो ? सासणसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तगुणाणं जहण्णेण एगसमयं अंतरं पडि विरोहाभावादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६२ ॥

सुगमं ।

सण्णियाणुवादेण सण्ण-असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ६३ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ६४ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ६५ ॥

सुगमं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर जघन्यसे एक समय है ॥ ६१ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानोंके जघन्यसे एक समय अन्तरके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

उक्त जीवोंका अन्तर उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ ६२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञिमार्गणाके अनुसार संज्ञी व असंज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ६३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी व असंज्ञी जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी व असंज्ञी जीव निरन्तर हैं ॥ ६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहाराणुवादेण आहार-अणाहाराणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि ? ॥ ६६ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ६७ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ६८ ॥

सुगमं ।

एवं णाणाजीवेण अंतराणुगमो त्ति समत्तमणिओगद्वारं ।

आहारमार्गणाके अनुसार आहारक व अनाहारक जीवोंका अन्तर कितने काल-
तक होता है ? ॥ ६६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक और अनाहारक जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वे निरन्तर हैं ॥ ६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

भागाभागाणुगमो

भागाभागाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया सव्व-
जीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ १ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— अणंतभाग-असंखेज्जदिभाग-संखेज्जदिभागानं^१
भागसण्णा, अणंताभागा असंखेज्जाभागा संखेज्जाभागा एदेसिमभागसण्णा । भागो च
अभागो च भागाभागा, तेसिमणुगमो भागाभागाणुगमो, तेण भागाभागाणुगमेण एत्थ
अहियारो त्ति भणिदं होदि । भागाभागणिहेसो सेसाणियोगदारपाडिसेहफलो । णेरइयणिहेसो
तत्थतणपुटविकाइयादिपाडिसेहफलो । सव्वजीवाणं कइत्थओ णिरयगईए णिरतरं वसदि त्ति
पुच्छा कदा होदि । किमणंतिमभागो किमणंता भागा किमसंखेज्जा भागा किमसंखेज्जदि-
भागो किं संखेज्जा भागा होंति त्ति भणिदे तण्णिणयड्डमुत्तरसुत्तं भणदि—

अणंतभागो ॥ २ ॥

भागाभागानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीव सर्व
जीवोंकी अपेक्षा कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ १ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— अनन्तवां भाग, असंख्यातवां भाग और संख्यातवां
भाग, इनकी ' भाग ' संज्ञा है; तथा अनन्त बहुभाग, असंख्यात बहुभाग और संख्यात
बहुभाग, इनकी ' अभाग ' संज्ञा है । ' भाग और अभाग ' इस प्रकार द्वन्द्व समास
होकर ' भागाभाग ' पद निष्पन्न हुआ है । उन भागाभागोंका जो अनुगम अर्थात् ज्ञान
है इसी का नाम भागाभागानुगम है । इस भागाभागानुगमका यहां अधिकार है, यह
उपर्युक्त कथनका अभिप्राय है । ' भागाभाग ' निर्देशका फल शेष अनुयोगद्वारोंका
प्रतिषेध है । ' नारकी जीवों ' का निर्देश वहांके पृथिवीकायकादि जीवोंके प्रतिषेधके
लिये है । सूत्रमें ' सर्व जीवोंका कितनेवां भाग नरकगतिमें निरन्तर रहता है ' यह प्रश्न
क्रिया गया है । क्या अनन्तवें भाग, क्या अनन्त बहुभाग, क्या असंख्यात बहुभाग,
क्या असंख्यातवें भाग और क्या संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं, ऐसा पूछनेपर उसके
निर्णयार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

नरकगतिमें नारकी जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ २ ॥

१ अप्रती ' संखेज्जभागहारणं ' इति पाठः ।

तं कथं ? णेरइएहि घणंगुलविदियवग्गमूलमेत्तसेडिपमाणेहि सव्वजीवरासिभिह भागे हिदे अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलणि आगच्छंति । लद्धं विरलिय सव्व-जीवरासिं समखंडं काऊण रूवं पडि दिण्णे तत्थ एगरूवधरिदं णेरइयपमाणं होदि । तेण णेरइया सव्वजीवाणमणंतभागो त्ति बुत्तं होदि ।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥३॥

सत्तहं पुढवीणं णेरइएहि पुधु पुधु सव्वजीवरासिभिह भागं घेत्तूण लद्धं विरलिय णुणो सव्वजीवरासिं सत्तणं विरलणाणं समखंडं करिय दिण्णे तत्थ एगरूवधरिदं जहाकमेण पढमादीणं सत्तणं पुढवीणं दव्वं जेण होदि तेण णेरइयभंगो सत्तणं पुढवीणं जुअदे ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥४॥

एदस्स अत्थो— तिरिक्खा सव्वजीवाणं किमणंतिमभागो किमणंता भागा किमसंखेज्जदिभागो किमसंखेज्जा भागा किं संखेज्जा भागा होंति त्ति पुच्छा कदा । तत्थ छसु वियप्पेसु एककस्सेव गहणइमुत्तरसुत्तं भणदि—

वह कैसे ? घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलसे गुणित जगश्रेणीप्रमाण नारकियोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त सर्व-जीवराशि-प्रथमवर्गमूल आते हैं । लब्धराशिकां विरलन करके सर्व जीवराशिको समखण्ड कर रूपके प्रति देनेपर उसमें एक रूप धरित राशि-नारकियोंका प्रमाण होती है । इस कारण 'नारकी जीव सर्व जीवराशिके अनन्तवें भागप्रमाण हैं' ऐसा कहा है ।

इसी प्रकार सात पृथिवियोंमें नारकियोंके भागाभागका क्रम है ॥ ३ ॥

सात पृथिवियोंके नारकियोंका पृथक् पृथक् सर्व जीवराशिमें भाग देकर जो लब्ध हो उसका विरलन कर पुनः सर्व जीवराशिको सात विरलनराशियोंके समखण्ड करके देनेपर उसमें एक रूप धरित राशि चूंकि क्रमशः प्रथमादिक सात पृथिवियोंका द्रव्य होता है, इसलिये सात पृथिवियोंके भागाभागको नारकियोंके समान कहना युक्त है ।

तिर्यचगतिमें तिर्यच जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ४ ॥

इसका अर्थ—'तिर्यच जीव सर्व जीवोंके क्या अवन्तवें भाग हैं, क्या अनन्त बहुभाग हैं, क्या असंख्यातवें भाग हैं, क्या असंख्यात बहुभाग हैं, और क्या संख्यात बहुभाग हैं, इस प्रकार यहां पृच्छा की गई है । उन छह विकल्पोंमेंसे एकत्र ही ग्रहणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

अणंता भागा ॥ ५ ॥

तं जहा—सिद्ध-तिगदिजीवेहि सव्वजीवरासिमोवद्धिर्यं लद्धं विरलिय सव्वजीव-
रासिं समखंडं करिय रूवं पडि दिण्णे एगरूवधरिदं सिद्ध-तिगदिजीवपमाणं होदि । तत्थ
एगरूवधरिदं मोत्तूण सेसबहुभागा जेण तिरिक्खाणं पमाणं होदि तेण तिरिक्खा सव्व-
जीवाणमणंताभागो त्ति मुत्ते उत्तं ।

पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्ख-
जोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता
मणुसिणी मणुसअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥६॥

सुगममेदं, पुव्वं परूविदत्तादो ।

अणंतभागो ॥ ७ ॥

पुव्वुत्तच्छवियप्पेसु एदे जीवा अणंतभागवियप्पे चेव अत्थि, अणत्थ गत्थि
त्ति एदेण मुत्तेण परूविदं । एत्थ पुव्वुत्तअट्टवियप्पजीवपमाणेण दव्वाणिओगद्वारादो

तिर्यंच जीव सर्व जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण है ॥ ५ ॥

वह इस प्रकार है— सिद्ध और तीन गतियोंके जीवोंसे सर्व जीवराशिको
अपवर्तित कर जो लब्ध हो उसका विरलन कर सर्व जीवराशिको समखण्ड करके रूपके
प्रति देनेपर एक रूप धरित सिद्ध और तीन गतियोंके जीवोंका प्रमाण होता है ।
उसमें एक रूप धरित राशिको छोड़कर शेष बहुभाग चूंकि तिर्यंचोंका प्रमाण होता
है, अतएव ' तिर्यंच सर्व जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ' ऐसा सूत्रमें कहा है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और
पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव; तथा मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी
और मनुष्य अपर्याप्त जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ६ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, पूर्वमें प्ररूपण किया जा चुका है ।

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ७ ॥

पूर्वोक्त छह विकल्पोंमेंसे ये ' अनन्तभाग ' विकल्पमें ही हैं, अन्यत्र नहीं हैं,
ऐसा इस सूत्र द्वारा प्ररूपित है । यहां द्रव्यानुयोगद्वारसे जाने गये पूर्वोक्त आठ प्रकार

अवगण पुध पुध सव्वजीवे अवहारिय लद्धसलागमेत्तखंडाणि सव्वजीवरासिं करिय तत्थ एगभागपमाणमप्पप्पो जीवपमाणं होदि त्ति अवहारिय एदे अट्ट जीवभेदा सव्व-जीवाणमणंतिमभागो होदि त्ति णिच्छओ कायव्वो ।

देवगदीए देवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ८ ॥

देवगदीए पुढविकाइयादिया अण्णे वि जीवा अत्थि, देवा त्ति वयणेण तेसिं पडिसेहो कदो । सेसं सुगमं ।

अणंतभागो ॥ ९ ॥

सुगममेदं, अणप्पिदपंचभंगे ओसारिय अप्पिदेकभंगम्मि उप्पादिदणिच्छयादो गहिदग्गहिदगणिण्ण पुव्वमेव जणिदप्पसंस्कारादो ।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्टसिद्धिविमाणवासियदेवा ॥ १० ॥

णवरि अप्पप्पो जीवाणं पमाणमवहारिय तेण सव्वजीवरासिमोवट्टिय लद्धेण

जीवोंके प्रमाणसे पृथक् पृथक् सर्व जीवराशिको अपहत करके लब्ध शलाकाप्रमाण खण्डरूप सर्व जीवराशिको करके उसमें एक भागप्रमाण अपना अपना जीवप्रमाण होता है, ऐसा निश्चय कर ये आठ जीवभेद सब जीवोंके अनन्तर्वे भागप्रमाण हैं, इस प्रकार निश्चय करना चाहिये ।

देवगतिमें देव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ८ ॥

देवगतिमें, अर्थात् देवलोकमें, पृथिवीकायिकादिक अन्य भी जीव हैं, उनका प्रतिषेध ' देव ' इस वचनसे किया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

देव सब जीवोंके अनन्तर्वे भागप्रमाण हैं ॥ ९ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वह अविवक्षित पांच भंगोंको हटा कर विवक्षित एक भंगमें निश्चयको उत्पन्न कराता है, तथा गृहीत-गृहीत गणितसे (देखो पु. ३) पूर्वमें ही आत्मसंस्कार उत्पन्न हो जानेसे भी उक्त सूत्र सुगम है ।

इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों तक भागा-भागका क्रम है ॥ १० ॥

विशेष इतना है कि अपने अपने जीवोंके प्रमाणका निश्चय कर उससे सर्व

सव्वजीवरासिस्स अणंतभागत्तमेदेसिं साहेयव्वं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ११ ॥
सुगमं ।

अणंता भागा ॥ १२ ॥

तं जहा — सिद्ध-तसजीवेहि सव्वजीवरासिमवहारिय लद्धसलागमेत्तखंडाणि सव्वजीवरासिं कादूण तत्थ एगभागं मोत्तूण सेसबहुभागेषु गहिदेसु जेण एइंदियपमाणं होदि तेण सव्वजीवाणमणंताभागा एइंदिया होंति त्ति सुत्ते उत्तं ।

बादरेइंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केव-
डिओ भागो ? ॥ १३ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जदिभागो ॥ १४ ॥

जीवराशिको अपवर्तित कर लब्ध राशिसे सर्व जीवराशिका अनन्तवां भागत्व इनको सिद्ध करना चाहिये ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ?
॥ ११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ १२ ॥

वह इस प्रकार है—सिद्ध और त्रसजीवोंसे सर्व जीवराशिको अपहृत कर लब्ध शलाकाप्रमाण सर्व जीवराशिको खण्डित कर उनमें एक भागको छोड़कर शेष बहुभागोंके ग्रहण करनेपर चूंकि एकेन्द्रिय जीवोंका प्रमाण होता है, इसलिये 'सर्व जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण एकेन्द्रिय जीव होते हैं' ऐसा सूत्रमें कहा है ।

बादर एकेन्द्रिय जीव और उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ १३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ १४ ॥

तं जहा— अण्पिदवादरएइंदिएहि सव्वजीवरासिमोवट्टिदे असंखेज्जा लोगा आगच्छंति । ते विरलिय सव्वजीवरासिं रूवं पडि समखंडं करिय दिण्णे इच्छियवादेरे-इंदियपमाणं होदि । तम्हि तिण्णि वि वादेरेइंदिया सव्वजीवाणमसंखेज्जदिभागमेत्ता ति परुविदा ।

सुहुमेइंदिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ १५ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जदिभागो ॥ १६ ॥

कुदो ? सुहुमेइंदियवदिरित्तासेसजीवेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे असंखेज्जा लोगा आगच्छंति । ते विरलिय सव्वजीवरासिं समखंडं करिय दिण्णे तत्थ एगरूवधरिदं मोत्तूण बहुभागेषु सुहुमेइंदियप्पहुडिउत्तपमाणुवलंभादो^१ ।

सुहुमेइंदियपज्जत्ता^२ सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ १७ ॥

सुगमं ।

इसीको स्पष्ट करते हैं— विवक्षित वादर एकेन्द्रियोंसे सर्व जीवराशिको अपवर्तित करनेपर असंख्यात लोक आते हैं । उनका विरलन कर सर्व जीवराशिको रूपके प्रति समखण्ड करके देनेपर इच्छित वादर एकेन्द्रियोंका प्रमाण होता है । उसमें तीनों ही वादर एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवोंके असंख्यातवें भागमात्र हैं, ऐसा कहा गया है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ १५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ? ॥ १६ ॥

क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंको छोड़कर समस्त जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर असंख्यात लोक आते हैं । उनका विरलन कर सर्व जीवराशिको समखण्ड करके देनेपर उसमें एक रूप धरित राशिको छोड़कर शेष बहुभागोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय आदि उक्त जीवोंका प्रमाण पाया जाता है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ १७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ मप्रतौ ' जत्तपमाणुवलंभादो ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' -अपज्जत्ता ' इति पाठः ।

संखेज्जा^१ भागा ॥ १८ ॥

कुदो ? सुहुमेइंदियपज्जत्तवदिरित्तजीवेहि सव्वजीवरासिमोवट्टिय तत्थुवलद्ध-संखेज्जरूवाणि विरलिय सव्वजीवरासिं रूवं पडि समखंडं करिय दिण्णे तत्थ एगरूव-धरिदं मोत्तूण सेसबहुभागे सुहुमेइंदियपज्जत्तपमाणुवलंभादो ।

सुहुमेइंदियअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ १९ ॥

सुगमं ।

संखेज्जदिभागो ॥ २० ॥

कुदो ? सुहुमेइंदियअपज्जत्तएहि सव्वजीवरासिम्मि भागे हिदे लद्धसंखेज्ज-रूवाणि विरलिय सव्वजीवरासिं समखंडं करिय दिण्णे तत्थ एगरूवस्सुवरि सुहुमेइंदिय-अपज्जत्तपमाणत्तदंसणादो ।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अप-ज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ २१ ॥

सुगमं ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सर्व जीवोंके संख्यात बहुभागप्रमाण हैं ॥ १८ ॥

क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंको छोड़ अन्य जीवोंसे सर्व जीवराशिका अपवर्तन करके उसमें प्राप्त संख्यात रूपोंका विरलन कर व सर्व जीवराशिको समखण्ड करके रूपके प्रति देनेपर उसमें एक रूप धरित राशिको छोड़ शेष बहुभागमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका प्रमाण पाया जाता है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ १९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव सर्व जीवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ २० ॥

क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर प्राप्त हुए संख्यात रूपोंका विरलन कर सर्व जीवराशिको समखण्ड करके देनेपर उसमें एक रूपके ऊपर सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका प्रमाण देखा जाता है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ २१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ मप्रतौ ' असखेज्जा ' इति पाठः ।

अणंता भागा ॥ २२ ॥

कुदो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवेहि सब्बजीवरासिम्हि भागे हिदे तत्थुवलद्धस्स अणंतियत्तादो ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइया तसकाइयपज्जता अपज्जत्ता सब्बजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ २३ ॥

सुगमं ।

अणंतभागो ॥ २४ ॥

कुदो ? एदेहि असंखेज्जालोगमेत्तपमाणेहि पदरस्स असंखेज्जदिभागेहि य सब्बजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवाणमुवलंभादो ।

वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सब्बजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ २५ ॥

उपर्युक्त द्वीन्द्रियादि जीव सर्व जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ २२ ॥

क्योंकि, जगप्रतरके असंख्यातवें भागमात्र जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर वहां उपलब्ध राशि अनन्त होती है ।

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, पृथिवीकायिक पर्याप्त, पृथिवीकायिक अपर्याप्त; बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त; सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त; इसी प्रकार नौ अष्कायिक, नौ तेजस्कायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक-शरीर पर्याप्त व अपर्याप्त, तथा त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ २३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ २४ ॥

क्योंकि, जगप्रतरके असंख्यातवें भागरूप असंख्यात लोकप्रमाणवाले इन जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप लब्ध होते हैं ।

वनस्पतिकायिक व निगोद जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ २५ ॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ २६ ॥

कुदो ? अप्पिददच्चवदिरित्तसच्चदच्चेहि सच्चजीवरासिमवहारिय लद्धसलागाओ अणंताओ विरलिय सच्चजीवरासिं समखंडं करिय रूवं पडि दिण्णे तत्थ एगरूवधरिदं मोत्तूण बहुभागेसु समुदिदेसु अप्पिदजीवपमाणदंसणादो ।

बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा पज्जत्ता अपज्जत्ता सच्चजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ २७ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जदिभागो ॥ २८ ॥

कुदो ? एदेहि सच्चजीवरासिभिह भागे हिदे असंखेज्जलोगपमाणुवलंभादो ।

सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोत्तूणीए सच्चजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ २९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वनस्पतिकायिक व निगोद जीव सर्व जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ २६ ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्यसे भिन्न सर्व द्रव्यों द्वारा सर्व जीवराशिको विरलित कर लब्ध हुई अनन्त शलाकाओंका विरलन कर सर्व जीवराशिको समखण्ड कर प्रत्येक रूपके प्रति देनेपर उसमें एक रूप धरित राशिको छोड़ समुदित बहुभागोंमें विवक्षित जीवोंका प्रमाण देखा जाता है ।

बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर निगोद जीव, बादर निगोद जीव पर्याप्त व अपर्याप्त सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ २७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ २८ ॥

क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर असंख्यात लोकप्रमाण लब्ध होता है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक व सूक्ष्म निगोद जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भाग-प्रमाण हैं ? ॥ २९ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा भागा ॥ ३० ॥

कुदो ? अप्पिददव्ववदिरित्तदव्वेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे तत्थुवलद्ध-
असंखेज्जलोगमेत्तसलागाओ विरलिय सव्वजीवरासिं समखंडं करिय दिण्णे तत्थेगखंडं
मोत्तूण बहुखंडेसु समुदिदेसु अप्पिददव्वपमाणुवलंभादो ।

सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवपज्जत्ता सव्वजीवाणं
केवाडिओ भागो ? ॥ ३१ ॥

सुगमं ।

संखेज्जा भागा ॥ ३२ ॥

कुदो ? अप्पिददव्ववदिरित्तदव्वेहि सव्वजीवरासिमवहारिय लद्धसंखेज्जरूवाणि
विरलिय सव्वजीवरासिं समखंडं करिय दिण्णे तत्थेगरूवधरिदं मोत्तूण सेसव्वहुभागेसु
समुदिदेसु अप्पिददव्वपमाणुवलंभादो । सुहुमवणप्फदिकाइए भणिदूण पुणो सुहुम-
णिगोदजीवे वि पुध भणदि, एदेण णव्वदि जघा सव्वे सुहुमवणप्फदिकाइया चेव

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीव सर्व जीवोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं ॥ ३० ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्यसे भिन्न द्रव्योंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर वहां
उपलब्ध हुई असंख्यात लोकमात्र शलाकाओंका विरलन कर व सर्व जीवराशिको सम-
खण्ड करके देनेपर उसमें एक खण्डको छोड़कर समुदित बहुखण्डोंमें विवक्षित द्रव्योंका
प्रमाण पाया जाता है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक व सूक्ष्म निगोदजीव पर्याप्त सर्व जीवोंके कितनेवें
भागप्रमाण हैं ? ॥ ३१ ॥

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके संख्यात बहुभागप्रमाण हैं ॥ ३२ ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्यसे भिन्न द्रव्यों द्वारा सर्व जीवराशिको अपहृत कर लब्ध
हुए संख्यात रूपोंका विरलन कर व सर्व जीवराशिको समखण्ड करके देनेपर उनमें
एक रूप धरित राशिको छोड़कर शेष समुदित बहुभागोंमें विवक्षित द्रव्योंका प्रमाण पाया
जाता है । सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंको कहकर पुनः सूक्ष्म निगोद जीवोंको भी पृथक् कहते

सुहुमणिगोदजीवा ण होंति च्चि । जदि एवं तो सव्वे सुहुमवणप्फदिकाइया णिगोदा च्चेवेत्ति एदेण वयणेण विरुज्झदि च्चि भणिदे ण विरुज्झदे, सुहुमणिगोदा सुहुमवणप्फदिकाइया च्चेवेत्ति अवहारणाभावादो । के पुण ते अण्णे सुहुमणिगोदा सुहुमवणप्फदिकाइये मोत्तूण ? ण, सुहुमणिगोदेसु व तदाधारेसु वणप्फदिकाइएसु वि सुहुमणिगोदजीवत्तसंभवादो । तदो सुहुमवणप्फदिकाइया च्चेव सुहुमणिगोदजीवा ण होंति च्चि सिद्धं । सुहुमकम्मोदएण जहा जीवाणं वणप्फदिकाइयादीणं सुहुमत्तं होदि तहा णिगोदणामकम्मोदएण णिगोदत्तं होदि । ण च णिगोदणामकम्मोदओ बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरणमत्थि जेण तेसिं णिगोदसण्णा होदि च्चि भणिदे— ण, तेसिं पि आहारे आहेओवयारेण' णिगोदत्ता-

हैं, इससे जाना जाता है कि सब सूक्ष्म वनस्पतिकायिक ही सूक्ष्म निगोद जीव नहीं होते ।

शंका—यदि ऐसा है तो 'सर्व सूक्ष्म वनस्पतिकायिक निगोद ही हैं' इस वचनके साथ विरोध होगा ?

समाधान—उक्त वचनके साथ विरोध नहीं होगा, क्योंकि, सूक्ष्म निगोद जीव सूक्ष्म वनस्पतिकायिक ही हैं, ऐसा यहां अवधारण नहीं है ।

शंका—तो फिर सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंको छोड़कर अन्य सूक्ष्म निगोद जीव कौनसे हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूक्ष्म निगोद जीवोंके समान उनके आधारभूत (बादर) वनस्पतिकायिकोंमें भी सूक्ष्म निगोद जीवत्वकी सम्भावना है । इस कारण 'सूक्ष्म वनस्पतिकायिक ही सूक्ष्म निगोद जीव नहीं होते' यह बात सिद्ध होती है ।

शंका—सूक्ष्म नामकर्मके उदयसे जिस प्रकार वनस्पतिकायिकादिक जीवोंके सूक्ष्मपना होता है, उसी प्रकार निगोद नामकर्मके उदयसे निगोदत्व होता है । किन्तु बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंके निगोद नामकर्मका उदय नहीं है जिससे कि उनकी 'निगोद' संज्ञा हो सके ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंके भी आधारमें आधेयका उपचार करनेसे निगोदपनेका कोई विरोध नहीं है ।

विरोहादो । कधमेदं णव्वदे ? णिगोदपदिट्टिदाणं बादरणिगोदजीवा त्ति णिहेमादो, बादरवणप्फदिकाइयाणमुवारि 'णिगोदा विसेमाहिया' त्ति भणिदवयणादो च णव्वदे ।

सुहुमवणप्फदिकाइय सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ३३ ॥

सुगमं ।

संखेज्जदिभागो ॥ ३४ ॥

कुदो ? एदेहि मव्वजीवगामिम्हि भागे हिदे संखेज्जरूवाणमुवलंभादो । एत्थ वि सुहुमवणप्फदिकाइयअपज्जत्तेहिंतो पुवं सुहुमणिगोदअपज्जत्ताणं भेदो वत्तव्वो । णिगोदेसु जीवंति णिगोदभावणे वा जीवंति त्ति णिगोदजीवा एवं तत्तो भेदो वत्तव्वो । णिगोदा सव्वे वणप्फदिकाइया चेव ण अण्णे, एदेण अहिप्पाएण काणि वि भागाभागसुत्ताणि ट्टिदाणि । कुदो ? सुहुमवणप्फदिकाइयभागभागस्स तिसु वि सुत्तेसु णिगोदजीव-

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—निगोदप्रतिष्ठित जीवोंके 'बादर निगोद जीव' इस प्रकारके निर्देशसे, तथा बादर वनस्पतिकायिकोंके आगे 'निगोद जीव विशेष अधिक हैं' इस प्रकार कहे गये सूत्रवचनसे भी वह जाना जाता है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक व सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्त सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीव सर्व जीवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ ३४ ॥

क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमैं भाग देनेपर संख्यात रूप प्राप्त होते हैं । यहां भी पहले सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तोंका भेद कहना चाहिये । 'निगोदोंमें जो जीते हैं अथवा निगोदभावसे जो जीते हैं वे निगोदजीव हैं' इस प्रकार उनसे भेद कहना चाहिये ।

शंका—'निगोद जीव सब वनस्पतिकायिक ही हैं, अन्य नहीं हैं' इस अभिप्रायसे कुछ भागाभागसूत्र स्थित हैं, क्योंकि, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक भागाभागके तीनों ही सूत्रोंमें निगोदजीवोंके निर्देशका अभाव है । इस लिये उन सूत्रोंसे इन सूत्रोंका

णिद्देशाभावादो । तदो तेहि सुत्तेहि एदेसि सुत्ताणं विरोहो होदि त्ति भणिदे जदि एवं तो उवदेसं लद्धूण इदं सुत्तं इदं चासुत्तमिदि आगमणिउणा भणंतु । ण च अग्हे एत्थ वोत्तुं समत्था, अलद्धोवदेसत्तादो ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-वेउव्वियकायजोगि-वेउव्वियमिस्सकायजोगि—आहारकायजोगि—आहारमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ३५ ॥

सुगमं ।

अणंतो भागो ॥ ३६ ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

कायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ३७ ॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ ३८ ॥

विरोध होगा ?

समाधान—यदि ऐसा है तो उपदेशको प्राप्त कर ' यह सूत्र है और यह सूत्र नहीं है' ऐसा आगमनिपुण जन कह सकते हैं । किन्तु हम यहां कहनेके लिये समर्थ नहीं हैं, क्योंकि, हमें वैसा उपदेश प्राप्त नहीं है ।

योगमार्गणाके अनुसार पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ३६ ॥

क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप प्राप्त होते हैं ।

काययोगी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ३७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

काययोगी जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ३८ ॥

कुदो ? अप्पिददव्ववदिरित्तसव्वदव्वेहि सव्वजीवरासिमवहिरिज्जमाणे लद्धं-
अणंतसलागाओ विरलिय सव्वजीवरासिं समखंडं करिय दिण्णे तत्थेगरूवधरिदं मोत्तूण
सेसबहुभागेसु समुदिदेसु कायजोगिदव्वपमाणुवलंभादो ।

ओरालियकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ३९ ॥

सुगमं ।

संखेज्जा भागा ॥ ४० ॥

कुदो ? अणप्पिदसव्वदव्वेण सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे संखेज्जरूवाण-
मुवलंभादो ।

ओरालियमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?
॥ ४१ ॥

सुगमं ।

संखेज्जिदिभागो ॥ ४२ ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्यसे भिन्न सब द्रव्यों द्वारा सर्व जीवराशिको अपहृत
करनेपर प्राप्त हुई अनन्त शलाकाओंका विरलन कर व सर्व जीवराशिको समखण्ड
करके देनेपर उसमें एक रूप धरितको छोड़कर शेष समुदित बहुभागोंमें काययोगी
द्रव्यका प्रमाण पाया जाता है ।

औदारिककाययोगी जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ३९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिककाययोगी जीव सब जीवोंके संख्यात बहुभागप्रमाण हैं ॥ ४० ॥

क्योंकि, अविवक्षित सर्व द्रव्यका सब जीवराशिमें भाग देनेपर संख्यात रूप
उपलब्ध होते हैं ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीव सब जीवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ ४२ ॥

कुदो ? अप्पिदद्वेण सव्वरासिम्हि भागे हिदे संखेज्जरूवाणमुवलंमादो ।

कम्मइयकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ४३ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जदिभागो ॥ ४४ ॥

कुदो ? अप्पिदद्वेण सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे असंखेज्जरूवोवलंमादो ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा अवगदवेदा सव्वजीवाणं
केवडिओ भागो ? ॥ ४५ ॥

सुगमं ।

अणंतो भागो ॥ ४६ ॥

कुदो ? अप्पिदद्वेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंमादो ।

णवुंसयवेदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ४७ ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्यका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर संख्यात रूप उपलब्ध होते हैं ।

कर्मणकाययोगी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कर्मणकाययोगी जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ ४४ ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्यका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर असंख्यात रूप उपलब्ध होते हैं ।

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और अपगतवेदी जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ४६ ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्योंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

नपुंसकवेदी जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ४७ ॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ ४८ ॥

कुदो ? अणपिपदसव्वदव्वेण सव्वजीवरासिभिह भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई सव्व-
जीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ४९ ॥

सुगमं ।

चदुब्भागो देसूणा ॥ ५० ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिभिह भागे हिदे सादिरेयचत्तारिरूवोवलंभादो ।

लोभकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ५१ ॥

सुगमं ।

चदुब्भागो सादिरेगो ॥ ५२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नपुंसकवेदी जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ४८ ॥

क्योंकि, अत्रिचक्षित सर्व द्रव्यका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सब जीवोंके कुछ कम एक चतुर्थ भागप्रमाण हैं ॥ ५० ॥

क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर साधिक चार रूप उपलब्ध होते हैं ।

लोभकषायी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोभकषायी जीव सब जीवोंके साधिक चतुर्थ भागप्रमाण हैं ॥ ५२ ॥

कुदो ? लोभकसाइदव्वेण सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे किंचूणचत्तारिरूवो-
वलंभादो ।

अकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ५३ ॥

सुगमं ।

अणंतो भागो ॥ ५४ ॥

कुदो ? अकसाइदव्वेण सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणी सव्वजीवाणं केव-
डिओ भागो ? ॥ ५५ ॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ ५६ ॥

कुदो ? अणप्पिदणाप्पेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

क्योंकि, लोभकपायी द्रव्यका सर्व जीवराशिमें भागदेनेपर कुछ कम चार रूप
प्राप्त होते हैं ।

अकपायी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकपायी जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ५४ ॥

क्योंकि, अकपायी द्रव्यका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप प्राप्त
होते हैं ।

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीव सब जीवोंके कितनेवें
भागप्रमाण हैं ? ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं
॥ ५६ ॥

क्योंकि, अविश्वित ज्ञानवाले जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त
रूप उपलब्ध होते हैं ।

विभंगणाणी आभिनिबोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मण-
पञ्जवणाणी केवलणाणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ५७ ॥

सुगमं ।

अणंतभागो ॥ ५८ ॥

कुदो ? अप्पिददव्वेण सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

संजमाणुवादेण संजदा सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परि-
हारसुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धि-
संजदा संजदासंजदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ५९ ॥

सुगमं ।

अणंतभागो ॥ ६० ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

असंजदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ६१ ॥

विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवाधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी
और केवलज्ञानी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण है ? ॥ ५७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ५८ ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्यका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप उपलब्ध
होते हैं ।

संयममार्गणाके अनुसार संयत, सामायिकछेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहार-
शुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत और संयतासंयत
जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ५९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ६० ॥

क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप प्राप्त होते हैं ।

असंयत जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ६१ ॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ ६२ ॥

कुदो ? अणप्पिदसव्वसंजदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी सव्व-
जीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ६३ ॥

सुगमं ।

अणंतभागो ॥ ६४ ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिमवहिरदे अणंतभागोवलंभादो ।

अचक्खुदंसणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ६५ ॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ ६६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंयत जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, अचिवाक्षित सर्व संयतोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप प्राप्त होते हैं ।

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ६३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ६४ ॥

क्योंकि, इनके द्वारा सर्व जीवराशिको अपहृत करनेपर अनन्तवां भाग उपलब्ध होता है ।

अचक्षुदर्शनी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अचक्षुदर्शनी जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ६६ ॥

कुदो ? अचक्खुदंसणीहि सव्वरासिम्हि भागे हिदे एगरूवस्स अणंतिमभागसहिद-
एगरूवोवलंभादो ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?
॥ ६७ ॥

सुगमं ।

तिभागो सादिरेगो ॥ ६८ ॥

कुदो ? किण्हलेस्सिएहि सव्वजीवरासिम्मि भागे हिदे किंचूणतिण्णिरूवो-
वलंभादो ।

णीललेस्सिया काउलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?
॥ ६९ ॥

सुगमं ।

तिभागो देसूणो ॥ ७० ॥

क्योंकि, अचक्षुदर्शनियोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर एक रूपके अनंतवें
भागसे सहित एक रूप उपलब्ध होता है ।

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण
हैं ? ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कृष्णलेश्यावाले जीव सब जीवोंके साधिक एक त्रिभागप्रमाण हैं ? ॥ ६८ ॥

क्योंकि, कृष्णलेश्यावाले जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर कुछ कम
तीन रूप उपलब्ध होते हैं ।

नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण
हैं ? ॥ ६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नील और कापोतलेश्यावाले जीव सब जीवोंके कुछ कम एक त्रिभागप्रमाण
हैं ? ॥ ७० ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे सादिरेयतिण्णिरूवोवलंभादो ।
तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ
भागो ? ॥ ७१ ॥

सुगमं ।

अणंतभागो ॥ ७२ ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?
॥ ७३ ॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ ७४ ॥

कुदो ? भवसिद्धिएहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे एगरूवस्स अणंतभागसहिद-
एगरूवोवलंभादो ।

क्योंकि, इन जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर साधिक तीन रूप उपलब्ध होते हैं ।

तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्कलेश्यावाले जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ७१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ७२ ॥

क्योंकि, इन जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप प्राप्त होते हैं ।

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ७३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यसिद्धिक जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ७४ ॥

क्योंकि, भव्यसिद्धिक जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर एक रूपके अनन्तवें भाग सहित एक रूप उपलब्ध होता है ।

अभवसिद्धिया सव्वजीवाणं केवडिओ^१ भागो ? ॥ ७५ ॥

सुगमं ।

अणंतभागो ॥ ७६ ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उव-
समसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी सव्वजीवाणं केवडिओ
भागो ? ॥ ७७ ॥

सुगमं ।

अणंतो भागो ॥ ७८ ॥

(कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

मिच्छाइट्ठी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ७९ ॥

अभव्यसिद्धिक जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ७५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अभव्यसिद्धिक जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ७६ ॥

क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमैं भाग देनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि,
उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सब जीवोंके कितनेवें
भागप्रमाण हैं ? ॥ ७७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ७८ ॥

(क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमैं भाग देनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

मिथ्यादृष्टि जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ७९ ॥

१ अप्रतौ ' केवडिगो ' इति पाठः ।

सुगमं ।

अणंतं भागा ॥ ८० ॥)

कुदो ? मिच्छाइड्डीहि फलगुणिदसव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे एगरूवस्स अणंत-
भागसहिदएगरूवोवलंभादो ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ८१ ॥

सुगमं ।

अणंतभागो ॥ ८२ ॥

कुदो ? एदेहि फलगुणिदसव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

असण्णी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ८३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मिथ्यादृष्टि जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ८० ॥)

क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंका फलगुणित सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर एक रूपके अनन्त भागसे सहित एक रूप उपलब्ध होता है ।

विशेषार्थ—यहां जो सर्व जीवराशिको फलसे गुणित करके मिथ्यादृष्टि राशिसे भाजित करनेको कहा गया है उससे टीकाकारका अभिप्राय उक्त प्रक्रियाको त्रैराशिक रीतिसे व्यक्त करनेका रहा जान पड़ता है । यदि मिथ्यादृष्टि राशि एक शलाका प्रमाण है तो सर्व जीवराशि कितने शलाका प्रमाण होगी ? इस त्रैराशिकके अनुसार सर्व जीव राशिमें फल राशि रूप एकका गुणा और प्रमाण राशि रूप मिथ्यादृष्टि राशिसे भाग देनेपर उक्त भजनफल प्राप्त होगा ।

संज्ञिमार्गणानुसार संज्ञी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ८२ ॥

क्योंकि, इनका फलगुणित सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

असंज्ञी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ८३ ॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ ८४ ॥

कुदो ? असणीहि फलगुणिसव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे सगअणंतभागसहिद-
एगसलागोवलंभादो ।

आहाराणुवादेण आहारा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?
॥ ८५ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा भागा ॥ ८६ ॥

कुदो ? एदेहि फलगुणिसव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे सगअसंखेज्जिदिभाग-
सहिदएगसलागोवलंभादो ।

अणाहारा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ८७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंखी जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ८४ ॥

क्योंकि, असंखी जीवोंका फलगुणित सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अपने अनन्त
भाग सहित एक शलाका उपलब्ध होती है ।

आहारमार्गणके अनुसार आहारक जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ?
॥ ८५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक जीव सब जीवोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं ॥ ८६ ॥

क्योंकि, इनका फलगुणित सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अपने असंख्यातवें
भाग सहित एक शलाका उपलब्ध होती है ।

अनाहारक जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ८७ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जदिभागो ॥ ८८ ॥

कुदो ? एदेहि सब्बजीवरासिम्हि भागे हिदे असंखेज्जसलागोवलंभादो ।

एवं भागाभागानुगमो त्ति समत्तमणिओगद्वारं ।

यह सूत्र सुगम है ।

अनाहारक जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ ८८ ॥

क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर असंख्यात शलाकार्यें उपलब्ध होती हैं ।

इस प्रकार भागाभागानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

अप्पाबहुगाणुगमो

अप्पाबहुगाणुगमेण गदियाणुवादेण पंचगदीओ समासेण ॥१॥

अप्पाबहुगणिदेसो सेसाणिओगहारपडिसेहफलो । गदिगणिदेसो सेसमग्गणट्टाणपडि-
सेहफलो । गई सामण्णेण एगविहा । सा चेव सिद्धगई (असिद्धगई) चेदि दुविहा । अहवा
देवगई अदेवगई सिद्धगई चेदि तिविहा । अहवा णिरयगई तिरिक्खगई मणुसगई देवगई
चेदि चउव्विहा । अहवा सिद्धगईए सह पंचविहा । एवं गइसमासो अणेयभेयभिण्णो ।
तत्थ समासेण पंचगदीओ जाओ तत्थ अप्पाबहुगं भणामि त्ति भणिदं होदि ।

सव्वत्थोवा मणुसा ॥ २ ॥

सव्वसहो अप्पिदपंचगइजीवावेक्खो । तेसु पंचगइजीविसु मणुस्सा चेव थोवा त्ति
भणिदं होदि । कुदो ? सूचिअंगुलपढमवग्गमूलेण तस्सेव तादियवग्गमूलब्भत्थेण
च्छिण्णजगसेडिमेत्तप्पमाणत्तादो ।

णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ ३ ॥

अल्पबहुत्वानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार संक्षेपमे जो पांच गतियां हैं उनमें
अल्पबहुत्वको कहते हैं ॥ १ ॥

‘ अल्पबहुत्व ’ निर्देशका फल शेष अनुयोगद्वारोंका प्रतिषेध करना है । ‘ गति ’
निर्देश शेष मार्गणाओंके प्रतिषेधके लिये है । गति सामान्यरूपसे एक प्रकार है, वही
गति सिद्धगति और (असिद्धगति) इस तरह दो प्रकार है । अथवा, देवगति, अदेव-
गति और सिद्धगति इस तरह तीन प्रकार है । अथवा, नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्य-
गति और देवगति इस तरह चार प्रकार है । अथवा, सिद्धगतिके साथ पांच प्रकार है ।
इस प्रकार गतिसमास अनेक भेदोंसे भिन्न है । उसमें संक्षेपसे जो पांच गतियां हैं उनमें
अल्पबहुत्वको कहते हैं यह उक्त कथनका अभिप्राय है ।

मनुष्य सबमें स्तोक हैं ॥ २ ॥

सर्व शब्द विवक्षित पांच गतियोंके जीवोंकी अपेक्षा करता है । उन पांच गति-
योंके जीवोंमें मनुष्य ही स्तोक हैं यह सूत्रका फलितार्थ है, क्योंकि, वे सूच्यंगुलके
तृतीय वर्गमूलसे गुणित उसके ही प्रथम वर्गमूलसे खण्डित जगश्रेणीप्रमाण है ।

नारकी जीव मनुष्योंसे असंख्यातगुणे हैं ॥ ३ ॥

गुणगारो असंखेज्जाणि सूचिअंगुलाणि पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि । कुदो ? मणुसअवहारकालगुणिदणेरइयविकखंभसूचिपमाणत्तादो । कधमेदस्स आगमो ? पमाणरासिणोवट्ठिदफलगुणिदिच्छादो ।

देवा असंखेज्जगुणा ॥ ४ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जाणि सेडिपढमवग्गमूलाणि । कुदो ? णेरइयविकखंभसूचिगुणिदेवअवहारकालेण भजिदजगसेडिपमाणत्तादो ।

सिद्धा अणंतगुणा ॥ ५ ॥

कुदो ? देवोवट्ठिदसिद्धेसु अणंतसलागोवलंभादो ।

तिरिक्खा अणंतगुणा ॥ ६ ॥

कुदो ? सिद्धेहि ओवट्ठिदतिरिक्खेसु जीववग्गमूलादो सिद्धेहितो च अणंतगुणसलागोवलंभादो । एदाओ पुण लद्धगुणगारसलागाओ भवसिद्धियाणमणंतभागो । कुदो ? तिरिक्खेसु पदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवपक्खेवे कदे भवसिद्धियरासिपमाणुप्पत्तीदो ।

यहां गुणकार प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात सूच्यंगुल हैं, क्योंकि, वे मनुष्योंके अवहारकालसे गुणित नारकियोंकी विष्कम्भसूची प्रमाण हैं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि, फलराशिसे गुणित इच्छाराशिको प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर उक्त प्रमाण पाया जाता है ।

नारकियोंसे देव असंख्यातगुणे हैं ॥ ४ ॥

यहां गुणकार असंख्यात श्रेणी प्रथम वर्गमूल है, क्योंकि, वे नारकियोंकी विष्कम्भसूचीसे गुणित देवअवहारकालसे भाजित जगश्रेणीप्रमाण हैं ।

देवोंसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं ॥ ५ ॥

क्योंकि, देवोंसे सिद्धराशिके अपवर्तित करनेपर अनन्त शलाकायें उपलब्ध होती हैं ।

सिद्धोंसे तिर्यच असंख्यातगुणे हैं ॥ ६ ॥

क्योंकि, सिद्धोंसे तिर्यचोंके अपवर्तित करनेपर जीवराशिके वर्गमूल और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणी शलाकायें उपलब्ध होती हैं । किन्तु ये लब्ध गुणकारशलाकायें भव्यसिद्धिकोंके अनन्तवें भागमात्र होती हैं; क्योंकि, तिर्यचोंमें जगप्रतरके असंख्यातवें भागमात्र जीवोंका प्रक्षेप करनेपर भव्यसिद्धिकराशिका प्रमाण उत्पन्न होता है ।

अट्ट गदीओ समासेण ॥ ७ ॥

ताओ चेत्र गदीओ मणुस्सिणीओ मणुस्सा णेरइया तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्ख-
जोणिणीओ देवा देवीओ सिद्धा त्ति अट्ट हवंति । तासिमप्पाबहुगं भणामि त्ति बुत्तं होदि ।

सव्वत्थोवा मणुस्सिणीओ ॥ ८ ॥

अट्टहं गर्ईणं मज्जे मणुस्सिणीओ थोवाओ । कुदो ? संखेज्जपमाणत्तादो ।

मणुस्सा असंखेज्जगुणा ॥ ९ ॥

एत्थ गुणगारो सेडीए असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि सेट्ठिपटमवग्गमूलाणि ।
कुदो ? मणुस्सअवहारकालगुणिदमणुस्सिणीहि ओवट्ठिदजगसेट्ठिपमाणत्तादो ।

णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ १० ॥

एत्थ गुणगारपमाणं पुव्वं परूविदमिदि (ण) पुणो बुच्चदे ।

पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ ११ ॥

संक्षेपसे गतियां आठ हैं ॥ ७ ॥

वे ही गतियां मनुष्यनी, मनुष्य, नारक, तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती,
देव, देवियां और सिद्ध, इस प्रकार आठ होती हैं । उनके अल्पबहुत्वको कहते हैं, यह
सूत्रका अभिप्राय है ।

मनुष्यनी सबसे स्तोक हैं ॥ ८ ॥

आठ गतियोंके मध्यमें मनुष्यनी स्तोक हैं, क्योंकि, वे संख्यात प्रमाणवाली हैं ।

मनुष्यनियोंसे मनुष्य असंख्यातगुणे हैं ॥ ९ ॥

यहां गुणकार जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रथमवर्गमूल
हैं, क्योंकि, वे मनुष्यअवहारकालसे गुणित मनुष्यनियोंसे अपवर्तित जगश्रेणीप्रमाण हैं ।

मनुष्योंसे नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ १० ॥

यहां गुणकारका प्रमाण पूर्वमें कहा जा चुका है, इसलिये यहां उसे फिरसे
(नहीं) कहते ।

नारकियोंसे पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंच असंख्यातगुणे हैं ॥ ११ ॥

एत्थ गुणगारो सेडीए असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि सेडिपढमवग्गमूलाणि ।
कुदो ? णेरइयविकखंभसूचिगुणिदपंचिंदियतिरिक्खजोणिणिववहारकालोवट्टिदजगसेडि-
पमाणत्तादो ।

देवा संखेज्जगुणा ॥ १२ ॥

एत्थ गुणगारो तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाणि । कुदो ? देवअवहारकालेण तेत्तीस-
रूवगुणिदेण पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणमवहारकाले भागे हिदे संखेज्जरूवोवलंभादो ।

देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ १३ ॥

एत्थ गुणगारो बत्तीसरूवाणि संखेज्जरूवाणि वा ।

सिद्धा अणंतगुणा ॥ १४ ॥

कुदो ? देवीहि ओवट्टिदसिद्धेहिंतो अणंतरूवोवलंभादो ।

तिरिक्खा अणंतगुणा ॥ १५ ॥

कुदो ? अभवसिद्धिएहि सिद्धेहि जीववग्गमूलादो च अणंतगुणरूवाणं सिद्धेहि
भजिदतिरिक्खेसुवलंभादो ।

यहां गुणकार जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात श्रेणीप्रथमवर्गमूल
हैं; क्योंकि, वे नारकियोंकी विष्कम्भसूचीसे गुणित पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंके
अवहारकालसे अपवर्तित जगश्रेणीप्रमाण हैं ।

योनिमती तिर्यचोंसे देव संख्यातगुणे हैं ॥ १२ ॥

यहां गुणकार तत्प्रायोग्य संख्यात रूप हैं, क्योंकि, तेतीस रूपोंसे गुणित देव-
अवहारकालका पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंके अवहारकालमें भाग देनेपर संख्यात
रूप उपलब्ध होते हैं ।

देवोंसे देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ १३ ॥

यहां गुणकार बत्तीस रूप या संख्यात रूप हैं ।

देवियोंसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं ॥ १४ ॥

क्योंकि, देवियोंसे सिद्धोंके अपवर्तित करनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

सिद्धोंसे तिर्यच अनन्तगुणे हैं ॥ १५ ॥

क्योंकि, सिद्धोंसे तिर्यचोंके भाजित करनेपर अभव्यसिद्धिक, सिद्ध और जीव-
राशिके वर्गमूलसे अनन्तगुणे रूप उपलब्ध होते हैं ।

इंदियाणुवादेण सव्वत्थोवा पंचिंदिया ॥ १६ ॥

कुदो ? पंचण्हमिंदियाणं खवोवसमोवलद्वीए सुट्टु दुल्लभत्तादो ।

चउरिंदिया विसेसाहिया ॥ १७ ॥

कुदो ? पंचण्हमिंदियाणं सामग्गीदो चट्टण्हमिंदियाणं सामग्गीए अइसुलभत्तादो । एत्थ विसेसो पदरस्स असंखेज्जदिभागो । तस्स को पडिभागो ? पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागो पडिभागो । पंचिंदियरासिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे विसेसो आगच्छदि । तं पंचिंदिएसु पक्खित्ते चउरिंदिया होंति । एत्तिओ चव विसेसो होदि त्ति कथं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुव्वेसादो ।

तीइंदिया विसेसाहिया ॥ १८ ॥

कुदो ? चउण्हमिंदियाणं सामग्गीदो तिण्हमिंदियाणं सामग्गीए अइसुलभत्तादो । एत्थ विसेसो चउरिंदियाणं असंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार पंचेन्द्रिय जीव सबमें स्तोक हैं ॥ १६ ॥

क्योंकि, पांचों इन्द्रियोंके क्षयोपशमकी उपलब्धि अतिशय दुर्लभ है ।

पंचेन्द्रियोंसे चतुरिन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं ॥ १७ ॥

क्योंकि, पांच इन्द्रियोंकी सामग्रीसे चार इन्द्रियोंकी सामग्री अति सुलभ है । यहाँ विशेषका प्रमाण जगप्रतरका असंख्यातवां भाग है ।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—प्रतरांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

पंचेन्द्रियराशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर विशेषका प्रमाण आता है । उसे पंचेन्द्रियोंमें मिलानेपर चतुरिन्द्रिय जीवोंका प्रमाण होता है ।

शंका—इतना ही विशेष है यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह आचार्यपरम्परागत उपदेशसे जाना जाता है ।

चतुरिन्द्रियोंसे त्रीन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं ॥ १८ ॥

क्योंकि, चार इन्द्रियोंकी सामग्रीसे तीन इन्द्रियोंकी सामग्री अति सुलभ है । यहाँ विशेष चतुरिन्द्रिय जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है ?

असंखेज्जदिभागो ।

वीइंदिया विसेसाहिया ॥ १९ ॥

कुदो ? तिण्हमिंदियाणं सामग्गीदो दोण्हमिंदियाणं सामग्गीए पाएणुवलंभादो । एत्थ विसेसपमाणं तीइंदियाणमसंखेज्जदिभागो । तेसिं को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

अणिंदिया अणंतगुणा ॥ २० ॥

कुदो ? अणंतादीदकालसंचिदा होदूण वयवदिरित्तत्तादो । एत्थ गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो । कुदो ? वीइंदियदव्वोवाट्टिदअणिंदियप्पमाणत्तादो ।

एइंदिया अणंतगुणा ॥ २१ ॥

कुदो ? एइंदियउवलद्विकारणाणं बहूणमुवलंभादो । एत्थ गुणगारो अभवसिद्धिएहितो सिद्धेहितो सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो । कुदो ? अणिंदिओवट्टिदअणंतभागहीणसव्वजीवरासिपमाणत्तादो । अण्णेण वि पयारेण

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

त्रीन्द्रियोंसे द्वीन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं ॥ १९ ॥

क्योंकि, तीन इन्द्रियोंकी सामग्रीसे दो इन्द्रियोंकी सामग्री प्रायः सुलभ है । यहाँ विशेषका प्रमाण त्रीन्द्रिय जीवोंका असंख्यातवां भाग है ।

शंका—उनका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

द्वीन्द्रियोंसे अनिन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं ॥ २० ॥

क्योंकि, अनिन्द्रिय जीव अनन्त अतीत कालोंमें संचित होकर व्ययसे रहित हैं । यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह द्वीन्द्रिय द्रव्यसे भाजित अनिन्द्रिय राशिप्रमाण है ।

एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं ॥ २१ ॥

क्योंकि, एक इन्द्रियकी उपलब्धिके कारण बहुत पाये जाते हैं । यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिक, सिद्ध और सर्व जीवराशिके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह अनिन्द्रिय जीवोंसे अपवर्तित अनन्त भाग हीन (अर्थात् त्रसराशिसे हीन) सर्व

अप्पावहुगपरुवणडुमुत्तरमुत्तं भणदि—

सव्वत्थोवा चउरिंदियपज्जत्ता ॥ २२ ॥

कुदो ? विस्ससादो ।

पंचिंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २३ ॥

कारणं पुव्वभणिदं । एत्थ विसेसो चउरिंदियाणं असंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

बीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २४ ॥

कारणं पुव्वमेव परुविदं । एत्थ विसेसपमाणं पंचिंदियपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । तेसिं को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

तीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २५ ॥

जीवराशिप्रमाण है । अन्य प्रकारसे भी अल्पबहुत्वके निरूपण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीव सबमें स्तोक हैं ॥ २२ ॥

क्योंकि, ऐसा स्वभावसे है ।

चतुरिन्द्रिय पर्याप्तोंसे पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ २३ ॥

स्वभावरूप कारण पूर्वमें ही कहा जा चुका है । यहां विशेषका प्रमाण चतुरिन्द्रिय जीवोंका असंख्यातवां भाग है ।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंसे द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ २४ ॥

इसका कारण पूर्वमें ही कहा जा चुका है । यहां विशेषका प्रमाण पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका असंख्यातवां भाग है ?

शंका—उनका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग उनका प्रतिभाग है ।

द्वीन्द्रिय पर्याप्तोंसे त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ २५ ॥

कुदो ? विस्ससादो । एत्थ विसेसपमाणं बीइंदियपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो ।
को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

पंचिंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ २६ ॥

कुदो ? पावाहियाणं जीवाणं बहूणं संभवादो । एत्थ गुणगारो आवलियाए
असंखेज्जदिभागो । कधं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदअविरुद्धुव्वेसादो । पदरंगुलस्स
संखेज्जदिभागेण जगपदरे भागे हिदे तीइंदियपज्जत्तपमाणं होदि । तमावलियाए
असंखेज्जदिभागेण गुणिदे पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागेणोवट्ठिदजगपदरपमाणं
पंचिंदियअपज्जत्तदव्वं होदि ।

चउरिंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २७ ॥

कुदो ? पावेण विणट्ठसोइंदियाणं बहूणं संभवादो । एत्थ विसेसपमाणं

क्योंकि, ऐसा स्वभावसे है । यहां विशेषका प्रमाण त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका
असंख्यातवां भाग है ।

शंका—उनका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग उनका प्रतिभाग है ।

त्रीन्द्रिय पर्याप्तोंसे पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ २६ ॥

क्योंकि, पापप्रचुर जीवोंकी सम्भावना बहुत है । यहां गुणकार आवलीका
असंख्यातवां भाग है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह आचार्यपरम्परागत अविरुद्ध उपदेशसे जाना जाता है ।

प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे जगप्रतरके भाजित करनेपर त्रीन्द्रिय पर्याप्त
जीवोंका प्रमाण होता है । उसे आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर प्रतरां-
गुलके असंख्यातवें भागसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका द्रव्य
होता है ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ २७ ॥

क्योंकि, पापसे नष्ट है श्रोत्र इन्द्रिय जिनकी ऐसे जीव बहुत सम्भव हैं । यहां

पंचिंदियअपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

तीइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २८ ॥

कुदो ? पावभरेण बहुआणं चक्खिंदियाभावादो । एत्थ विसेसपमाणं चउरिंदिय-
अपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

बीइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २९ ॥

कारणं ? पावेण णट्टघाणिंदियाणं बहुआणं संभवादो । एत्थ विसेसपमाणं
तीइंदियअपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

अणिंदिया अणंतगुणा ॥ ३० ॥

कुदो ? अणंतकालसंचिदा होदूण त्रयविरहिदत्तादो । एत्थ गुणगारो पुव्वं
परुविदो ।

विशेषका प्रमाण पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका असंख्यातवां भाग है ।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तोंसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ २८ ॥

क्योंकि, पापके भारसे बहुत जीवोंके चक्षु इन्द्रियका अभाव है । यहां विशेषका
प्रमाण चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका असंख्यातवां भाग है ।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

त्रीन्द्रिय अपर्याप्तोंसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ २९ ॥

क्योंकि, पापसे जिगकी घ्राण इन्द्रिय नष्ट है ऐसे जीव बहुत सम्भव हैं । यहां
विशेषका प्रमाण त्रीन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका असंख्यातवां भाग है ।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

द्वीन्द्रिय अपर्याप्तोंसे अनिन्द्रिय जीव अनन्तगुणें हैं ॥ ३० ॥

क्योंकि, वे अनन्त कालमें संचित होकर व्ययसे रहित हैं । यहां गुणकार
पूर्वप्ररूपित है ।

बादरेइंदियपज्जत्ता अणंतगुणा ॥ ३१ ॥

कुदो ? सव्वजीवाणमसंखेज्जदिभागत्तादो ।

बादरेइंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ३२ ॥

कुदो ? अपज्जत्तुप्पत्तिपाओग्गअसुहपरिणामाणं बहुत्तादो । एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा । कधमेदं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदअविरुद्धोवदेसादो ।

बादरेइंदिया विसेसाहिया ॥ ३३ ॥

केत्तियो विसेसो ? बादरेइंदियपज्जत्तमेत्तो ।

सुहुमेइंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ३४ ॥

कुदो ? सुहुमेइंदिएसु उत्पत्तिणिमित्तपरिणामवाहुल्लियादो । एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा । कुदो एदमवगम्मदे ? गुरुवदेसादो ।

अनिन्द्रियोंसे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ३१ ॥

क्योंकि, वे सब जीवोंके असंख्यातवें भाग हैं ।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तोंसे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३२ ॥

क्योंकि, अपर्याप्तोंमें उत्पत्तिके योग्य अशुभ परिणामवाले जीव बहुत हैं । यहाँ गुणकार असंख्यात लोकप्रमाण है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह आचार्यपरम्परागत अविरुद्ध उपदेशसे जाना जाता है ।

बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंसे बादर एकेन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं ॥ ३३ ॥

शंका—यहाँ विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके बराबर यहाँ विशेषका प्रमाण है ।

बादर एकेन्द्रियोंसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३४ ॥

क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें उत्पन्न होनेके निमित्तभूत परिणामोंकी प्रचुरता है । यहाँ गुणकार असंख्यात लोक हैं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह गुरुके उपदेशसे जाना जाता है ।

सुहुमेइंदियपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ३५ ॥

कुदो ? मज्झिमपस्सिणामेसु बहूणं जीवाणं संभवादो । किमट्ठं संखेज्जगुणं ?
विस्ससादो ।

सुहुमेइंदिया विसेसाहिया ॥ ३६ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? सुहुमेइंदियअपज्जत्तमेत्तो ।

एइंदिया विसेसाहिया ॥ ३७ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? वादेइंदियमेत्तो ।

कायाणुवादेण सव्वत्थोवा तसकाइया ॥ ३८ ॥

कुदो ? तसेसुप्पत्तिपाओग्गपरिणामेसु जीवाणं अदिव तणुत्तादो' । ण च सुहपरि-

.....
सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं
॥ ३५ ॥

क्योंकि, मध्यम परिणामोंमें बहुतसे जीवोंकी संभावना है ।

शंका— संख्यातगुणे किस लिये हैं ?

समाधान— स्वभावसे संख्यातगुणे हैं ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तोंसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं ॥ ३६ ॥

शंका— विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान— विशेषका प्रमाण सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके बराबर है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रियोंसे एकेन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं ॥ ३७ ॥

शंका— विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान— विशेषका प्रमाण बादर एकेन्द्रिय जीवोंके बराबर है ।

कायमार्गणाके अनुसार त्रसकायिक जीव सबमें स्तोक हैं ॥ ३८ ॥

क्योंकि, त्रसोंमें उत्पन्न होनेके योग्य परिणामोंमें जीव अत्यन्त थोड़े पाये जाते

णामेसु बहुआ जीवा संभवन्ति, सुहपरिणामाणं पाएण असंभवादे ।

तेउकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ३९ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा । कुदो ? तसजीवेहि पदरस्स असंखेज्जदि-
भागमेत्तेहि ओवट्टिदतेउक्काइयपमाणत्तादे ।

पुढविकाइया विसेसाहिया ॥ ४० ॥

एत्थ विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा तेउक्काइयाणमसंखेज्जदिभागो । को
पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

आउक्काइया विसेसाहिया ॥ ४१ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? असंखेज्जा लोगा पुढविकाइयाणमसंखेज्जदिभागो ।
तेसिं को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

वाउक्काइया विसेसाहिया ॥ ४२ ॥

केत्तिओ विसेसो ? असंखेज्जा लोगा आउक्काइयाणमसंखेज्जदिभागो । तेसिं
को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

हैं । और शुभ परिणामोंमें बहुत जीव सम्भव नहीं हैं, क्योंकि, शुभ परिणाम प्रायः
करके असंभव हैं ।

त्रसकायिकोंसे तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३९ ॥

यहां गुणकार असंख्यात लोक है, क्योंकि, वह जगप्रतरके असंख्यातवें भाग-
मात्र त्रसकायिक जीवों द्वारा अपवर्तित तेजस्कायिक जीव राशिप्रमाण होता है ।

तेजस्कायिकोंसे पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४० ॥

यहां विशेषका प्रमाण तेजस्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात
लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

पृथिवीकायिकोंसे अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४१ ॥

यहां विशेष कितना है ? पृथिवीकायिक जीवोंके असंख्यातवें भागमात्र असं-
ख्यात लोकप्रमाण विशेष है । उनका प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

अप्कायिकोंसे वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४२ ॥

विशेष कितना है ? अप्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात लोक-
प्रमाण विशेष है । उनका प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

अकाइया अणंतगुणा ॥ ४३ ॥

एत्थ गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो । कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तवाउ-
क्काइयमजिदअकाइयप्पमाणत्तादो ।

वणप्फदिकाइया अणंतगुणा ॥ ४४ ॥

एत्थ गुणगारो अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो वि
अणंतगुणो । कुदो ? अकाइएहि मजिदसगअणंतभागहीणसव्वजीवरासिपमाणादो ।
अण्णेण पयारेण छ्हं कायाणमप्पावहुगपरुवणड्डमुत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वत्थोवा तसकाइयपज्जत्ता ॥ ४५ ॥

कुदो ? पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागेणोवट्टिदजगपदरपमाणत्तादो ।

तसकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ४६ ॥

एत्थ गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? पदरंगुलस्स असंखेज्जदि-
भागेणोवट्टिदजगपदरमेत्ता तसकाइयअपज्जत्ता त्ति दव्वाणिओगदारे परुविदत्तादो ।

वायुकायिकोंसे अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ४३ ॥

यहां गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह असंख्यात
लोकमात्र वायुकायिकोंसे भाजित अकायिक जीवोंके बराबर है ।

अकायिकोंसे वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ४४ ॥

यहां गुणकार अभव्यसिद्धिक, सिद्ध और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी
अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह अकायिक जीवोंसे भाजित अपने अनन्त भागसे हीन सर्व
जीवराशिप्रमाण है । अन्य प्रकारसे छह काय जीवोंके अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर
सूत्र कहते हैं—

त्रसकायिक पर्याप्त जीव सबमें स्तोक हैं ॥ ४५ ॥

क्योंकि, वे प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण हैं ।

त्रसकायिक पर्याप्तोंसे त्रसकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ४६ ॥

यहां गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि, 'प्रतरांगुलके असं-
ख्यातवें भागसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण त्रसकायिक अपर्याप्त जीव हैं' ऐसा द्रव्यानु-
योगद्वारमै प्ररूपित किया है ।

तेउक्काइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ४७ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा, तसकाइयअपज्जत्तएहि तेउक्काइयअपज्जत्त-
रासिम्हि भागे हिदे असंखेज्जलोगुवलंभादो ।

पुढविकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४८ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा तेउक्काइयअपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को
पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

आउक्काइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४९ ॥

केत्तिओ विसेसो ? असंखेज्जा लोगा पुढविकाइयाणमसंखेज्जदिभागो । को
पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

वाउक्काइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५० ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा आउकाइयाणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ?
असंखेज्जा लोगा ।

.....

त्रसकायिक अपर्याप्तोंसे तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥४७॥

यहां गुणकार असंख्यात लोक है, क्योंकि, त्रसकायिक अपर्याप्त जीवोंका तेज-
स्कायिक अपर्याप्त राशिमें भाग देनेपर असंख्यात लोक उपलब्ध होते हैं ।

तेजस्कायिक अपर्याप्तोंसे पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं
॥ ४८ ॥

विशेषका प्रमाण तेजस्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात लोक
है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

पृथिवीकायिक अपर्याप्तोंसे अप्कायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥४९॥

विशेष कितना है ? पृथिवीकायिक जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक-
प्रमाण विशेष है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

अप्कायिक अपर्याप्तोंसे वायुकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५० ॥

विशेषका प्रमाण अप्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक है ।
प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

तेउक्काइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ५१ ॥

कुदो ? विस्ससादो । एत्थ तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाणि गुणमारो ।

पुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५२ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा तेउक्काइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडि-
भागो ? असंखेज्जा लोगा ।

आउक्काइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५३ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा पुढविकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को
पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

वाउक्काइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५४ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा आउक्काइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडि-
भागो ? असंखेज्जा लोगा ।

अक्काइया अणंतगुणा ॥ ५५ ॥

वायुक्कायिक अपर्याप्तोंसे तेजस्कायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं ॥ ५१ ॥

क्योंकि, ऐसा स्वभावसे है । यहां तत्प्रायोग्य संख्यात रूप गुणकार है ।

तेजस्कायिक पर्याप्तोंसे पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५२ ॥

विशेषका प्रमाण तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात
लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

पृथिवीकायिक पर्याप्तोंसे अप्कायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५३ ॥

विशेषका प्रमाण पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात
लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

अप्कायिक पर्याप्तोंसे वायुक्कायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५४ ॥

विशेषका प्रमाण अप्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक है ।
प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

वायुक्कायिक पर्याप्तोंसे अक्कायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ५५ ॥

कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तवाउकाइयपज्जत्तएहि अकाइएसु ओवट्टिदेसु अणंत-
रूवोवलंभादो ।

वणप्फदिकाइयअंपज्जत्ता अणंतगुणा ॥ ५६ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो वि
अणंतगुणो । कुदो ? अकाइएहि ओवट्टिदकिंचूणसव्वजीवरासिसंखेज्जदिभागपमाणत्तादो ।

वणप्फदिकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ५७ ॥

एत्थ गुणगारो तप्पाओग्गसंखेज्जसमया ।

वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ५८ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? वणप्फदिकाइयअंपज्जत्तमेत्तो ।

णिगोदा विसेसाहिया ॥ ५९ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? बादरवणप्फदिपत्तेयसररिबादराणिगोदपादिट्टिदमेत्तो ।

अण्णेणैक्केण पयारेण अप्पावद्गुणपरूवणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि —

क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र वायुकायिक पर्याप्त जीवों द्वारा अकायिक
जीवोंके अपवर्तित करनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

अकायिकोंसे वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ५६ ॥

यहां गुणकार अभव्यसिद्धिकों, सिद्धों और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी
अनन्तगुणा है, क्योंकि, उक्त गुणकार अकायिक जीवोंसे अपवर्तित कुछ कम सर्व जीव-
राशिके संख्यातवें भागप्रमाण है ।

वनस्पतिकायिक अपर्याप्तोंसे वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं
॥ ५७ ॥

यहां गुणकार तत्प्रायोग्य संख्यात समयप्रमाण है ।

वनस्पतिकायिक पर्याप्तोंसे वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५८ ॥

विशेष कितना है ? वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंके प्रमाण है ।

वनस्पतिकायिकोंसे निगोदजीव विशेष अधिक हैं ॥ ५९ ॥

विशेष कितना है ? बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर बादर-निगोद-प्रतिष्ठित
जीवोंके बराबर है । अन्य एक प्रकारसे अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं ।

सव्वत्थोवा तसकाइया ॥ ६० ॥

कुदो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागपमाणत्तादो ।

बादरतेउकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६१ ॥

कुदो ? तसकाइएहि बादरतेउकाइएसु ओवट्टिदेसु असंखेज्जलोगुवलंभादो ।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा असंखेज्जगुणा ॥ ६२ ॥

एत्थ गुणमारो असंखेज्जा लोगा । गुणमारद्वुच्छेदणसलागाओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदं कुदो वगम्मदे ? गुरुवेदसादो ।

बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा असंखेज्जगुणा ॥ ६३ ॥

गुणमारपमाणमसंखेज्जा लोगा । तस्सद्वुच्छेदणयसलागाओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

त्रसकायिक जीव सबमें स्तोक हैं ॥ ६० ॥

क्योंकि, वे जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

त्रसकायिकोंसे बादर तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६१ ॥

क्योंकि, त्रसकायिक जीवों द्वारा बादर तेजस्कायिक जीवोंके अपवर्तित करने-पर असंख्यात लोक उपलब्ध होते हैं ।

बादर तेजस्कायिकोंसे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६२ ॥

यहां गुणकार असंख्यात लोक है । गुणकारकी अर्द्धच्छेदशलाकायें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

शंका — यह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान— यह गुरुके उपदेशसे जाना जाता है ।

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंसे बादर निगोदजीव निगोदप्रतिष्ठित असंख्यातगुणे हैं ॥ ६३ ॥

गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है । उसकी अर्द्धच्छेदशलाकायें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

बादरपुढविकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६४ ॥

गुणगारपमाणमसंखेज्जा लोगा । तेसिमद्धछेदणयसलागाओ पलिदोवमस्स असंखे-
ज्जदिभागो ।

बादरआउकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६५ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा । तस्सद्धछेदणयसलागाओ पलिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागो ।

बादरवाउकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६६ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा । गुणगारद्धछेदणयसलागाओ पलिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागो । बादरवाउकाइयाणं पुण अद्धछेदणयसलागा संपुणं सागरोवमं ।

सुहुमतेउकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६७ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा । गुणगारद्धछेदणयसलागाओ वि असंखेज्जा
लोगा ।

बादर निगोद जीव निगोदप्रतिष्ठितोंसे बादर पृथिवीकायिक जीव असंख्यातगुणे
हैं ॥ ६४ ॥

गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है । उनकी अर्द्धच्छेदशलाकायें पल्योपमके
असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

बादर पृथिवीकायिकोंसे बादर अप्कायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६५ ॥

यहां गुणकार असंख्यात लोकप्रमाण है । उसकी अर्द्धच्छेदशलाकायें पल्यो-
पमके असंख्यातवें भाग हैं ।

बादर अप्कायिकोंसे बादर वाउकायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६६ ॥

यहां गुणकार असंख्यात लोक है । गुणकारकी अर्द्धच्छेदशलाकायें पल्योपमके
असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । परन्तु बादर वायुकायिक जीवोंकी अर्द्धच्छेदशलाकायें
सम्पूर्ण सागरोपमप्रमाण हैं ।

बादर वायुकायिकोंसे सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६७ ॥

यहां गुणकार असंख्यात लोक है । गुणकारकी अर्द्धच्छेदशलाकायें भी असंख्यात
लोकप्रमाण हैं ।

सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया ॥ ६८ ॥

एत्थ विसेसपमाणं असंखेज्जा लोगा सुहुमतेउकाइयाणमसंखेज्जदिभागो ।
को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमआउकाइया विसेसाहिया ॥ ६९ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा सुहुमपुढविकाइयाणमसंखेज्जदिभागो । को पडि-
भागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया ॥ ७० ॥

को विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमआउकाइयाणमसंखेज्जदिभागो । को
पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

अकाइया अणंतगुणा ॥ ७१ ॥

एत्थ गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो ।

बादरवणप्फदिकाइया अणंतगुणा ॥ ७२ ॥

सूक्ष्म तेजस्कायिकोंसे सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६८ ॥

यहां विशेषका प्रमाण सूक्ष्म तेजस्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण
असंख्यात लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म पृथिवीकायिकोंसे सूक्ष्म अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६९ ॥

यहां विशेषका प्रमाण सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण
असंख्यात लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म अप्कायिकोंसे सूक्ष्म वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ७० ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म अप्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात
लोकप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म वायुकायिकोंसे अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ७१ ॥

यहां गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है ।

अकायिक जीवोंसे बादर वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ७२ ॥

एत्थ गुणगारो अभवसिद्धिर्हितो सिद्धेर्हितो सच्चजीवाणं पढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो । कुदो ? गुणगारस्स सच्चजीवरासिअसंखेज्जदिभागत्तादो । ण च अकाइया सच्चजीवाणं पढमवग्गमूलमेत्ता अत्थि, तस्स पढमवग्गमूलस्स अणंतभागत्तादो ।

सुहुमवणप्फदिकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ७३ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । सेसं सुगमं ।

वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ७४ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? बादरवणप्फदिकाइयमेत्तो ।

अण्णेषु सुत्तेसु सच्चाइरियसंमदेसु^१ एत्थेव अप्पाबहुगसमत्ती होदि, पुणो उवरिम-
अप्पाबहुगपयारस्स प्रारंभो । एत्थ पुण सुत्तेसु अप्पाबहुगसमत्ती ण होदि ।

णिगोदजीवा विसेसाहिया ॥ ७५ ॥

एत्थ चोदगो भणदि— णिफलमेदं सुत्तं, वणप्फदिकाइर्हितो पुधभूदं-

यहां गुणकार अभव्यसिद्धिकों, सिद्धों और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्तगुणा है, क्योंकि, गुणकार सर्व जीवराशिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । और अकायिक जीव सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलप्रमाण हैं नहीं, क्योंकि, वह प्रथम वर्गमूल अकायिक जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण है ।

बादर वनस्पतिक्रायिकोंसे सूक्ष्म वनस्पतिक्रायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥७३॥

गुणकार कितना है ? असंख्यात लोकप्रमाण है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सूक्ष्म वनस्पतिक्रायिकोंसे वनस्पतिक्रायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ७४ ॥

विशेष कितना है ? बादर वनस्पतिक्रायिक जीवोंके बराबर है ।

सर्व आचार्योंसे सम्मत अन्य सूत्रोंमें यहां ही अल्पबहुत्वकी समाप्ति होती है, पुनः आगेके अल्पबहुत्वप्रकारका प्रारम्भ होता है । परन्तु इन सूत्रोंमें अल्पबहुत्वकी यहां समाप्ति नहीं होती ।

वनस्पतिक्रायिकोंसे निगोद जीव विशेष अधिक हैं ॥ ७५ ॥

शंका—यहां शंकाकार कहता है कि यह सूत्र निष्फल है, क्योंकि, वनस्पति-

१ प्रतिषु ' सपुद्देषु ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' पुव्वभूद- ' इति पाठः ।

णिगोदाणमणुवलंभादो । ण च वणप्फदिकाइएहिंतो पुधभूदा पुठविकाइयादिसु णिगोदा अत्थि त्ति आइरियाणमुवदेसो जेणेदस्स वयणस्स सुत्तत्तं पसज्जदे इदि ? एत्थ परिहारो बुच्चदे— होदु णाम तुब्भेहि वुत्तस्स सच्चत्तं, बहुएसु सुत्तेसु वणप्फदीणं उवरि णिगोदपदस्स अणुवलंभादो णिगोदाणमुवरि वणप्फदिकाइयाणं पठणस्सुवलंभादो बहुएहि आइरिएहि संमदत्तादो च । किं तु एदं सुत्तमेव ण होदि त्ति णावहारणं काउं जुत्तं । सो एवं भणदि जो चोद्दसपुव्वधरो केवलणाणी वा । ण च वट्टमाणकाले ते अत्थि, ण च तेसिं पासे सोदूणागदा वि संपहि उवलब्भंति । तदो थप्पं काऊण वे वि सुत्ताणि सुत्तामायण-भीरूहि आइरिएहि वक्खणायव्वाणि त्ति । णिगोदाणमुवरि वणप्फदिकाइया विमेसाहिया होंति बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरमेत्तेण, वणप्फदिकाइयाणं उवरि णिगोदा पुण केण विसेसाहिया होंति त्ति भणिदे बुच्चदे । तं जहा— वणप्फदिकाइया त्ति वुत्ते बादरणिगोदपदिट्ठिदापदिट्ठिदजीवा ण घेत्त्वा । कुदो ? आधेयादो आधारस्स भेददंमणादो ।

कायिक जीवोंसे पृथग्भूत निगोद जीव पाये नहीं जाते । तथा 'वनस्पतिकायिक जीवोंसे पृथग्भूत पृथिवीकायिकादिकोंमें निगोद जीव हैं' ऐसा आचार्योंका उपदेश भी नहीं है, जिससे इस वचनको सूत्रत्वका प्रसंग हो सके ?

समाधान—यहां उपर्युक्त शंकाका परिहार कहते हैं— तुम्हारे द्वारा कहे हुए वचनमें भले ही सत्यता हो, क्योंकि, बहुतसे सूत्रोंमें वनस्पतिकायिक जीवोंके आगे 'निगोद' पद नहीं पाया जाता, निगोद जीवोंके आगे वनस्पतिकायिकोंका पाठ पाया जाता है, और ऐसा बहुतसे आचार्योंसे सम्मत भी है । किन्तु 'यह सूत्र ही नहीं है' ऐसा निश्चय करना उचित नहीं है । इस प्रकार तो यह कह सकता है जो कि चौदह पूर्वोंका धारक हो अथवा केवलज्ञानी हो । परन्तु वर्तमान कालमें न तो वे दोनों हैं और न उनके पासमें सुनकर आये हुए अन्य महापुरुष भी इस समय उपलब्ध होते हैं । अत एव सूत्रकी आशातना (छेद या तिरस्कार) से भयभीत रहनेवाले आचार्योंको स्थाप्य समझ कर दोनों ही सूत्रोंका व्याख्यान करना चाहिये ।

शंका—निगोद जीवोंके ऊपर वनस्पतिकायिक जीव बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर मात्रसे विशेषाधिक होते हैं, परन्तु वनस्पतिकायिक जीवोंके आगे निगोद-जीव किससे विशेषाधिक होते हैं ?

समाधान—उपर्युक्त शंकाका उत्तर इस प्रकार देते हैं— 'वनस्पतिकायिक जीव' ऐसा कहनेपर बादर निगोदोंसे प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जीवोंका ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि, आधेयसे, आधारका भेद देखा जाता है ।

वणप्फदिणामकम्मोदइल्लत्तणेण सन्वेसिमेगत्तमत्थि त्ति भणिदे होदु तेण एगत्तं, किंतु तमेत्थ अत्रिवक्खियं, आहार-अणाहारत्तं चैव विवक्खियं । तेण वणप्फदिकाइएसु बादरणिगोदपदिट्ठिदापदिट्ठिदा ण गहिदा । वणप्फदिकाइयाणमुवरि ' णिगोदा विसेसाहिया ' त्ति भणिदे बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयमरीरेहि बादरणिगोदपदिट्ठिदेहि य विसेसाहिया । बादरणिगोदपदिट्ठिदापदिट्ठिदाणं कधं णिगोदववएसो ? ण, आहारे आहेओवयारादो तेसिं णिगोदत्तसिद्धीदो । वणप्फदिणामकम्मोदइल्लाणं सन्वेसिं वणप्फदिसण्णा सुत्ते दिस्सदि । बादरणिगोदपदिट्ठिदअपदिट्ठिदाणमेत्थं सुत्ते वणप्फदिसण्णा किण्ण णिदिट्ठा ? गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो । अम्हेहि गोदमो बादरणिगोदपदिट्ठिदाणं वणप्फदिसण्णं णेच्छदि त्ति तस्स अहिप्पाओ क्कहिओ ।

शंका—वनस्पति नामकर्मके उदयसे संयुक्त होनेकी अपेक्षा सबोंके एकता है ?

समाधान—वनस्पति नामकर्मोदयकी अपेक्षा उससे एकता रहे, किन्तु उसकी यहां विवक्षा नहीं है । यहां आधारत्व और अनाधारत्वकी ही विवक्षा है । इस कारण वनस्पतिकायिक जीवोंमें बादर निगोदोंसे प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जीवोंका ग्रहण नहीं किया गया ।

वनस्पतिकायिक जीवोंके ऊपर ' निगोदजीव विशेष अधिक हैं ' ऐसा कहनेपर बादर निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंसे विशेष अधिक हैं (ऐसा समझना चाहिये) ।

शंका—बादर निगोदजीवोंसे प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जीवोंके ' निगोद ' संज्ञा कैसे घटित होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आधारमें आधेयका उपचार करनेसे उनके निगोदत्व सिद्ध होता है ।

शंका—वनस्पति नामकर्मके उदयसे संयुक्त सब जीवोंके ' वनस्पति ' संज्ञा सूत्रमें देखी जाती है । बादर निगोदजीवोंसे प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जीवोंके यहां सूत्रमें वनस्पति संज्ञा क्यों नहीं निर्दिष्ट की ?

समाधान—इस शंकाका उत्तर गौतमसे पूछना चाहिये । हमने तो ' गौतम बादर निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित जीवोंके ' वनस्पति ' संज्ञा नहीं स्वीकार करते ' इस प्रकार उनका अभिप्राय कहा है ।

गुणो अण्णेण पयारेण अप्पाहुगपरूवणद्धमुत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वत्थोवा बादरतेउकाइयपज्जत्ता ॥ ७६ ॥

कुदो ? असंखेज्जपदरावलियपमाणत्तादो ।

तसकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ७७ ॥

एत्थ गुणगारो जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो ? असंखेज्जपदरंगुलेहि ओवद्धिदजगपदरप्पमाणत्तादो ।

तसकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ७८ ॥

गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? तसअपज्जत्तअवहारकालेण तसपज्जत्तअवहारकाले भागे हिदे आवलियाए असंखेज्जदिभागोवलंभादो ।

वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ७९ ॥

गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो ? बादरवणप्फदिपत्तेयसरीर-पज्जत्तअवहारकालेण तसकाइयअवहारकाले भागे हिदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-

फिर भी अन्य प्रकारसे अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

बादर तेजस्कायिक जीव सबमें स्तोक हैं ॥ ७६ ॥

क्योंकि, वे असंख्यात प्रतरावलीप्रमाण हैं ।

बादर तेजस्कायिकोंसे त्रसकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ७७ ॥

यहां गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि वह असंख्यात प्रतरांगुलोंसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण है ।

त्रसकायिक पर्याप्तोंसे त्रसकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ७८ ॥

यहां गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि, त्रस अपर्याप्त जीवोंके अवहारकालसे त्रस पर्याप्त जीवोंके अवहारकालको भाजित करनेपर आवलीका असंख्यातवां भाग लब्ध होता है ।

त्रसकायिक अपर्याप्तोंसे वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव असंख्यात-गुणे हैं ॥ ७९ ॥

यहां गुणकार पश्योपमका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि, बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके अवहारकालसे त्रसकायिक जीवोंके अवहारकालको भाजित

भागुवलंभादो ।

बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा पज्जत्ता असंखेज्जगुणा
॥ ८० ॥

बादरणिगोदजीवणिहेसो किमट्ठं कदो, बादरणिगोदपदिट्ठिदा च्चि वत्तव्वं ? ण, बादरणिगोदपदिट्ठिदाणं णिगोदजीवाधारणं सयं पत्तेयसरीराणमुवयारबलेण णिगोदजीव-सण्णा एत्थ होदु च्चि जाणावणट्ठं कदो । गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? बादरणिगोदपदिट्ठिदअवहारकालेण बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअवहारकाले भागै हिदे अवलियाए असंखेज्जदिभागुवलंभादो ।

बादरपुठविकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८१ ॥

गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

करनेपर पत्त्योपमका असंख्यातवां भाग उपलब्ध होता है ।

वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तोंसे बादर निगोदजीव निगोद-प्रतिष्ठित पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ८० ॥

शंका—‘ बादर निगोद जीव ’ का निर्देश किस लिये किया, बादर-निगोद-प्रतिष्ठित ’ इतना ही कहना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, निगोदजीवोंके आधारभूत व स्वयं प्रत्येकशरीर ऐसे बादर निगोदजीवोंसे प्रतिष्ठित जीवोंको यहां उपचारके बलसे ‘निगोदजीव’ संज्ञा हो इस बातके ज्ञापनार्थ ‘ बादर निगोदजीव ’ का निर्देश किया है । गुणकार यहां आवलीका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि, बादर-निगोद-प्रतिष्ठित जीवोंके अवहारकालसे बादर-वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंके अवहारकालको भाजित करनेपर आवलीका असंख्यातवां भाग उपलब्ध होता है ।

बादर निगोदजीव निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्तोंसे बादर पृथिविकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ८१ ॥

गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है । कारण पहिलेके समान कहना चाहिये ।

बादरआउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८२ ॥

गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कारणं पुव्वं व वचव्वं ।

बादरवाउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८३ ॥

गुणगारो असंखेज्जाओ सेडीओ पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । हेट्ठिम-
रासिणा उवरिमरासिमोवट्ठिय सव्वत्थ गुणगारो उप्पाएदव्वो ।

बादरतेउअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८४ ॥

गुणगारो असंखेज्जा लोगा । गुणगारद्वच्छेदणयसलागाओ सागरोवमं^१ पलिदो-
वमस्स असंखेज्जदिभागेणूणयं ।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरिरअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८५ ॥

गुणगारपमाणमसंखेज्जा लोगा । गुणगारद्वच्छेदणयसलागाओ पलिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागो ।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तोसे बादर अष्कायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे
हैं ॥ ८२ ॥

गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है । कारण पहिलेके समान कहना
चाहिये ।

बादर अष्कायिक पर्याप्तोसे बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे
हैं ॥ ८३ ॥

यहां गुणकार प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणी है ।
अधस्तन राशिसे उपरिम राशिका अपवर्तन कर सर्वत्र गुणकार उत्पन्न करना चाहिये ।

बादर वायुकायिक पर्याप्तोसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे
हैं ॥ ८४ ॥

यहां गुणकार असंख्यात लोक है । गुणकारकी अर्द्धच्छेदशलाकायें पल्योपमके
असंख्यातवें भागसे हीन सांगरोपमप्रमाण हैं ।

बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तोसे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त
जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ८५ ॥

गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है । गुणकारकी अर्द्धच्छेदशलाकायें पल्योपमके
असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

१ अप्रतौ ' सागरोवमं' इति पाठः नास्ति ।

बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा
॥ ८६ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा । तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-
भागो ।

बादरपुठविकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८७ ॥

गुणगारो असंखेज्जा लोगा । तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

बादरआउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८८ ॥

गुणगारो असंखेज्जा लोगा । तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

बादरवाउअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८९ ॥

गुणगारपमाणमसंखेज्जा लोगा । तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-
भागो ।

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्तोंसे निगोदप्रतिष्ठित बादर निगोद-
जीव अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ८६ ॥

यहां गुणकार असंख्यात लोक है । उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके असंख्यातवें
भागप्रमाण हैं ।

निगोदप्रतिष्ठित बादर निगोद जीव अपर्याप्तोंसे बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त
जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ८७ ॥

गुणकार असंख्यात लोक है । उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके असंख्यातवें भाग-
प्रमाण हैं ।

बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तोंसे बादर अष्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यात-
गुणे हैं ॥ ८८ ॥

गुणकार असंख्यात लोक है । उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके असंख्यातवें भाग-
प्रमाण हैं ।

बादर अष्कायिक अपर्याप्तोंसे बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे
हैं ॥ ८९ ॥

गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है । उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके असंख्यातवें
भागप्रमाण हैं ।

सुहुमतेउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ९० ॥

गुणगारपमाणमसंखेज्जा लोगा । तेसिं छेदणाणि वि असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमपुठविकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९१ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमतेउकाइयाणमसंखेज्जदिभागो ।
को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमआउकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९२ ॥

केत्तियो विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमपुठविकाइयाणमसंखेज्जदिभागो ।
को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमवाउकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९३ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा सुहुमआउकाइयाणमसंखेज्जदिभागो । तेसिं को
पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

बादर वायुकायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यात-
गुणे हैं ॥ ९० ॥

गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है । उनके अर्धच्छेद भी असंख्यात लोक-
प्रमाण हैं ।

सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव विशेष
अधिक हैं ॥ ९१ ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म तेजस्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात
लोकप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म अष्कायिक अपर्याप्त जीव विशेष
अधिक हैं ॥ ९२ ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात
लोकप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म अष्कायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक
हैं ॥ ९३ ॥

विशेषका प्रमाण सूक्ष्म अष्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक
है । उनका प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सुहुमतेउकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ९४ ॥

एत्थ गुणगारो तप्पाओग्गसंखेज्जसमया ।

सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९५ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा सुहुमतेउकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । पडि-
भागो असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमआउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९६ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को
पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमवाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९७ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा सुहुमआउकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को
पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तोंसे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे
हैं ॥ ९४ ॥

यहां गुणकार तत्प्रायोग्य संख्यात समय है ।

सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तोंसे सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक
हैं ॥ ९५ ॥

विशेषका प्रमाण सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात
लोक है । प्रतिभाग असंख्यात लोक है ।

सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तोंसे सूक्ष्म अक्कायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक
हैं ॥ ९६ ॥

विशेषका प्रमाण सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भाग
असंख्यात लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म अक्कायिक पर्याप्तोंसे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं
॥ ९७ ॥

विशेषका प्रमाण सूक्ष्म अक्कायिक पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात
लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

अकाइया अणंतगुणा ॥ ९८ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिर्एहि अणंतगुणो । कुदो ? सुहृमवाउकाइयपज्जत्तेहि ओवट्टिदअकाइयपमाणत्तादो ।

बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्ता अणंतगुणा ॥ ९९ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिर्एहितो सिद्धेहितो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो । कुदो ? सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो अणंतगुणहीणेहि अकाइएहि असंखेज्जलोगगुणेहि ओवट्टिदसव्वजीवरासिपमाणत्तादो ।

बादरवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ १०० ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोमा ।

बादरवणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ १०१ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्तमेत्तो ।

मृक्षम वायुकायिक पर्याप्तोंसे अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ९८ ॥

गुणकार कितना है ? अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह मृक्षम वायुकायिक पर्याप्त जीवोंसे अपवर्तित अकायिक जीवोंके बराबर है ।

अकायिक जीवोंसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ९९ ॥

यहां गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवों, सिद्धों और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे अनन्तगुणे हीन असंख्यात लोकगुणे अकायिक जीवोंसे अपवर्तित सर्व जीवराशिप्रमाण है ।

बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तोंसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ १०० ॥

गुणकार कितना है ? असंख्यात लोकप्रमाण है ।

बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तोंसे बादर वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ १०१ ॥

विशेष कितना है ? बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंके बराबर है ।

सुहुमवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ १०२ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमवणप्फदिकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ १०३ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

सुहुमवणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ १०४ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? सुहुमवणप्फदिकाइयअपज्जत्तमेत्तो ।

वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ १०५ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? बादरवणप्फदिकाइयमेत्तो । बादरवणप्फदिकाइएसु बादर-
णिगोदपदिद्धिदापदिद्धिदा ण अत्थि, तेसिं वणप्फदिकाइयववएसाभावादो ।

णिगोदजीवा विसेसाहिया ॥ १०६ ॥

बादर वनस्पतिकायिकोंसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे
हैं ॥ १०२ ॥

गुणकार कितना है ? असंख्यात लोकप्रमाण है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव
संख्यातगुणे हैं ॥ १०३ ॥

गुणकार कितना है ? संख्यात समयप्रमाण है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तोंसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक
हैं ॥ १०४ ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंके बराबर है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंसे वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ १०५ ॥

विशेष कितना है ? बादर वनस्पतिकायिक जीवोंके बराबर है । बादर वनस्पति-
कायिक जीवोंमें बादर-निगोद-प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जीव नहीं हैं, क्योंकि, उनके
'वनस्पतिकायिक' संज्ञाका अभाव है ।

वनस्पतिकायिकोंसे निगोद जीव विशेष अधिक हैं ॥ १०६ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? बादरवणप्फदिपत्तेयमरीरेहि बादरणिगोदपदिद्धिदेहि य पञ्जत्तमेत्तो ।

जोगाणुवादेण सव्वत्थोवा मणजोगी ॥ १०७ ॥

कुदो ? देवाणं संखेज्जदिभागप्पमाणत्तादो ।

वचिजोगी संखेज्जगुणा ॥ १०८ ॥

कुदो ? पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागेण वचिजोगिअवहारकालेण संखेज्जपदरंगुलमेत्ते मणजोगिअवहारकाले भागे हिदे संखेज्जरूवोवलंभादो ।

अजोगी अणंतगुणा ॥ १०९ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो ।

विशेष कितना है ? बादर वनस्पति प्रत्येकशरीर तथा बादर-निगोद प्रतिष्ठित जीवों सहित पर्याप्त शरीर मात्र आश्रित जीवराशिप्रमाण वह विशेष है ।

विशेषार्थ—ऊपर सूत्र ७५ की टीकामें बतलाया जा चुका है कि प्रस्तुत सूत्रोंमें वनस्पतिकायिक जीवोंके भीतर उन एकेन्द्रिय जीवोंका समावेश नहीं किया गया जो स्वयं अप्रतिष्ठित अर्थात् प्रत्येककाय होते हुए भी बादर निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित हैं । जीवकाण्ड गाथा १९९ के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुकायिक जीवों तथा केवली, आहारक व देव-नारकियोंके शरीरोंको छोड़ शेष समस्त संसारी पर्याप्त जीवोंके शरीर निगोदिया जीवोंसे प्रतिष्ठित हैं । अतएव निगोद जीवोंके प्रमाण प्ररूपणमें टीकाकार द्वारा बतलाये गये विशेष द्वारा उन्हीं सब राशियोंका ग्रहण किया गया प्रतीत होता है ।

योगमार्गणाके अनुसार मनोयोगी जीव सबमें स्तोक हैं ॥ १०७ ॥

क्योंकि, वे देवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

मनोयोगियोंसे वचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १०८ ॥

क्योंकि, प्रतरांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण वचनयोगि-अवहारकालसे संख्यात प्रतरांगुलप्रमाण मनोयोगि-अवहारकालको भाजित करनेपर संख्यात रूप उपलब्ध होते हैं ।

वचनयोगियोंसे अयोगी जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १०९ ॥

गुणकार कितना है ? अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है ।

कायजोगी अणंतगुणा ॥ ११० ॥

गुणगारो अभवसिद्धिर्हितो सिद्धेर्हितो सच्चजीवपठमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो ।
अण्णेण पयारेण जोगप्पाबहुअपरूवणद्धमुत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वत्थोवा आहारमिस्सकायजोगी ॥ १११ ॥

सुगमं ।

आहारकायजोगी संखेज्जगुणा ॥ ११२ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी असंखेज्जगुणा ॥ ११३ ॥

गुणगारो जगंपदरस्स असंखेज्जदिभागो ।

सच्चमणजोगी संखेज्जगुणा ॥ ११४ ॥

कुदो ? विस्ससादो ।

अयोगियोंसे काययोगी अनन्तगुणे हैं ॥ ११० ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिकों, सिद्धों और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्त-
गुणा है । अन्य प्रकारसे योगमार्गणाकी अपेक्षा अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र
कहते हैं—

आहारमिश्रकाययोगी सबमें स्तोक हैं ॥ १११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारमिश्रकाययोगियोंसे आहारकाययोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११२ ॥

गुणकार कितना है ? गुणकार दो रूप है ।

आहारकाययोगियोंसे वैक्रियिकमिश्रकाययोगी असंख्यातगुणे हैं ॥ ११३ ॥

गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवां भाग है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंसे सत्यमनोयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११४ ॥

क्योंकि, पेसा स्वभावसे है ।

मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ॥ ११५ ॥

कुदो ? सच्चमणजोगअद्दादो मोसमणजोगअद्दाए संखेज्जगुणत्तादो सच्चमण-
जोगपरिणमणवारेहितो मोसमणजोगपरिणमणवाराणं संखेज्जगुणत्तादो वा ।

सच्च-मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ॥ ११६ ॥

एत्थ पुव्वं व दोहि पयारेहि संखेज्जगुणत्तस्स कारणं वत्तव्वं ।

असच्च-मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ॥ ११७ ॥

एत्थ वि पुव्विल्लं दुविहकारणं वत्तव्वं ।

मणजोगी विसेसाहिया ॥ ११८ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? सच्च-मोस-सच्चमोसमणजोगिमेत्तो विसेसो ।

सच्चवचिजोगी संखेज्जगुणा ॥ ११९ ॥

कारणं ? मणजोगिअद्दादो वचिजोगिअद्दाए संखेज्जगुणत्तादो मणजोगवारेहितो
सच्चवचिजोगवाराणं संखेज्जगुणत्तादो वा ।

सत्यमनोयोगियोंसे मृषामनोयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११५ ॥

क्योंकि, सत्यमनोयोगके कालकी अपेक्षा मृषामनोयोगका काल संख्यातगुणा
है, अथवा सत्यमनोयोगके परिणमनवारोंकी अपेक्षा मृषामनोयोगके परिणमनवार
संख्यातगुणे हैं ।

मृषामनोयोगियोंसे सत्य-मृषामनोयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११६ ॥

यहां पूर्वके समान दोनों प्रकारोंसे संख्यातगुणत्वका कारण कहना चाहिये ।

सत्य-मृषामनोयोगियोंसे असत्य-मृषामनोयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११७ ॥

यहां भी पूर्वोक्त दोनों प्रकारका कारण कहना चाहिये ।

असत्य-मृषामनोयोगियोंसे मनोयोगी विशेष अधिक हैं ॥ ११८ ॥

विशेष कितना है ? सत्य, मृषा और सत्य-मृषा मनोयोगियोंके बराबर है ।

मनोयोगियोंसे सत्यवचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११९ ॥

क्योंकि, मनोयोगिकालसे वचनयोगिकाल संख्यातगुणा है, अथवा मनोयोग-
वारोंसे सत्यवचनयोगवार संख्यातगुणे हैं ।

मोसवचिजोगी संखेज्जगुणा ॥ १२० ॥

एत्थ वि पुब्बं व दुविहकारणं वत्तव्वं ।

सच्चमोसवचिजोगी संखेज्जगुणा ॥ १२१ ॥

एत्थ वि तं चेव कारणं ।

वेउव्वियकायजोगी संखेज्जगुणा ॥ १२२ ॥

*कुदो ? मण-वचिजोगद्धाहितो कायजोगद्धाए संखेज्जगुणात्तादो ।

असच्चमोसवचिजोगी संखेज्जगुणा ॥ १२३ ॥

कुदो ? बीइंदियपज्जत्तजीवाणं गहणादो ।

वचिजोगी विसेसाहिया ॥ १२४ ॥

केत्तियमेत्तेण ? सच्च-मोस-सच्चमोसवचिजोगिमेत्तेण ।

अजोगी अणंतगुणा ॥ १२५ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो ।

सत्यवचनयोगियोंसे मृषावचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२० ॥

यहां भी पूर्वके समान दोनों प्रकारका कारण कहना चाहिये ।

मृषावचनयोगियोंसे सत्य-मृषावचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२१ ॥

यहां भी वही उपर्युक्त कारण है ।

सत्य-मृषावचनयोगियोंसे वैक्रियिककाययोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२२ ॥

क्योंकि, मन वचनयोगकालोंसे काययोगकाल संख्यातगुणा है ।

वैक्रियिककाययोगियोंसे असत्य-मृषावचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२३ ॥

क्योंकि, यहां द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका ग्रहण किया गया है ।

असत्य-मृषावचनयोगियोंसे वचनयोगी विशेष अधिक हैं ॥ १२४ ॥

कितने मात्र विशेषसे अधिक हैं ? सत्य, मृषा और सत्यमृषा वचनयोगिमात्र-विशेषसे अधिक हैं ।

वचनयोगियोंसे अयोगी अनन्तगुणे हैं ॥ १२५ ॥

गुणकार कितना है ? अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है ।

कम्मइयकायजोगी अणंतगुणा ॥ १२६ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिहंतो सिद्धेहंतो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो वि
अणंतगुणो । कुदो ? अंतोमुहुत्तगुणिदअजोगिरासिपमाणेणोवड्ढिसव्वजीवरासिमेत्तत्तादो ।

ओरालियमिस्सकायजोगी असंखेज्जगुणा ॥ १२७ ॥

को गुणगारो ? अंतोमुहुत्तं ।

ओरालियकायजोगी संखेज्जगुणा ॥ १२८ ॥

सुगमं ।

कायजोगी विसेसाहिया ॥ १२९ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? सेसकायजोगिमेत्तो ।

वेदाणुवादेण सव्वत्थोवा पुरिसवेदा ॥ १३० ॥

कुदो ? संखेज्जपदरंगुलोवड्ढिदजगपदरप्पमाणत्तादो ।

इत्थिवेदा संखेज्जगुणा ॥ १३१ ॥

अयोगियोसे कर्मणकाययोगी अनन्तगुणे हैं ॥ १२६ ॥

गुणकार कितना है ? अवध्यसिद्धिकों, सिद्धों और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे
भी अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह अन्तर्मुहूर्तसे गुणित अयोगिराशिप्रमाणसे अपवर्तित
सर्व जीवराशिप्रमाण है ।

कर्मणकाययोगियोंसे औदारिकमिश्रकाययोगी असंख्यातगुणे हैं ॥ १२७ ॥

गुणकार कितना है ? गुणकार अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंसे औदारिककाययोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिककाययोगियोंसे काययोगी विशेष अधिक हैं ॥ १२९ ॥

विशेष कितना है ? शेष काययोगिप्रमाण है ।

वेदमार्गणाके अनुसार पुरुषवेदी सबमें स्तोत्र हैं ॥ १३० ॥

क्योंकि, वे संख्यात प्रतरांगुलोंसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण हैं ।

पुरुषवेदियोंसे स्त्रीवेदी संख्यातगुणे हैं ॥ १३१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

अवगदवेदा अणंतगुणा ॥ १३२ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो ।

णवुंसयवेदा अणंतगुणा ॥ १३३ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहितो सिद्धेहितो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो अणंतगुणो ।

वेदमग्गणाए अण्णेण पयारेण अप्पावहुअपरूवणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु पयदं । सव्वत्थोवा सण्णिणवुंसयवेद-
गब्भोवक्कंतिया ॥ १३४ ॥

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तपदरंगुलेहि जगपदरम्मि भागे हिदे सण्णि-
णवुंसयवेदगब्भोवक्कंतिया जेण होंति तेण थोवा ।

सण्णिपुरिसवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ॥ १३५ ॥

गुणकार कितना है ? संख्यात समयप्रमाण है ।

स्त्रीवेदियोंसे अपगतवेदी अनन्तगुणे हैं ॥ १३२ ॥

गुणकार कितना है ? अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है ।

अपगतवेदियोंसे नपुंसकवेदी अनन्तगुणे हैं ॥ १३३ ॥

गुणकार कितना है ? अभव्यसिद्धिकों, सिद्धों और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे अनन्तगुणा है ।

वेदमार्गणामें अन्य प्रकारसे अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

यहां पंचेद्रिय तिर्यग्योनि जीवोंका अधिकार है । संज्ञी नपुंसकवेदी गर्भो-
पक्रान्तिक जीव सभमें स्तोक हैं ॥ १३४ ॥

चूंकि पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र प्रतरांगुलोंका जगप्रतरमें भाग देनेपर संज्ञी नपुंसकवेदी गर्भोपक्रान्तिक जीवोंका प्रमाण होता है, अत एव वे स्तोक हैं ।

संज्ञी नपुंसक गर्भोपक्रान्तिकोंसे संज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिक जीव संख्यातगुणे हैं ॥ १३५ ॥

कुदो ? सणीसु गबभजेसु णवुंसयवेदाणं पाएण संभवाभावादो ।

सण्णित्थिवेदा मग्गभवककंतिया संखेज्जगुणा ॥ १३६ ॥

कुदो ? सण्णिगग्गभजेसु पुरिसवेदएहिंतो बहुआणं इत्थिवेदयाणमुवलंभादो ।

सण्णिणवुंसयवेदा सम्मुच्छिमपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ १३७ ॥

कुदो ? सण्णिगग्गभजेहिंतो सण्णिगग्गभजेहिंतो संखेज्जगुणात्तादो । सम्मुच्छिमेसु इत्थि-पुरिसवेदा णत्थि । कुदो वग्गममे ? इत्थि-पुरिसवेदाणं सम्मुच्छिमाधियारे अप्पा-बहुगपरूवणाभावादो ।

सण्णिणवुंसयवेदा सम्मुच्छिमअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ १३८ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो वग्गममे ? परमगुरु-वदेसादो ।

क्योंकि, संज्ञी गर्भजोंमें नपुंसकवेदियोंकी प्रायः सम्भावना नहीं है ।

संज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिकोंसे संज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिक जीव संख्यात-गुणे हैं ॥ १३६ ॥

क्योंकि, संज्ञी गर्भजोंमें पुरुषवेदियोंसे स्त्रीवेदी जीव बहुत पाये जाते हैं ।

संज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिकोंसे संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मुच्छिम पर्याप्त संख्यातगुणे हैं ॥ १३७ ॥

क्योंकि, संज्ञी गर्भजोंसे संज्ञी सम्मुच्छिम जीव संख्यातगुणे हे । सम्मुच्छिम जीवोंमें स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी नहीं हैं ।

शंका—यह कहाँसे जाना जाता है ?

समाधान—सम्मुच्छिमाधिकारमें स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंके अल्पबहुत्वका प्ररूपण न करनेसे जाना जाता है ।

संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मुच्छिम पर्याप्तोंसे संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मुच्छिम अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ १३८ ॥

गुणकार कितना है ? आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

शंका—यह कहाँसे जाना जाता है ?

समाधान—यह परम गुरुके उपदेशसे जाना जाता है ।

सण्णित्थि-पुरिसवेदा गम्भोवक्कंतिया असंखेज्जवासाउआ दो
वि तुल्ला असंखेज्जगुणा ॥ १३९ ॥

कथं दोण्हं समाणत्तं ? असंखेज्जवासाउएसु इत्थि-पुरिसज्जुगलाणं चैव सम्पत्तीदो । णवुंसयवेदा सम्मुच्छिमा च असण्णिणो च सुविणंतरे वि ण तत्थ संभवन्ति, अच्चंताभावेण अवहत्थियत्तादो । एत्थ गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो वगम्मदे ? आइरियपरंपरागयउवएसो । एदम्हादो अइक्कंतरासीणं सव्वेसि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तपदरंगुलाणि जगपदरभागहारो होदि । एत्थ पुण संखेज्जाणि पदरंगुलाणि भागहारो ।

असण्णिणवुंसयवेदा गम्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ॥ १४० ॥

कुदो ? णोइंदियावरणखओवसमस्स पंचिदिएसु बहुआणमभावादो ।

असण्णिपुरिसवेदा गम्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ॥ १४१ ॥

संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम अपर्याप्तोसे संज्ञी स्त्रीवेदी व पुरुषवेदी गर्भो-
पक्रान्तिक असंख्यातवर्षायुष्क दोनों ही तुल्य असंख्यातगुणे हैं ॥ १३९ ॥

शंका— दोनोंके समानता कैसे है ?

समाधान—क्योंकि, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें स्त्री-पुरुष युगलोंकी ही उत्पत्ति होती है । नपुंसकवेदी, सम्मूर्च्छिम व असंज्ञी जीव स्वप्नमें भी वहां सम्भव नहीं हैं, क्योंकि, वे अत्यन्तभावसे निराकृत हैं । यहां गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ।

शंका— यह कहाँसे जाना जाता है ?

समाधान—यह आचार्यपरम्परागत उपदेशसे जाना जाता है ।

इससे सब अतिक्रान्त राशियोंका जगप्रतरभागहार पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र प्रतरांगुलप्रमाण होता है । किन्तु यहां संख्यात प्रतरांगुल भागहार है ।

उपर्युक्त जीवोंसे असंज्ञी नपुंसकवेदी गर्भोपक्रान्तिक संख्यातगुणे हैं ॥ १४० ॥

क्योंकि, नोइन्द्रियावरणका क्षयोपशम पंचेन्द्रियोंमें बहुतोंके नहीं होता ।

असंज्ञी नपुंसकवेदी गर्भोपक्रान्तिकोंसे असंज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिक संख्यातगुणे हैं ॥ १४१ ॥

सुगममेदं ।

असण्णिइत्थिवेदा गम्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ॥ १४२ ॥

असंखेज्जवासाउअइत्थि-पुरिसवेदरासिप्पहुडि जाव असण्णिइत्थिवेदगम्भोवक्कंतिय-
रासि ति ताव जगपदरभागहारो संखेज्जाणि पदरंगुलाणि । सेसं सुगमं ।

असण्णी णवुंसयवेदा सम्मुच्छिमपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ १४३ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया । एत्थ जगपदरभागहारो पदरंगुलस्स संखे-
ज्जदिभागो ।

असण्णिणवुंसयवेदा सम्मुच्छिमा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा
॥ १४४ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

कसायाणुवादेण सव्वत्थोवा अकसाई ॥ १४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिकोसे असंज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिक संख्यात-
गुणे हैं ॥ १४२ ॥

असंख्यातवर्षायुष्क स्त्री-पुरुषवेदराशिसे लेकर असंज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिक
राशि तक जगप्रतरका भागहार संख्यात प्रतरांगुल है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

असंज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिकोसे असंज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम पर्याप्त जीव
संख्यातगुणे हैं ॥ १४३ ॥

गुणकार कितना है ? संख्यात समयप्रमाण है । यहां जगप्रतरभागहार प्रतरां-
गुलका संख्यातवां भाग है ।

असंज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तोसे असंज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम
अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ १४४ ॥

गुणकार कितना है ? आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

कषायमार्गणाके अनुसार अकषायी जीव सबमें स्तोक हैं ॥ १४५ ॥

सुगममेदं ।

माणकसाई अणंतगुणा ॥ १४६ ॥

गुणगारो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो अणंतगुणा । सेसं सुगमं ।

क्रोधकसाई विसेसाहिया ॥ १४७ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? अणंतो माणकसाईणं असंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ?
आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

मायकसाई विसेसाहिया ॥ १४८ ॥

एत्थ विसेसपमाणं पुवं व वत्तवं ।

लोभकसाई विसेसाहिया ॥ १४९ ॥

सुगमं ।

णाणाणुवादेण सव्वत्थोवा मणपज्जवणाणी ॥ १५० ॥

कुदो ? संखेज्जत्तादो ।

यह सूत्र सुगम है ।

अकषायी जीवोंसे मानकषायी जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १४६ ॥

गुणकार सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे अनन्तगुणा है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

मानकषायियोंसे क्रोधकषायी जीव विशेष अधिक हैं ॥ १४७ ॥

विशेष कितना है ? मानकषायी जीवोंके असंख्यातवें भाग अनन्तप्रमाण है ।
प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

क्रोधकषायियोंसे मायाकषायी जीव विशेष अधिक हैं ॥ १४८ ॥

यहां विशेषका प्रमाण पूर्वके समान कहना चाहिये ।

मायाकषायियोंसे लोभकषायी विशेष अधिक हैं ॥ १४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मनःपर्ययज्ञानी जीव सबमें स्तोक हैं ॥ १५० ॥

क्योंकि, वे संख्यात हैं ।

ओहिणाणी असंखेज्जगुणा ॥ १५१ ॥

गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्ग-
मूलाणि । कुदो ? संखेज्जरूवगुणिदआवलियाए असंखेज्जदिभागोवट्टिदपलिदोवम-
पमाणत्तादो ।

आभिणिवोहिय-सुदणाणी दो वि तुल्ला विमेसाहिया ॥१५२॥

को विमेसो ? ओहिणाणीणं असंखेज्जदिभागो ओहिणाणविग्गहिदतिरिक्ख-मणुम-
सम्माइट्टिरामी ।

विभंगणाणी असंखेज्जगुणा ॥ १५३ ॥

गुणगारो जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ सेडीओ । कुदो ?
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तपदरंगुलेहि ओवट्टिदजगपदरपमाणत्तादो ।

केवलणाणी अणंतगुणा ॥ १५४ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंसे अवधिज्ञानी असंख्यातगुणे हैं ॥ १५१ ॥

गुणकार पत्योपमके असंख्यातवें भाग असंख्यात पत्योपम प्रथम वर्गमूल है,
क्योंकि, वह संख्यात रूपोंसे गुणित आवलीके असंख्यातवें भागसे अपचर्तित पत्योपम-
प्रमाण है ।

अवधिज्ञानियोंसे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनों ही तुल्य विशेष
अधिक हैं ॥ १५२ ॥

विशेष क्या है ? अवधिज्ञानियोंके असंख्यातवें भाग अवधिज्ञानसे रहित तिर्यंच
ष मनुष्य सम्यग्दृष्टिराशि विशेष है ।

मात-श्रुतज्ञानियास विभंगज्ञानी असंख्यातगुणे हैं ॥ १५३ ॥

गुणकार जगप्रतरके असंख्यातवें भाग असंख्यात जगश्रेणी है, क्योंकि, वह
पत्यापमके असंख्यातवें भागमात्र प्रतरांगुलोंसे अपचर्तित जगप्रतरप्रमाण है ।

विभंगज्ञानियोंसे केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं ॥ १५४ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिर्हि अणंतगुणो सिद्धाणमसंखेज्जदिभागो ।

मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी दो वि तुल्ला अणंतगुणा ॥१५५॥

गुणगारो अभवसिद्धिर्हितो सिद्धेर्हितो सव्वजीवपढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो ।
कुदो ? केवलणाणीहि ओवट्टिदे देसुणसव्वजीवरासिपमाणत्तादो ।

संजमाण्णादेण सव्वत्थोवा संजदा ॥ १५६ ॥

कुदो ? संखेज्जत्तादो ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १५७ ॥

गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्ग-
मूलाणि । कुदो ? संखेज्जरूवगुणिदअसंखेज्जावलिओवट्टिदपलिदोवमपमाणत्तादो ।

णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अणंतगुणा
॥ १५८ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके असंख्यातवें भाग-
प्रमाण है ।

केवलज्ञानियोंसे मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञामी दोनों ही तुल्य अनन्तगुणे हैं
॥ १५५ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिकोंसे, सिद्धोंसे और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी
अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह केवलज्ञानियोंसे अपवर्तित कुछ कम सर्व जीवराशिप्रमाण है ।

संयममार्गणानुसार संयत जीव सबमें स्तोक हैं ॥ १५६ ॥

क्योंकि, वे संख्यात हैं ।

संयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणे हैं ॥ १५७ ॥

गुणकार पल्योपमके असंख्यातवें भाग असंख्यात पल्योपम प्रथम वर्गमूल है,
क्योंकि, वह संख्यात रूपोंसे गुणित असंख्यात आवलियोंसे अपवर्तित पल्योपमप्रमाण है ।

संयतासंयत जीवोंसे न संयत न असंयत न संयतासंयत ऐसे सिद्ध जीव
अनन्तगुणे हैं ॥ १५८ ॥

गुणगारो अभवसिद्धि एहि अणंतगुणो । कुदो ? असंखेज्जोवट्टिसिद्धप्पमाणत्तादो ।

असंजदा अणंतगुणा ॥ १५९ ॥

गुणगारो अणंताणि सब्बजीवपढमवग्गमूलाणि । कुदो ? सिद्धोवट्टिदेदेसूण-
सब्बजीवरासित्तादो । अण्णेण पयारेण अप्पावहुगपरूवणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

सब्बत्थोवा सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा ॥ १६० ॥

सुगमं ।

परिहारसुद्धिसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १६१ ॥

* गुणगारो संखेज्जसमया ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १६२ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

सामाइय-छेदोवट्टावणसुद्धिसंजदा दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा
॥ १६३ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह असंख्यातसे
(संयतासंयतोंसे) अपवर्तित सिद्धराशिप्रमाण है ।

सिद्धोंसे असंयत जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १५९ ॥

गुणकार अनन्त सर्व जीव प्रथम वर्गमूल है, क्योंकि वह सिद्धोंसे अपवर्तित
कुछ कम सर्व जीव राशिप्रमाण है । अन्य प्रकारसे अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र
कहते हैं—

सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयत जीव सबमें स्तोक हैं ॥ १६० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सूक्ष्मसाम्परायिक संयतोंसे परिहारशुद्धिसंयत संख्यातगुणे हैं ॥ १६१ ॥

गुणकार संख्यात समय है ।

परिहारशुद्धिसंयतोंसे यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीव संख्यातगुणे हैं ॥ १६२ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंसे सामायिकशुद्धिसंयत और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत
दोनों ही तुल्य संख्यातगुणे हैं ॥ १६३ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

संजदा विसेसाहिया ॥ १६४ ॥

सुगमं ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १६५ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अणंतगुणा
॥ १६६ ॥

को गुणगारो ? पुब्बं परूविदो ।

असंजदा अणंतगुणा ॥ १६७ ॥

सुगमं । संजमट्ठिर्दज्जीवाणमप्पाबहुअं भणिय तिव्व-मंद-मज्झिमभेएण ट्ठिदसंजमस्स
अप्पाबहुगपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

गुणकार क्या है ? संख्यात समय है ।

उक्त दोनों जीवोंसे संयत जीव विशेष अधिक हैं ॥ १६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणे हैं ॥ १६५ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

संयतासंयतोंसे न संयत न असंयत न संयतासंयत ऐसे सिद्ध जीव अनन्तगुणे
हैं ॥ १६६ ॥

गुणकार क्या है ? पूर्वप्ररूपित (अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा) गुणकार है ।

उनसे असंयत जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १६७ ॥

यह सूत्र सुगम है । संयममें स्थित जीवोंके अल्पबहुत्वको कहकर तीव्र, मन्द
व मध्यम भेदसे स्थित संयमके अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

सव्वत्थोवा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदस्स जहणिया चरित्तलद्धी ॥ १६८ ॥

एदं सव्वजहणं सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमस्स लद्धिट्ठाणं कस्स होदि ? मिच्छत्तं पडिवाज्जमाणसंजदस्स चरिमसमए । एदं सव्वजहणं पडिवादट्ठाणमार्दि कादूण छवट्ठिककमेण असंखेज्जलोगमेत्तेसु सामाइयच्छेदोवट्ठावणलद्धिट्ठाणेषु गदेसु तदो परिहारसुद्धिसंजदस्स पडिवादजहणलद्धिट्ठाणेण समानं सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमलद्धिट्ठाणं होदि । तदो दोणहं संजमाणं ठाणाणि छवट्ठीए णिरंतरमसंखेज्जलोगमेत्ताणि संजमलद्धिट्ठाणाणि गंतूण परिहारसुद्धिसंजमलद्धिट्ठाणमुक्कस्सं होदि । तदो तेसु तत्थेव थक्केसु पुणो उवरि णिरंतरछवट्ठिकमेण असंखेज्जलोगमेत्ताणि सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमलद्धिट्ठाणाणि गच्छंति । तदो असंखेज्जलोगमेत्ताणि छट्ठाणाणि अंतरिदूण सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजमस्स जहणं पडिवादलद्धिट्ठाणं होदि । तदो अणंतगुणाए वट्ठीए सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजमलद्धिट्ठाणाणि अंतोमुहुत्तं गंतूण थक्कंति । - किमट्ठमेदाणि अंतोमुहुत्त-

सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतकी जघन्य चरित्रलब्धि सवमें स्तोत्र है ॥ १६८ ॥

शंका—सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमका यह सर्वजघन्य लब्धिस्थान किसके होता है ?

समाधान—यह स्थान मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले संयतके अन्तिम समयमें होता है ।

इस सर्वजघन्य प्रतिपातस्थानको आदि करके षड्वृद्धिक्रमसे असंख्यात लोकमात्र सामायिक-छेदोपस्थापनालब्धिस्थानोंके व्यतीत होनेपर पश्चात् परिहारशुद्धिसंयतके प्रतिपात जघन्य लब्धिस्थानके समान सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयम लब्धिस्थान होता है । तत्पश्चात् दोनों संयमोंके स्थान छह वृद्धियोंके क्रमसे निरन्तर असंख्यात लोकमात्र संयमलब्धिस्थानोंको विताकर उत्कृष्ट परिहारशुद्धिसंयमलब्धिस्थान होता है । पश्चात् उनके वहीपर विश्रान्त होनेपर पुनः आगे निरन्तर छह वृद्धियोंके क्रमसे असंख्यात लोकमात्र सामायिकछेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमलब्धिस्थान जाते हैं । तत्पश्चात् असंख्यातलोकमात्र छह स्थानोंका अन्तर करके सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयमका जघन्य प्रतिपात लब्धिस्थान होता है । पश्चात् अनन्तगुणित वृद्धिसे सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयमलब्धिस्थान अन्तर्मुहूर्त जाकर थक जाते हैं ।

शंका—ये सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयमलब्धिस्थान अन्तर्मुहूर्तमात्र किस

प्पत्तीए । एसा परिहारसुद्धिसंजमलद्धी जहणिया कस्स होदि ? सव्वसंक्किलिड्डस्स सामाइयछेदोवट्ठावणाभिमुहचरिमसमयपरिहारसुद्धिसंजदस्स^१ ।

तस्सेव उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १७० ॥

कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीए ।

सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदस्स उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १७१ ॥

कुदो ? तत्तो उवरि असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि गंतूण सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमस्स उक्कस्सलद्धीए समुप्पत्तीदो । एसा कस्स होदि ? चरिमसमयअणियट्ठिस्स ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजमस्स जहणिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १७२ ॥

जाकर उत्पन्न हुई है ।

शंका—यह जघन्य परिहारशुद्धिसंयमलब्धि किसके होती है ?

समाधान—उक्त लब्धि सर्वसंक्लिष्ट सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमके अभिमुख हुए अन्तिमसमयवर्ती परिहारशुद्धिसंयतके होती है ।

उसी ही परिहारशुद्धिसंयतकी उत्कृष्ट चरित्रलब्धि अनन्तगुणी है ॥ १७० ॥

क्योंकि, उसकी उत्पत्ति असंख्यात लोकमात्र छह स्थान ऊपर जाकर है ।

सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतकी उत्कृष्ट चरित्रलब्धि अनन्तगुणी है ॥ १७१ ॥

क्योंकि, उससे ऊपर असंख्यात लोकमात्र छह स्थान जाकर सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमकी उत्कृष्ट लब्धिकी उत्पत्ति होती है ।

शंका—यह लब्धि किसके होती है ?

समाधान—अन्तिमसमयवर्ती अनिवृत्तिकरणके होती है ।

सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयमकी जघन्य चरित्रलब्धि अनन्तगुणी है ॥ १७२ ॥

१ प्रतिष्ठु ' संजमस्स ' इति पाठः ।

संजदाणं जीवप्पाबहुगसाहणडुमागदं । जस्स संजमस्स लद्धिड्डाणाणि बहुआणि तत्थ जीवा वि बहुआ चैव, जत्थ थोवाणि तत्थ थोवा चैव होंति त्ति । जदि एवं (तो) जहा-
क्खादविहारसुद्धिसंजदाणं सव्वत्थोवत्तं पसज्जदे, णिव्वियप्पेगसंजमलद्धिड्डाणत्तादो ? ण
एस दोसो, अद्धमस्सिदूण तेसिं बहुत्तुवदेसादो ।

दंसणाणुवादेण सव्वत्थोवा ओहिदंसणी ॥ १७५ ॥

कुदो ? पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागत्तादो ।

चक्खुदंसणी असंखेज्जगुणा ॥ १७६ ॥

गुणगारो जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ सेडीओ । कुदो ?
असंखेज्जपदरंगुलोवद्धिदजगपदरप्पमाणत्तादो ।

केवलदंसणी अणंतगुणा ॥ १७७ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो । कुदो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो-

समाधान—इस शंकाका उत्तर कहते हैं। संयत जीवोंके अल्पबहुत्वके साधनार्थ उक्त लब्धिस्थानोंका अल्पबहुत्व प्राप्त हुआ है। जिस संयमके लब्धिस्थान बहुत हैं उसमें जीव भी बहुत ही हैं, तथा जिस संयमके लब्धिस्थान थोड़े हैं उसमें जीव भी थोड़े ही हैं।

शंका - यदि ऐसा है तो यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंके सबमें स्तोत्रपनेका प्रसंग आवेगा, क्योंकि, उनके निर्विकल्प एक संयमलब्धिस्थान है।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, कालका आश्रय करके उनके बहुत होनेका उपदेश दिया गया है।

दर्शनमार्गणाके अनुसार अवधिदर्शनी सबमें स्तोत्र हैं ॥ १७५ ॥

क्योंकि, वे पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

चक्षुदर्शनी असंख्यातगुणे हैं ॥ १७६ ॥

गुणकार जगप्रतरके असंख्यातवें भाग असंख्यात जगश्रेणियां है, क्योंकि, वह असंख्यात प्रतरांगुलोंसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण है।

केवलदर्शनी अनन्तगुणे हैं ॥ १७७ ॥

गुणकार अभव्यासिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह जगप्रतरके

वट्टिसिद्धप्पमाणत्तादो ।

अचक्खुदंसणी अणंतगुणा ॥ १७८ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिहंतो' सिद्धेहंतो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो वि अणंत-
गुणो । कारणं सुगमं ।

लेस्साणुवादेण सव्वत्थोवा सुक्कलेस्सिया ॥ १७९ ॥

कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागप्पमाणत्तादो । तं पि कुदो ? सुट्ठु सुभलेस्साणं
समवाएण कत्थ वि केसिं पि संभवादो ।

पम्मलेस्सिया असंखेज्जगुणा ॥ १८० ॥

गुणगारो जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ सेडीओ । कुदो ? पलिदो-
वमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदपदरंगुलोवट्टिदजगपदरप्पमाणत्तादो ।

तेउलेस्सिया संखेज्जगुणा ॥ १८१ ॥

असंख्यातवें भागसे अपवर्तित सिद्धोंके बराबर हैं ।

केवलदर्शनियोंसे अचक्षुदर्शनी अनन्तगुणे हैं ॥ १७८ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिकों, सिद्धों तथा सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्त-
गुणा है । कारण सुगम है ।

लेश्यामार्गणाके अनुसार शुक्ललेश्यावाले सबमें स्तोक हैं ॥ १७९ ॥

क्योंकि, वे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

शंका—वह भी कैसे ?

समाधान—क्योंकि, अतिशय शुभ लेश्याओंका समुदाय कहींपर किन्हींके ही
सम्भव है ।

शुक्ललेश्यावालोंसे पद्मलेश्यावाले असंख्यातगुणे हैं ॥ १८० ॥

गुणकार जगप्रतरके असंख्यातवें भाग असंख्यात जगश्रेणी है, क्योंकि, वह
पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित प्रतरांगुलसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण है ।

पद्मलेश्यावालोंसे तेजोलेश्यावाले संख्यातगुणे हैं ॥ १८१ ॥

१ अप्रतौ ' अभवसिद्धिहं हि अणंतगुणेहंतो सिद्धेहंतो ' इति पाठः ।

कुदो ? पंचिदियतिरिक्खजोणिणीणं संखेज्जदिभागेण पम्मलेस्सियदच्चेण तेउ-
लेस्सियदच्चे भागे हिदे संखेज्जरूवोवलंभादो ।

अलेस्सिया अणंतगुणा ॥ १८२ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो । कारणं सुगमं ।

काउलेस्सिया अणंतगुणा ॥ १८३ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहिंतो मिद्धेहिंतो सच्चजीवपढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो ।
कारणं सुगमं ।

णीललेस्सिया विसेसाहिया ॥ १८४ ॥

केत्तियो विसेसो ? अणंतो काउलेस्सियाणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ?
आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

किण्णलेस्सिया विसेसाहिया ॥ १८५ ॥

केत्तियो विसेसो ? अणंतो णीललेस्सियाणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ?
आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमनियोंके संख्यातवें भागप्रमाण पद्मलेश्यावालोंके
द्रव्यका तेजोलेश्यावालोंके द्रव्यमें भाग देनेपर संख्यात रूप उपलब्ध होते हैं ।

तेजोलेश्यावालोंसे लेश्यारहित अर्थात् अयोगी व सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १८२ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा है । कारण सुगम है ।

अलेश्यिकोंसे कापोतलेश्यावाले अनन्तगुणे हैं ॥ १८३ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिकोंसे, सिद्धोंसे और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी
अनन्तगुणा है । कारण सुगम है ।

कापोतलेश्यावालोंसे नीललेश्यावाले विशेष अधिक हैं ॥ १८४ ॥

विशेष कितना है ? कापोतलेश्यावालोंके असंख्यातवें भाग अनन्त है । प्रतिभाग
क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

नीललेश्यावालोंसे कृष्णलेश्यावाले विशेष अधिक हैं ॥ १८५ ॥

विशेष कितना है ? विशेष अनन्त है जो नीललेश्यावालोंके असंख्यातवें भाग-
प्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

भवियाणुवादेण सव्वत्थोवा अभवसिद्धिया ॥ १८६ ॥

कुदो ? जहण्णजुत्ताणंतप्पमाणत्तादो ।

णेव भवसिद्धिया णेव अभवसिद्धिया अणंतगुणा ॥ १८७ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो । कारणं सुगमं ।

भवसिद्धिया अणंतगुणा ॥ १८८ ॥

सुगमं ।

सम्मत्ताणुवादेण सव्वत्थोवा सम्मामिच्छाइट्ठी ॥ १८९ ॥

सासणसम्माइट्ठी सव्वत्थोवा त्ति किण्ण परूविदं ? ण, विवरीयाहिणिवेसेण तेसिं समाणत्तं पडुच्च मिच्छाइट्ठीणमंतव्भावादो, भूदपुव्वियं णयं पडुच्च सम्माइट्ठीणमंतव्भावादो वा । सेसं सुगमं ।

सम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १९० ॥

गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कारणं सुगमं ।

भव्यमार्गणाके अनुसार अभव्यसिद्धिक जीव सबमें स्तोक हैं ॥ १८६ ॥

क्योंकि, वे जघन्य युक्तानन्तप्रमाण हैं ।

अभव्यसिद्धिकोंसे न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक ऐसे सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १८७ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिकोंसे अनन्तगुणा है । कारण सुगम है ।

उक्त जीवोंसे भव्यसिद्धिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्मिध्यादृष्टि जीव सबमें स्तोक हैं ॥ १८९ ॥

शंका — सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबमें स्तोक हैं, ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विपरीताभिनिवेशसे उनकी समानताकी अपेक्षा कर मिध्यादृष्टियोंमें अन्तर्भाव हो जाता है, अथवा भूतपूर्व नयका आश्रयकर सम्यग्दृष्टियोंमें उनका अन्तर्भाव हो जाता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सम्यग्मिध्यादृष्टियोंसे सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात गुणे हैं ॥ १९० ॥

गुणकार आषलीका असंख्यातवां भाग है । कारण सुगम है ।

सिद्धा अणंतगुणा ॥ १९१ ॥

सुगमं ।

मिच्छाइट्टी अणंतगुणा ॥ १९२ ॥

एदं पि सुगमं । अण्णेण पयारेण सम्मत्तप्पावहुगपरूवणद्धमुत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वत्थोवा सासणसम्माइट्टी ॥ १९३ ॥

सुगमं ।

सम्मामिच्छाइट्टी संखेज्जगुणा ॥ १९४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा ससया ।

उवसमसम्माइट्टी असंखेज्जगुणा ॥ १९५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

खइयसम्माइट्टी असंखेज्जगुणा ॥ १९६ ॥

गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

सम्यग्दृष्टियोंसे सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सिद्धोंसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणे हैं ॥ १९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है । अन्य प्रकारसे सम्यक्त्वमार्गणामें अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

सासादनसम्यग्दृष्टि सबमें स्तोक हैं ॥ १९३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणे हैं ॥ १९४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं ॥ १९५ ॥

गुणकार क्या है । आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे श्रायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं ॥ १९६ ॥

गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है ।

वेदगसम्माइट्टी असंखेज्जगुणा ॥ १९७ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

सम्माइट्टी विसेसाहिया ॥ १९८ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? उवसम-खइयसम्माइट्टिमेत्तो ।

सिद्धा अणंतगुणा ॥ १९९ ॥

सुगमं ।

सण्णियाणुवादेण सव्वत्थोवा सण्णी ॥ २०० ॥

कुदो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागप्पमाणत्तादो ।

णेव सण्णी णेव असण्णी अणंतगुणा ॥ २०१ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो । कारणं सुगमं ।

असण्णी अणंतगुणा ॥ २०२ ॥

सुगमं ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं ॥ १९७ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्दृष्टि विशेष अधिक हैं ॥ १९८ ॥

विशेष कितना है ? उपशमसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके बराबर है ।

सम्यग्दृष्टियोंसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं ॥ १९९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञिमार्गणाके अनुसार संज्ञी जीव सबमें स्तोक हैं ॥ २०० ॥

क्योंकि, वे जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

संज्ञी जीवोंसे न संज्ञी न असंज्ञी ऐसे जीव अनन्तगुणे हैं ॥ २०१ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है । कारण सुगम है ।

उक्त जीवोंसे असंज्ञी जीव अनन्तगुणे हैं ॥ २०२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहाराणुवादेण सव्वत्थोवा अणाहारा अबंधा ॥ २०३ ॥

कुदो ? सिद्धाजोगीणं गहणादो ।

बंधा अणंतगुणा ॥ २०४ ॥

गुणगारो अणंताणि सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलाणि । कुदो ? सव्वजीवाणम-
संखेज्जदिभागस्स अणंतभागत्तादो ।

आहारा असंखेज्जगुणा ॥ २०५ ॥

गुणगारो अंतोमुहुत्तं । कुदो ? बंधगअणाहारदव्वेण आहारदव्वे भागे हिदे
अंतोमुहुत्तुवलंभादो ।

एवमप्यावहुगेत्ति समत्तगणिओगद्वारं ।

आहारमार्गणाके अनुसार अनाहारक अबन्धक जीव सर्वमें स्तोक हैं ॥ २०३ ॥

क्योंकि, यहां सिद्धों और अयोगी जीवोंका ग्रहण किया गया है ।

अनाहारक अबन्धकोंसे अनाहारक बंधक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ २०४ ॥

गुणकार सर्व जीवोंके अनन्त प्रथम वर्गमूल हैं, क्योंकि, सर्व जीवोंके असंख्यातवें
भागके अनन्तभागत्व है । अर्थात् अनाहारक बंधक जीव सर्व जीव राशिके असंख्यातवें
भाग हैं और अनाहारक अबंधक अनन्तवें भाग हैं । अतएव उन दोनोंके बीच गुणकारका
प्रमाण अनन्त होगा ही ।

अनाहारक बंधकोंसे आहारक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ २०५ ॥

गुणकार अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, बन्धक अनाहारक द्रव्यका आहारक द्रव्यमें
भाग देनेपर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है ।

इस प्रकार अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

महादंडओ

एत्तो सव्वजीवेसु महादंडओ कादंव्वो भवदि ॥ १ ॥

समत्तेसु एक्कारसअणियोगहारेसु किमट्टमेसो महादंडओ वोत्तुमाटत्तओ ?
वुच्चदे— खुद्दाबंधस्स एक्कारसअणियोगहारिणबद्धस्स' चूलियं काऊण महादंडओ वुच्चदे ।
चूलिया णाम किं ? एक्कारसअणियोगहारेसु सुइदत्थस्स विसेसियूण परूवणा चूलिया ।
जदि एवं तो णेसो महादंडओ चूलिया, अण्पाबहुगणिओगहारसुइदत्थं मोत्तूणणत्थ
वुत्तत्थाणमपरूवणादो त्ति वुत्ते वुच्चदे— ण च एसो णियमो अत्थि सव्वाणिओगहार-
सुइदत्थाणं विसेसपरूविया चैव चूलिया त्ति, किंतु एककेण दोहि सव्वेहि वा अणि-
ओगहारोहि सुइदत्थाणं विसेसपरूवणा चूलिया णाम । तेणेसो महादंडओ चूलिया चैव,

इससे आगे सर्व जीवोंमें महादण्डक करना योग्य है ॥ १ ॥

शंका—ग्यारह अनुयोगद्वारोंके समाप्त होनेपर इस महादण्डकको कहनेका प्रारंभ किसलिये किया जाता है ?

समाधान—उपर्युक्त शंकाका उत्तर देते हैं— ग्यारह अनुयोगद्वारोंमें निबद्ध क्षुद्रबन्धकी चूलिका करके महादण्डक कहते हैं ।

शंका—चूलिका किसे कहते हैं ?

समाधान—ग्यारह अनुयोगद्वारोंसे सूचित अर्थकी विशेषता कर प्ररूपणा करना चूलिका कही जाती है ।

शंका—यदि ऐसा है तो यह महादण्डक चूलिका नहीं कहा जा सकता, क्योंकि, यह अल्पबहुत्वानुयोगद्वारसे सूचित अर्थको छोड़कर अन्य अनुयोगद्वारोंमें कहे गये अर्थोंका अपरूपक है ?

समाधान—सर्व अनुयोगद्वारोंसे सूचित अर्थोंकी विशेष प्ररूपणा करनेवाली ही चूलिका हो यह कोई नियम नहीं है, किन्तु एक दो अथवा सब अनुयोगद्वारोंसे सूचित अर्थोंकी विशेष प्ररूपणा करना चूलिका है । इसलिये यह महादण्डक चूलिका

अप्पाबहुगसूइदत्थस्स विसेसिऊण परूवणादो । एवं पओजणसुत्तं परूविय पयदत्थ-
परूवणद्धमुत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वत्थोवा मणुसपज्जत्ता गबभोवक्कंतिया' ॥ २ ॥

गबभजा मणुस्सा पज्जत्ता उवरि बुच्चमाणसव्वरासीओ पेक्खिऊण थोवा
होति । कुदो ? विस्ससादो । एदे केत्तिया गबभोवक्कंतिया ? मणुस्साणं चदुब्भागो ।

मणुसिणीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ३ ॥

को गुणगारो ? तिण्णि रूवाणि । कुदो ? मणुस्सगबभोवक्कंतियचदुब्भागेण
पज्जत्तदव्वेण तस्सेव तिसु चदुब्भागेसु ओवट्ठिदेसु तिण्णिरूवोवलंभादो ।

सव्वट्ठिसिद्धिविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । के वि आइरिया मत्त रूवाणि, के वि पुण

ही है, क्योंकि, वह अल्पबहुत्वानुयोगद्वारसे सूचित अर्थकी विशेषताकर प्ररूपणा करता
है । इस प्रकार प्रयोजनसूत्रको कहकर प्रकृत अर्थके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

मनुष्य पर्याप्त गर्भोपक्रान्तिक सबमें स्तोक हैं ॥ २ ॥

गर्भज मनुष्य पर्याप्त आगे कहीं जानेवाली सब राशियोंकी अपेक्षा स्तोक हैं,
क्योंकि, ऐसा स्वभावसे है ।

शंका—ये गर्भोपक्रान्तिक कितने हैं ?

समाधान—मनुष्योंके चतुर्थ भागप्रमाण हैं ।

पर्याप्त मनुष्योंसे मनुष्यिनियां संख्यातगुणी हैं ॥ ३ ॥

गुणकार कितना है ? गुणकार तीन रूप है, क्योंकि मनुष्य गर्भोपक्रान्तिकोंके
चतुर्थ भागप्रमाण पर्याप्त द्रव्यसे उसके ही तीन चतुर्थ भागोंका अपवर्तन करनेपर
तीन रूप उपलब्ध होते हैं ।

मनुष्यिनियोंसे सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । कोई आचार्य सात रूप, कोई

१ थोवा गबभयमणुया तत्तो इत्थीओ निधमणियाओ । नायरतेउक्काया तासिमसंखेज्ज पज्जत्ता ॥

चत्वारि रूवाणि के वि सामणेण संखेज्जाणि रूवाणि गुणमारो ति भणंति । तेनेत्थ गुणगारे तिण्णि उवएसा । तिण्णं मज्जे एक्को च्चिय जच्चोवएसो, सो वि ण णव्वद्द, विसिट्ठोवएसामावादो । तम्हा तिण्हं पि संगहो कायव्वो ।

बादरतेउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५ ॥

गहमग्गणमुल्लंघिय मग्गणंतरगमणादो असंबद्धमिदं सुत्तं ? ण, अप्पिदमग्गणं मोत्तूण अण्णमग्गणाणमग्गणणियमस्स एक्कारसअणिओगहारेसु च्चैव अवट्ठणादो । एत्थ पुण ण सो णियमो अत्थि, सव्वमग्गणजीवेसु महादंडओ कायव्वो ति अब्भुवगमादो । को गुणमारो ? असंखेज्जाओ पदरावलियाओ । कुदो ? सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं बादरतेउपज्जत्तरासिम्हि भागे हिदे असंखेज्जाणं पदरावलियाणमुवलंभादो ।

अणुत्तरविजय-वैजयंत-(जयंत-)अवराजितविमाणवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ ६ ॥

चार रूप और कितने ही आचार्य सामान्यसे संख्यात रूप गुणकार है, ऐसा कहते हैं । इसलिये यहां गुणकारके विषयमें तीन उपदेश हैं । तीनोंके मध्यमें एक ही जात्य (श्रेष्ठ) उपदेश है, परन्तु वह जाना नहीं जाता, क्योंकि, इस विषयमें विशिष्ट उपदेशका अभाव है । इस कारण तीनोंका ही संग्रह करना चाहिये ।

बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ५ ॥

शंका—गति मार्गणाका उल्लंघन कर मार्गणान्तरमें जानेसे यह सूत्र असम्बद्ध है ?

समाधान—यह ठीक नहीं, क्योंकि, विवक्षित मार्गणाको छोड़कर अन्य मार्गणाओंमें न जानेका नियम ग्यारह अनुयोगद्वारोंमें ही अवस्थित है । किन्तु यहां वह नियम नहीं है, क्योंकि, ' सर्व मार्गणाजीवोंमें महादण्डक करना चाहिये ' ऐसा माना गया है ।

गुणकार क्या है ? असंख्यात प्रतरावलियां गुणकार है, क्योंकि, सर्वार्थसिद्धि-विमानवासी देवोंसे बादर तेजस्कायिक पर्याप्त राशिके भाजित करनेपर असंख्यात प्रतरावलियां उपलब्ध होती हैं ।

अनुत्तरोमें विजय, वैजयन्त, (जयन्त) और अपराजित विमानवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६ ॥

१ प्रतिष्ठा ' सव्वट्ठसिद्धिदेवेहि ' इति पाठः ।

२ ततो षुत्तरदेवा ततो संखेज्ज जाणओ कप्पो । ततो असंखगुणिया सत्तम क्ख्हा सहस्सारो ॥ पं. सं. २, ६६.

किमद्वं देवविसेसणं ? तत्थतणपुढविकाइयादिपडिसेहद्वं । गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि पलिदोवमपटमवग्गमूलाणि । कुदो ? बादरतेउकाइय-पज्जत्तदव्वेण गुणितत्थतणअवहारकालेण ओवट्टिदपलिदोवमपमाणत्तादो ।

अणुदिसविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ७ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया । कुदो ? मणुस्सेहितो अणुत्तरेसुपज्जमाणजीवे पेक्खिदूण तेहितो चेअ अणुदिसविमाणवासियदेवेषुपज्जमाणणं जीवाणं संखेज्जगुणाण-मुवलंभादो, विस्ससादो वा ।

उवरिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ८ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया । कारणं पुव्वं व परूवेदव्वं ।

उवरिममज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ९ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । कारणं सुगमं ।

शंका—यहां ' देव ' विशेषण किस लिये है ?

समाधान—वहांके पृथिवीकायिकादि जीवोंके प्रतिषेधार्थ ' देव ' विशेषण दिया गया है ।

गुणकार पल्योपमके असंख्यातवें भाग असंख्यात पल्योपम प्रथम वर्गमूल है, क्योंकि, वह बादर तेजस्कायिक पर्याप्त द्रव्यसे गुणित वहांके अवहारकालसे अपवर्तित पल्योपम प्रमाण है ।

अनुदिशविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ७ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, मनुष्योंमेंसे अनुत्तरोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा उनमेंसे ही अनुदिशविमानवासी देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीव संख्यातगुणे पाये जाते हैं, अथवा विजयादि अनुत्तरविमानवासी देवोंसे अनुदिशविमानवासी देव स्वभावसे ही संख्यातगुणे हैं ।

उपरिम-उपरिमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ८ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । कारण पूर्वके समान कहना चाहिये ।

उपरिम-मध्यमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ९ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । कारण सुगम है ।

उवरिमहेट्टिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । कुदो ? अप्पपुण्णाणं जीवाणं बहुआणं संभवादो ।

मज्झिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ११ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । कुदो ? अप्पाउआणं जीवाणं बहुआणमुवलंभादो ।

मज्झिममज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १२ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । कुदो ? सच्चत्थ मंदपुण्णजीवाणं बहुत्तुवलंभादो ।

मज्झिमहेट्टिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १३ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । कुदो ? मंदतवाणं बहुआणमुवलंभादो ।

हेट्टिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । कारणं सुगमं ।

उपरिम-अधस्तनग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, अल्प पुण्यवाले जीव बहुत सम्भव हैं ।

मध्यम-उपरिमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ११ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, अल्पायु जीव बहुत पाये जाते हैं ।

मध्यम-मध्यमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १२ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, सर्वत्र मन्द पुण्यवाले जीवोंकी बहुलता पायी जाती है ।

मध्यम-अधस्तनग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १३ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, मन्द तपवाले जीव बहुत पाये जाते हैं ।

अधस्तन-उपरिमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । कारण सुगम है ।

हेट्टिममज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १५ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया । कारणं पुवं व वत्तवं ।

हेट्टिमहेट्टिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १६ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

आरणच्चुदकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १७ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया । कारणं सुगमं ।

आणद-पाणदकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १८ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

सत्तमाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ १९ ॥

को गुणगारो ? सेडीए असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि सेडीपढमवग्गमूलाणि ।
कुदो ? आणद-पाणदद्वेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण सेडिविदियवग्गमूलं गुणेदूण
सेडिमोवड्ढिदे गुणगारुवलद्धीदो ।

अधस्तन-मध्यमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १५ ॥

गुणकार क्या हैं ? संख्यात समय गुणकार है । कारण पूर्वके समान कहना
चाहिये ।

अधस्तन-अधस्तनग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १६ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

आरण-अच्युतकल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १७ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । कारण सुगम है ।

आनत-प्राणतकल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १८ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

सप्तम पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ १९ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यात जगश्रेणी
प्रथम वर्गमूल गुणकार है, क्योंकि, पत्थोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण आनत-प्राणत
कल्पके द्रव्यसे जगश्रेणीके द्वितीय वर्गमूलको गुणितकर जगश्रेणीको अपवर्तित करनेपर
उक्त गुणकार उपलब्ध होता है ।

छट्टीए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ २० ॥

को गुणगारो ? सेडितदियवग्गमूलं ।

सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ २१ ॥

को गुणगारो ? सेडिचउत्थवग्गमूलं ।

सुक्क-महासुक्ककप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ २२ ॥

को गुणगारो ? सेडिपंचमवग्गमूलं ।

पंचमपुढविणेरइया असंखेज्जगुणा ॥ २३ ॥

को गुणगारो ? सेडिछट्टवग्गमूलं ।

लंतव-काविट्टकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ २४ ॥

को गुणगारो ? सेडिसत्तमवग्गमूलं ।

छठी पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ २० ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका तृतीय वर्गमूल गुणकार है ।

शतार-सहस्सारकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ २१ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका चतुर्थ वर्गमूल गुणकार है ।

शुक्र-महाशुक्रकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ २२ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका पंचम वर्गमूल गुणकार है ।

पंचम पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ २३ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका छठा वर्गमूल गुणकार है ।

लान्तव-कापिष्ठकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ २४ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका सातवां वर्गमूल गुणकार है ।

१ सुक्कमि पंचमाए लंतय चोत्थीए बंम तच्चाए । माहिंद-सणकुमारो दोच्चाए सुच्छिमा मण्णवा ॥
पं. सं. २, ६६.

२ प्रतिष्ठा ' पंचमहापुढवी- ' इति पाठः ।

चउत्थीए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ २५ ॥

को गुणगारो ? सेडिअट्टमवग्गमूलं ।

बम्ह-बम्हुत्तरकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ २६ ॥

को गुणगारो ? सेडिनवमवग्गमूलं ।

तदियाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ २७ ॥

को गुणगारो ? सेडिदसमवग्गमूलं ।

माहिंदकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ २८ ॥

को गुणगारो ? सेडिएककारसवग्गमूलस्स संखेज्जदिभागो । सणक्कुमार-माहिंद-दव्वमेगट्टं करिय किण्ण परूविदं ? ण, जहा पुच्चिल्लाणं दोण्हं दोण्हं कप्पाणमेको च्चिय सामी होदि, तथा एत्थ दोण्हं कप्पाणमेक्को चेव सामी ण होदि त्ति जाणावणट्टं पुध णिहेसादो ।

सणक्कुमारकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ २९ ॥

चतुर्थ पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ २५ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका आठवां वर्गमूल गुणकार है ।

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ २६ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका नौवां वर्गमूल गुणकार है ।

तृतीय पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ २७ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका दशवां वर्गमूल गुणकार है ।

माहेन्द्रकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ २८ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीके ग्यारहवें वर्गमूलका संख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्पके द्रव्यको इकट्ठा कर क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, जिस प्रकार पूर्वोक्त दो दो कल्पोंका एक ही स्वामी होता है, उस प्रकार यहां दो कल्पोंका एक ही स्वामी नहीं होता, इस बातके ज्ञापनार्थ पृथक् निर्देश किया है ।

सानत्कुमारकल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ २९ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समय। कुदो ? उत्तरदिसं मोत्तण सेसासु तसि दिसासु
द्विदसेडीबद्ध-पइणयसण्णिदविमाणेसु सत्विदएसु च णिवसंतदेवाणं गहणादो ।

विदियाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ ३० ॥

को गुणगारो ? सेडिबारसवग्गमूलं सुवसंखेज्जदिभागब्भहियं ।

मणुसा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ३१ ॥

को गुणगारो ? सेडिबारसवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ?
मणुसअपज्जत्तअवहारकालो पडिभागो ।

ईसाणकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ ३२ ॥

को गुणगारो ? सूचिअंगुलस्स संखेज्जदिभागो ।

देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ३३ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, उत्तर दिशाको छोड़कर
शेष तीन दिशाओंमें स्थित श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नामके विमानोंमें तथा सब इन्द्रक
विमानोंमें रहनेवाले देवोंका ग्रहण किया गया है ।

द्वितीय पृथिवीके नारकी जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३० ॥

गुणकार क्या है ? अपने संख्यातवें भागसे अधिक जगश्रेणीका बारहवां वर्गमूल
गुणकार है ।

मनुष्य अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ३१ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीके बारहवें वर्गमूलका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।
प्रतिभाग क्या है ? मनुष्य अपर्याप्तोंका अवहारकाल प्रतिभाग है ।

ईशानकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३२ ॥

गुणकार क्या है ? सूच्यंगुलका संख्यातवां भाग गुणकार है ।

ईशानकल्पवासिनी देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ ३३ ॥

१ ईसाणे सव्वत्थ वि बत्तीसगुणाओ हांति देवीओ । संखेज्जा सोहम्मे तओ असंखा भवणवासी ॥
पं. सं. २, ६७.

को गुणगारो ? संखेज्जा समय। के वि आइरिया बत्तीस रूवाणि ति भणंति ।

सोधम्मकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ३४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समय।

देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ३५ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समय। बत्तीस रूवाणि वा ।

पढमाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ ३६ ॥

को गुणगारो ? सगसंखेज्जदिभागवभहियघणंगुलतदियवग्गमूलं ।

भवणवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ ३७ ॥

को गुणगारो ? घणंगुलविदियवग्गमूलस्स संखेज्जदिभागो ।

देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ३८ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया बत्तीसरूवाणि वा ।

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । कितने ही आचार्य गुणकार बत्तीस रूप है, ऐसा कहते हैं ।

सौधर्मकल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ३४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

सौधर्मकल्पवासिनी देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ ३५ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय या बत्तीस रूप गुणकार है ।

प्रथम पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ ३६ ॥

गुणकार क्या है । अपने संख्यातवै भागसे अधिक घनांगुलका तृतीय वर्गमूल गुणकार है ।

भवनवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३७ ॥

गुणकार क्या है ? घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलका संख्यातवां भाग गुणकार है ।

भवनवासिनी देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ ३८ ॥

गुणकार क्या हैं ? संख्यात समय या बत्तीस रूप गुणकार है ।

पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ ३९ ॥

को गुणगारो ? सेडीए असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि सेडिपढमवग्गमूलाणि ।
को पडिभागो ? भवणवासियविक्खंभसूचीए संखेज्जेहि भागेहि गुणिदपंचिंदियतिरिक्ख-
जोणिणिअवहारकालो पडिभागो ।

वाणवेंतरदेवा संखेज्जगुणा ॥ ४० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । एदम्हादो सुत्तादो जीवट्ठाणदव्ववक्खाणं ण
घडदि त्ति णव्वदे ।

देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ४१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया वत्तीसरूवाणि वा ।

जोदिसियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ४२ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । कुदो ? जोदिसियअवहारकालेण^१ भागे हिदे
संखेज्जरूवोवलंभादो ।

पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यच असंख्यातगुणे हैं ॥ ३९ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग असंख्यात जगश्रेणी प्रथम
वर्गमूल गुणकार हैं । प्रतिभाग क्या है ? भवनवासियोंकी विष्कम्भसूचीके संख्यात
बहुभागोंसे गुणित पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंका अवहारकाल प्रतिभाग है ।

वानव्यन्तर देव संख्यातगुणे हैं ॥ ४० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । इस सूत्रसे जीवस्थानका
द्रव्यव्याख्यान नहीं घटित होता, बेसा जाना जाता है । (देखो जीवस्थान-द्रव्य-
प्रमाणानुगम सूत्र ३५ की टीका) ।

वानव्यन्तर देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ ४१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय या वत्तीस रूप गुणकार है ।

ज्योतिषी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ४२ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, ज्योतिषी देवोंके
अवहारकालसे (वानव्यन्तर देवियोंके अवहारकालको) भाजित करनेपर संख्यात रूप
उपलब्ध होते हैं ।

१ प्रतिष्ठु '- काले ' इति पाठः ।

देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ४३ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया बत्तीसरूवाणि वा ।

चउरिंदियपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ४४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । कुदो ? पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागेण चउरिंदियपज्जत्तअवहारकालेण जोदिसियदेवीणमवहारकालभूदसंखेज्जपदरंगुलेसु ओवट्टिदेसु संखेज्जरूवोवलंभादो ।

पंचिंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४५ ॥

केत्तियो विसेसो ? चउरिंदियपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

वेइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४६ ॥

केत्तिओ विसेसो ? पंचिंदियपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

तीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४७ ॥

ज्योतिषी देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ ४३ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय या बत्तीसरूप गुणकार है ।

चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं ॥ ४४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, प्रतरांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके अवहारकालसे ज्योतिषी देवियोंके अवहारकाल-भूत संख्यात प्रतरांगुलोंके अपवर्तित करनेपर संख्यात रूप उपलब्ध होते हैं ।

पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४५ ॥

विशेष कितना है ? चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४६ ॥

विशेष कितना है ? पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४७ ॥

केत्तिओ विसेसो ? बेइंदियपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ?
आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

पंचिंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ४८ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? पदरंगुलस्स असंखेज्जदि-
भागेण पंचिंदियअपज्जत्तअवहारकालेण पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्ततेइंदियपज्जत्त-
अवहारकाले भागे हिदे आवलियाए असंखेज्जदिभागुवलंभादो ।

चउरिंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४९ ॥

केत्तिओ विसेसो ? पंचिंदियअपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । तेसिं को पडिभागो ?
आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

तेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५० ॥

केत्तिओ विसेसो ? चउरिंदियअपज्जत्तअसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ?
आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

बेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५१ ॥

विशेष कितना है ? द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।
प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ४८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, प्रतरांगुलके
असंख्यातवें भागप्रमाण पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके अवहारकालसे प्रतरांगुलके संख्यातवें
भागमात्र त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके अवहारकालको भाजित करनेपर आवलीका
असंख्यातवां भाग उपलब्ध होता है ।

चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४९ ॥

विशेष कितना है ? पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है । उनका
प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

त्रीन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५० ॥

विशेष कितना है ? चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।
प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५१ ॥

केत्तिओ विसेसो ? तेइंदियअपज्जत्तअसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आव-
लियाए असंखेज्जदिभागो ।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता असंखेज्जगुणा' ॥५२॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो ? पलिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागोवट्ठिदपदरंगुलेण बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तअवहारकालेण
वेइंदियअपज्जत्तअवहारकाले भागे हिदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागोवलंभादो ।

**बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा पज्जत्ता असंखेज्जगुणा
॥ ५३ ॥**

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? हेट्ठिमदव्वस्स अवहार-
काले उवरिमदव्वस्स अवहारकालेण भागे हिदे आवलियाए असंखेज्जदिभागोवलंभादो ।

बादरपुढविपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५४ ॥

विशेष कितना है ? त्रीन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।
प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥५२ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि,
पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अपवर्तित प्रतरांगुलप्रमाण बादर वनस्पतिकायिक
प्रत्येकशरीर पर्याप्तोंके अवहारकालसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्तोंके अवहारकालको भाजित
करनेपर पल्योपमका असंख्यातवां भाग उपलब्ध होता है ।

बादर निगोदजीव निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ५३ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, अधस्तन
अर्थात् पूर्वोक्त द्रव्यके अवहारकालमें उपरिम अर्थात् प्रस्तुत द्रव्यके अवहारकालका भाग
देनेपर आवलीका असंख्यातवां भाग प्राप्त होता है ।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ५४ ॥

१ पज्जत्तवायरपत्तेयतरू असंखेज्ज इति णिगीयाओ । पुढवी आंऊ वाऊ वायरअपज्जत्ततेउ तओ ॥
पं. सं. २, ७२.

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

बादरआउपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

बादरवाउपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५६ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जाओ सेडीओ पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ ।

बादरतेउअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५७ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । तेसिमद्धछेदणाणि सागरोवमं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणयं ।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा'
॥ ५८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

बादर अप्कायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ५५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ५६ ॥

गुणकार क्या है ? प्रतरांगुलके असंख्यातवै भागमात्र असंख्यात जगश्रेणियां गुणकार है ।

बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ५७ ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । उनके अर्द्धछेद पत्योपमके असंख्यातवै भागसे हीन सागरोपमप्रमाण हैं ।

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ५८ ॥

१ बादरतरु निगोया पुढवी-जल-वाउ तेउ तो सुहुमा । ततो त्रिसेसअहिया पुढवी बल-पवणकाया उ ॥
पं. सं. २, ७३.

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । तेसिमद्धछेदणाणि पलिदोवमस्स असंखे-
ज्जदिभागो ।

बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा
॥ ५९ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखे-
ज्जदिभागो ।

बादरपुठविकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ६० ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-
भागो ।

बादरआउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ६१ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखे-
ज्जदिभागो ।

बादरवाउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ६२ ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके
असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

बादर निगोदजीव निगोदप्रतिष्ठित अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ५९ ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके
असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६० ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके
असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

बादर अप्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६१ ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके
असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६२ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखे-
ज्जदिभागो ।

सुहुमतेउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ६३ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । तेसिमद्वछेदणाणि असंखेज्जा लोगा । कधं
णव्वदे ? गुरूवदेसादो ।

सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ६४ ॥

केत्तिओ विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमतेउकाइयअपज्जत्ताणमसंखेज्जदि-
भागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमआउकाइयअपज्जत्ता^१ विसेसाहिया ॥ ६५ ॥

केत्तिओ विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमपुढविकाइयअपज्जत्ताणमसंखेज्जदि-
भागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । उनके अर्द्धच्छेद पत्त्योपमके
असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६३ ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । उनके अर्द्धच्छेद असंख्यात
लोक प्रमाण हैं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह गुरुके उपदेशसे जाना जाता है ।

सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६४ ॥

विशेष कितना है ? असंख्यात लोक है जो कि सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तोंके
असंख्यातवें भाग है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यातवां लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म अण्कायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६५ ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तोंके असंख्यातवें भाग
असंख्यात लोक विशेष है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

१ अ-आप्रलोः ' -पज्जत्ता ' इति पाठः, काप्रतौ तु सूत्रभेदनास्त्येव ।

सुहुमवाउकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ६६ ॥

केत्तियो विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमआउकाइयअपज्जत्ताणमसंखेज्जदि-
भागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमतेउकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणां ॥ ६७ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ६८ ॥

केत्तियो विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमतेउकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो ।
को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमआउकाइया पज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ६९ ॥

केत्तिओ विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदि-
भागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६६ ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म अण्कायिक पर्याप्तोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात
लोक विशेष है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं ॥ ६७ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६८ ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात
लोक विशेष है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म अण्कायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६९ ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात
लोक विशेष है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

१ संखेज्ज सुहुमपज्जत्त तेउ किंचि (च) हिय भू-जल-समीरा । तत्तो असंखगुणिया सुहुमनिगोया
अपज्जत्ता ॥ पं. सं. २, ७४.

सुहुमवाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ७० ॥

केत्तियो विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमआउकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जादिभागो ।
को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

अकाइया अणंतगुणा ॥ ७१ ॥

को गुणंगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो । सेसं सुगमं ।

बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्ता अणंतगुणा ॥ ७२ ॥

को गुणंगारो ? अभवसिद्धिएहितो सिद्धेहितो सव्वजीवपढमवग्गमूलादो वि
अणंतगुणो । कुदो ? असंखेज्जलोगगुणिदअकाइएहि ओवट्टिदसव्वजीवपमाणत्तादो ।

बादरवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ७३ ॥

को गुणंगारो ? असंखेज्जा लोगा ।

बादरवणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ७४ ॥

सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ७० ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म अण्कायिक पर्याप्तोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात
लोक विशेष है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

अण्कायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ७१ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धिकोंसे अनन्तगुणा गुणकार है । शेष सूत्रार्थ
सुगम है ।

बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ७२ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धिकोंसे, सिद्धोंसे और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे
भी अनन्तगुणा गुणकार है, क्योंकि, वह असंख्यात लोकसे गुणित अण्कायिक जीवोंसे
अपवर्तित सर्व जीवराशिप्रमाण है ।

बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ७३ ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । (देखो पुस्तक ३, पृ. ३६५)

बादर वनस्पतिकायिक विशेष अधिक हैं ॥ ७४ ॥

१ प्रतिषु ' संखेज्जा समयया ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' सुहुम-' इति पाठः ।

केत्तियो विसेसो ? बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्तमेत्तो ।

सुहुमवणप्फदिकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ७५ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमवणप्फदिकाइया पज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ७६ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

सुहुमवणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ७७ ॥

केत्तिओ विसेसो ? सुहुमवणप्फदिकाइयपज्जत्तमेत्तो ।

वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ७८ ॥

केत्तियो विसेसो ? बादरवणप्फदिकाइयमेत्तो ।

णिगोदजीवा विसेसाहिया ॥ ७९ ॥

केत्तिओ विसेसो ? बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरवाद्रणिगोदपदिट्ठिदमेत्तो ।

एवं सब्बजीवेषु महादंडओ समत्तो ।

एवं खुदाबंधो समत्तो ।

विशेष कितना है ? विशेष बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंके बराबर है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ७५ ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं ॥ ७६ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ७७ ॥

विशेष कितना है ? विशेष सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंके बराबर है ।

वनस्पतिकायिक विशेष अधिक हैं ॥ ७८ ॥

विशेष कितना है ? बादर वनस्पतिकायिक जीवोंके बराबर है ।

निगोदजीव विशेष अधिक हैं ॥ ७९ ॥

विशेष कितना है ? बादर निगोदप्रतिष्ठित बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंके बराबर है ।

इस प्रकार सब जीवोंमें महादण्डक समाप्त हुआ

इस प्रकार क्षुद्रकबंध समाप्त हुआ ।

पारिशिष्ट

१
बंधग-संतपरूवणा सुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	जे ते बंधगा णाम तेसिमिमो णिहेसो ।	१	१३	अकाइया अबंधा ।	१७
२	गइ इंदिए काए जोगे वेदे कसाए णाणे संजमे दंसणे लेस्साए भविए सम्मत्त सण्णि आहारए चेदि ।	६	१४	जोगाणुवादेण मणजोगि-वच्चि-जोगि-कायजोगिणो बंधा ।	”
३	गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया बंधा ।	७	१५	अजोगी अबंधा ।	”
४	तिरिक्खा बंधा ।	८	१६	वेदाणुवादेण इत्थिवेदा बंधा, पुरिसवेदा बंधा, णवुंसयवेदा बंधा ।	१८
५	देवा बंधा ।	”	१७	अवगदवेदा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ।	”
६	मणुसा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ।	”	१८	सिद्धा अबंधा ।	१९
७	सिद्धा अबंधा ।	”	१९	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई बंधा ।	”
८	इंदियाणुवादेण एइंदिया बंधा बीइंदिया बंधा तीइंदिया बंधा चदुरिंदिया बंधा ।	१५	२०	अकसाई बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ।	”
९	पंचिंदिया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ।	१६	२१	सिद्धा अबंधा ।	”
१०	अणिंदिया अबंधा ।	”	२२	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओधिणाणी मणपज्जवणाणी बंधा ।	२०
११	कायाणुवादेण पुढवीकाइया बंधा आउकाइया बंधा तेउकाइया बंधा वाउकाइया बंधा वणप्फदिकाइया बंधा ।	”	२३	केवलणाणी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ।	”
१२	तसकाइया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ।	१७	२४	सिद्धा अबंधा ।	”
			२५	संजमाणुवादेण असंजदा बंधा, संजदासंजदा बंधा ।	”

(२)

परि.शिष्ट

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२६	संजदा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ।		३४	णेव भवसिद्धिया णेव अभव- सिद्धिया अबंधा ।	२०
२७	णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अबंधा ।		३५	सम्मत्ताणुवादेण मिच्छादिट्ठी बंधा, सासणसम्मादिट्ठी बंधा, सम्मामिच्छादिट्ठी बंधा ।	२१
२८	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओधिदंसणी बंधा ।		३६	सम्मादिट्ठी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ।	"
२९	केवलदंसणी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ।		३७	सिद्धा अबंधा ।	२३
३०	सिद्धा अबंधा ।		३८	सणियाणुवादेण सण्णी बंधा, असण्णी बंधा ।	"
३१	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया बंधा ।		३९	णेव सण्णी णेव असण्णी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ।	"
३२	अलेस्सिया अबंधा ।		४०	सिद्धा अबंधा ।	"
३३	भवियाणुवादेण अभवसिद्धिया बंधा, भवसिद्धिया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ।		४१	आहाराणुवादेण आहारा बंधा ।	२४
			४२	अणाहारा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ।	"
			४३	सिद्धा अबंधा ।	"

सामित्ताणुगमसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	पदेसिं बंधयाणं परूवणट्टदाए तत्थ इमाणि एक्कारस अणियोगद्वाराणि णादव्वाणि भवंति ।	२५	भागाभागाणुगमो, अप्पाबहु- गाणुगमो चेदि ।		"
२	एगजीवेण सामित्तं, एगजीवेण कालो, एगजीवेण अंतरं, णाणाजीवेहि भंगविचओ, दव्वपरूवणाणुगमो, खेत्ताणुगमो, फोसणाणुगमो, णाणाजीवेहि कालो, णाणाजीवेहि अंतरं,		३	एयजीवेण सामित्तं ।	२८
			४	गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइओ णाम कधं भवदि ?	"
			५	णिरयगदिणामाए उदएण ।	३०
			६	तिरिक्खगदीए तिरिक्खो णाम कधं भवदि ?	३१
			७	तिरिक्खगदिणामाए उदएण ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
८	मणुसगदीए मणुसो णाम कथं भवदि ?	३१	३२	जोगाणुवादेण मणजोगी वच्चि-जोगी कायजोगी णाम कथं भवदि ?	७४
९	मणुसगदिणामाए उदएण ।	"	३३	खओवसमियाए लद्धीए ।	७५
१०	देवगदीए देवो णाम कथं भवदि ?	३२	३४	अजोगी णाम कथं भवदि ?	७८
११	देवगदिणामाए उदएण ।	"	३५	खइयाए लद्धीए ।	"
१२	सिद्धिगदीए सिद्धो णाम कथं भवदि ?	६०	३६	वेदाणुवादेण इत्थिवेदो पुरिस-वेदो णवुंसयवेदो णाम कथं भवदि ?	"
१३	खइयाए लद्धीए ।	"	३७	चरित्तमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण इत्थि-पुरिस-णवुंसय-वेदा ।	७९
१४	इंदियाणुवादेण एइंदिओ वीइं-दिओ तीइंदिओ चउरिंदिओ पंचिंदिओ णाम कथं भवदि ?	६१	३८	अवगदवेदो णाम कथं भवदि ?	८०
१५	खओवसमियाए लद्धीए ।	"	३९	उवसमियाए खइयाए लद्धीए ।	८१
१६	अणिदिओ णाम कथं भवदि ?	६८	४०	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभ-कसाई णाम कथं भवदि ?	८२
१७	खइयाए लद्धीए ।	"	४१	चरित्तमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण ।	८३
१८	कायाणुवादेण पुढविकाइओ णाम कथं भवदि ?	७०	४२	अकसाई णाम कथं भवदि ?	"
१९	पुढविकाइयणामाए उदएण ।	"	४३	उवसमियाए खइयाए लद्धीए ।	"
२०	आउकाइओ णाम कथं भवदि ?	७१	४४	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी णाम कथं भवदि ?	८४
२१	आउकाइयणामाए उदएण ।	"	४५	खओवसमियाए लद्धीए ।	८६
२२	तेउकाइओ णाम कथं भवदि ?	"	४६	केवलणाणी णाम कथं भवदि ?	८८
२३	तेउकाइयणामाए उदएण ।	"	४७	खइयाए लद्धीए ।	९०
२४	वाउकाइओ णाम कथं भवदि ?	७१	४८	संजमाणुवादेण-संजदे-सासाइम-	
२५	वाउकाइयणामाए उदएण ।	७२			
२६	वणप्फइकाइओ णाम कथं भवदि ?	"			
२७	वणप्फइकाइयणामाए उदएण ।	"			
२८	तसकाइओ णाम कथं भवदि ?	"			
२९	तसकाइयणामाए उदएण ।	"			
३०	अकाइओ णाम कथं भवदि ?	७३			
३१	खइयाए लद्धीए ।	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदो णाम कथं भवदि ?	९१	६६	णेव भवसिद्धिओ णेव अभवसिद्धिओ णाम कथं भवदि ?	”
४९	उवसमियाए खइयाए खओवसमियाए लद्धीए ।	९२	६७	खइयाए लद्धीए ।	१०६
५०	परिहारसुद्धिसंजदो संजदासंजदो णाम कथं भवदि ?	९४	६८	सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी णाम कथं भवदि ?	१०७
५१	खओवसमियाए लद्धीए ।	”	६९	उवसमियाए खइयाए खओवसमियाए लद्धीए ।	”
५२	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदो जहाक्खाद्विहारसुद्धिसंजदो णाम कथं भवदि ?	”	७०	खइयसम्माइट्ठी णाम कथं भवदि ?	”
५३	उवसमियाए खइयाए लद्धीए ।	९५	७१	खइयाए लद्धीए ।	१०८
५४	असंजदो णाम कथं भवदि ?	”	७२	वेदगसम्मादिट्ठी णाम कथं भवदि ?	”
५५	संजमघादीणं कम्माणमुदएण ।	”	७३	खओवसमियाए लद्धीए ।	”
५६	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी णाम कथं भवदि ?	९६	७४	उवसमसम्माइट्ठी णाम कथं भवदि ?	”
५७	खओवसमियाए लद्धीए ।	१०२	७५	उवसमियाए लद्धीए ।	”
५८	केवलदंसणी णाम कथं भवदि ?	१०३	७६	सासणसम्माइट्ठी णाम कथं भवदि ?	१०९
५९	खइयाए लद्धीए ।	”	७७	पारिणामिएण भावेण ।	”
६०	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिओ णीललेस्सिओ काउलेस्सिओ तेउलेस्सिओ पम्मलेस्सिओ सुक्कलेस्सिओ णाम कथं भवदि ?	१०४	७८	सम्मामिच्छादिट्ठी णाम कथं भवदि ?	११०
६१	ओदइएण भावेण ।	”	७९	खओवसमियाए लद्धीए ।	”
६२	अलेस्सिओ णाम कथं भवदि ?	१०५	८०	मिच्छादिट्ठी णाम कथं भवदि ?	१११
६३	खइयाए लद्धीए ।	१०६	८१	मिच्छत्तकम्मस्स उदएण ।	”
६४	भवियाणुवादेण भवसिद्धिओ अभवसिद्धिओ णाम कथं भवदि ?	”	८२	सण्णियाणुवादेण सण्णी णाम कथं भवदि ?	”
६५	पारिणामिएण भावेण ।	”	८३	खओवसमियाए लद्धीए ।	”
			८४	असण्णी णाम कथं भवदि ?	”
			८५	ओदइएण भावेण ।	११२

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
८६	णेव सण्णी णेव असण्णी णाम कथं भवदि ?		८९	ओदइएण भावेण ।	”
८७	खइयाए लद्धीए ।	”	९०	अणाहारो णाम कथं भवदि ?	११३
८८	आहाराणुवादेण आहारो णाम कथं भवदि ?	”	९१	ओदइएण भावेण पुण खइयाए लद्धीए ।	”

एगजीवेण कालाणुगमसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	एगजीवेण कालाणुगमेण गदि-याणुवादेण णिरयगदीए णेरइया-केवचिरं कालादो होंति ?	११४	११	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	१२१
२	जहण्णेण दसवस्ससहस्साणि ।	”	१२	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलपरियट्ठं ।	”
३	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोव-माणि ।	”	१३	पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरि-क्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणी केवचिरं कालादो होंति ?	१२२
४	पढमाए पुढवीए णेरइया केव-चिरं कालादो होंति ?	११५	१४	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतो-मुहुत्तं ।	”
५	जहण्णेण दसवाससहस्साणि	”	१५	उक्कस्सेण तिण्णि पालिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणभ्हहियाणि ।	”
६	उक्कस्सेण सागरोवमं ।	”	१६	पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केव-चिरं कालादो होंति ?	१२३
७	बिदियाए जाव सत्तमाए पुढ-वीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ?	११७	१७	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	”
८	जहण्णेण एक्क तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस सागरोवमाणि साद्विरेयाणि ।	११८	१८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१२४
९	उक्कस्सेण तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस तेत्तीसं साग-रोवमाणि ।	”	१९	(मणुसगदीए) मणुसा मणुस-पज्जत्ता मणुसिणी केवचिरं कालादो होंति ?	१२५
१०	तिरिक्खगदीए तिरिक्खो केव-चिरं कालादो होदि ?	१२१	२०	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतो-मुहुत्तं ।	”

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४८	बादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?	१३८	६७	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतो-मुहुत्तं ।	१४२
४९	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"	६८	उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणम्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं ।	"
५०	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	६९	पंचिंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?	१४३
५१	सुद्धुमेइंदिया केवचिरं कालादो होंति ?	"	७०	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"
५२	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"	७१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
५३	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।	"	७२	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति ?	"
५४	सुद्धुमेइंदिया पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?	१३९	७३	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	१४४
५५	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	७४	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।	"
५६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	७५	बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ-बादरवणप्फदिपत्तेय-सरीरा केवचिरं कालादो होंति ?	"
५७	सुद्धुमेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?	१४०	७६	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"
५८	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"	७७	उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी ।	"
५९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	७८	बादरपुढविकाइय-बादरआउ-काइय-बादरतेउकाइय-बादर-वाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?	१४५
६०	बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?	"	७९	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१४६
६१	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतो-मुहुत्तं ।	१४१	८०	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससह-स्साणि ।	"
६२	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ।	"	८१	बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ-बादरवणप्फदिपत्तेय-सरीरअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?	"
६३	बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?	"	८२	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"
६४	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"	८३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१४७
६५	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१४२			
६६	पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?	"			

(८)

परिशिष्ट

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
८४	सुहुमपुढविकाइया सुहुमभाउ- काइया सुहुमतेउकाइया सुहुम- वाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा पज्जत्ता अपज्जत्ता सुहुमेइंदियपज्जत्त- अपज्जत्ताणं भंगो ।	१४७	१००	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१५२
८५	वणप्फदिकाइया एइंदियाणं भंगो ।	१४८	१०१	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोग्गलपरियट्टं ।	"
८६	णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होति ?	"	१०२	ओरालियकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?	१५३
८७	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"	१०३	जहण्णेण एगसमओ ।	"
८८	उक्कस्सेण अड्डाइज्जपोग्गलपरियट्टं ।	"	१०४	उक्कस्सेण बावीसं वाससह- स्साणि देसूणाणि ।	"
८९	बादरणिगोदजीवा बादरपुढवि- काइयाणं भंगो ।	१४९	१०५	ओरालियमिस्सकायजोगी वेउ- व्वियकायजोगी आहारकाय- जोगी केवचिरं कालादो होदि ?	"
९०	तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता केवचिरं कालादो होति ?	"	१०६	जहण्णेण एगसमओ ।	"
९१	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतो- मुहुत्तं ।	"	१०७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१५४
९२	उक्कस्सेण बेसागरोवमसह- स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहि- याणि बेसागरोवमसहस्साणि ।	१५०	१०८	वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहा- रमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?	१५५
९३	तसकाइया अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होति ?	"	१०९	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
९४	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"	११०	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
९५	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	१११	कम्मइयकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?	"
९६	जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी केवचिरं कालादो होति ?	१५१	११२	जहण्णेण एगसमओ ।	१५६
९७	जहण्णेण एगसमओ ।	"	११३	उक्कस्सेण तिण्ण समया	"
९८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१५२	११४	वेदाणुवादेण इत्थिवेदा केव- चिरं कालादो होति ?	"
९९	कायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?	"	११५	जहण्णेण एगसमओ ।	"
			११६	उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ।	"
			११७	पुरिसवेदा केवचिरं कालादो होति ?	१५७
			११८	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
			११९	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं	"
			१२०	णवुंसयवेदा केवचिरं कालादो होति ?	१५८

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१२१	जहण्णेण एगसमओ ।	१५८	१४१	आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणी केवचिरं कालादो होदि ?	१६४
१२२	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखज्ज-पोग्गलपरियट्टं ।	”	१४२	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”
१२३	अवगद्वेदा केवचिरं कालादो हौति ?	१५९	१४३	उक्कस्सेण छावट्टिसागरो-वमाणि सादिरयाणि ।	”
१२४	उवसमं पडुच्च जहण्णेण एग-समओ ।	”	१४४	मणपज्जवणाणी केवलणाणी केवचिरं कालादो हौति ?	१६५
१२५	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	”	१४५	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१६६
१२६	खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ”	”	१४६	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ।	”
१२७	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ।	१६०	१४७	संजमाणुवादेण संजदा परि-हारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा केवचिरं कालादो हौति ?	”
१२८	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभ-कसाई केवचिरं कालादो होदि ?	”	१४८	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१६७
१२९	जहण्णेण एयसमओ ।	”	१४९	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ।	”
१३०	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१६१	१५०	सामाइय-छेदोवट्टावणसुद्धि-संजदा केवचिरं कालादो हौति ?	१६८
१३१	अकसाई अवगद्वेदभंगो ।	”	१५१	जहण्णेण एगसमओ ।	”
१३२	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी केवचिरं कालादो होदि ?	”	१५२	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ।	”
१३३	अणादिओ अपज्जवसिदो ।	१६२	१५३	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो हौति ?	”
१३४	अणादिओ सपज्जवसिदो ।	”	१५४	उवसमं पडुच्च जहण्णेण एग-समओ ।	१६९
१३५	सादिओ सपज्जवसिदो ।	”	१५५	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	”
१३६	जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिहेसो—जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”	१५६	खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	”
१३७	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।	”	१५७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	”
१३८	विभंगणाणी केवचिरं कालादो होदि ?	१६३	१५८	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो हौति ?	”
१३९	जहण्णेण एगसमओ ।	”	१५९	उवसमं पडुच्च जहण्णेण एग-समओ ।	१७०

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१६०	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१७०	सत्तसागरोवमाणि सादिरे-		
१६१	खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतो-		याणि ।		१७४
	मुहुत्तं ।	”	१८०	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्क-	
१६२	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ।	”	लेस्सिया केवचिरं कालादो		
१६३	असंजदा केवचिरं कालादो		होंति ?		”
	होंति ?	१७१	१८१	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”
१६४	अणादिओ अपज्जवसिदो ।	”	१८२	उक्कस्सेण बे-अट्टारस-तेत्तीस-	
१६५	अणादिओ सपज्जवसिदो ।	”	सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।		१७५
१६६	सादिओ सपज्जवसिदो ।	”	१८३	भवियाणुवादेण भवसिद्धिया	
१६७	जो सो सादिओ सपज्जवसिदो		केवचिरं कालादो होंति ?		१७६
	तस्स इमो णिदेसो— जहण्णेण		१८४	अणादिओ सपज्जवसिदो ।	”
	अंतोमुहुत्तं ।	”	१८५	सादिओ सपज्जवसिदो ।	१७७
१६८	उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियट्ठं		१८६	अभवियसिद्धिया केवचिरं	
	देसूणं ।	१७२	कालादो होंति ?		”
१६९	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी		१८७	अणादिओ अपज्जवसिदो ।	१७८
	केवचिरं कालादो होंति ?	”	१८८	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी	
१७०	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”	केवचिरं कालादो होंति ?		”
१७१	उक्कस्सेण बे सागरोवमसह-		१८९	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”
	स्साणि ।	”	१९०	उक्कस्सेण छावट्टिसागरो-	
१७२	अचक्खुदंसणी केवचिरं कालादो		वमाणि सादिरेयाणि ।		”
	होंति ?	१७३	१९१	खइयसम्माइट्ठी केवचिरं	
१७३	अणादिओ अपज्जवसिदो ।	”	कालादो होंति ?		१७९
१७४	अणादिओ सपज्जवसिदो ।	”	१९२	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”
१७५	ओधिदंसणी ओधिणाणीभंगो ।	”	१९३	उक्कस्सेण तेत्तीससागरो-	
१७६	केवलदंसणी केवलणाणीभंगो ।	१७४	वमाणि सादिरेयाणि ।		”
१७७	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-		१९४	वेदगसम्माइट्ठी केवचिरं	
	णीललेस्सिय-काउलेस्सिया		कालादो होंति ?		१८०
	केवचिरं कालादो होंति ?	”	१९५	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”
१७८	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	”	१९६	उक्कस्सेण छावट्टिसागरो-	
१७९	उक्कस्सेण तेत्तीस-सत्तारस-		वमाणि ।		”

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१९७	उवसमसम्मादिट्ठी सम्मा- मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होति ?	१८१	२०८	जहणणेण खुद्दाभवग्गहणं ।	१८४
१९८	जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।	"	२०९	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोग्गलपरियट्ठं ।	"
१९९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१८२	२१०	आहाराणुवादेण आहारा केव- चिरं कालादो होति ?	"
२००	सासणसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होति ?	"	२११	जहणणेण खुद्दाभवग्गहणं ति- समयूणं ।	"
२०१	जहणणेण एयसमओ ।	"	२१२	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदि- भागो असंखेज्जासंखेज्जाओ	"
२०२	उक्कस्सेण छावलियाओ ।	"		ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ ।	१८५
२०३	मिच्छादिट्ठी मदिअण्णाणीभंगो	१८३	२१३	अणाहारा केवचिरं कालादो होति ?	"
२०४	सण्णियाणुवादेण सण्णी केव- चिरं कालादो होति ?	"	२१४	जहणणेणेगसमओ ।	"
२०५	जहणणेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"	२१५	उक्कस्सेण तिण्णिण समयो ।	"
२०६	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ।	"	२१६	अंतोमुहुत्तं ।	"
२०७	असण्णी केवचिरं कालादो होति ?	१८४			

एगजीवेण अंतराणुगमसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	एगजीवेण अंतराणुगमेण गदि- याणुवादेण णिरयगदीए णेर- इयाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	१८७	६	जहणणेण खुद्दाभवग्गहणं ।	१८९
२	जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।	"	७	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ।	"
३	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोग्गलपरियट्ठं ।	१८८	८	पंचिदियतिरिक्खा पंचिदियतिरि- क्खपज्जत्ता पंचिदियतिरिक्ख- जोणिणी पंचिदियतिरिक्खअप- ज्जत्ता मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी मणुस- अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
४	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ।	"	९	जहणणेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"
५	तिरिक्खगदीए तिरिक्खाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ।	१९०	२६	उक्कस्समणंतकालमसंखेज्जा-पोग्गलपरियट्टं ।	१९५
११	देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	२७	णवगेवज्जविमाणवासियदेवाण-मंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
१२	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	२८	जहण्णेण वासपुधत्तं ।	१९६
१३	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ।	"	२९	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा-पोग्गलपरियट्टं ।	"
१४	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदि-सिय-सोधम्मीसाणकप्पवासिय-देवा देवगदिभंगो ।	१९१	३०	अणुदिस जाव अवराइदविमाण-वासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
१५	सणक्कुमार-माहिंदाणमंतरं केव-चिरं कालादो होदि ?	"	३१	जहण्णेण वासपुधत्तं ।	"
१६	जहण्णेण मुहुत्तपुधत्तं ।	"	३२	उक्कस्सेण बे सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।	"
१७	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा-पोग्गलपरियट्टं ।	१९२	३३	सव्वट्टुसिद्धिविमाणवासियदेवा-णमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	१९७
१८	बग्गहवग्गुत्तर-लांतवकाविट्टकप्प-वासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	३४	णत्थि अंतरं णिरंतरं ।	"
१९	जहण्णेण दिवसपुधत्तं ।	"	३५	इंदियाणुवादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	१९८
२०	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा-पोग्गलपरियट्टं ।	१९३	३६	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"
२१	सुक्कमहासुक्क-सदारसहस्सार-कप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	३७	उक्कस्सेण बेसागरोवमसह-स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणग्गहि-याणि ।	"
२२	जहण्णेण पक्खपुधत्तं ।	"	३८	बादरएइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताण-मंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	१९९
२३	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा-पोग्गलपरियट्टं ।	१९४	३९	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"
२४	आणदपाणद-आरणअच्चुदकप्प-वासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	४०	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।	"
२५	जहण्णेण मासपुधत्तं ।	"	४१	सुहुमेइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताण-मंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२००
		"	४२	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४३	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदि- भागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सपिणीओ ।	२००	५९	पोग्गलपरियट्टं ।	२०४
४४	बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय- पंचिंदियाणं तस्सेव पज्जत्त-अप- ज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२०१	६०	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि- पंचवचिजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
४५	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"	६१	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोग्गलपरियट्टं ।	"
४६	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोग्गलपरियट्टं ।	"	६२	कायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२०६
४७	कायाणुवादेण पुढाविकाइय- आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय- बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२०२	६३	जहण्णेण एगसमओ ।	"
४८	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"	६४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
४९	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोग्गलपरियट्टं ।	"	६५	ओरालियकायजोगी-ओरालिय- मिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२०७
५०	वणप्फदिकाइयणिगोदजीव-बादर- सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	६६	जहण्णेण एगसमओ ।	"
५१	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	२०३	६७	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोव- माणि सादिरेयाणि ।	"
५२	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।	"	६८	वेउव्वियकायजोगीणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि ?	२०८
५३	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरिर- पज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	६९	जहण्णेण एगसमओ ।	२०९
५४	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"	७०	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोग्गलपरियट्टं ।	"
५५	उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गल- परियट्टं ।	२०४	७१	वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
५६	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अप- ज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	७२	जहण्णेण दसवाससहस्साणि सादिरेयाणि ।	"
५७	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं	"	७३	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोग्गलपरियट्टं ।	२१०
५८	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-	"	७४	आहारकायजोगी-आहारमिस्स- कायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
			७५	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
			७६	उक्कस्सेण अद्दपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।	२११

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७७	कम्मइयकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२१२	९४	जहण्णेण एगसमओ ।	२१६
७८	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं ।	"	९५	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	२१७
७९	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ।	"	९६	अकसाई अवगद्वेदाण भंगो ।	"
८०	वेदानुवादेण इत्थिवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२१३	९७	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी-सुदअण्णाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
८१	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"	९८	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
८२	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलपरियट्टं ।	"	९९	उक्कस्सेण बेछावट्टिसागरोव-माणि ।	२१८
८३	पुरिसवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	१००	विभंगणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
८४	जहण्णेण एगसमओ ।	"	१०१	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	२१९
८५	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलपरियट्टं ।	२१४	१०२	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलपरियट्टं ।	"
८६	णवुंसयवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	१०३	आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मण-पज्जवणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
८७	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	१०४	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
८८	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ।	"	१०५	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।	२२०
८९	अवगद्वेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२१५	१०६	केवलणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२२१
९०	उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	"	१०७	णत्थि अंतरं णिरंतरं ।	"
९१	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।	"	१०८	संजमाणुवादेण संजद-सामा-इयछेदोवट्टावणसुद्धिसंजद-परि-हारसुद्धिसंजद-संजदासंजदाण-मंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
९२	खवगं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं ।	२१६	१०९	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	२२२
९३	कसायाणुवादेण कोधकसाई-माणकसाई-मायकसाई-लोभ-कसाईणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	११०	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१११	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजद-जहा- कखादविहारसुद्धिसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२२३		कालादो होदि ?	२२९
११२	उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	२२४	१२९	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
११३	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।	"	१३०	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोग्गलपरियट्टं ।	२३०
११४	खवगं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं ।	२२५	१३१	भवियाणुवादेण भवसिद्धिय- अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
११५	असंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	१३२	णत्थि अंतरं णिरंतरं ।	"
११६	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	१३३	सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि- वेदगसम्माइट्ठि-उवसमसम्मा- इट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२३१
११७	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ।	२२६	१३४	जहण्णेणंतोमुहुत्तं ।	"
११८	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी- णमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	१३५	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।	"
११९	जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ।	"	१३६	खइयसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२३२
१२०	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोग्गलपरियट्टं ।	२२७	१३७	णत्थि अंतरं णिरंतरं ।	"
१२१	अचक्खुदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	१३८	सासणसम्माइट्ठीणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि ?	"
१२२	णत्थि अंतरं णिरंतरं ।	"	१३९	जहण्णेण पलिदोवमस्स असं- खेज्जदिभागो ।	२३३
१२३	ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ।	"	१४०	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।	२३४
१२४	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।	२२८	१४१	मिच्छाइट्ठी मदिअण्णाणिभंगो ।	"
१२५	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय- णीललेस्सिय-काउलेस्सियाण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	१४२	सणियाणुवादेण सणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
१२६	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	१४३	जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ।	२३५
१२७	उक्कस्सेण तेत्तीससागरोव- माणि सादिरेयाणि ।	"	१४४	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोग्गलपरियट्टं ।	"
१२८	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्क- लेस्सियाणमंतरं केवचिरं				

(१६)

परिशिष्ट

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१४५	असण्णीणमंतरं कालादो होदि ?	केवचिरं २३५	१४९	मंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमयं ।	२३६ "
१४६	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	"	१५०	उक्कस्सेण तिण्णिणसमयं ।	"
१४७	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ।	"	१५१	अणाहारा कम्मइयकायजोगि- भंगो ।	"
१४८	आहाराणुवादेण आहाराण-				

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया णियमा अत्थि ।	२३७	८	बेइंदिय--तेइंदिय—चउरिंदिय- पंचिंदिय पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ।	२३९
२	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ।	"	९	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउ- काइया वणप्फदिकाइया णिगोद- जीवा वादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता वादरवणप्फदिकाइय- पत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ।	"
३	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचि- दियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्ख- पज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्ख- जोगिणी पंचिंदियतिरिक्खअप- ज्जत्ता मणुस्सगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीओ णियमा अत्थि ।	२३८	१०	जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरा- लियकायजोगी ओरालियमिस्स- कायजोगी बेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी णियमा अत्थि ।	२४०
४	मणुसअपज्जत्ता सिया अत्थि सिया णत्थि ।	"	११	वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहार- कायजोगी आहारमिस्सकाय- जोगी सिया अत्थि सिया णत्थि ।	"
५	देवगदीए देवा णियमा अत्थि ।	"			
६	एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्टसिद्धि विमाणवासियदेवेषु ।	"			
७	इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ।	२३९			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१२	वेदानुवादेण इत्थिवेदा पुरिस- वेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा णियमा अत्थि ।	२४०	१७	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओद्धिदंसणी केवलदंसणी णियमा अत्थि ।	२४२
१३	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभ- कसाई अकसाई णियमा अत्थि ।	"	१८	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक- लेस्सिया णियमा अत्थि ।	"
१४	पाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मण- पज्जवणाणी केवलणाणी णियमा अत्थि ।	२४१	१९	भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया णियमा अत्थि ।	"
१५	संजमाणुवादेण सामाइय-छेदो- वट्टावणसुद्धिसंजदा परिहार- सुद्धिसंजदा जहाक्खादविहार- सुद्धिसंजदा संजदासंजदा असं- जदा णियमा अत्थि ।	"	२०	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी वेदगसम्माइट्ठी (स्रइयसम्मा- इट्ठी) मिच्छाइट्ठी णियमा अत्थि ।	२४३
१६	सुहुमसांपराइयसंजदा सिया अत्थि सिया णत्थि ।	२४२	२१	उवसमसम्माइट्ठी (सासण-) सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी सिया अत्थि सिया णत्थि ।	"
			२२	सणियाणुवादेण सण्णी असण्णी णियमा अत्थि ।	"
			२३	आहाराणुवादेण आहारा अणा- हारा णियमा अत्थि ।	"

द्वपमाणाणुगमसुताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	द्वपमाणाणुगमेण गदियाणु- वादेण णिरयगदीए णेरइया द्वपमाणेण केवडिया ?	२४४	५	पदरस्स असंखेज्जादिभागो ।	२४५
२	असंखेज्जा ।	"	६	तासिं सेड्डीणं विक्खंभस्वी अंगुलवग्गमूलं विदियवग्गमूल- गुणिदेण ।	२४६
३	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसाप्पिणि- उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ।	"	७	एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ।	२४७
४	खेत्तेण असंखेज्जाओ सेड्डीओ ।	२४५	८	विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया द्वपमाणेण केवडिया ?	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
९	असंखेज्जा ।	२४८	२३	ज्जा दव्वपमाणेण केवडिया ?	२५४
१०	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि- उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ।	"	२४	असंखेज्जाहि ओस- प्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ।	२५५
११	खेत्तेण सेडीए असंखेज्जदि- भागो ।	२४९	२५	खेत्तेण सेडीए असंखेज्जदि- भागो ।	"
१२	तिस्से सेडीए आयामो असं- खेज्जाओ जोयणकोडीओ ।	"	२६	तिस्से सेडीए आयामो असं- खेज्जाओ जोयणकोडीओ ।	२५६
१३	पढमादियाणं सेडिवग्गमूलाणं संखेज्जाणमण्णोण्णभासो ।	"	२७	मणुस-मणुसअपज्जत्तएहि रूवं रूवापक्खित्तएहि सेडी अव- हिरदि अंगुलवग्गमूलं तदियवग्ग- मूलगुणिदेण ।	२५६
१४	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा दव्व- पमाणेण केवडिया ?	२५०	२८	मणुस्सपज्जत्ता मणुसिणीओ दव्वपमाणेण केवडिया ?	२५७
१५	अणंता ।	"	२९	कोडाकोडाकोडीए उवरिं कोडा- कोडाकोडाकोडीए हेट्टुदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्टुदो ।	"
१६	अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्स- प्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ।	२५१	३०	देवगदीए देवा दव्वपमाणेण केवडिया ?	२५९
१७	खेत्तेण अणंताणंता लोगा ।	"	३१	असंखेज्जा ।	"
१८	पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरि- क्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख- जोणिणी-पंचिंदियतिरिक्खअप- ज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?	२५२	३२	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओस- प्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ।	२६०
१९	असंखेज्जा ।	"	३३	खेत्तेण पदरस्स वेत्थप्पणंगुल- सदवग्गपडिभाएण ।	"
२०	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओस- प्पिणी-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ।	"	३४	भवणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ?	२६१
२१	खेत्तेण पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं- दियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदिय- तिरिक्खजोणिणि—पंचिंदिय- तिरिक्खअपज्जत्तएहि पदरम- वहिरदि देवअवहारकालादो असंखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणेण कालेण असंखेज्ज- गुणहीणेण कालेण ।	२५३	३५	असंखेज्जा ।	"
२२	मणुसगदीए मणुस्सा मणुसअप-		३६	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओस-	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	पिपिणि-उस्सपिणीहि अवहिरंति कालेण ।	२६१	५३	पलिदोवमस्स असंखेज्जादिभागो ।	२६६
३७	खेत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ ।	"	५४	एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतो- मुहुत्तेण ।	"
३८	पदरस्स असंखेज्जादिभागो ।	२६२	५५	सव्वट्टुसिद्धिविमाणवासियदेवा द्व्यपमाणेण केवडिया ?	२६७
३९	तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलं अंगुलवग्गमूलगुणिदेण ।	"	५६	असंखेज्जा ।	"
४०	वाणवेंतरदेवा द्व्यपमाणेण केवडिया ?	"	५७	इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता द्व्य- पमाणेण केवडिया ?	"
४१	असंखेज्जा ।	"	५८	अणंता ।	२६८
४२	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओस- पिपिणि-उस्सपिणीहि अवहिरंति कालेण ।	२६३	५९	अणंताणंताहि ओसपिपिणि-उस्स- पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ।	"
४३	खेत्तेण पदरस्स संखेज्जजोयण- सदवग्गपडिभाएण ।	"	६०	खेत्तेण अणंताणंता लोगा ।	"
४४	जोदिसिया देवा देवगदिभंगो ।	"	६१	बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय- पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अप- ज्जत्ता द्व्यपमाणेण केवडिया ?	२६९
४५	सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा द्व्यपमाणेण केवडिया ?	२६४	६२	असंखेज्जा ।	"
४६	असंखेज्जा ।	"	६३	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओस- पिपिणि-उस्सपिणीहि अवहिरंति कालेण ।	"
४७	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओस- पिपिणि-उस्सपिणीहि अवहिरंति कालेण ।	"	६४	खेत्तेण बीइंदिय-तीइंदिय-चउ- रिंदिय-पंचिंदिय तस्सेव पज्जत्त- अपज्जत्तेहि पदरं अवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जादिभाग- वग्गपडिभाएण अंगुलस्स संखे- ज्जादिभागवग्गपडिभाएण अंगु- लस्स असंखेज्जादिभागवग्ग- पडिभाएण ।	२७०
४८	खेत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ ।	२६५	६५	कायाणुवादेण पुढविकाइय- आउकाइय-तेउकाइय-चाउकाइय- बादरपुढविकाइय—बादरआउ- काइय-बादरतेउकाइय—बादर-	
४९	पदरस्स असंखेज्जादिभागो ।	"			
५०	तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलस्स वग्गमूलं विदियं तदियवग्गमूलगुणिदेण ।	"			
५१	सणक्कुमार जाव सदर-सह- स्सारकप्पवासियदेवा सत्तम- पुढवीभंगो ।	"			
५२	आणद जाव अवराइदविमाण- वासियदेवा द्व्यपमाणेण केव- डिया ?	२६६			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	वाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय- पत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइय—सुहुमआउ- काइय—सुहुमतेउकाइय—सुहुम- वाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अप- ज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?	२७०	७८	लोगस्स संखेज्जदिभागो ।	२७४
६६	असंखेज्जा लोगा ।	२७१	७९	वणप्फदिकाइय—णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?	२७५
६७	बादरपुढविकाइय—बादरआउ- काइय—बादरवणप्फदिकाइय- पत्तेयसरीरपज्जत्ता दव्वपमा- णेण केवडिया ?	”	८०	अणंता ।	”
६८	असंखेज्जा ।	”	८१	अणंताणंताहि ओसप्पिणि- उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ।	”
६९	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओस- प्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ।	२७२	८२	खेत्तेण अणंताणंता लोगा ।	२७६
७०	खेत्तेण बादरपुढविकाइय-बादर- आउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय- पत्तेयसरीरपज्जत्ताहि पदरम- वहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदि- भागवग्गपडिभाएण ।	”	८३	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अप- ज्जत्ता पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्त- अपज्जत्ताणं भंगो ।	”
७१	बादरतेउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?	”	८४	जोगाणुवादेण पंचमणजोगी तिण्णिवचिजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?	”
७२	असंखेज्जा ।	२७३	८५	देवाणं संखेज्जदिभागो ।	२७७
७३	असंखेज्जावलियवग्गो आव- लियघणस्स अंतो ।	”	८६	वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?	”
७४	बादरवाउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?	”	८७	असंखेज्जा ।	”
७५	असंखेज्जा ।	”	८८	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओस- प्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ।	”
७६	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओस- प्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ।	२७४	८९	खेत्तेण वचिजोगि-असच्चमोस- वचिजोगीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्ग- पडिभाएण ।	२७८
७७	खेत्तेण असंखेज्जाणि पदराणि ।	”	९०	कायजोगि-ओरालियकायजोगि- ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्म- इयकायजोगी दव्वपमाणेण केव- डिया ?	”
			९१	अणंता ।	”

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
९२	अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्स- प्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण । २७९		११२	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभ- कसाई द्व्वपमाणेण केव- डिया ?	२८४
९३	खेत्तेण अणंताणंता लोगा ।	”	११३	अणंता ।	”
९४	वेउव्वियकायजोगी द्व्वपमाणेण केवडिया ?	”	११४	अणंताणंताहि ओसप्पिणि- उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ।	”
९५	देवाणं संखेज्जदिभागो ।	”	११५	खेत्तेण अणंताणंता लोगा ।	”
९६	वेउव्वियमिस्सकायजोगी द्व्व- पमाणेण केवडिया ?	२८०	११६	अकसाई द्व्वपमाणेण केव- डिया ?	२८५
९७	देवाणं संखेज्जदिभागो ।	”	११७	अणंता ।	”
९८	आहारकायजोगी द्व्वपमाणेण केवडिया ?	”	११८	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी णवुंसयभंगो ।	”
९९	चदुवणं ।	”	११९	विभंगणाणी द्व्वपमाणेण केव- डिया ?	२८६
१००	आहारमिस्सकायजोगी द्व्व- पमाणेण केवडिया ?	”	१२०	देवेहि सादिरेयं ।	”
१०१	संखेज्जा ।	”	१२१	आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणी द्व्वपमाणेण केवडिया ?	”
१०२	वेदाणुवादेण इत्थिवेदा द्व्व- पमाणेण केवडिया ?	२८१	१२२	पलिदोवमस्स असंखेज्जदि- भागो ।	”
१०३	देवीहि सादिरेयं ।	”	१२३	पदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ।	२८७
१०४	पुरिसवेदा द्व्वपमाणेण केव- डिया ?	”	१२४	मणपज्जवणाणी द्व्वपमाणेण केवडिया ?	”
१०५	देवेहि सादिरेयं ।	२८२	१२५	संखेज्जा ।	”
१०६	णवुंसयवेदा द्व्वपमाणेण केव- डिया ?	”	१२६	केवलणाणी द्व्वपमाणेण केव- डिया ?	”
१०७	अणंता ।	”	१२७	अणंता ।	”
१०८	अणंताणंताहि ओसप्पिणि- उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ।	”	१२८	संजमाणुवादेण संजदा सामा- इयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा	”
१०९	खेत्तेण अणंताणंता लोगा ।	२८३			
११०	अवगद्वेदा द्व्वपमाणेण केव- डिया ?	”			
१११	अणंता ।	”			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	द्व्वपमाणेण केवडिया ?	२८८	१४६	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।	२९२
१२९	कोडिपुधत्तं ।	"	१४७	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय- णीललेस्सिय—काउलेस्सिया असंजदभंगो ।	"
१३०	परिहारसुद्धिसंजदा द्व्वपमा- णेण केवडिया ?	"	१४८	तेउलेस्सिया द्व्वपमाणेण केव- डिया ?	"
१३१	सहस्सपुधत्तं ।	"	१४९	जोदिसियदेवेहि सादिरयं ।	"
१३२	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा द्व्वपमाणेण केवडिया ?	"	१५०	पम्मलेस्सिया द्व्वपमाणेण केवडिया ?	२९३
१३३	सदपुधत्तं ।	"	१५१	सण्णिपांत्तियतिरिक्खजोणि- णीणं संखेज्जदिभागो ।	"
१३४	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा द्व्वपमाणेण केवडिया ?	२८९	१५२	सुक्कलेस्सिया द्व्वपमाणेण केवडिया ?	"
१३५	सदसहस्सपुधत्तं ।	"	१५३	पलिदोवमस्स असंखेज्जदि- भागो ।	"
१३६	संजदासंजदा द्व्वपमाणेण केवडिया ?	"	१५४	पदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ।	२९४
१३७	पलिदोवमस्स असंखेज्जदि- भागो ।	"	१५५	भवियाणुवादेण भवसिद्धिया द्व्वपमाणेण केवडिया ?	"
१३८	पदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ।	"	१५६	अणंता ।	"
१३९	असंजदा मदिअण्णाणिभंगो ।	२९०	१५७	अणंताणंताहि ओसप्पिणि- उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ।	"
१४०	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी द्व्वपमाणेण केवडिया ?	"	१५८	खेत्तेण अणंताणंता लोगा ।	२९५
१४१	असंखेज्जा ।	"	१५९	अभवसिद्धिया द्व्वपमाणेण केवडिया ?	"
१४२	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओस- प्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ।	"	१६०	अणंता ।	"
१४३	खेत्तेण चक्खुदंसणीहि पदर- मवहिरदि अंगुलस्स संखे- ज्जदिभागवग्गपाडिभाएण ।	२९१	१६१	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्मा- दिट्ठी उवसमसम्मादिट्ठी सासण-	
१४४	अचक्खुदंसणी असंजदभंगो ।	"			
१४५	ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ।	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	सम्माइट्टी सम्मामिच्छाइट्टी		१६६	देवेहि सादिरेयं ।	२९७
	द्व्वपमाणेण केवडिया ?	२९६	१६७	असण्णी असंजदभंगो ।	"
१६२	पलिदोवमस्स असंखेज्जदि- भागो ।	"	१६८	आहाराणुवादेण आहारा अणा- हारा द्व्वपमाणेण केवडिया ?	२९८
१६३	एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ।	"	१६९	अणंता ।	"
१६४	मिच्छाइट्टी असंजदभंगो ।	२९७	१७०	अणंताणंताहि ओसप्पिणि- उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ।	"
१६५	सण्णियाणुवादेण सण्णी द्व्व- पमाणेण केवडिया ?	"	१७१	खेत्तेण अणंताणंता लोगा ।	"

खेत्ताणुगमसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	खेत्ताणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडि- खेत्ते ?	२९९	७	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	३०५
२	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	३०१	८	मणुसगदीए मणुसा मणुस- पज्जत्ता मणुसिणी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३०८
३	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ।	३०३	९	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	"
४	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्था- णेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३०४	१०	समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?	३१०
५	सव्वलोए ।	"	११	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	"
६	पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरि- क्खपज्जत्ता पंचिदियतिरिक्ख- जोणिणी पंचिदियतिरिक्खअप- ज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ।	३०५	१२	असंखेज्जेसु वा भाएसु सव्व- लोगे वा ।	३११
			१३	मणुसअपज्जत्ता सत्थाणेण समु- ग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	"
			१४	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	"
			१५	देवगदीए देवा सत्थाणेण समु- ग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३१३

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१६	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	३१४	३२	कायाणुवादेण पुढाविकाइय आउकाइय तेउकाइय वाउकाइय सुहुमपुढाविकाइय सुहुमआउकाइय सुहुमतेउकाइय सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३२९
१७	भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वदृ- सिद्धिविमाणवासियदेवा देव- गदिभंगो ।	३१६	३३	सव्वलोगे ।	"
१८	इंदियाणुवादेण एइंदिया सुहुमे- इंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्था- णेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३२०	३४	बादरपुढाविकाइय—बादरआउ- काइय—बादरतेउकाइय—बादरवण- प्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडि- खेत्ते ?	३३०
१९	सव्वलोगे ।	३२१	३५	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	"
२०	बादरेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?	३२२	३६	समुग्घादेण उववादेण केवडि- खेत्ते ?	३३३
२१	लोगस्स संखेज्जदिभागे ।	"	३७	सव्वलोगे ।	"
२२	समुग्घादेण उववादेण केवडि- खेत्ते ?	३२३	३८	बादरपुढाविकाइया बादरआउ- काइया बादरतेउकाइया बादर- वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३३४
२३	सव्वलोप ।	"	३९	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	"
२४	बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडि- खेत्ते ?	३२४	४०	बादरवाउकाइया तस्सेव अप- ज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?	३२५
२५	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	"	४१	लोगस्स संखेज्जदिभागे ।	३३६
२६	पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्ता सत्था- णेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३२६	४२	समुग्घादेण उववादेण केवडि- खेत्ते ? सव्वलोगे ।	"
२७	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	"	४३	बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडि- खेत्ते ?	"
२८	समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?	३२७			
२९	लोगस्स असंखेज्जदिभागे असं- खेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा ।	"			
३०	पंचिदियअपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडि- खेत्ते ?	३२८			
३१	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४४	लोगस्स संखेज्जदिभागे ।	३३७	६०	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	३४३
४५	वणप्फादिकाइय—णिगोदजीवा सुहुमवणप्फादिकाइय—सुहुम—णिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	”	६१	उववादो णत्थि ।	”
४६	सव्वलोप ।	३३८	६२	वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?	३४४
४७	बादरवणप्फादिकाइया बादरणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?	”	६३	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	”
४८	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	”	६४	समुग्घाद-उववादा णत्थि ।	”
४९	समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३३९	६५	आहारकायजोगी वेउव्वियकायजोगिभंगो ।	३४५
५०	सव्वलोप ।	”	६६	आहारमिस्सकायजोगी वेउव्वियमिस्सभंगो ।	३४६
५१	तसकाइय—तसकाइयपज्जत्ता—अपज्जत्ता पंचिन्द्रिय-पज्जत्ता—अपज्जत्ताणं भंगो ।	”	६७	कम्मइयकायजोगी केवडिखेत्ते ?	”
५२	जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?	३४०	६८	सव्वलोगे ।	”
५३	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	”	६९	वेदानुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३४७
५४	कायजोगि—ओरालियमिस्स—कायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३४१	७०	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	”
५५	सव्वलोप ।	”	७१	णवुंसयवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३४८
५६	ओरालियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?	३४२	७२	सव्वलोप ।	”
५७	सव्वलोप ।	”	७३	अवगदवेदा सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?	”
५८	उववादं णत्थि ।	३४३	७४	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	”
५९	वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?	”	७५	समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?	३४९
			७६	लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा ।	”
			७७	उववादं णत्थि ।	”
			७८	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई णवुंसयवेदभंगो ।	३५०
			७९	अकसाई अवगदवेदभंगो ।	”
			८०	णाणाणुवादेण मदिअण्णाण्णि	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	सुदअण्णाणी णवुंसयवेदभंगो ।	३५०		णिव्वत्ति पडुच्च णत्थि । जदि	
८१	विभंगणाणि—मणपज्जवणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडि- खेत्ते ?	३५१		लद्धि पडुच्च अत्थि, केवडिखेत्ते ?	३५६
८२	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	"	९७	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	"
८३	उववादं णत्थि ।	३५२	९८	अचक्खुदंसणी असंजदभंगो ।	"
८४	आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	"	९९	ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ।	३५७
८५	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	"	१००	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।	"
८६	केवलणाणी सत्थाणेण केवडि- खेत्ते ?	"	१०१	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया असंजदभंगो ।	"
८७	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	३५३	१०२	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिया सत्था- णेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	"
८८	समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?	"	१०३	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	३५८
८९	लोगस्स असंखेज्जदिभागे असं- खेज्जेसु वा भागेषु सव्वलोगे वा ।	"	१०४	सुक्कलेस्सिया सत्थाणेण उव- वादेण केवडिखेत्ते ?	३५९
९०	उववादं णत्थि ।	"	१०५	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	"
९१	संजमाणुवादेण संजदा जहा- क्खादविहारसुद्धिसंजदा अक- साईभंगो ।	३५४	१०६	समुग्घादेण लोगस्स असंखे- ज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेषु सव्वलोगे वा ।	"
९२	सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा सुहुमसांप- राइयसुद्धिसंजदा संजदासंजदा मणपज्जवणाणिभंगो ।	"	१०७	भविद्याणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया सत्थाणेण समु- ग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३६०
९३	असंजदा णवुंसयभंगो ।	३५५	१०८	सव्वलोगे ।	"
९४	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडि- खेत्ते ?	"	१०९	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्मादिट्ठी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३६१
९५	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	"	११०	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	"
९६	उववादं सिया अत्थि, सिवा णत्थि । लद्धि पडुच्च अत्थि,		१११	समुग्घादेण लोगस्स असंखे- ज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेषु सव्वलोगे वा ।	३६२

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
११२	वेदगसम्माइट्टि-उवसमसम्मा-इट्टि-सासणसम्माइट्टी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३६२		केवडिखेत्ते ?	३६४
११३	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	”	११८	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	”
११४	सम्मामिच्छाइट्टी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?	३६३	११९	असण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३६५
११५	लोगस्स असंखेज्जदिभागे ।	३६४	१२०	सव्वलोगे ।	”
११६	मिच्छाइट्टी असंजदभंगो ।	”	१२१	आहाराणुवादेण आहारा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	”
११७	सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण		१२२	सव्वलोगे ।	”
			१२३	अणाहारा केवडिखेत्ते ?	३६६
			१२४	सव्वलोए ।	”

फोसणाणुगमसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	फोसणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया सत्थाणेहि केवडिखेत्तं फोसिदं ?	३६७		खेत्तं फोसिदं ?	३७३
२	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	३६८	९	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”
३	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३६९	१०	समुग्घाद-उववादेहि य केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”
४	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”	११	लोगस्स असंखेज्जदिभागो एगबे-तिण्ण-चत्तारि-पंच-छचोहस भागम वा देसूणा ।	३७४
५	छचोहसभागा वा देसूणा ।	”	१२	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”
६	पढमाए पुढवीए णेरइया सत्थाण-समुग्घाद-उववादपदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३७०	१३	सव्वलोगो ।	”
७	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”	१४	पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिदियतिरिक्ख-जोणिणि-पंचिदियतिरिक्खअप-	
८	विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया सत्थाणेहि केवडियं				

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	ज्जत्ता सत्थाणेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३७६	३०	लोगस्स असंखेज्जदिभागो छचोइसभागा वा देसूणा ।	३८४
१५	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	३१	भवणवासिय-वाणवैतर-जोइसिय-देवा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३८५
१६	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३७७	३२	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्दुट्टा वा अट्टचोइसभागा वा देसूणा ।	"
१७	लोगस्स असंखेज्जदिभागो सब्व-लोगो वा ।	"	३३	समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३८६
१८	मणुसगदीए मणुसा मणुस-पज्जत्ता मणुसिणीओ सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३७९	३४	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्दुट्टा वा अट्ट-णवचोइसभागा वा देसूणा ।	"
१९	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	३५	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३८७
२०	समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३८०	३६	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
२१	लोगस्स असंखेज्जदिभागो असं-खेज्जा वा भागा सब्वलोगो वा ।	"	३७	सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादं देवगदिभंगो ।	३८८
२२	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३८१	३८	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो दिवड्डुचोइसभागा वा देसूणा ।	"
२३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो सब्व-लोगो वा ।	"	३९	सणक्कुमार जाव सदर-सह-स्सारकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३८९
२४	मणुसअपज्जत्ताणं पंचिदिय-तिरिक्खअपज्जत्ताणं भंगो ।	३८२	४०	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ट-चोइसभागा वा देसूणा ।	"
२५	देवगदीए देवा सत्थाणेहि केव-डियं खेत्तं फोसिदं ?	"	४१	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"
२६	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ट-चोइसभागा वा देसूणा ।	"	४२	लोगस्स असंखेज्जदिभागो	
२७	समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३८३			
२८	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ट-णवचोइसभागा वा देसूणा ।	"			
२९	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३८४			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	तिण्णि-अद्दुट्टु-चत्तारि-अद्दवंचम- पंचचोहसभागा वा देसूणा ।	३९०	५६	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	३९४
४३	आणद् जाव अच्चुदकण्णवासिय- देवा सत्थाण-समुग्घादेहि केव- डियं खेत्तं फोसिदं ?	"	५७	समुग्घाद्-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३९५
४४	लोगस्स असंखेज्जदिभागो छ- चोहसभागा वा देसूणा ।	३९१	५८	लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा ।	"
४५	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"	५९	पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्ता सत्था- णेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३९६
४६	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्द- छट्टु-छचोहसभागा वा देसूणा ।	"	६०	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्टु- चोहसभागा वा देसूणा ।	"
४७	णवगेवज्ज जाव सव्वट्टुसिद्धि- विमाणवासियदेवा सत्थाण-समु- ग्घाद्-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३९२	६१	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३९७
४८	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	६२	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्टु- चोहसभागा वा देसूणा असं- खेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा ।	"
४९	इंदियाणुवादेण एइंदिया सुहुमे- इंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण- समुग्घाद्-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"	६३	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३९८
५०	सव्वलोगो ।	"	६४	लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा ।	"
५१	बादरेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३९३	६५	पंचिदियअपज्जत्ता सत्थाणेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३९९
५२	लोगस्स संखेज्जदिभागो ।	"	६६	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
५३	समुग्घाद्-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	३९४	६७	समुग्घादेहि उववादेहि केव- डियं खेत्तं फोसिदं ?	"
५४	सव्वलोगो ।	"	६८	लोगस्स असंखेज्जदिभागो	४००
५५	बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय- पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्थाणेहि केव- डियं खेत्तं फोसिदं ?	"	६९	सव्वलोगो वा ।	"
			७०	कायाणुवादेण पुढचिकाइय आउकाइय तेउकाइय वाउकाइय सुहुमपुढत्रिकाइय सुहुमआउ- काइय सुहुमतेउकाइय सुहुमवाउ- काइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण--समुग्घाद्--उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७१	सर्वलोगो ।	४००	८९	समुग्धाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४०८
७२	बादरपुढविकाइय--बादरआउ--काइय-बादरतेउकाइय-बादरवण-प्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४०२	९०	लोगस्स संखेज्जदिभागो ।	"
७३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	९१	सर्वलोगो वा ।	४०९
७४	समुग्धाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"	९२	वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुम-णिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्धाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"
७५	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	४०३	९३	सर्वलोगो ।	४१०
७६	सर्वलोगो वा ।	"	९४	बादरवणप्फदिकाइया बादर-णिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"
७७	बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-पज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"	९५	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
७८	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	४०४	९६	समुग्धाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"
७९	समुग्धाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४०६	९७	सर्वलोगो ।	"
८०	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	९८	तसकाइय--तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता पंचिदिय-पंचिदिय-पज्जत्त-अपज्जत्तभंगो ।	४१६
८१	सर्वलोगो वा ।	"	९९	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगी सत्थाणेहि केव-डियं खेत्तं फोसिदं ?	"
८२	बादरवाउकाइया तस्सेव अप-ज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"	१००	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
८३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	४०७	१०१	अट्ठचोदसभागा वा देसूणा ।	"
८४	समुग्धाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"	१०२	समुग्धादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४१२
८५	(लोगस्स संखेज्जदिभागो) ।	"	१०३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
८६	सर्वलोगो वा ।	"			
८७	बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४०८			
८८	लोगस्स संखेज्जदिभागो ।	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०४	अट्टचोहसभागा देसूणा सव्व- लोगो वा ।	४१२	१२५	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	४१९
१०५	उववादो णत्थि ।	४१३	१२६	समुग्घाद-उववादं णत्थि ।	”
१०६	कायजोगि-ओरालियमिस्सकाय- जोगी सत्थाण-समुग्घाद-उव- वादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”	१२७	कम्मइयकायजोगीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”
१०७	सव्वलोगो ।	”	१२८	सव्वलोगो ।	४२०
१०८	ओरालियकायजोगी सत्थाण- समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४१४	१२९	वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिस- वेदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”
१०९	सव्वलोगो ।	”	१३०	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”
११०	उववादं णत्थि ।	४१५	१३१	अट्ट-चोहसभागा देसूणा ।	”
१११	वेउड्वियकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”	१३२	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४२१
११२	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”	१३३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”
११३	अट्टचोहसभागा देसूणा ।	”	१३४	अट्ट-चोहसभागा देसूणा सव्व- लोगो वा ।	”
११४	समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४१६	१३५	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४२२
११५	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”	१३६	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”
११६	अट्ट-तेरह-चोहसभागा देसूणा ।	”	१३७	सव्वलोगो वा ।	”
११७	उववादं णत्थि ।	”	१३८	णवुंसयवेदा सत्थाण-समुग्घाद- उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४२३
११८	वेउड्वियमिस्सकायजोगी सत्था- णेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४१७	१३९	सव्वलोगो ।	”
११९	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”	१४०	अवगदवेदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”
१२०	समुग्घाद-उववादं णत्थि ।	”	१४१	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	४२४
१२१	आहारकायजोगी सत्थाण-समु- ग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४१८	१४२	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”
१२२	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”	१४३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”
१२३	उववादं णत्थि ।	४१९	१४४	असंखेज्जा वा भागा ।	”
१२४	आहारमिस्सकायजोगी सत्था- णेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”	१४५	सव्वलोगो वा ।	”

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१४६	उववादं णत्थि ।		४२५	१६५ मणपज्जवणाणी सत्थाण-समु- ग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४३०
१४७	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभ- कसाई णवुंसयवेदभंगो ।		"	१६६ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
१४८	अकसाई अवगदवेदभंगो ।		"	१६७ उववादं णत्थि ।	"
१४९	णाणाणुवादेण भदिअण्णाणी सुदअण्णाणी सत्थाण-समु- ग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?		"	१६८ केवलणाणी अवगदवेदभंगो ।	४३१
१५०	सव्वलोगो ।		४२६	१६९ संजमाणुवादेण संजदा जहा- क्खादविहारसुद्धिसंजदा अक- साइभंगो ।	"
१५१	विभंगणाणी सत्थाणेहि केव- डियं खेत्तं फोसिदं ?		"	१७० सामाइयच्छेदोवट्टावणसुद्धि- संजद-सुहुमसांपराइयसंजदाणं मणपज्जवणाणिभंगो ।	"
१५२	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।		"	१७१ संजदासंजदा सत्थाणेहि केव- डियं खेत्तं फोसिदं ?	४३२
१५३	अट्ट-चोइसभागा देसूणा ।		"	१७२ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
१५४	समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?		४२७	१७३ समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४३३
१५५	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।		"	१७४ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
१५६	अट्ट-चोइसभागा देसूणा फोसिदा ।		"	१७५ छचोइसभागा वा देसूणा ।	"
१५७	सव्वलोगो वा ।		"	१७६ उववादं णत्थि ।	"
१५८	उववादं णत्थि ।		४२८	१७७ असंजदाणं णवुंसयभंगो ।	४३४
१५९	आभिणिबोहिय--सुद-ओहि-- णाणी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?		"	१७८ दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"
१६०	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।		"	१७९ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
१६१	अट्ट-चोइसभागा देसूणा ।		"	१८० अट्टचोइसभागा वा देसूणा ।	"
१६२	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?		४२९	१८१ समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४३५
१६३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।		"	१८२ लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
१६४	छचोइसभागा देसूणा ।		"	१८३ अट्ट-चोइसभागा देसूणा ।	"
			"	१८४ सव्वलोगो वा ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१८५	उववादे सिया अत्थि सिया णत्थि ।	४३६	२०६	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४४१
१८६	लद्धि पडुच्च अत्थि, णिव्वत्ति पडुच्च णत्थि ।	"	२०७	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	४४२
१८७	जदि लद्धि पडुच्च अत्थि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४३७	२०८	पंच-चोहसभागा वा देसूणा ।	"
१८८	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	२०९	सुक्कलेस्सिया सत्थाण-उव-वादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"
१८९	सव्वलोगो वा ।	"	२१०	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
१९०	अचक्खुदंसणी असंजदभंगो ।	"	२११	छचोहसभागा वा देसूणा ।	"
१९१	ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ।	४३८	२१२	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४४३
१९२	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।	"	२१३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
१९३	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णील्लेस्सिय-काउलेस्सियाणं असंजदभंगो ।	"	२१४	छचोहसभागा वा देसूणा ।	"
१९४	तेउलेस्सियाणं सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"	२१५	असंखेज्जा वा भागा ।	"
१९५	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	२१६	सव्वलोगो वा ।	४४४
१९६	अट्टचोहसभागा वा देसूणा ।	४३९	२१७	भवियाणुवादेण भवसिद्धिय अभवसिद्धिय सत्थाण-समु-ग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"
१९७	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"	२१८	सव्वलोगो ।	४४५
१९८	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	२१९	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"
१९९	अट्टणवचोहसभागा वा देसूणा ।	"	२२०	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
२००	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४४०	२२१	अट्टचोहसभागा वा देसूणा ।	४४६
२०१	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	२२२	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"
२०२	दिवड्डुचोहसभागा वा देसूणा ।	"	२२३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"
२०३	पम्मलेस्सिया सत्थाण-समु-ग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४४१	२२४	अट्टचोहसभागा वा देसूणा ।	"
२०४	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	२२५	असंखेज्जा वा भागा वा ।	४४७
२०५	अट्ट-चोहसभागा वा देसूणा ।	"	२२६	सव्वलोगो वा ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२२७	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४४८	२४९	समुग्घादेहि उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४५४
२२८	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”	२५०	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”
२२९	छचोद्दसभागा वा देसूणा ।	”	२५१	सासणसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४५५
२३०	खइयसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४४९	२५२	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”
२३१	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”	२५३	अट्टचोद्दसभागा वा देसूणा ।	”
२३२	अट्टचोद्दसभागा वा देसूणा ।	”	२५४	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”
२३३	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”	२५५	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”
२३४	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”	२५६	अट्ट वारहचोद्दसभागा वा देसूणा ।	४५६
२३५	अट्टचोद्दसभागा वा देसूणा ।	४५०	२५७	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”
२३६	असंखेज्जा वा भागा वा ।	”	२५८	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”
२३७	सव्वलोगो वा ।	४५१	२५९	एक्कारहचोद्दसभागा देसूणा ।	”
२३८	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”	२६०	सम्मामिच्छाइट्ठीहि सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४५७
२३९	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”	२६१	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”
२४०	वेदगसम्मादिट्ठी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”	२६२	अट्टचोद्दसभागा वा देसूणा ।	”
२४१	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	४५२	२६३	समुग्घाद-उववादं णत्थि ।	४५८
२४२	अट्टचोद्दसभागा वा देसूणा ।	”	२६४	मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो ।	”
२४३	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”	२६५	सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”
२४४	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”	२६६	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”
२४५	छचोद्दसभागा वा देसूणा ।	४५३	२६७	अट्टचोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा ।	४५९
२४६	उवसमसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”	२६८	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	”
२४७	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”	२६९	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	”
२४८	अट्टचोद्दसभागा वा देसूणा ।	”			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२७०	अट्टचोद्दसभागा वा देसूणा ।	४५९	२७६	आहासणुवादेण आहारा	
२७१	सव्वलोगो वा ।	४६०		सत्थाण-समुग्घाद--उववादेहि	
२७२	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"		केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४६१
२७३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	"	२७७	सव्वलोगो ।	"
२७४	सव्वलोगो वा ।	"	२७८	अणाहारा केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	"
२७५	असण्णी मिच्छाइट्ठिभंगो ।	४६१	२७९	सव्वलोगो वा ।	"

णाणाजीवेण कालाणुगमसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	णाणाजीवेण कालाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ?	४६२	९	देवगदीए देवा केवचिरं कालादो होंति ?	४६५
२	सव्वद्धा ।	"	१०	सव्वद्धा ।	४६६
३	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ।	४६३	११	एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्टुसिद्धि विमाणवासियदेवा ।	"
४	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिदियतिरिक्खा पंचिदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिदियतिरिक्खजोणिणी पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी केवचिरं कालादो होंति ?	"	१२	इंदियाणुवादेण पइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया पंचिदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?	"
५	सव्वद्धा ।	४६४	१३	सव्वद्धा ।	"
६	मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?	"	१४	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्ता तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?	४६७
७	जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ।	"			
८	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१५	सव्वद्धा ।	४६७		आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी केवचिरं कालादो होंति ?	४७२
१६	जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवच्चिजोगी कायजोगी ओरालिय-कायजोगी ओरालियमिस्सकाय-जोगी वेउव्वियकायजोगी कम्म-इयकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ?	४६८	३२	सव्वद्धा ।	"
१७	सव्वद्धा ।	"	३३	संजमाणुवादेण संजदा सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा जहाक्खाद-विहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा केवचिरं कालादो होंति ?	४७३
१८	वेउव्वियमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ?	४६९	३४	सव्वद्धा ।	"
१९	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३५	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ?	"
२०	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	४७०	३६	जहण्णेण एगसमयं ।	"
२१	आहारकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ?	"	३७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	४७४
२२	जहण्णेण एगसमयं ।	"	३८	दंसणाणुवादेण च म्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी केवचिरं कालादो होंति ?	"
२३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३९	सव्वद्धा ।	"
२४	आहारमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ?	४७१	४०	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-तेउ-लेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्क-लेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ?	"
२५	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	४१	सव्वद्धा ।	"
२६	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	४२	भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ?	४७५
२७	वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिस-वेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा केवचिरं कालादो होंति ?	"	४३	सव्वद्धा ।	"
२८	सव्वद्धा ।	४७२	४४	सम्मत्ताणुवादेण सम्माइटी खइयसम्माइटी वेदगसम्माइटी	"
२९	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभ-कसाई अकसाई केवचिरं कालादो होंति ?	"			
३०	सव्वद्धा ।	"			
३१	णाणाणुवादेण सुदअण्णाणी विभंगणाणी				

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	मिच्छाइट्टी केवचिरं कालादो होंति ?	४७५	५०	जहण्णेण एगसमयं ।	४७६
४५	सव्वद्धा ।	"	५१	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असं- खेज्जदिभागो ।	४७७
४६	उवसमसम्माइट्टी सम्मामिच्छा- इट्टी केवचिरं कालादो होंति ?	"	५२	सण्णियाणुवादेण सण्णी असण्णी केवचिरं कालादो होंति ?	"
४७	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	४७६	५३	सव्वद्धा ।	"
४८	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असं- खेज्जदिभागो ।	"	५४	आहारा अणहारा केवचिरं कालादो होंति ?	"
४९	सासणसम्माइट्टी केवचिरं कालादो होदि ?	"	५५	सव्वद्धा ।	"

गाणाजीवेण अंतराणुगमसुत्ताणि ।



सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	गाणाजीवेहि अंतराणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइयाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	४७८		कालादो होदि ?	४८१
२	णत्थि अंतरं ।	"	९	जहण्णेण एगसमओ ।	"
३	णिरंतरं ।	४७९	१०	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	"
४	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ।	"	११	देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
५	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचि- दियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख- पज्जत्ता पंचिदियतिरिक्खजोगिणी पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुस- गदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीणमंतरं केवचिरं कालादो होंति ?	४८०	१२	णत्थि अंतरं ।	४८२
६	णत्थि अंतरं ।	"	१३	णिरंतरं ।	"
७	णिरंतरं	"	१४	भवनवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ट- सिद्धिविमाणवासियदेवा देव- गदिभंगो ।	"
८	मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं	"	१५	इंदियाणुवादेण एइंदिय-वादर- सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-वीइंदिय- तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिदिय- पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१६	णत्थि अंतरं ।	४८३	३१	णत्थि अंतरं ।	४८६
१७	णिरंतरं ।	"	३२	णिरंतरं ।	"
१८	कायाणुवादेण पुढविकाइय- आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय- वणप्फदिकाइय—णिगोदजीव- बादर-सुहुम-पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर- पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइय- पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केव- च्चिरं कालादो होदि ?		३३	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभ- कसाई (अकसाई-) णमंतरं केवच्चिरं कालादो होदि ?	४८७
१९	णत्थि अंतरं ।		३४	णत्थि अंतरं ।	"
२०	णिरंतरं ।	४८४	३५	णिरंतरं ।	"
२१	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि- पंचवच्चिजोगि-कायजोगि-ओरा- लियकायजोगि-ओरालियमिस्स- कायजोगि-वेउव्वियकायजोगि- कम्मइयकायजोगीणमंतरं केव- च्चिरं कालादो होदि ?		३६	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि- सुदअण्णाणि—विभंगणाणि— आभिणिवोहिय-सुद-ओहिणाणि- मणपज्जवणाणि-केवलणाणीण- मंतरं केवच्चिरं कालादो होदि ?	"
२२	णत्थि अंतरं ।	"	३७	णत्थि अंतरं ।	४८८
२३	णिरंतरं ।	"	३८	णिरंतरं ।	"
२४	वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवच्चिरं कालादो होदि ?	४८५	३९	संजमाणुवादेण संजदा सामाइय- छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहार- सुद्धिसंजदा जहाक्खादविहार- सुद्धिसंजदा संजदासंजदा असं- जदाणमंतरं केवच्चिरं कालादो होदि ?	"
२५	जहण्णेण एगसमयं ।	"	४०	णत्थि अंतरं ।	"
२६	उक्कस्सेण वारसमुहुत्तं ।	"	४१	णिरंतरं ।	"
२७	आहारकायजोगि-आहारमिस्स- कायजोगीणमंतरं केवच्चिरं कालादो होदि ?	"	४२	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणं अंतरं केवच्चिरं कालादो होदि ?	"
२८	जहण्णेण एगसमयं ।	४८६	४३	जहण्णेण एगसमयं ।	४८९
२९	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"	४४	उक्कस्सेण छम्मासाणि ।	"
३०	वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिस- वेदा णलुंसयवेदा अवगद्वेदाण- मंतरं केवच्चिरं कालादो होदि ?	"	४५	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि- अचक्खुदंसणि—ओह्विदंसणि— केवलदंसणीणमंतरं केवच्चिरं कालादो होदि ?	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४६	णत्थि अंतरं ।	४८९	५७	उवसमसम्माइट्टीणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि ?	४९१
४७	णिरंतरं ।	"	५८	जहण्णेण एगसमयं ।	४९२
४८	लेस्साणुवादेण किणहलेस्सिय- णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-तेउ- लेस्सिय-पम्मलेस्सिय--सुक्क-- लेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	४९०	५९	उक्कस्सेण सत्तरादिदियाणि ।	"
४९	णत्थि अंतरं ।	"	६०	सासणसम्माइट्टि-सम्माभिच्छा- इट्टीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
५०	णिरंतरं	"	६१	जहण्णेण एगसमयं ।	४९३
५१	भवियाणुवादेण भवसिद्धिय- अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	६२	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	"
५२	णत्थि अंतरं ।	"	६३	सणियाणुवादेण सणिय-असणी- णमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"
५३	णिरंतरं ।	४९१	६४	णत्थि अंतरं ।	"
५४	सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्टि- खइयसम्माइट्टि-वेदगसम्माइट्टि- मिच्छाइट्टीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	"	६५	णिरंतरं ।	"
५५	णत्थि अंतरं ।	"	६६	आहाराणुवादेण आहार-अणा- द्वाराणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	४९४
५६	णिरंतरं ।	"	६७	णत्थि अंतरं ।	"
		"	६८	णिरंतरं ।	"

भागाभागाणुगमसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	भागाभागाणुगमेण गदियाणु- वादेण णिरयगदीए णेरइया- सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	४९५	४	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सव्व- जीवाणं केवडिओ भागो ?	४९६
२	अणंतभागो ।	"	५	अणंत भागा ।	४९७
३	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ।	४९६	६	पंचिदियतिरिक्खा पंचिदिय- तिरिक्खपज्जत्ता पंचिदियतिरिक्ख-	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	जोणिणी पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी मणुसअपज्जत्ता सव्व- जीवाणं केवडिओ भागो ?	४९७		आउकाइया तेउकाइया (वाउकाइया) वादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरंवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	५०२
	७ अणंतभागो ।	"		२४ अणंतभागो ।	"
	८ देवगदीए देवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	४९८		२५ वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	"
	९ अणंतभागो ।	"		२६ अणंता भागा ।	५०३
	१० एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्टसिद्धिविमाणवासियदेवा ।	"		२७ बादरवणप्फदिकाइया बादर- णिगोदजीवा पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	"
	११ इंदियाणुवादेण इंदिया सव्व- जीवाणं केवडिओ भागो ?	४९९		२८ असंखेज्जदिभागो ।	"
	१२ अणंता भागा ।	"		२९ सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुम- णिगोदजीवा सव्वजीवाणं केव- डिओ भागो ?	"
	१३ बादरेइंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केव- डिओ भागो ?	"		३० असंखेज्जा भागा ।	५०४
	१४ असंखेज्जदिभागो ।	"		३१ सुहुमवणप्फदिकाइय—सुहुम— णिगोदजीवपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	"
	१५ सुहुमेइंदिया सव्वजीवाणं केव- डिओ भागो ?	५००		३२ संखेज्जा भागा ।	"
	१६ असंखेज्जदिभागो ।	"		३३ सुहुमवणप्फदिकाइय—सुहुम— णिगोदजीवअपज्जत्ता सव्व- जीवाणं केवडिओ भागो ?	५०६
	१७ सुहुमेइंदियपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	"		३४ संखेज्जदिभागो ।	"
	१८ संखेज्जा भागा ।	५०१		३५ जोगाणुवादेण पंचमणजोगि- पंचवच्चिजोगि-वेउव्वियकायजोगि- वेउव्वियमिस्सकायजोगि-आहार- कायजोगि-आहारमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	५०७
	१९ सुहुमेइंदियअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	"			
	२० संखेज्जदिभागो ।	"			
	२१ बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचि- दिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	"			
	२२ अणंता भागा ।	५०२			
	२३ कायाणुवादेण पुढविकाइया				

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३६	अणंतो भागो ।	५०७	५५	णाणाणुवादेण भदिअण्णाणि- सुदअण्णाणी सव्वजीवाणं केव- डिओ भागो ?	५११
३७	कायजोगी सव्वजीवाणं केव- डिओ भागो ?	"	५६	अणंता भागा ।	"
३८	अणंता भागा ।	"	५७	विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जव- णाणी केवलणाणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	५१२
३९	ओरालियकायजोगी सव्व- जीवाणं केवडिओ भागो ?	५०८	५८	अणंतभागो ।	"
४०	संखेज्जा भागा ।	"	५९	संजमाणुवादेण संजदा सामाइय- छेदोवट्टावणसुद्धिसंजदा परि- हारसुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइय- सुद्धिसंजदा जहाक्खादविहार- सुद्धिसंजदा संजदासंजदा सव्व- जीवाणं केवडिओ भागो ?	"
४१	ओरालियमिस्सकायजोगी सव्व- जीवाणं केवडिओ भागो ?	"	६०	अणंतभागो ।	"
४२	संखेज्जदिभागो ।	"	६१	असंजदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	"
४३	कम्मइयकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	५०९	६२	अणंता भागा ।	५१३
४४	असंखेज्जदिभागो ।	"	६३	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी सव्व- जीवाणं केवडिओ भागो ?	"
४५	वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिस- वेदा अवगदवेदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	"	६४	अणंतभागो ।	"
४६	अणंतो भागो ।	"	६५	अचक्खुदंसणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	"
४७	णवुंसयवेदा सव्वजीवाणं केव- डिओ भागो ?	"	६६	अणंता भागा ।	"
४८	अणंता भागा ।	५१०	६७	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	५१४
४९	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई सव्व- जीवाणं केवडिओ भागो ?	"	६८	तिभागो सादिरेगो ।	"
५०	चदुब्भागो देसूणा ।	"	६९	णीललेस्सिया काउलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	"
५१	लोभकसाई सव्वजीवाणं केव- डिओ भागो ?	"			
५२	चदुब्भागो सादिरेगो ।	"			
५३	अकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	५११			
५४	अणंतो भागो ।	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७०	तिभागो देसूणो ।	५१४	७८	अणंतो भागो ।	५१६
७१	तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्क- लेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	५१५	७९	(मिच्छाइट्ठी सव्वजीवाणं केव- डिओ भागो ?	”
७२	अणंतभागो ।	”	८०	अणंता भागा ।)	५१७
७३	भवियाणुवादेण भवसिद्धिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	”	८१	सणियाणुवादेण सण्णी सव्व- जीवाणं केवडिओ भागो ?	”
७४	अणंता भागा ।	”	८२	अणंतभागो ।	”
७५	अभवसिद्धिया सव्वजीवाणं केव- डिओ भागो ?	५१६	८३	असण्णी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	”
७६	अणंतभागो ।	”	८४	अणंता भागा ।	५१८
७७	सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्मा- इट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी सव्व- जीवाणं केवडिओ भागो ?	”	८५	आहाराणुवादेण आहारा सव्व- जीवाणं केवडिओ भागो ?	”
			८६	असंखेज्जा भागा ?	”
			८७	अणाहारा सव्वजीवाणं केव- डिओ भागो ?	”
			८८	असंखेज्जदिभागो ।	५१९

अप्पावहुगाणुगमसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	अप्पावहुगाणुगमेण गदियाणुवादेण पंचगदीओ समासेण ।	५२०	१०	णेरइया असंखेज्जगुणा ।	५२२
२	सव्वत्थोवा मणुसा ।	”	११	पंचिदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ ।	”
३	णेरइया असंखेज्जगुणा ।	”	१२	देवा संखेज्जगुणा ।	५२३
४	देवा असंखेज्जगुणा ।	५२१	१३	देवीओ संखेज्जगुणाओ ।	”
५	सिद्धा अणंतगुणा ।	”	१४	सिद्धा अणंतगुणा ।	”
६	तिरिक्खा अणंतगुणा ।	”	१५	तिरिक्खा अणंतगुणा ।	”
७	अट्ट गदीओ समासेण ।	५२२	१६	इंदियाणुवादेण सव्वत्थोवा पंचि- दिया	५२४
८	सव्वत्थोवा मणुस्सिणीओ ।	”			
९	मणुस्सा असंखेज्जगुणा ।	”			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१७	चउरिंदिया विसेसाहिया ।	५२४	४२	वाउक्काइया विसेसाहिया ।	५३१
१८	तीइंदिया विसेसाहिया ।	"	४३	अकाइया अणंतगुणा ।	५३२
१९	बीइंदिया विसेसाहिया ।	५२५	४४	वणप्फदिकाइया अणंतगुणा ।	"
२०	अणिंदिया अणंतगुणा ।	"	४५	सव्वत्थोवा तसकाइयपज्जत्ता ।	"
२१	एइंदिया अणंतगुणा ।	"	४६	तसकाइयअपज्जत्ता असंखेज्ज- गुणा ।	"
२२	सव्वत्थोवा चउरिंदियपज्जत्ता ।	५२६	४७	तेउक्काइयअपज्जत्ता असंखेज्ज- गुणा ।	५३३
२३	पंचिंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ।	"	४८	पुढविकाइयअपज्जत्ता विसेसा- हिया ।	"
२४	बीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ।	"	४९	आउक्काइयअपज्जत्ता विसेसा- हिया ।	"
२५	तीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ।	"	५०	वाउक्काइयअपज्जत्ता विसेसा- हिया ।	"
२६	पंचिंदियअपज्जत्ता असंखेज्ज- गुणा ।	५२७	५१	तेउक्काइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा ।	५३४
२७	चउरिंदियअपज्जत्ता विसेसा- हिया ।	"	५२	पुढविकाइयपज्जत्ता विसेसा- हिया ।	"
२८	तीइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ।	५२८	५३	आउकाइयपज्जत्ता विसेसा- हिया ।	"
२९	बीइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ।	"	५४	वाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ।	"
३०	अणिंदिया अणंतगुणा ।	"	५५	अकाइया अणंतगुणा ।	"
३१	वादरेइंदियपज्जत्ता अणंतगुणा ।	५२९	५६	वणप्फदिकाइयअपज्जत्ता अणंत- गुणा ।	५३५
३२	वादरेइंदियअपज्जत्ता असंखेज्ज- गुणा ।	"	५७	वणप्फदिकाइयपज्जत्ता संखेज्ज- गुणा ।	"
३३	वादरेइंदिया विसेसाहिया ।	"	५८	वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ।	"
३४	सुहुमेइंदियअपज्जत्ता असंखेज्ज- गुणा ।	"	५९	णिगोदा विसेसाहिया ।	"
३५	सुहुमेइंदियपज्जत्ता संखेज्जगुणा ।	५३०	६०	सव्वत्थोवा तसकाइया ।	५३६
३६	सुहुमेइंदिया विसेसाहिया ।	"	६१	बादरतेउक्काइया असंखेज्जगुणा ।	"
३७	एइंदिया विसेसाहिया ।	"	६२	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा असंखेज्जगुणा ।	"
३८	कायाणुवादेण सव्वत्थोवा तस- काइया ।	"			
३९	तेउकाइया असंखेज्जगुणा ।	५३१			
४०	पुढविकाइया विसेसाहिया ।	"			
४१	आउक्काइया विसेसाहिया ।	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६३	बादरणिगोदजीवा णिगोद- पदिट्टिदा असंखेज्जगुणा ।	५३६	८२	बादरआउकाइयपज्जत्ता असं- खेज्जगुणा ।	५४४
६४	बादरपुढविकाइया असंखेज्ज- गुणा ।	५३७	८३	बादरवाउकाइयपज्जत्ता असं- खेज्जगुणा ।	"
६५	बादरआउकाइया असंखेज्जगुणा ।	"	८४	बादरतेउअपज्जत्ता असंखेज्ज- गुणा ।	"
६६	बादरवाउकाइया असंखेज्जगुणा ।	"	८५	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर- अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	"
६७	सुहुमतेउकाइया असंखेज्जगुणा ।	"	८६	बादरणिगोदजीवा णिगोदपदि- ट्टिदा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५४५
६८	सुहुमपुढविकाइया विसेसा- हिया ।	५३८	८७	बादरपुढविकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	"
६९	सुहुमआउकाइया विसेसाहिया ।	"	८८	बादरआउकाइयअपज्जत्ता असं- खेज्जगुणा ।	"
७०	सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया ।	"	८९	बादरवाउअपज्जत्ता असंखेज्ज- गुणा ।	"
७१	अकाइया अणंतगुणा ।	"	९०	सुहुमतेउकाइयअपज्जत्ता असं- खेज्जगुणा ।	५४६
७२	बादरवणप्फदिकाइया अणंत- गुणा ।	"	९१	सुहुमपुढविकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ।	"
७३	सुहुमवणप्फदिकाइया असंखेज्ज- गुणा ।	५३९	९२	सुहुमआउकाइयअपज्जत्ता विसे- साहिया ।	"
७४	वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ।	"	९३	सुहुमवाउकाइयअपज्जत्ता विसे- साहिया ।	"
७५	णिगोदजीवा विसेसाहिया ।	"	९४	सुहुमतेउकाइयपज्जत्ता संखेज्ज- गुणा ।	५४७
७६	सव्वत्थोवा बादरतेउकाइय- पज्जत्ता ।	५४२	९५	सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ता विसे- साहिया ।	"
७७	तसकाइयपज्जत्ता असंखेज्ज- गुणा ।	"	९६	सुहुमआउकाइयपज्जत्ता विसे- साहिया ।	"
७८	तसकाइयअपज्जत्ता असंखेज्ज- गुणा ।	"	९७	सुहुमवाउकाइयपज्जत्ता विसे- साहिया ।	"
७९	वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर- पज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	"			
८०	णिगोदजीवा णिगोदपदिट्टिदा पज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५४३			
८१	बादरपुढविकाइयपज्जत्ता असं- खेज्जगुणा ।	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
९८	अकाइया अणंतगुणा ।	५४८	११८	मणजोगी विसेसाहिया ।	५५२
९९	वादरवणप्फदिकाइयपज्जत्ता अणंतगुणा ।	"	११९	सच्चवचिजोगी संखेज्जगुणा ।	"
१००	वादरवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	"	१२०	मोसवचिजोगी संखेज्जगुणा ।	५५३
१०१	वादरवणप्फदिकाइया विसेसाहिया ।	"	१२१	सच्चमोसवचिजोगी संखेज्जगुणा ।	"
१०२	सुहुमवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५४९	१२२	वेउव्वियकायजोगी संखेज्जगुणा ।	"
१०३	सुहुमवणप्फदिकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा ।	"	१२३	असच्चमोसवचिजोगी संखेज्जगुणा ।	"
१०४	सुहुमवणप्फदिकाइया विसेसाहिया ।	"	१२४	वचिजोगी विसेसाहिया ।	"
१०५	वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ।	"	१२५	अजोगी अणंतगुणा ।	"
१०६	णिगोदजीवा विसेसाहिया ।	"	१२६	कम्मइयकायजोगी अणंतगुणा ।	५५४
१०७	जोगाणुवादेण संव्वत्थोवा मणजोगी ।	५५०	१२७	ओरालियमिस्सकायजोगी असंखेज्जगुणा ।	"
१०८	वचिजोगी संखेज्जगुणा ।	"	१२८	ओरालियकायजोगी संखेज्जगुणा ।	"
१०९	अजोगी अणंतगुणा ।	"	१२९	कायजोगी विसेसाहिया ।	"
११०	कायजोगी अणंतगुणा ।	५५१	१३०	वेदाणुवादेण संव्वत्थोवा पुरिसवेदा ।	"
१११	संव्वत्थोवा आहारमिस्सकायजोगी ।	"	१३१	इत्थिवेदा संखेज्जगुणा ।	"
११२	आहारकायजोगी संखेज्जगुणा ।	"	१३२	अवगदवेदा अणंतगुणा ।	५५५
११३	वेउव्वियमिस्सकायजोगी असंखेज्जगुणा ।	"	१३३	णवुंसयवेदा अणंतगुणा ।	"
११४	सच्चमणजोगी संखेज्जगुणा ।	"	१३४	पंचिदियतिरिक्खजोगिणएसु पयदं । संव्वत्थोवा सण्णिणवुंसयवेदगम्भोवक्कंतिया ।	"
११५	मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ।	५५२	१३५	सण्णिणपुरिसवेदा गम्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ।	"
११६	सच्च-मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ।	"	१३६	सण्णिणइत्थिवेदा गम्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ।	५५६
११७	असच्च-मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ।	"	१३७	सण्णिणवुंसयवेदा सम्मुच्छिमपज्जत्ता संखेज्जगुणा ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१३८	सण्णिणवुंसयवेदा सम्मुच्छिम- अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५५६	१५६	संजमाणुवादेण सव्वत्थोवा संजदा ।	५६१
१३९	सण्णिणइत्थि-पुरिसवेदा गम्भो- वक्कंतिया असंखेज्जवासाउआ दा वि तुल्ला असंखेज्जगुणा ।	५५७	१५७	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	”
१४०	असण्णिणवुंसयवेदा गम्भो- वक्कंतिया संखेज्जगुणा ।	”	१५८	णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अणंतगुणा ।	”
१४१	असण्णिणपुरिसवेदा गम्भोवक्कं- तिया संखेज्जगुणा ।	”	१५९	असंजदा अणंतगुणा ।	५६२
१४२	असण्णिणइत्थिवेदा गम्भोवक्कं- तिया संखेज्जगुणा ।	५५८	१६०	सव्वत्थोवा सुहुमसांपराइय- सुद्धिसंजदा ।	”
१४३	असण्णी णवुंसयवेदा सम्मु- च्छिमपज्जत्ता संखेज्जगुणा ।	”	१६१	परिहारसुद्धिसंजदा संखेज्ज- गुणा ।	”
१४४	असण्णिणवुंसयवेदा सम्मु- च्छिमा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	”	१६२	जहाक्खादाविहारसुद्धिसंजदा संखेज्जगुणा ।	”
१४५	कसायाणुवादेण सव्वत्थोवा अकसाई ।	”	१६३	सामाइयच्छेदोवट्टावणसुद्धि- संजदा दो वि तुल्ला संखेज्ज- गुणा ।	”
१४६	माणकसाई अणंतगुणा ।	५५९	१६४	संजदा विसेसाहिया ।	५६३
१४७	कोधकसाई विसेसाहिया ।	”	१६५	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	”
१४८	मायकसाई विसेसाहिया ।	”	१६६	णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अणंतगुणा ।	”
१४९	लोभकसाई विसेसाहिया ।	”	१६७	असंजदा अणंतगुणा ।	”
१५०	णाणाणुवादेण सव्वत्थोवा मणपज्जवणाणी ।	”	१६८	सव्वत्थोवा सामाइयच्छेदो- वट्टावणसुद्धिसंजदस्स जह- णिया चरित्तलद्धी ।	५६४
१५१	ओहिणाणी असंखेज्जगुणा ।	५६०	१६९	परिहारसुद्धिसंजदस्स जह- णिया चरित्तलद्धी अणंत- गुणा ।	५६५
१५२	आभिणिबोहिय-सुदणाणी दो वि तुल्ला विसेसाहिया ।	”	१७०	तस्सेव उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ।	५६६
१५३	विमंगणाणी असंखेज्जगुणा ।	”	१७१	सामाइयच्छेदोवट्टावणसुद्धि- संजदस्स उक्कस्सिया चरित्त- लद्धी अणंतगुणा ।	”
१५४	केवलणाणी अणंतगुणा ।	”			
१५५	मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी दो वि तुल्ला अणंतगुणा ।	५६१			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१७२	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजमस्स जहणिया चरित्तलद्धी अणंत- गुणा ।	५६६		सिद्धिया अणंतगुणा ।	५७१
१७३	तस्सेव उक्कस्सिया चरित्त- लद्धी अणंतगुणा ।	५६७	१८८	भवसिद्धिया अणंतगुणा ।	”
१७४	जहाक्खादविहारसुद्धिसंज- दस्स अजहणणअणुक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ।	”	१८९	सम्मत्ताणुवादेण सव्वत्थोवा सम्मामिच्छाइट्ठी ।	”
१७५	दंसणाणुवादेण सव्वत्थोवा ओहिदंसणी ।	५६८	१९०	सम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा ।	”
१७६	चक्खुदंसणी असंखेज्जगुणा ।	”	१९१	सिद्धा अणंतगुणा ।	५७२
१७७	केवलदंसणी अणंतगुणा ।	”	१९२	मिच्छाइट्ठी अणंतगुणा ।	”
१७८	अचक्खुदंसणी अणंतगुणा ।	५६९	१९३	सव्वत्थोवा सासणसम्माइट्ठी ।	”
१७९	लेस्साणुवादेण सव्वत्थोवा सुक्कलेस्सिया ।	”	१९४	सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जगुणा ।	”
१८०	पम्मलेस्सिया असंखेज्जगुणा ।	”	१९५	उवसमसम्माइट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	”
१८१	तेउलेस्सिया संखेज्जगुणा ।	”	१९६	खइयसम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा ।	”
१८२	अलेस्सिया अणंतगुणा ।	५७०	१९७	वेदगसम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा ।	५७३
१८३	काउलेस्सिया अणंतगुणा ।	”	१९८	सम्माइट्ठी विसेसाहिया ।	”
१८४	णीललेस्सिया विसेसाहिया ।	”	१९९	सिद्धा अणंतगुणा ।	”
१८५	किण्णलेस्सिया विसेसाहिया ।	”	२००	मिच्छाइट्ठी अणंतगुणा ।	”
१८६	भवियाणुवादेण सव्वत्थोवा अभवसिद्धिया ।	५७१	२०१	सणियाणुवादेण सव्वत्थोवा सण्णी ।	”
१८७	णेव भवसिद्धिया णेव अभव-		२०२	णेव सण्णी णेव असण्णी अणंतगुणा ।	”
			२०३	असण्णी अणंतगुणा ।	”
			२०४	आहाराणुवादेण सव्वत्थोवा अणाहारा अबंधा ।	५७४
			२०५	बंधा अणंतगुणा ।	”
			२०६	आहारा असंखेज्जगुणा ।	”

महादंडअसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	एत्तो सव्वजीवेसु महादंडओ कादव्वो भवदि ।	५७५	१४	हेट्ठिमउवरिमगेवज्जविमाणवासिय- देवा संखेज्जगुणा ।	५७९
२	सव्वत्थोवा मणुसपज्जत्ता गब्भो- वक्कंतिया ।	५७६	१५	हेट्ठिममज्झिमगेवज्जविमाणवासिय- देवा संखेज्जगुणा ।	५८०
३	मणुसिणीओ संखेज्जगुणाओ ।	”	१६	हेट्ठिमहेट्ठिमगेवज्जविमाणवासिय- देवा संखेज्जगुणा ।	”
४	सव्वट्टुसिद्धिविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ।	”	१७	आरणच्चुदकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ।	”
५	बादरतेउकाइयपज्जत्ता असं- खेज्जगुणा ।	५७७	१८	आणद-पाणदकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ।	”
६	अणुत्तरविजय-वइजयंत-(जयंत-)- अवराजितविमाणवासियदेवा असंखेज्जगुणा ।	”	१९	सत्तमाए पुढवीए णेरइया असं- खेज्जगुणा ।	”
७	अणुदिसविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ।	५७८	२०	छट्ठीए पुढवीए णेरइया असंखेज्ज- गुणा ।	५८१
८	उवरिमउवरिमगेवज्जविमाण- वासियदेवा संखेज्जगुणा ।	”	२१	सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ।	”
९	उवरिममज्झिमगेवज्जविमाण- वासियदेवा संखेज्जगुणा ।	”	२२	सुक्क-महासुक्ककप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ।	”
१०	उवरिमहेट्ठिमगेवज्जविमाण- वासियदेवा संखेज्जगुणा ।	५७९	२३	पंचमपुढविणेरइया असंखेज्ज- गुणा ।	”
११	मज्झिमउवरिमगेवज्जविमाण- वासियदेवा संखेज्जगुणा ।	”	२४	लंतव-काविट्टुकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ।	”
१२	मज्झिममज्झिमगेवज्जविमाण- वासियदेवा संखेज्जगुणा ।	”	२५	चउत्थीए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ।	५८२
१३	मज्झिमहेट्ठिमगेवज्जविमाण- वासियदेवा संखेज्जगुणा ।	”	२६	बम्ह-बम्हुत्तरकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ।	”

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२७	तदियाप पुढवीप णेरइया असंखेज्जगुणा ।	५८२	४८	पंचिदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५८७
२८	माहिंदकण्णवासियदेवा असंखेज्जगुणा ।	"	४९	चउरिंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ।	"
२९	सणक्कुमारकण्णवासियदेवा संखेज्जगुणा ।	"	५०	तेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ।	"
३०	विदियाप पुढवीप णेरइया असंखेज्जगुणा ।	५८३	५१	वेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ।	"
३१	मणुसा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	"	५२	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५८८
३२	ईसाणकण्णवासियदेवा असंखेज्जगुणा ।	"	५३	बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा असंखेज्जगुणा ।	"
३३	देवीओ संखेज्जगुणाओ ।	"	५४	बादरपुढविपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	"
३४	सोधम्मकण्णवासियदेवा संखेज्जगुणा ।	५८४	५५	बादरआउपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५८९
३५	देवीओ संखेज्जगुणाओ ।	"	५६	बादरवाउपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	"
३६	पढमाप पुढवीप णेरइया असंखेज्जगुणा ।	"	५७	बादरतेउअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	"
३७	भवणवासियदेवा असंखेज्जगुणा ।	"	५८	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	"
३८	देवीओ संखेज्जगुणाओ ।	"	५९	बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५९०
३९	पंचिदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ ।	५८५	६०	बादरपुढविकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	"
४०	वाणवैतरदेवा संखेज्जगुणा ।	"	६१	बादरआउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	"
४१	देवीओ संखेज्जगुणाओ ।	"	६२	बादरवाउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	"
४२	जोदिसियदेवा संखेज्जगुणा ।	"	६३	सुहुमतेउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५९१
४३	देवीओ संखेज्जगुणाओ ।	५८६	६४	सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्ता विसेसाहिया ।	"
४४	चउरिंदियपज्जत्ता संखेज्जगुणा ।	"			
४५	पंचिदियपज्जत्ता विसेसाहिया ।	"			
४६	वेइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ।	"			
४७	तीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ।	"			

(५०)

परिशिष्ट

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६५	सुहुमआउकाइयअपज्जत्ता विसे- साहिया ।	५९१	७२	वाद्रवणप्फदिकाइयपज्जत्ता अणंतगुणा ।	५९३
६६	सुहुमवाउकाइयअपज्जत्ता विसे- साहिया ।	५९२	७३	वाद्रवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	"
६७	सुहुमतेउकाइयपज्जत्ता संखेज्ज- गुणा ।	"	७४	वाद्रवणप्फदिकाइया विसे- साहिया ।	"
६८	सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ता विसे- साहिया ।	"	७५	सुहुमवणप्फदिकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५९४
६९	सुहुमआउकाइया पज्जत्ता विसे- साहिया ।	"	७६	सुहुमवणप्फदिकाइया पज्जत्ता संखेज्जगुणा ।	"
७०	सुहुमवाउकाइयपज्जत्ता विसे- साहिया ।	५९३	७७	सुहुमवणप्फदिकाइया विसे- साहिया ।	"
७१	अकाइया अणंतगुणा ।	"	७८	वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ।	"
			७९	णिगोइजीवा विसेसाहिया ।	"

२ अवतरण-गाथा-सूची ।

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां	क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
१७	असरीरा जीवघणा	९८		९	अंगोचंग-सरीरिदिय-	१५	
४	आणद पाणद-कप्पे	३२०		१	कं पि णरं दट्ठूण य	२८	
२	इगितीस सत्त चत्तारि	१३१		२०	चक्खूण जं पयासदि	१००	
१०	उच्चुच्च-उच्च-तह	१५		१९	जं सामण्णगगहणं	"	द्रव्यसंग्रह
३	उज्जुसुदस्स दुवयणं	२९		१२	जयमंगलभूदानं	१५	
६	उवरिमगेवज्जेसु अ	३२०		६	जस्सोदपण जीवो	१४	
१६	पगो मे सस्सदो अप्पा	९८	अष्टपाहुड ५, ५९.	८	" "	१५	
२२	एवं सुत्तपसिद्धं	१०३		१	जे बंधयरा भावा	९	जयधवलाया- मुद्धृता पृ. ६०
३	ओदइया बंधयरा	९	जयधवलाया- मुद्धृता पृ. ६०	१५	णाणावरणचदुक्कं	६४	
				१०	णिक्खित्तु विदियमेत्तं	४५	गो. जी. ३८

क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां	क्रम संख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
६	णिरयगइं संपत्तो	२९		२	ववहारस्स दु वयणं	२९	
२	तललीनमधुगविमलं	२५८	गो. जी. १५८	१८	विधिर्विषक्तप्रतिषेध-	९९	बृहत्स्त्रयम्भू- स्तोत्र ५२
४	द्व्वगुणपज्जणं जे	१४		११	विरियोवभोग-भोगे	१५	
५	" " " "	"		१	षष्ठ-सत्तमयोः शीतं	४०५	
९	पढमं पयडिपमाणं	४५		७	संखा तह पत्थारो	४५	गो. जी. ३५
११	पढमक्खो अंतगओ	"	गो. जी. ४०	१३	संठाविडूण रूवं	४६	गो. जी. ४२
१	पणुवीसं असुराणं	३१९		१२	सगमाणेण विहत्ते	"	गो. जी. ४१
२१	परमाणुआदियाइं	१००		४	सहणयस्स दु वयणं	२९	
३	वम्हे य लांतवे वि य	३२०		१	सम्मत्ते सत्त दिणा	४९२	
१	वारस दस अट्टेव य	२५०		१४	सव्वावरणीयं पुण	६३	
७	मिच्छत्तकसायासंज-	१४		८	सव्वे वि पुव्वमंगा	४५	गो. जी. ३६
२	मिच्छत्ताविरदी वि य	९		२	सोहम्मीसाणेसु य	३१९	
१	मुह-भूमीण विसेसो	११७		५	हेट्ठिमगेवज्जेसु अ	३०२	
५	वयणं तु समभिरूढं	२९					

३ न्यायोक्तियां ।

क्रम संख्या	न्याय	पृष्ठ	क्रम संख्या	न्याय	पृष्ठ
१	जस्स अण्णय-वदिरेगेहि णियमेग जस्सण्णय-वदिरेगा उवलंभंति तं तस्स कज्जमियरं च कारणं इदि णायादो			णायाणुसरणट्टमेगजीवेण सामित्तं	२८
२	जहा उद्देसो तथा णिद्देसो त्ति		३	सति धर्मिणि धर्माश्चिन्त्यन्त इति न्यायात्	२४
			४	सामान्यचोदनाश्च विशेषेष्वव- तिष्ठंत इति न्यायात्	७९, ८३

४ ग्रन्थोल्लेख ।

१ कसायपाहुड

१ ' आसाणं पि गच्छेज्ज ' इदि कसायपाहुडे चुण्णिणसुत्तदंसणादो । २३३

२ जीवट्टाण

१ एत्थ सामण्णणेरइयाणं वुत्तविक्खंभसूची चेव णेरइयामिच्छाइट्ठीणं जीवट्टाणे परूविदा । २४६

३ द्रव्यानुयोगद्वार

१ ण च एवं, जीवाणं छेदाभावादो दब्बाणिओगद्वारवक्खाणम्मि वुत्त-
हेट्ठिम-उवरिमवियप्पाणमभावप्पसंगादो चं । ३७२

४ परिकर्म

१ ' कम्मट्ठिदिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे वादरट्ठिदी होदि ' त्ति परियम्मवयणणहाणुववत्तीदो । १४५

२ ' जम्हि जम्हि अणंताणंतयं मग्गिज्जदि तम्हि तम्हि अजहण्णाणुक्कस्स-
मणंताणंतयं घेत्तव्वं ' इदि परियम्मवयणादो । २८५

३ ' रज्जू सत्तगुणिदा जगसेडी, सा वग्गिदा जगपदरं, सेडीए गुणिद-
जगपदरं घणलोगो होदि ' त्ति सयलाइरियसम्मदपरियम्मसिद्धत्तादो । ३७२

५ बंधप्पाबहुगसुत्त

१ सव्वत्थोवा धुवबंधगा × × × अद्दुवबंधगा विसेसाहिया धुवबंधगेणूण-
सादियबंधगेणेत्ति तसरासिमस्सिदूण वुत्तबंधप्पाबहुगसुत्तादो णव्वदे । ३६०

६ महाबंध

१ महाबंधे जहण्णट्ठिदिबंधआछेदे सम्मादिट्ठीणमाउअस्स वासपुधत्तमेत्त-
ट्ठिदिपरूवणादो । १९५

५ पारिभाषिक शब्दसूची ।

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अ		अन्तरकरण	८१
अकषायी	८३	अन्तर्मुहूर्त	२६७, २८७, २८९
अक्रायिक	७३	अन्वय	१५
अक्षपरावर्त	३६	अपगतवेद	८०
अक्षपकानुपशामक	५	अपवर्तनाघात	२२९
अगति	६	अपूर्वकरणउपशामक	५
अघाति कर्म	६२	अपूर्वकरणकाल	१२
अचक्षुदर्शन	१०१, १०३	अपूर्वकरणक्षपक	५
अचक्षुदर्शनी	९८	अक्रायिक	७१
अचित्तनोकर्मद्रव्यबन्धक	४	अप्रमत्त	१२
अतिप्रसंग	६९, ७५, ७६	अप्रशस्त तैजस शरीर	३००
अधःप्रवृत्त	१२	अबन्धक	८
अधिकार	२	अभव्य	७, २४२
अनध्यवसाय	८६	अभव्यसमान भव्य	१६२, १७१, १७६
अनन्तानुबन्धिसंयोजन	१४	अभव्यसिद्धिक	१०६
अनवस्था	९९	अभाग	४९५
अनवस्थान	६०	अयोग	१८
अनागमद्रव्यनारक	३०	अयोगी	८, ७८
अनादि-अपर्यवसित बन्ध	५	अर्थापत्ति	८
अनादिबादरसाम्परायिक	५०	अलेदियक	१०५, १०६
अनादि-सपर्यवसितबन्ध	५	अवधिज्ञानी	८४
अनाहार	७, ११३	अवधिदर्शन	१०२
अनिन्द्रिय	६८, ६९	अवधिदर्शनी	९८, १०३
अनिवृत्तिकरणउपशामक	५	अवहित	२४७
अनिवृत्तिकरणक्षपक	५	अविरति	९
अनुकम्पा	७	अशुद्धनय	११०
अनुभाग	६३	असंख्यातवर्षायुष्क	५५७
अनैकान्तिक	७३	असंख्येय गुणश्रेणी	१४
		असंखी	७, १११
		असंयत	९५

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
असंयम	८, १३	उपादेय	६९
असाम्परायिक	५	उपाद्भ्रुपुद्गलपरिवर्तन	१७१, २११
आ		ऋ	
आगमद्रव्य नारक	३०	ऋजुसूत्रनय	२९
आगमद्रव्य बन्धक	४	ए	
आगमभाव नारक	३०	एकविंशतिप्रकृति उदयस्थान	३२
आगमभाव बन्ध	५	एकेन्द्रिय	६२
आन-प्राणपर्याप्त	३४	एवंभूत	२९
आभिनिवेशाधिकज्ञानी	८४	औ	
आस्तिक्य	७	औदयिक	९, ३०
आस्रव	९	औपशमिक	३०
आहार	७, ११२	क	
आहारसमुद्घात	३००	कदलीघात	१२४
इ		कर्मद्रव्य	८२
इन्द्रिय	६, ६१	कर्मनारक	३०
ई		कर्मनिर्जरा	१४
ईर्यापथबन्ध	५	कर्मबन्धक	४, ५
ईषत्प्राग्भार	३१५	कर्मस्थिति	१४५
उ		कर्बट	६
उदय	८२	कषाय	७, ८
उदयस्थान	३२	कषायसमुद्घात	२९९
उद्वेलनकाल	२३३	कापोतलेश्या	१०४
उपचार	६७, ६८	काय	६
उपपाद्	३००	काययोग	७८
उपशम	९, ८१	कारक	८
उपशमश्रेणी	८१	कारण	२४७
उपशमसम्यक्त्व	१०७	काष्ठ-पोत-लेप्यकर्मादि	३
उपशमसम्यग्दृष्टि	१०८	कूटस्थानादि	७३
उपशान्तकषाय	५, १४	कृतकरणीय	१८१
उपशामकं	५	कृतयुग्म	२५६
उपादानकारण	६९	कृति-वेदनादिक	१
		कृष्णलेश्या	१०४

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
केवलज्ञानी	८८	चक्षुरिन्द्रिय	६५
केवलदर्शनी	९८, १०३	चतुरिन्द्रिय	६५
केवलिसमुद्घात	३००	चारित्रमोहक्षपण	१४
केवली	५	चारित्रमोहोपशामक	१४
क्रोधकषाय	८२	चूलिका	५७५
क्षपक	५		
क्षय	९, ६०, ८१, ९२	छद्मस्थ	५
क्षयोपशम	९२		
क्षायिक	३०		
क्षायिकलब्धि	६०	जगप्रतर	३७२
क्षायिकसम्यक्त्व	१०७	जगश्रेणी	३७२
क्षायिकसम्यग्दृष्टि	१०७	जिह्वेन्द्रिय	६४
क्षायोपशामिक	३०, ६१	जीवस्थान	२, ३
क्षीणकषाय	५, १४	ज्ञान	७
		ज्ञायकशरीर	४, ३०
ख			
खण्ड	२४७	तद्व्यतिरिक्त	४
खेट	६	तीर्थकर	५५
		तृतीयाक्ष	४५
ग		तेजस्कायिक	७१
गति	६	तेजोजमनुष्यराशि	२३६
गर्भोपक्रान्तिक	५५५, ५५६	तेजोलेख्या	१०४
गृहीत-गृहीतगणित	४९८	तैजसशरीर	३००
ग्राम	६	त्रसकायिक	५०२
		त्रीन्द्रिय	६५
घ			
घनलोक	३७२		
घातक्षुद्रभवग्रहण	१२६, १३६	द	
घातक्षुद्रभवग्रहणमात्रकाल	१८३	दण्डगत	५६
घातिकर्म	६२	दर्शन	७, १००
घ्राणेन्द्रिय	६५	दर्शनमोहक्षपण	१४
		दारुकसमान	६३
च		देशघातक	६३
चक्षुदर्शन	१०१	देशघाति	६४
चक्षुदर्शनी	९८		

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
भ		र	
भय	३४, ३५, ३६	रात्रि	३७२
भय्य	४, ७, ३०, २४२	ल	
भव्यसिद्धिक	१०६	लक्षण	९६
भाग	४९५	लब्धि	४३६
भाजित	२४७	लोकपूरण	५५
भावबन्धक	३, ५	लोभकपायी	८३
भावसंयम	९१		
भाषापर्याप्ति	३४	व	
म		वचनयोग	७८
मतिअज्ञानी	८४	वचस्पतिकायिक	७२
मतिज्ञान	६६	वायुकायिक	७१
मनःपर्ययज्ञानी	८४	विकल्प	२४७
मनोयोग	७७	विभंगज्ञानी	८४
महाकर्मप्रकृतिप्राभृत	१, २	विरलित	२४७
मानकषायी	८२	विशेषमनुष्य	५२
मायाकषायी	८३	विशेषविशेषमनुष्य	५२
मारणान्तिकसमुद्घात	३००	विहारवत्स्वस्थान	३००
मार्गणा	७	वेद	७
मिथ्यात्व	८	वेदकसम्यक्त्व	१०७
मिथ्यात्वादिप्रत्यय	२	वेदकसम्यग्दृष्टि	१०८
मिथ्यादृष्टि	१११	वेदान्तसमुद्घात	२९९
मिथ	९	वैक्रियिकसमुद्घात	२९९
मिश्रनोर्कर्मद्रव्यबन्धक	४	व्यंजनपर्याय	१७८
मुक्तमारणान्तिक	३०७, ३१२	व्यतिरेक	१५
मोक्षकारण	९	व्यवहार	२९
मोक्षप्रत्यय	२४	व्यवहारनय	१३, ६७
य		श	
यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत	९४	शतपृथक्त्व	१५७
योग	६, ८, १७, ७५	शब्दनय	२९
		शरीरपर्याप्ति	३४

(५८)

परिशिष्ट

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
शुक्ललेद्या	१०४	सर्वघातक	६९
शुद्धनय	६७	सर्वघातिस्पर्द्धक	६१, ११०
श्रुतअज्ञानी	८४	सर्वावरण	६३
श्रुतज्ञानी	"	सहकारिकारण	६९
श्रोत्रेन्द्रिय	६६	सहानवस्थानलक्षणविरोध	४३६
		सामान्यमनुष्य	५२
संज्ञी	७, १११	सामायिकलेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत	९१
संयत	९१	साम्परायिकबन्धक	५
संयतासंयत	९४	सासादनसम्यग्दृष्टि	१०९
संयम	७, १४, ९१	सिद्धगति	६
संवर	९	सिध्यमान भव्य	१७३
संवेग	७	सूक्ष्मसाम्परायिक	५
सचित्तनोकर्मद्रव्यबन्धक	४	सूक्ष्मसाम्परायिकादिक	"
सत्त्व	८२	सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत	९४
सदुपशम	६१	सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत	९४
समभिरूढ	२९	सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत	९४
सम्यक्त्व	७	सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत	९४
सम्यग्दर्शन	"	स्थापना	३
सम्यग्दृष्टि	१०७	स्थापनानारक	२९
सम्यग्मिथ्यादृष्टि	११०	स्थापनावन्धक	३
सभोगकेवली	१४	स्पर्द्धक	६१
		स्वस्थानस्वस्थान	३००